

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

समर्पण

वेदके महान् मर्मज्ञ और

लेखनीके परम आलसी

श्री श्री श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्यायके करकमलोमें

सादर सस्नेह

भूमिका

“नम ऋषिभ्य पूर्वजेभ्य ।” (१०।१०।१५)

दो वर्ष पहले यदि कोई कहता, कि मैं इस प्रकारकी एक पुस्तक लिखूंगा, तो मुझे इस पर विश्वास नहीं होता। वस्तुतः, ऐसी एक पुस्तकको अपनी या पराई किसी भी भाषामें भी न पाकर मुझे कलम उठानी पडी। ऋग्वेदमे ही हमारे इतिहासकी लिखित सामग्री का आरम्भ होता है। जिस प्रकार एक ईश्वर झूठके साथ-साथ महान् अनिष्टोका कारण है, पर अनेक देवता सुन्दर कलाका आवार होनेके कारण अनमोल और स्पृहणीय है, उसी तरह वेद, भगवान् या दिव्य पुरुषोकी वाणी न होने पर भी अपने सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक सामग्री के कारण, हमारी सवमे महान् और अनमोल निधि है। जिन्होंने इसको रचा, और जिन्होंने पीढियो तक कठस्थ करके बडे प्रयत्नमे इसे सुरक्षित रक्खा, वह हमारी हार्दिक कृतज्ञताके पात्र है।

जहा तक देश-विदेशके भाषातत्वज्ञो और बुद्धिपूर्वक वेदाध्ययन करने वालोका सम्बन्ध है, ऋग्वेदके कालके वारेमे बहुत विवाद नहीं है। पर, जो हरेके चीजमे अघ्यात्मवाद, रहस्यवादको देखनेके लिये उतारू है, वह अचिकित्स्य है, उनमे कुछ कहने की अवश्यकता नहीं। अपनी श्रद्धाके अनुनार वह अपने विश्वास पर दृढ रहें, उन्हें विचलित कौन करता है? लेकिन, आजकी भी तथा आनेवाली पीढिया और भी अधिक, हरेके बातको वैज्ञानिक दृष्टिमे देखना चाहेंगी। उनके लिये ही यह मेरा प्रयत्न है।

ऋग्वेद के जिज्ञानुओको अपनी कल्पना की सीमाओको जान लेना आवश्यक है। ऋग्वेद हमारे देशके ताम्र-युगकी देन है। ताम्र-युग अपने अन्तमें था, जबकि नप्तमिन्धु (पजाव) के ऋषियोने ऋचाओ की रचना की, जब कि नुदामने “दागराज” युद्ध में विजय प्राप्त करके आयों की जन-व्यवस्थाकी जगह पर एकतावद्ध सामन्ती व्यवस्था कायम करनेका प्रयत्न किया।

सप्तसिन्धुके आर्योंकी सस्कृति प्रधानत पशुपालोकी सस्कृति थी। आर्य खेती जानते थे, और जौकी खेती करते भी थे। पर, इसे उनकी जीविका का मूल नहीं, बल्कि गौण साधन ही कहा जा सकता है। वह अपने गौ-अश्वो, अजा-अवियो (भेड़-बकरी) को अपना परम धन समझते थे। उनके खान-पान और पोशाकके ये सबसे बड़े साधन थे। अपने देवताओको सतुष्ट करनेके लिये भी इनकी उन्हें बड़ी अवश्यकता थी। पशुधनको परमधन माननेके कारण ही आर्योंको नगरोकी नही, बल्कि प्रायः चरिण्णु ग्रामोकी अवश्यकता थी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्योंकी सस्कृति पशुपालो और ग्रामोकी मस्कृति थी। इन सीमाओ को हमें ध्यानमें रखना होगा।

ऋग्वेदके वारेमें निर्णय करते समय यह भी ध्यान रखने की बात है, कि ऋग्वेदिक आर्य केवल भारतसे ही सम्बन्ध नहीं रखते थे, बल्कि उनकी भाषा और पूज्य भावनाओके सम्बन्धी भारतसे बाहर भी थे। बाहरके सबसे नजदीकके सम्बन्धी ईरानी थे। सौभाग्यसे उनके धार्मिक आचार-विचारोके जाननेके लिये अवेस्ता और पारसी धर्मके माननेवाले अब भी मौजूद हैं। तुलनात्मक अध्ययनसे मालूम होता है, कि वेद और अवेस्ताके माननेवाले अपनी भाषा और धर्ममें एक दूसरेके बहुत नजदीक थे। ईरानियो के बाद दूसरे जो सबसे नजदीकके आर्योंके विदेशी सम्बन्धी हैं, वह स्लाव जातिया हैं। स्लाव स्क्लाव (शक लाव) का ही अपभ्रंश है। रूसी, अक्रडनी, वेलोरूसी, बुल्गारी, युगोस्लावी, चेकोस्लावी पोल—स्लाव जातिया—शकोकी ही सन्तान हैं। इन्होंने अपने पूर्वजोके धर्मको आज से सात-आठ सौ वर्षों पहले छोड़ दिया। ईसाई धर्म स्वीकार करते समय इनके पूर्वजोको लिपिका ज्ञान नहीं था, और न इन्होंने अपने पवित्र विश्वासो और देवताओके सम्बन्धमें अवेस्ता या वेद जैसे कोई प्राचीन सग्रह बनाये थे। जो भी पुराने साम या गाथायें रही होगी, वह ईसाई धर्म स्वीकार करते ही पुराने विश्वासके साथ नष्ट हो गईं। पेरुन, सूर्य आदि स्लाव देवताओकी मूर्तियोका भी इतना पूरी तरह से ध्वंस हुआ, कि सग्रहालयों में भी उनका पता नहीं मिलता।

ईरानियो और शकोके बाद लेत-लियुवानियो का सम्बन्ध नजदीकका है। यह दोनो भापाए सगी वन्हें और एक दूसरेके बहुत नजदीक है। इनसे भी सहायता मिल सकती थी, यदि पुराने पादरियोकी धर्मन्विता ने सर्वसंहार करनेका व्रत न ले लिया होता। लियुवानी सोलहवी सदी तक अपने प्राचीन धर्मपर आरुढ थे। उनके देवताओमे वैदिक देवताओकी प्रतिव्वनि मिलती है। वावर-हुमायू या विद्यापति-जायसी-के समय तक लियुवानी अभी अपनी पुरानी सास्कृतिक निवियोको जोगाये हुये थे। पर, एक वार ईसाई धर्म स्वीकार कर लेनेपर वह अपने पुराने धार्मिक सम्पर्कको नष्ट कर देनेके लिये मजबूर थे। बहुत पीछे ईसाइयो ने मस्कृतिके मूल्यको समझा, और उनके भीतर सहिष्णुता ही नही, बल्कि अपनी और पराई सास्कृतिक निवियोकी रक्षाका ख्याल भी पैदा हुआ। भापाकी दृष्टिसे लियुवानी वैदिक भापाके उतना नजदीक नही हैं, जितना कि रूसी, पर, अपने व्याकरणमे वह बहुत अधिक प्राचीनता रखती है।

इसके बाद पश्चिमी युरोपकी प्राचीन—ग्रीक, लातिन—और आबुनिक जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भापाओका सम्बन्ध वैदिक भापाके साथ है। वेदके अर्थ करने में यह सभी भापायें अविकार रखती हैं। हमारी कितनी ही सस्कृत धातुओका प्रयोग प्राचीन या नवीन सस्कृत साहित्यमें नही मिलता, पर उनका आज भी उपयोग भारत के बाहर इन भापाओमें देखा जाता है। उदाहरणार्थ दावना, मस्कृतमें नही प्रयुक्त होता, हमारी आजकी भापाओमें यह मौजूद है, और रूसीमें भी दब्ल्यात मिलता है। सप्तनिवु केवल वेदमें ही नही मिलता, बल्कि अवेस्ता और ईरानी प्राचीन साहित्यमें भी दृप्त-हिन्दू पाया जाता है, जो केवल नात नदियोंके लिये नही, बल्कि नातो नदियोवाले प्रदेश और वहा बसनेवाले लोगो के लिये भी इस्तेमाल होता रहा। जैमिनि वेदके वारेमें बडे कट्टरपथी है। उन्हें ईश्वर मान्य नही है, पर वह वेदको नर्वोपरि प्रमाण मानते हैं। वह भी शब्दोंके अर्थ करनेमें कितनी ही जगहोपर आयोंकी प्रसिद्धि छोडकर म्नेच्छोकी प्रसिद्धिको स्वीकार करते हैं—

“चोदित तु प्रतीयेताविरोधात्प्रमाणेन” (मीमासा १।३।६।१०)

आर्यों (भारतीयों) में कोई शब्दार्थ परम्परा लुप्त हो गई, इसलिये यहा वह नहीं मिलती, पर म्लेच्छोंमें वह परम्परा मौजूद है, इसलिये उसे प्रामाणिक मानना पडेगा। वह इसके लिये पिक, नेम (आवा) आदि शब्दोका उदाहरण देते हैं।

हित्तित जाति मसोपोतामियामें उसी समयके आसपास रहती थी, जिस समय कि सप्तसिन्धुमें आर्य थे। नासत्य (अश्विनीकुमार), इन्द्र, वरुण, मित्र आदि देवताओको हित्तित भी पूज्य मानते थे। इसलिये ऋग्वेदिक आर्यों के सम्बन्धमें जो गुत्थिया पैदा होती हैं, उनके सुलझानेकी इजारेदारी हमारा साहित्य ही नहीं ले सकता।

आर्यों के आनेके समय भारतमें उनसे कही बढकर उन्नत एक प्राचीन सस्कृति मौजूद थी, जिसके अवशेष मोहनजोडरो और हडप्पा में पहिले मिले, और अब वह जमुना-गंगा उपत्यका और सौराष्ट्र तक मिल रहे हैं। सप्तसिन्धुके आर्योंकी ग्राम-सस्कृतिसे यह नागरिक सस्कृति कही आगे बढी हुई थी। यदि आर्य अपनी पशुपाल सस्कृति और जीवनसे चिपटे रहनेका जवर्दस्त आग्रह न करते, तो वह तुरन्त इस नागरिक सस्कृतिके अधिकारी हो सकते थे। पर, अध्ययन करनेसे उनके जीवनका सम्पर्क इस सस्कृतिसे भी मालम होता है। उसकी और भी कितनी ही चीजे उन्होंने स्वीकार की होगी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्योंके अध्ययनके लिये सिन्धु-उपत्यकाकी सस्कृति सहायक है।

आर्योंकी सस्कृतिके पुरातात्विक अवशेष मिलने, तो उनके द्वारा सप्तसिन्धुके आर्योंके जीवनको हम और अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। चाहे ग्रामीण ही जीवन पसन्द करते हो, लेकिन आर्य मोम और अपने खाने-पीनेके रखने के लिये कितनी ही तरहके काठ, मिट्टी और तावेके वर्तनोंको इस्तेमाल करते थे, सोने और रतनके आभूषण पहनने थे, तावेके हथियार इस्तेमाल करते थे। उनके अवशेष जरूर मिलने चाहिये। धूमिल मृत्पात्र आर्यों के साथ जोडे जाते हैं। यह रोपडमें भी मिले हैं, और कुरुक्षेत्रमें भी। यदि गंगासे पूर्व इस तरहके मृत्पात्र मिलते हैं, तो वह ऋग्वेदके कालके वाद

भी मौजूद रहे, इसलिये उनपर सप्तसिन्धुके आर्योंके सम्बन्धमें एकान्त विश्वास नहीं किया जा सकता। चाहे अभी हम उन्हें अच्छी तरह पा या पहचान न सके हों, लेकिन सप्तसिन्धुकी भूमिमें वह मिलेंगे जरूर। सप्तसिन्धुका यद्यपि आधा ही अब भारतमें है, पर यह वह आधा है, जिसमें सप्तसिन्धुके आर्योंके सबसे प्रभुताशाली जन पुरु, तृत्सु, कुशिक रहते थे।

सिन्धु-संस्कृतिवालोंके अतिरिक्त एक और जाति सप्तसिन्धुके आर्योंके सम्पर्क और सघर्षमें आई, जिसे ऋग्वेद दास और दस्युके नामसे याद करता है। पर, जो किर, किरात अथवा किलात-चिलात के नामसे सम्भवत उस समय भी प्रसिद्ध थी, और जिसके लोगो और भापाके अवशेष अब भी हिमालयमें मिलते हैं। वह भी वैदिक आर्योंके इतिहासके ऊपर अपनी भापा और अपने पुरातात्विक अवशेषों द्वारा प्रकाश डालनेकी अधिकारी है। हिमालयमें किरात अब थोड़े रह गये हैं, लेकिन वह और उनके साथ रहनेवाले खश अब भी कितनी ही जगहोंमें ऐसे मास्कृतिक तलपर मौजूद हैं, कि उनके जीवन और धार्मिक विश्वासोंकी सहायतामें ऋग्वेदिक आर्योंके समझनेमें आसानी हो सकती है—विशेषकर वैदिक देवताओंका आर्योंके साथ जिस तरहका सम्बन्ध था, वह कितने ही अशोमें अब भी हिमालयकी इन जातियों में मौजूद है।

ऋग्वेद स्वतः प्रमाण है। उनके अपने क्षेत्रमें ऋचाये जितना अधिकारपूर्वक कह सकती हैं, उतना कोई दूसरा नहीं बतला सकता। यजुर्वेद और सामवेदको लेकर वेदत्रयी माना जाता था। बुद्धके समय ईसा-पूर्व पांचवी-छठी शताब्दीमें तीन वेदोंका स्पष्ट उल्लेख आता है। पर, ऋग्वेदकी तुलना करने पर सामवेद ऋग्वेदमें भिन्न नहीं मालूम होता। इसके २८१४ मन्त्रोंमें ७५ को छोड़ कर बाकी सभी ऋग्वेद के हैं। गोमयान या गोमयागके समय गानेकी अवश्यकता थी। ऋग्वेदमें भी गोमय और अनेक प्रकारके उक्त्यों, स्तोमोंका उल्लेख आता है। जैसे चूरनागरके मागरमेंसे बहुतने पदोंको गानेके स्वर आदिके साथ अलग नगह किया गया, वैसे ही सामवेदको ऋग्वेदसे अलग करके रक्षित किया गया।

यजुर्वेदकी वाजसनेयी संहितामें ४० अध्याय और १९८८ कठिका या मन्त्र हैं। यह गद्य और पद्य मिश्रित वेद है। पद्य भागमें अधिकतर ऋग्वेदकी ऋचायें ले ली गई हैं। जिस तरह साम गेय मन्त्रोंकी संहिता (सग्रह) है, उसी तरह यजुर्वेदमें ऋग्वेदकी बहुत सी ऋचायें तथा कितनी ही दूसरी रचनायें सम्मिलित करके यज्ञोंके उपयोगके लिए एक संहिता बना दी गई है। दर्श-पूर्णमास, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणि, अश्वमेध, सर्वमेध, पितृमेध आदि यज्ञोंमें उपयुक्त होनेवाले मन्त्रोंका यह सग्रह है। केवल अन्तिम (४० वा) अध्याय ब्रह्मज्ञानके लिये है, जिसे ईशावास्य उपनिषद् कहा जाता है। वेदके अन्तमें होनेके कारण इसे वेदान्त कहा गया, और आगे ब्रह्मज्ञान-सम्बन्धी इस और दूसरी उपनिषदोंके ऊपर विवेचनानात्मक ग्रन्थको भी वेदान्त कहा जाने लगा। ऋग्वेदके सोमपान आदि अनुष्ठानोंमें दिव्य और मानुष अश मिले-जुले हैं। ऋग्वेद-कालके बाद यह विधि-विधान दिव्यताका रूप ले लेते हैं। उसी समय यजुर्वेदकी रचना हुई। कृष्ण यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेदसे भी पुराना माना जाता है। प्राय ईसा-पूर्व १००० से ईसा-पूर्व ७०० तक यजुर्वेद, अथर्ववेद और ब्राह्मणोंकी रचनाका समय है। ऋग्वेदके पीछेके इन ग्रन्थोंसे भी ऋग्वेद और ऋग्वेदिक आर्योंके वारेमें सूचनायें मिलती हैं। लेकिन, साथ ही ऋग्वेदिक कालकी ऐतिहासिक सामग्रीको गडबड करनेकी जो प्रवृत्ति महाभारत, रामायण और पुराणोंमें मिलती है, उसका आरम्भ इसी समय हो चुका था। इसलिए उनके इस्तेमालमें बहुत सावधानी बरतनेकी जरूरत है।

यह अध्ययन अवूरा है। इसमें ऋग्वेदकी ऋचाओंके करीब छठे भागका उपयोग किया गया है, जिन्हें दो हजार तक किया जा सकता था। इससे अधिक ऋचायें शायद ही, ऐतिहासिक ज्ञान बढ़ानेमें मात्रक सिद्ध हो। ग्रन्थमें उपयुक्त ऋचाओंको परिशिष्टमें अर्थ महित दे दिया गया है, जो विद्यार्थियों और अनुसन्धानकर्ताओंके लिए उपयोगी साबित होगा। नाम और देवतासूची में भी कितनी ही उपयुक्त सामग्रीको सन्निविष्ट करनेकी

कोशिश की गई है। “हम और हमारे पूर्वज”में सांस्कृतिक परिवर्तनके बारेमें कुछ आवश्यक तथ्य दिये जाते हैं।

हम और हमारे पूर्वज—आज हम अपने देशमें मानवको देखते हैं। उसके सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवनसे भी परिचित हैं। उसका खान-पान, वेष-भूषा हमारे रोजमर्राके उपयोगकी चीज है। इसलिए हम उसको पूरी तौरसे जानते हैं। यह मान लेनेमें तो किसीको आपत्ति नहीं, कि हमारी हरेक बातमें परिवर्तन होता है। लेकिन, वह परिवर्तन कितना जबरदस्त हुआ, इसे समझ पाना हमें मुश्किल मालूम होता है। इसके लिये सौ-सौ वर्षके बाद ऐतिहासिक काल और ज्यादा अन्तरसे प्राग्-ऐतिहासिक कालको यदि हम देखें, तो पता लगेगा, कि परिवर्तन अविश्वमनीय रहा। हम १९५६ को न ले १९५० ई० से पीछेकी यात्रा करते हैं। यहाँ १९५७ के नवम्बरमें भी एक बात कह देनी जरूरी है। कितने ही अकल वेंच खाये हुए लोग यह समझते हैं, कि चूँकि १८५७ में अंग्रेजोंके खिलाफ विद्रोह और १७५७ में पलासीकी विजयके बाद अंग्रेजी राज्यकी स्थापना हुई, इसलिए हमेशामें ५७ का सन् हमारे लिये अनिष्टकर रहा है। लेकिन, १६५७, १५५७, १४५७ आदिके बारेमें कोई ऐसी बात हमारे यहाँ नहीं देखी जाती।

(१) १९५० ई०—१ अब हम पापाण, ताम्र, लौह, वास्द, वायके युगको पार कर परमाणु-युगमें हैं। वायुमण्डलपर हमारा अधिकार है। पाच-पाच नौ नील प्रतिघटके चालवाले विमानजन्ममेंने डधर उधर दौड़ रहे हैं रेलो-मोटोरोकी तो बात ही नहीं करनी है। (३, ४) हमारी शान्त-व्यवस्था गणतंत्र है, हमारे गणराज्यके राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद राजधानी दिल्लीमें रहते हैं। (५) हमारे देशकी मुख्य सम्मिलित भाषा हिन्दी है, और भिन्न-भिन्न भागोंकी अम्मिया, बगला, उडिया, तेलगू, तमिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, पंजाबी, आदि साहित्यिक भाषायें हैं। इनके अतिरिक्त मैथिली, मगही, भोजपुरी, जवची, ब्रज, मालवी, राजस्थानी, काँची, पहाडी आदि भाषायें भी साहित्यिक भाषायें हैं या होने जा रही हैं।

५. १५५० ई०—(१) हम लौह-युगके वारुद-उपयुगमें हैं। (३, ४) दिल्ली राजधानीमें शूरवगी इस्लामगाह गद्दीपर है। (५) फारसी राजभाषा है। (६) सामन्तवादी शासनमें दासताका अखण्ड राज्य है। (७) तोपें परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू और इस्लाम दो प्रधान धर्म हैं। (९) लोग अधिकांश मासाहारी हैं। खान-पानमें छूतछातका बहुत जोर है। रोटी-ब्रेटी अपनी जाति और प्रदेशमें ही हो सकती है। (१०) जायसी हिन्दी साहित्य-नागनसे हाल हीमें लुप्त हुए हैं। (११) सामन्त-वर्गमें मिर्जयी और सुत्यन पुरुषोकी और पायजामा-पेशवाज स्त्रियोकी पोशाक है। यह है सन् १५५०।

६. १४५० ई०—(१) वारुद-युगका भारतमें आरम्भ है। (३, ४) राजधानी दिल्लीमें बहलोल लोदीका शासन है। (६) सामन्तवाद और दास-प्रथा हमारी सामाजिक व्यवस्थाके प्रधान रूप हैं। (७) तोप परमास्त्र है, लेकिन उसका प्रचार हमारे यहा अभी बहुत कम हुआ है। (८) हिन्दू अधिक और मुसलमान भी काफी हैं। (९) अधिकांश लोग मासाहारी हैं। खानपानमें जवर्दस्त छूआछूत है। रोटी-ब्रेटी जात और प्रान्तके भीतर ही हो सकती है। (१०) साहित्य-नागनमें कवीर अस्त हो चुके हैं। (११) वेप-भूपा उत्तरी भारतके सामन्तोकी चीवन्दी, लम्बी मिर्जयी, कोगा और पायजामा या धोती है। स्त्रिया अपनी-अपनी प्रादेशिक पोशाक-धाघरा-लुगडी, धोती, सलवार आदि पहनती है। हिन्दू-मुसलमानकी पोशाकमें उच्च वर्गमें भी अन्तर है। यह है सन् १४५०।

७ १३५० ई०—(१) युरोपमें वारुद के प्रचारका आरम्भ है, पर, हमारे यहा उसका प्रवेश नहीं है। हम शुद्ध लौह-युगमें हैं। (३, ४) दिल्ली राजधानी है, राजा मुहम्मद तुगलक है। (५) राजभाषा फारसी है। (६) सामन्ती शासन और दास-दासियोका खुला क्रय-विक्रय हो रहा है। (७) तीर-धनुष और तलवार-भाला हमारे परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू प्रधान धर्म है, मुसलमान भी विशेषकर पजाव और दिल्लीके आसपास काफी हैं। (९) अधिकांश मासाहारी हैं, छूआछूतका राज्य है। मुसलमान या अछूतके

हाथका पानो नही पिया जा सकता। रोटी-बेटी जाति और प्रान्तके भीतर ही हो सकती है। (११) मुसलमानोकी पोशाक चोगा और पायजामा है। उनकी स्त्रिया भी वही पोशाक पहनती हैं। हिन्दुओंके यहा सामन्तोमें चौबन्दी-सुत्यन और चौबन्दी-धोती है, स्त्रियोमें घाघरा-लुगडी या साडी। यह है सन् १३५०।

८ १२५० ई०—(१) लौह-युग है। (३, ४) दिल्ली राजधानीमें सुल्ताननासिरुद्दीन खिलजीका शासन है। (५) फारसी राजभाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-दासियोका रवाज है। (७) तीर-धनुष हमारे परमास्त्र है। (८) हिन्दू धर्मकी प्रधानता है। बौद्ध भी हैं, और इस्लामका अभी प्रवेश ही हुआ है। (९) अधिकांश लोग मासाहारी हैं अछूत और मुसलमानके हाथका पानी नही चलता। रोटी-बेटी जाति और प्रान्तमें ही होती है। (११) मुसलमान सामन्त और उनकी स्त्रिया चोगा-पायजामा पहनते हैं। हिन्दू चौबन्दीके साथ सुत्यन या धोती रखते हैं। उनकी स्त्रिया घाघरा-लुगडी या दूसरी प्रादेगिक पोशाक पहनती हैं। यह है सन् १२५०।

९. ११५० ई०—(१) लौह-युगमें है। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानी है। महाराज गोविन्दचन्द गहडवारका शासन है। (५) संस्कृत राजभाषा है, और मध्यदेशी या अपभ्रंश (पाचाली, कनौजी) भारतकी सम्मिलित और सम्भ्रान्त भाषा है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) हिन्दू धर्मके दो रूप ब्राह्मण और बौद्ध देशमें बहु प्रचलित हैं, जिनमें ब्राह्मण धर्मियोकी संख्या अधिक है। इस्लाम अभी पजावमें ही थोडा-बहुत देखा जाता है। लेकिन, अफगानिस्तान हिन्दूसे मुसलमान हो गया है। (९) लोग अधिकांश मासाहारी हैं। छुआछूत और जात-पातका जोर है। पर, बौद्ध धर्म हिन्दू धर्मका अग होनेसे उसमें कुछ बाधक भी है। बाहरके किमी भी देशके बौद्ध अछूत नही माने जाते। रोटी-बेटी भी अपनी जातिके ब्राह्मण धर्मियो और बौद्धोंमें हो जाती है। (१०) हर्ष कान्यकुब्जके महान् कवि अभी तरुण है। (११) पोशाक चौबन्दी और धोती है। स्त्रिया घाघरा-लुगडी ज्यादा पहनती है। प्रादेगिक पोशाक भी उनकी अपनी-अपनी है। कान्यकुब्जकी वेप-

भापा, खान-पान और चाल-व्यवहारको आदर्श माना जाता है। यह है सन् ११५०।

१० १०५० ई०—(१) हम लौह-युगमें हैं। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानी है। प्रतिहार वंशका नाश हुआ है, देशकी स्थिति अस्त-व्यस्त है। (५) सस्कृत राज-सम्मानित भाषा है। पर, पाचाली (मध्य-देशीया) अपभ्रंश सारे देशकी सम्मिलित साहित्य और व्यवहारकी भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था और दास-प्रथाका प्रचार है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण और बौद्ध प्रधान धर्म है। (९) अधिकांश मासाहारी है। छुआछूतका खान-पानमें प्रचार है। अछूतको न छूते न उसके हाथसे पानी पीते हैं। बौद्ध-ब्राह्मण धर्मोंमें रोटी-ब्रेटीका कोई भेद नहीं है, पर, अपनी जाति और वर्गमें व्याह किया जाता है। (१०) साहित्य-गगनमें कविराज राजशेखर अस्त हो चुके हैं। (११) पोशाक पुरुषोंकी चौबन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियोंकी घाघरा-लुगडी या माडी-अगिया सम्भ्रान्त मानी जाती है। यह है सन् १०५०।

११ ९५० ई०—(१) हम लौह-युगमें हैं। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानीमें महाराज देवपाल प्रतिहारका शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य भाषा है, पर पाचाली (मध्यदेशीया) अपभ्रंश साहित्य और व्यवहारकी सारे देशमें मान्य भाषा है। (६) सामन्ती शासन और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण और बौद्ध प्रधान धर्म है, जिनमें शैव और तान्त्रिक बौद्ध धर्म मुख्यता रखते हैं। पूर्वमें बौद्ध और पश्चिममें पाशुपतोंकी सख्या अधिक है। (९) अधिकांश मासाहारी हैं, छुआछूत अछूतों और परधर्मों म्लेच्छों के साथ वरती जाती है। रोटी-ब्रेटी अपने जाति-वर्गमें होती है। (११) चौबन्दी-धोती, सुत्थन पुरुषोंकी और घाघरा, साडी, चुनरी, अगिया स्त्रियोंकी पोशाक है। यह है सन् ९५०।

१२ ८५० ई०—(१) हम लौह-युग में हैं। (३ ४) कन्नौजमें राजा मिहिरभोज प्रतिहारका शासन है। (५) सस्कृत राज्यमान्य तथा मध्य-देशीया (कन्नौजी) अपभ्रंश सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था

तथा दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) शैव और बौद्ध प्रधान धर्म हैं—पूर्वमें बौद्ध अधिक और पश्चिममें शैव अधिक हैं। (११) पोशाक पुरुषोंकी चौबन्दी-धोती-सुत्यन और स्त्रियोंकी साड़ी-धाघरा चुनरी-चौबन्दी-अंगिया है। यह है सन् ८५० ।

१३ ७५० ई०—(१) लौह-युगमें है। (३) (४) कान्यकुब्जमें प्रतापी यशोवर्माका शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य और मध्यदेशीया (पाचाली) अपभ्रंश भारतकी साहित्य और व्यवहारकी सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्तवादी ममाज है, जिसमें दामता निरावाव चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) शैव और बौद्ध प्रधान धर्म हैं—बौद्ध पूर्वमें और शैव पश्चिममें अधिक है। बौद्धोंमें महायानका जोर है, तन्त्रयान भी ऊपर आ रहा है। (९) खाने-पीनेके सम्बन्धमें छूतछात हरिजनोके साथ मानी जाती है, बाकीमें उमका कम प्रभाव है। लोग मासभक्षी ज्यादा है, यद्यपि गरीबोंको वह कभी ही कभी मिलता है। (१०) भवभूति और मरहपा साहित्य-नागनके सूर्य है। (११) चौबन्दी-धोती-सुत्यन पुरुषोंकी और साड़ी-चौबन्दी-अंगिया स्त्रियोंकी पोशाक है। यह है सन् ७५० ।

१४ ६५० ई०—(१) लौह-युग है। (३) (४) कान्यकुब्ज राजधानी है। हर्षवर्धनके मरे तीन ही वर्ष हुए हैं, सिंहासनके लिये भगडा चढ़ रहा है। (५) सस्कृत राजमान्य और पाचाली (मध्यदेशीया) अपभ्रंश सर्वमान्य साहित्य और व्यवहारकी भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था तथा दासप्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और शैव-ब्राह्मण धर्मोंकी प्रधानता है। पूर्वमें बौद्ध और पश्चिममें अबौद्ध अधिक है। (९) अधिकांश लोग मासभक्षी हैं। छुआछूत हरिजनोंमें बरती जाती है। विदेशियों के साथ भी छुआछूतका वर्ताव नहीं है। रोटी-बेटी अपनी जाति और प्रान्तमें अधिक होती है, पर अभी बाहरके लिये दरवाजा बन्द नहीं है। वाणको साहित्य-नागनमें अस्त हुए योडा ही समय होता है। (११) पोशाक पुरुषोंकी (१०) चौबन्दी-धोती-सुत्यन और स्त्रियोंकी साड़ी-अंगिया-कचुकी है। यह है सन् ६५० ।

सोगा-सुत्थन पुरुषोकी, और स्त्रियोकी साडी-फन्चुकी है। यह है सन् १५०।'

२०. ५० ई०—(१) लौह-युग है। (३, ४) मधुग राजधानी है। शक राजा वीम कदफिसका शासन है। (५) सीररोनी प्राकृत भाषा सर्वमान्य भाषा है, जो पालिसो अभी-अभी अलग हुई है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण, बौद्ध प्रधान धर्म हैं, जिनमें बौद्धो का पलटा भारी है। (९) लोग अधिक मासाहारी हैं। छूतछातका बर्ताव फेवल् हरिजनोके साथ है। रोटी-बेटीमें चणं या देश-विदेशका विचार उठ सा गया है। (१०) साहित्य-मगनमें महाकवि अश्वघोष चमक रहे हैं। (११) पोशाक पुरुषोकी धोती-चादर या शकीय चांगा-सुत्थन है, स्त्रियोकी साडी-फन्चुकी। यह है सन् ५०।

२१. ५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। शुग भूमिमित्रका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था तथा दास-प्रथाका चलन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और ब्राह्मण धर्मोंकी प्रधानता है। (९) मासाहारी प्राय सभी हैं। छूतछात सिर्फ अछूतोके साथ बरती जाती है। ज्याहमें वर्गका रयाल किया जाता है, जात या देशका नहीं। (११) धोती-चादर पुरुषोकी और साडी-फन्चुकी स्त्रियोकी पोशाक है। स्त्रिया कभी-कभी साडीको दो टुकलोमें उत्तरीय और अन्तर्वसिकके तौरपर पहनती हैं। यह है सन् ५० ई० पू०।

२२. १५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्रमें शुगवशी महाराजा पुष्यमित्रका शासन है। (५) संस्कृतको मान्यता देनेकी कोशिश की जा रही है, पर मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था तथा दास-प्रथाका चलन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और ब्राह्मण धर्मोंकी प्रधानता है। (९) मासाहारी प्राय सभी हैं। छूतछात सिर्फ हरिजनोके साथ बरती जाती है। ज्याहमें वर्गका रयाल ज्यादा है, देशी और विदेशीका विचार नहीं किया जाता। १० महावैयाकरण पतञ्जलीकी तारी है। (११) पुरुष अन्तर्वसिक और उत्तरीय पहनते हैं,

स्त्रियोंकी भी यही पोशाक है। दोनो केशोंके जूडेपर पगडी (उष्णीप) बाधते हैं। यह है सन् १५० ई० पू०।

२३ २५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्रमें देवाना-प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोकका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती शासन व्यवस्था और दाम-प्रथाका चलन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध, ब्राह्मण, जैन धर्म हैं, जिनमें ब्राह्मण धर्म प्रधान है। (९) लोग मासाहारी हैं। छूआछूत बहुत कम है। व्याहमें भी देश-कुलका ख्याल न करके "स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि" को माना जाता है। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी अन्तर्वामिक और उत्तरीय है। दोनो लम्बे बालोंको सिरपर जूडा बनाकर पगडी (उष्णीप) बाधते हैं। यह है सन् २५० ई० पू०।

२४ ३५० ई० पू०—१ लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। महानदका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दामप्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। जैन और बौद्ध धर्म अपने प्रभावको बढ़ा रहे हैं। (९) लोग मासाहारी हैं, खान-पानमें छूआछूतका विचार नहीं मा है। व्याहमें देश-कुलकी कड़ाई नहीं है। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी उत्तरीय-अन्तर्वामिक और लम्बे केशोंको जूडा बनाकर पगडी है। यह है सन् ३५० ई० पू०।

२५ ४५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। गिशुनाग वशीय राजा उदायीका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दाम-प्रथाका चलन है। (७) धनुष-बाण परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। जैन, बौद्ध, आजीवक आदि भी कुछ-कुछ फैलने लगे हैं। (९) मास भक्ष्य है। छूआछूतका विचार बहुत कम, सो भी चाण्डालोंके साथ है। व्याहमें भी बन्धन वर्गका ही अधिक है। (११) पोशाक उत्तरीय, अन्तर्वामिक, जूडायुक्त उष्णीप (पगडी) स्त्री-पुरुष दोनोकी है। यह है सन् ४५० ई० पू०

२६ ५५० ई० पू०—(१) लीह-युग है। (३, ४) सारा देश एक राज्य नहीं है। राजगृह और वैशाली प्रधान राजधानिया हैं। राजगृहमें विन्दुमारका शासन है, और वैशालीमें गणराज्य। (५) कोमली-पालि भाषाकी प्रधानता है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। आजीवक, निर्ग्रन्थ, बौद्ध धर्मके प्रचारका आरम्भ है। (९) सभी मासाहारी है। छूआछूतका विचार नहीं सा है। व्याहमें देश-जातिका नहीं वर्गका स्याल ज्यादा है। (१०) भारतीय दो महान् विचारक बुद्ध और तीर्थंकर महावीर काम कर रहे हैं। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोंकी उत्तरीय, अन्तर्वासक और उष्णीष है। यह है मन् ५५० ई० पू०।

२७ ६५० ई० पू०—(१) लीह-युग है। (३, ४) अलग-अलग राज्य और राजधानिया हैं, जिनमें कोमलकी राजधानी श्रावस्ती प्रधानता रखती है। (५) कोमली-पालि अधिक व्यापक भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दासता प्रचलित है। गणराज्य और राजतन्त्र दोनों प्रकारके शासन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। (९) छूआछूत-का विचार नहीं सा है। व्याहमें वर्गका विचार किया जाता है। लोग माम-भोजी हैं। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोंकी उत्तरीय-अन्तर्वासक और उष्णीष है। यह है मन् ६५० ई० पू०।

२८ ७५० ई० पू०—(१) लीह-युग के आरम्भिक दिन है। (३, ४) कुरु-पांचाल देशकी साम्प्रतिक और राजनीतिक प्रधानताका समय है। (५) छन्द (वैदिक) भाषा का ऊपरी (आर्य) वर्गमें अधिक प्रचार है, लेकिन द्रविड भाषा भी काफी बोली जाती है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथाका चलन है। गणों और राजाओं दोनोंके शासन चल रहे हैं। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्म और वैदिक कर्मकाण्ड आर्योंमें चलते हैं। दूसरे द्रविड, किरात देवताओंको मानते हैं। (९) सभी मासाहारी है। वर्णका विचार बहुत कडा है। आर्य अपनेमें भिन्न जातिके लोगोंके साथ व्याह करनेके विरुद्ध है। (१०) उपनिषद्के महान् ऋषि याज्ञवल्क्यका यह समय है। (११)

पोशाक अन्तर्वासक, उत्तरीय और उष्णीय स्त्री-पुरुष दोनोंकी है। आर्य ऊनी वस्त्रोंको ज्यादा पसन्द करते हैं। यह है सन् ७५० ई० पू०।

२९ ८५० ई० पू०—(१) लौह-युगका अभी-अभी अरम्भ हुआ है। (३, ४) कुरु जनपदकी प्रधानता है। (५) छन्द (वैदिक) भाषा आर्योंकी और प्राचीन द्रविड और किरात भाषा दूसरोंकी है। (६) गण और राज दोनों तत्र चल रहे हैं। दास-प्रधान सामन्ती समाज है। (७) परमास्त्र तीर-धनुष है। तीरके फल अब तावेकी जगह लोहेके बनने लगे हैं। (८) वैदिक धर्म आर्योंमें और दूसरोंमें अपने-अपने धर्म प्रचलित है। (९) वर्ण-भेद उसी तरह घोर है, जिस तरह दक्षिणी अफ्रीका और दक्षिणी युक्तराष्ट्र—अमेरिकामें आज देखा जाता है। (११) पोशाक ऊपर द्रापि (एक तरहका चोगा) और नीचे अन्तर्वासक है। आर्य ऊनी वस्त्र ज्यादा पहनते हैं। स्त्री-पुरुषोंकी पोशाकमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों अपने लम्बे बालोंको ममेटकर उष्णीय वाधते हैं। यह है सन् ८५० ई० पू०।

३० ११५० ई० पू०—(१) हम अब तीन सौ वर्ष पीछे जाते हैं। ताम्र-युग है। (३, ४) सप्तसिन्धु (पंजाब) में भरत जनके राजा सुदासकी तपी है। (५) वैदिक (छन्द) भाषा आर्योंकी भाषा है, दूसरोंकी किरात और द्रविड भाषायें। (६) जन-व्यवस्थासे अभी-अभी आर्य सामन्ती व्यवस्थामें आये हैं। अनार्य बहुत भारी सख्यामें उनके यहाँ दामके तौरपर काम करते हैं। (७) तावेके फलवाला तीर और धनुष परमास्त्र है। (८) आर्योंमें वैदिक देवताओंकी पूजा होती है। किरातों और द्रविडों (मोहनजोदड़ो वानियों) में अपने शिश्न या दूमरे देवता मान्य है। (९) सभी मामाहारी है। आर्य-अनार्य और काले-नोरेका भारी भेद है। दोनोंका सगस्त्र मघर्ष अभी खतम नहीं हुआ है। (१०) ऋषि वनिष्ठ और विश्वामित्र महान् कवि और राजनीतिज्ञके तौरपर विराजमान हैं। (११) द्रापि, अन्तर्वासक और उष्णीय स्त्री-पुरुषोंकी पोशाक है, जो ऊन या चमड़ेके होती है।

३१ १४५० ई० पू०—तीन सौ वर्ष और पीछे जाते हैं। (१) ताम्र-युग है। (३, ४) सिन्धु-उपत्यकापर पाँच आर्य जनोका शासन स्थापित हो

गया है। (५) आर्य प्राचीन वैदिक भाषा बोलते हैं। हिमालयके पहाड़ोंमें किरात और नीचे प्राचीन द्रविड या आर्य भाषा चलती हैं। हिमालयके किरातो में जन-व्यवस्था और दूसरोंमें सामन्ती या जन-व्यवस्था है। दासताका अखण्ड राज्य है। (७) ताम्रफलवाले तीर और धनुष परमास्त्र है। (८) वैदिक और प्राग्-द्रविड या किरात देवता अपनी-अपनी जातियोंमें पूजे जाते हैं। (९) सभी मासाहारी हैं। भयकर वर्णभेदका प्रचार है—जहा तक आर्यों और अनार्योंका सम्बन्ध है। द्रविडोंमें वर्णभेद है। (११) पोशाक आर्योंकी द्रापि, अन्तर्वसिक और उष्णीष स्त्री-पुरुष दोनोंकी है, जो ऊन और चमड़ेकी होती है। किरात शायद चमड़े और ऊनकी लम्बी चादरें पहनते हैं। प्राग्-द्रविड कपासके अन्तर्वसिक, उत्तरीय और शायद उष्णीष भी व्यवहार करते हैं। यह है सन् १४५० ई० पू०।

३२ १५५० ई०पू०—(१) ताम्र-युग है। (३, ४) सिन्धु-उपत्यकामें द्रविड सामन्तोका शासन है, जिनकी राजधानिया मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आदि है। (५) भाषा मैदानमें प्राग्-द्रविड है और हिमालयके पहाड़ियोंमें प्राग्-किरात। (६) प्राग्-द्रविडोंमें दासतायुक्त सामन्ती व्यवस्था है, किरातोंमें जन-व्यवस्था है। प्राग्-द्रविडोंमें आर्थिक स्वार्थोंने वर्ग स्थापित किये हैं। प्राग्-किरातोंमें पितृसत्ताक या जन-व्यवस्था है। (७) धनुष और तावेके फल लगे तीर परमास्त्र है। (८) प्राग्-किरात और प्राग्-द्रविड देवता पूजे जाते हैं। (९) सभी मासाहारी हैं। (१०) प्राग्-द्रविड कपासके अन्तर्वसिक, उत्तरीय पहनते हैं, और किरात चमड़े या ऊनकी लम्बी चादरें जाड़ोमें पहनते हैं, नहीं तो नगे रहते हैं।

३३ २५५० ई० पू०—(१) अभी-अभी ताम्र-युगका आरम्भ हुआ है। (३, ४) उत्तरी भारतमें प्राग्-द्रविड जाति कहीं कहीं बसती है। हिमालयके पहाड़ोंमें कश्मीरमें आसाम और आगे तक किरात जाति जहा-तहा है। (५) दोनों अपनी-अपनी भाषा बोलते हैं। (६) प्राग्-द्रविड पितृसत्ताक जन-व्यवस्थामें हैं, और प्राग्-किरात उनसे भी पीछे हैं। (७) पत्थरके हथौड़े और तीरपर चकमक-पत्थरका अभी भी प्रयोग है,

कभी-कभी तावेंके टुकड़े भी जोड़े जाते हैं। तीर-धनुष ही परमास्त्र हैं। (११) पोशाक सिर्फ जाड़ेके लिए चमड़े या ऊनकी पहनी जाती है, नहीं तो अधिकतर स्त्री-पुरुष नगे रहते हैं। जीविकाका साधन खेती और शिकार दोनों हैं।

३४ ३०५० ई० पू०—(१) और भी पांच सौ वर्ष पीछे जानेपर हम नव-पापाण-युगमें हैं। (३, ४) भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें भिन्न-भिन्न जन रहते हैं। किरात पहाड़ों और तराईके जंगलोंमें तथा मुण्डा और निपाद मैदानी घोर जंगलोंमें निवास करते हैं। (५) किरात, मुण्डा, निपाद भापाओं के प्राचीन रूप लोग बोलते हैं। (६) पितृसत्ताक जन-व्यवस्था है। (७) शिलामुख वाण और धनुष परमास्त्र हैं। (८) मृतात्माओं और वृक्षो-पशुओं को लोग पूजते हैं। (९) भक्षामक्ष्यका कोई परहेज नहीं है। मासाहार प्रधान खाद्य है। अन्न खेतीसे उत्पन्न होने लगा है, पर उसका उपयोग कम है। (११) सिर्फ जाड़ेके लिये चमड़ेका व्यवहार करते हैं, नहीं तो स्त्री-पुरुष नगे रहते हैं।

३५ १००५० ई० पू०—(१) हम और सात हजार वर्ष पीछे जाते हैं। अब ऊपरी पुरापापाण-युगमें हैं। (३, ४) किरात और निपाद जातिके थोड़े से लोग भारतके जंगलोंमें जहा-तहा मिलते हैं। (५) वह अपनी-अपनी भाषा बोलते हैं, जिसका शब्दकोश कुछ नौ शब्दोंमें अधिक नहीं है। (६) मातृसत्ताक व्यवस्था है, सम्पत्ति और श्रम सामूहिक है। (७) छिड़े हुए पत्थरके हथियार—कुल्हाड़े, छुरे आदि—ही परमास्त्र हैं। (८) मृतकों और भयप्रद वस्तुको मनुष्य करनेकी मनुष्य कोशिश करता है। (९) केवल शिकार का मांस और जंगलके फल जीविकाके साधन हैं। (११) जाड़ोंमें बचनेके लिये आदमी चमड़े और आगका इस्तेमाल करता है। हिंसक जन्तुओंको भगानेमें भी अग्नि सहायक है।

पिछले १२००० वर्षोंमें भारतमें मानव समाजका विकास इस प्रकार हुआ है, उसे हम यहा तालिकामें दे रहे हैं—

युग	काल	राजधानी	राजा	भाषा	व्यवस्था
१	२	३	४	५	६
लीह	४५० ई०	पटना	कुमारगुप्त	माग०	सा० दा०
"	५५० "	कन्नौज	ईशानवर्मा	मध्यदेशीय अपभ्रंश	"
"	६५० "	"	अर्जुन	"	"
"	७५० "	"	यशोवर्मा	"	"
"	८५० "	"	मिहिरभोज	"	"
"	९५० "	"	देवपाल	"	"
"	१०५० "	"	प्रतिहार	"	"
"	११५० "	"	गोविंदचंद	"	"
"	१२५० "	दिल्ली	नासिरुद्दीन	पारसी	"
"	१३५० "	"	मुहम्मद तुगलक	"	"
बारूद	१४५० "	"	बहलोल लोदी	"	"
"	१५५० "	"	इसलामशाह	"	"
"	१६५० "	"	शाहजहा	"	"
"	१७५० "	"	अहमदशाह	"	"
वाप्य	१८५० "	कलकत्ता	भगेज	अगेजी	पूजीवाद
परमाणु	१९५० "	दिल्ली	राजेन्द्रप्रसाद	हिन्दी	"

परमास्त्र	घर्म	छुआछूत	कवि (काल)	वेप
७	८	९	१०	११
लौहतीर	ब्रा० वी० जै०	छुआछूत	कालिदास	चोगा-चौवदी
"	"	"	(अजन्ता)	धोती-सुत्यन
"	"	"	०	"
"	"	"	भवभूति	"
"	"	"	०	"
"	"	"	राजशेखर	"
"	"	"	०	"
"	"	"	हर्ष	चौवदी-धोती
		जातपात		
"	हिंदू-इस्लाम	"	०	चोगा-सुत्यन
"	"	"	०	"
तोप	"	"	कवीर	"
"	"	"	जायमी	"
"	"	"	०	"
"	"	"	०	"
रेल (१८५३) तार	" ईसाई		गालिव	"
परमाणुबम,	शिथिल	शिथिल	निराला	कोट-पैन्ट
विमान				

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
भाग १		३ पराजित	३७
(भौगोलिक)	१	४ उत्पीडन और वर्ण-विभेद	३८
१ सप्त सिन्धु		४ खान-पान	४१
५१ आर्यों का आगमन	३, २५२	५१ खाद्य	"
५२ उसके पीछे ऋग्वेद	३	१ मांस	"
५३ ऋग्वेद परम प्रमाण	६	२ अन्न	४४
५४ सप्तसिन्धु की भूमि	१०	५२ पान	४६
२ आर्य-जन	१३, २५८	१ सोम	४७
५१ सिन्धु-सभ्यता	१३	२ मुरा	४९
५२ आर्य-जन	१८, २५८	भाग ३	
१ पाच जन	१८	(राजनीतिक)	५१
२ अल्प जन	२०	५ ऋग्वेद के ऋषि	५३, २९०
भाग २		५१ प्रधान ऋषि	५३
(सामाजिक, आर्थिक)	२७	१ भरद्वाज	५९, २९०
३ वर्ण और वग	२९, २६४	२ ऋषिनिष्ठ	६१, २९२
५१ वर्ण (रग)	२९	३ विश्वामित्र	६६, २९६
१ आर्य वर्ण	३०	८ वामदेव	६९, ३००
२ अनाय वर्ण	३०	५२ अन्य ऋषि	७०
५२ वर्ण	३३	५ गृत्समद	७०, ३०६
१ दाम-दामिया	"	६ कधीवान्	७१, ३१०
(आजीविका)	३४	७ जगस्य	" ३१४
२ चार वर्ण	३५	८ दीर्वतमा	७०, ३१६
		९ गोतम	" ३१८
		१० मेवातियि	७३, ३२०

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
११ श्यावाश्व	" ३२४	३ रुम	"
१२ कुत्स	" ७३	४ श्यावाक	"
१३ मधुच्छन्दा	७३, ३२६	५ कृप	"
१४ प्रस्कण्व	७४	६ वध्र्यश्व	११०,
		७ अन्यावर्ती चायमान	३६८
			११०
६ दस्यु	७६, ३२८	८ मुमीळ्ह	"
११ सिन्धु-जाति (पणि)	७६	९ पुरुणीथ	"
१२ शवरीय पहाडी	८१	१० प्रस्तोक	"
१३ मोन्लमेर (किरात)	"	११ कुत्स आर्जुनेय	१११
७ आदिम आर्य राजा	८६,	५२ श्रुतर्य	१११, ३७२
	३३६	१३ तुर्वीति	१११
	८७	१४ दभीति	"
१ मनु	८८, ३३८	१५ ध्वमति	"
२ पुरूरवा (जवंशी)	९१, ३४२	१६ पुरुपति	"
३ नहुप	" ३४४	१७ देवक मन्यमान	११२
४ ययाति	" ९१	१८ सुश्रवा	११२, ३७२
५ मन्वाता	९२, ३४४	१९ तुर्वयाण	"
८ शंवर	९२	२० ऋणचय	"
११ दस्यु	९६, ३५२	२१ पाकस्थामा कौरयाण	३७४
१२ शंवर के मेनापति	९६		११३
१ शुष्ण	९९, ३५८	२२ देवप्रवा	"
२ पिप्रु	९९	२३ देववात	११४, ३७६
३ वगृद	"	२४ सुजय देववात	११४
४ करज	९९	२५ महिराघ साञ्जय	११४
५ पर्णय	१००, ३६०	२६ पुरुकुत्स	"
६ वची	१०१	२७ असदस्यु पीरुकुत्स	११५
१३ शंवर	१०५	२८ कुरुश्रवण असदस्यु-पुत्र	११६
१४ किरात	१०८, ३६६		३७८
८ दिवोदास	१०८, ३६६	१२ दिवोदासके कार्य	११६,
१ पूर्वकालके आर्य-नेता	१०८		३८०
१ दध्यड	"	१ दिवोदाम अतिथिगव	११६
२ रुम	"		

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
२ शबर-हृत्या	११६, ३८४	५२ राजा	६, १३ ४१०
५३ हथियार	१२०	१ राजाभिषेक	१३६
१ इपु	"	२ सम्राट्	१३७
२ निपग	"	३ शास	१३७, ४१२
३ धनुष	"	४ ईशान	१३७
४ ज्या	"	५ स्वराट्	१३८
५ वर्म	१२०, ३८६	६ नृपति	"
६ कुलिश	१२१	७ पति, राजा	"
७ परशु	१२१, ३८८	८ राजपुत्र, राजदुहिता	१३९,
८ वशी	"		४१४
९ ऋष्टि	"	५३ शासन-यन्त्र	१३९
१० वज्र	"	१ सभा	"
११ अत्क	"	२ समिति	१४०
१२ नाव	१२२, ३९०	३ ब्राजपति, कुलप	१४१, ४१६
१० सुदास	१२३	४ पुरोहित (प्रधानमन्त्री)	१४२
५१ सुदास वीतहव्य	"		
१ वसिष्ठ पुरोहित	१२४		
२ सुदास	१२६, ३९२		
५२ वाशराज्ञ युद्ध	१२७, ३९४		
१ शत्रु	१२७		
२ युद्ध	१२९, ३९८		
३ सुदेवी रानी	१३०, ४०२		
✓ ५३ अश्वमेध	१३०		
१. विश्वामित्र पुरोहित	"		
✓ २ अश्वमेध	१३१, ४०२		
११ राजन्यवस्था	१३३, ४०६		
५१ शासक, शासित	१३३		
१ ग्रामणी	१३४, ४०६		
२. राष्ट्र	१३४		
३ विश्	१३५		
४ राजा	१३५, ४०८		
		भाग ४	
		(सांस्कृतिक)	१४३
		१२ शिक्षा, स्वास्थ्य	१४५, ४१८
		५१ शिक्षा	१४५
		५२ स्वास्थ्य	१४८
		५३ रोग	१५०
		५४ चिकित्सा	१५२, ४२२
		१३ वेश-भूषा	१५४, ४२४
		५१ वस्त्र	१५४, ४२६
		१ द्रापि	४२६
		२ अत्क	"
		३ शिप्र	४२८
		५२ भूषा	१५८
		१ कर्ण आभूषण	"
		२ मोने का कण्ठा	१५८, ४३०

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
३ रुक्मवक्ष	१५९	१३ मन्यु	१९२, ४८६
४ स्त्रादि	"	१४ मित्र	१९२, ४८८
५ ऋष्टि	"	१५ यम	४९०
६ शिप्र	"	१६ रुद्र	१९३
५३ सज्जा	१६०, ४३२	१७ वरुण	१९४, ४९२
१ कपर्द	१६०	१८ वायु	१९६, ४९४
२ क्षीर	"	१९ वास्तोष्पति	१९६
१४ क्रीडा, विनोद	१६३, ४३४	२० विश्वकर्मा	"
५१ नृत्य	१६३	२१ विष्णु	१९७, ४९६
५२ सगीत	"	✓२२ सरस्वती	१९८
५३ पान	१६४	२३ सविता	१९९, ५००
१ सोम	१६४	२४ सोम	२००
२ सुरा	१७३, ४४६	५२ (पितर आदि अन्य)	२०२, ५०२
✓ ५४ जूआ	१७३, ४४८	५३ सकाम कर्म	२०४, ५०४
५५. समन (मेला)	४४८	५४ अर्चना सामग्री	२०७, ५०८
१५ देवता (धर्म)	१७५, ४५०	१ हवि (पुरोडाग)	" ५०८
५१ देवता	१७५	२ पशुवलि	" २०९, ५१२
(देवसख्या)	१७६	✓ ५६ मन्त्र-तन्त्र	२१०, ५१४
✓ १ अग्नि	१७७, ४६०	✓ ५७ परलोक	२११, "
✓ २ अरण्य	१७८, ४६४	१ यमलोक	२१२, "
३ आप	१७८	२ स्वर्ग	" "
✓ ४ इळा	१७९, ४६६	१६ ज्ञान-विज्ञान	२१३, ५१६
✓ ५ इन्द्र	१७९	५१ कृषि	" "
६. ऋभु	१८६, ४७६	१ हल, फाल	" "
७ क (प्रजापति)	१८६, ४७८	२ कुआ	२१४, ५१८
८ पर्जन्य	१८७, ४८०	३ कुल्या	" "
९ पितरौ	१८७	५२ वास्तु	२१५, ५२०
१० पुरुष	१८८	५३ काल	२१६, "
११. पूषन्	१८८, ४८२	१ माम	" "
१२ प्रजापति	१९०, ४८४	२ ऋतु	" "

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
३ नक्षत्र	२१७, ५२२	२५ सूर्या	२३६, ५५६
५४. तोल, माप	" "	१८ भाषा श्रौर काव्य	२३९, ५५८
१ तोल	" "	५१ भाषा	२३९, ५६०
२ माप	२१८, ५२४	५२ छन्द	" २४२
५५ संख्या	" "	५३ रचना	२४३, ५६०
१७. श्रार्य-नारी	२२२, ५३२	१ वाणी	२४३, "
✓१ अदिति	२२३, "	२ सूक्त	२४४, "
२ इन्द्रमाताएँ	" ५३४	३ श्लोक	" ५६२
३ इन्द्राणी	२२४, "	४ साम	" "
४ उर्वशी	२२५, ५३६	५ स्तोम	" "
५ घोषा	२२६, ५३८	५४ काव्य	२४५, ५६२
६ जुहु	२२७, ५४०	५५ कवि	२४६, ५६६
७ दक्षिणा	२२८, ५४२	१ वसिष्ठ	" "
८ निवावरी, सिकता	२२९, ५४४	२ विश्वामित्र	२४७, ५६८
९ यमी वैवस्वती	२३०, ५४६	३ वामदेव	" "
१० रात्रि	२३२, ५४८	४ भौम	२४९, ५७२
११ लोपामुद्रा	२३३, "	परिशिष्ट १	
१२ वसुकुपत्नी	" ५५०	१. सप्तसिन्धु	२५२
१३ वाक्	" "	२ अर्यजन	२५८
१४ विवृहा	२३४, ५५२	३. वर्ण, वर्ग	२६४
१५ विश्पला	" "	४ खानपान	२७२
१६ विश्ववारा	" "	५ प्रवान ऋषि	२९०
१७ शची	" "	६ दस्यु (अन्-आर्य)	३२८
१८ शश्वती	२३५, "	७ आदिम आर्य राजा	३३६
१९ शिखडिनी काश्यपी	२३५, ५५४	८ शम्बर	३४४
२० श्रद्धा कामायनी	" "	९ दिवोदाम	३६६
२१ सरमा	" "	१० सुदाम	३९१
२२ सार्पराज्ञी	" "	११. राजव्यवस्था	४०६
२३ निकता	२३६, "	१२ शिक्षा आदि	४१८
२४. सुदेवी	" "	१३ वेप-भषा	४२४

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
१४ त्रीडा, विनोद	४३४	परिशिष्ट २	
१५ देवता (धर्म)	४५०	नामसूची	५७४
१६ ज्ञान विज्ञान	५१६	परिशिष्ट ३	
१७ आर्य नारी	५३२	शब्दसूची	५९२
१८ भाषा और काव्य	५५८	पारशष्टि ४	
		देवता सूची	६०४

भाग १
भौगोलिक

अध्याय १ सप्तसिन्धु

§१ आर्यों का आगमन

आर्यों के रक्तसम्बन्धी पड़ोसी ईरानी 'स' का उच्चारण 'ह' किया करते थे, इसलिए सप्त-सिन्धुकी भूमिमें आ वसे अपने भाइयोंके देशको वह 'हप्त हिन्दु' कहा करते थे, जिसका ही मक्षेप 'हिन्द' हुआ। पश्चिमके देशोंके उस समयके सरताज ग्रीसके निवासी 'ह' का उच्चारण करनेमें अममर्थ हो उसकी जगह 'अ' बोलते थे, इस प्रकार हिन्दु इन्दु या इन्द बन गया, जो ही हमारे देश का नाम आज सर्वत्र प्रचलित है। ऋग्वेदमें 'सप्तसिन्धु' नाम अनेक वार आया है, कही वह सात नदियोंके अर्थमें और कही मातो नदियोंकी भूमि के लिए। देश या जनपद के नाम उस समय जन (कबीले) के नाम पर पडते थे, इसलिए उमे बहुवचन में बोलते थे। यह क्रम बुद्ध के समय और कितना ही पीछे तक रहा। पालि में 'कोमल में,' 'काशी में' की जगह 'कोसलेसु' (कोमलोमें), 'कामीसु' (काशियोमें) कहा गया है। अपेक्षाकृत नवीन ऋषि हिरण्यन्तूपने अपनी ऋचामें सविता (सूर्य) की महिमा गाते हुए कहा है—“सविता ने दाता को श्रेष्ठ रत्न (धन) देते सप्त-सिन्धुओं को प्रकाशित किया”^१ (१।३५।८)।

सप्त सिन्धु, सातो नदियो या आर्य जनोके वारेमें कुछ कहने मे पहले उस स्थिति के वारे में कुछ कहना है, जिसमें आर्य ऋग्वेद-काल में थे।

आर्य भारत में बाहर से आए, यदि यह न माना जाए, तो आर्य की भाषा पश्चिमकी जिन भाषावालो से अपना एक पारिवारिक सम्बन्ध बत-

लाती है, उन्हें भी भारत से गया मानना होगा। इसके कारण और अनेक समस्याएँ उठ खड़ी होगी, जिनका समाधान अतिकठिन है। अधिकतर यह ध्याल आर्य और हिन्दी-युरोपीय भाषाओं एव तत्सम्बन्धी दूसरी सामग्रियों की ओर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण ही होता है। उसीके कारण हमारे इतिहासवेत्ता कलियुग और महाभारत कालकी धारणा बनाकर इतिहासको हज़ारों वर्ष पीछे ले जानेकी कोशिश करते हैं। वस्तुतः क्षुद्र - एसियामे हित्तितो, ग्रीस में यूनानियों और ईरान में ईरानी-आर्योंके प्रवेशके समय पर ध्यान देनेसे आर्योंका भारत में प्रवेश ई० पू० १५०० से पहले नहीं मालूम होता। और ऋग्वेद के पुरातनतम प्रसिद्ध ऋषि भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र^१ तो उमसे बहुत पीछे, कम-से-कम ३०० वर्ष पीछे, हुए।

§२ उसके पीछे ऋग्वेद

काफी काल दीते विना उनके उच्चारण में वह भारी परिवर्तन नहीं हो सकता, जो कि ऋग्वेद में देखा जाता है। भारतीय आर्य हिन्दी-युरोपीय वंशकी पूर्वी या शतम् - शाखाके अन्तर्गत आते हैं, जिसमें ही रूसी आदि स्लाव और ईरानी भी सम्मिलित हैं। ईरानी और स्लाव मूर्वन्य वर्णों (टवर्ग आदि) का उच्चारण कर नहीं सकते, जबकि ऋग्वेद की प्रथम ऋचा में ही^१ (१।१।१) 'अग्निमीळे' में ङ आ गया है। आर्यों के मुँह में इन मूर्वन्य वर्णों का उच्चारण सप्त-सिन्धुके पुराने निवासियों—मोहन-जोदडो, हड़प्पा के लोगों—के घनिष्ठ सम्पर्कके कारण ही हुआ। ईरानी आर्य अपने मूलस्थान 'आर्याना वेइजा' का स्मरण रखते थे, पर भारतीय आर्य उसे भूल गए थे, यह ऋग्वेद के मौन - धारण से मालूम होता है। इसमें यह भी कारण हो सकता है, कि उनका प्रसार बीच के स्थानों को छोड़ कर नहीं हुआ, इसलिए उन्हें मूल-स्थान में निर्वासित होनेका ध्याल नहीं हो सकता था। आखिर ऋग्वेदिक आर्यों के सब से पश्चिम में रहने वाले पल्ल, भलान आदि जन भारत के पश्चिमी द्वार खैबर और

बोलान के काफी पीछे तक वसे हुए थे। उनके भी पश्चिम आर्य जन रहे होंगे, पर प्रकरण में न आ सकने के कारण ऋग्वेद के ऋषि उनका नाम-स्मरण नहीं कर सके।

ऋग्वेदके ऋषियों का उद्देश्य इतिहास लिखना नहीं था। वह अपने देवताओं और दाताओं को प्रसन्न करना चाहते थे। इसी के सम्बन्ध में कितनी ही ऐतिहासिक और भौगोलिक बातें वहाँ आ गई हैं। इसमें शक नहीं, उन्हीं के कारण ऋग्वेद का मूल्य अनर्घ हो जाता है। उसके इस मूल्य की तुलना बाकी तीनों वेदों से भी नहीं की जा सकती, महाभारत और पुराण आदि तो इस काल के सम्बन्ध के ज्ञान में अत्यन्त दरिद्र तथा अविश्वमनीय हैं। ऋग्वेद के काल पर ऋग्वेद स्वयं सर्वोपरि प्रमाण है। और कही जो भी उस काल के सम्बन्ध की बात ऋग्वेद के विरुद्ध आये, उसे ज़रा भी देर किए बिना त्याज्य समझना चाहिए। कितने ही आजकल के ऐतिहासिक दोनो क सम्बन्ध करनेकी कोशिश करते हैं, जिसका परिणाम एक गलतीके लिए मात गलती करना होता है। दिवोदाम और सुदाम पिता-पुत्र ऋग्वेदके सर्वोपरि नायक हैं। वह तृत्सु-भरत उनके प्रतापी राजा थे, जिनकी मोमा पर परुष्णी—आज की रावी—बहती थी। सिन्धु पार के रहने वाले आर्य-जन पथ्य, भलानम, अलिन, द्विपाणि और उनके सिन्धु इम पारके पडोमी शिव एक बार तृत्सुओं पर आक्रमण करने के लिए परुष्णी (४।२२।२) के तट तक पहुँच गए थे, और बड़ी कठिनाई में भगाए जा सके। परुष्णी तट पर रहने वाले इन राजाओं को महाभारत ने गंगा तट के पञ्चाल (काम्पिल्य-कन्नौज और रुहेलखण्ड) का राजा बना दिया है। ऐसी ऐतिहासिक गटबडी के ठीक करने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। जब ऋग्वेदिक इतिहास के बारेमें महाभारत की यह हालत है, तो पुराण दस कदम और आगे जाएँ, तो क्या आश्चर्य? इसका यह अर्थ नहीं, कि उनका कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं। पीछे के काल के बारे में वह प्रामाणिक नामग्री प्रदान करते हैं, मानवतत्वआदि सम्बन्धी अनुमन्वान में भी उनसे सहायता मिल सकती है।

१३ ऋग्वेद परमप्रमाण

ऋग्वेदके रूप में उस समय के सम्बन्ध की अत्यन्त मूल्यवान् सामग्री हमारे पास है। प्रायः तीन हजार वर्षों से इस निधि को हमारे पूर्वजों ने भरसक ज़रा-सा भी परिवर्तन किए बिना रक्षित रखा। पर यह सामग्री दिवोदास और सुदास के काल के पीछे ले जाने में असमर्थ-सी है। प्राग्-आर्य कालीन इतिहास लिखित सामग्री के बिना भले ही हो, और वह ऐसा नहीं है, क्योंकि मोहनजोडरो और हड़प्पा में हजारों ऐसी मुहरें मिली हैं, जिन पर अक्षर उत्कीर्ण हैं, पर हम उन्हें अभी पढ़ने में असमर्थ हैं। लिखित सामग्रीके न पढ़े जाने पर भी हमारे इन दोनों प्राचीनतम नगरों से इतने प्रचुर परिमाण में मानव-जीवन की सामग्री प्राप्त हुई है, कि हम उसे खूब जान सकते हैं। ताम्र-पीतल युगमें होते हुए भी सिन्धुवासी लोग धन-धान्य-सम्पन्न भव्य अट्टालिकाओं में स्वच्छतापूर्वक रहते थे। नागरिक स्वास्थ्य और सफाई के नियमों के पालन में वह अपने आजके उत्तराधिकारियों से कहीं आगे थे। वह सुन्दर कपास के कपड़े पहनते थे, जबकि उनकी जगह लेने वाले आर्य गरम देश में भी सदा ऊनी और चमड़े की पोशाक ही पहनते रहे। मोहनजोडरो-हड़प्पा (सिन्धु) की सम्यता का अन्तिम उत्कर्ष काल ई० पू० २५०० माना जाता है। उसके हजार वर्ष बाद आर्यों का प्रवेश उनकी भूमि में हुआ और उससे कम-से-कम तीन सौ वर्ष बाद (१२०० ई० पू०) भरद्वाज-वसिष्ठ-विश्वामित्र आदि ने अपनी ऋचाएँ (पद) रचीं। आर्यों और सिन्धु के पुराने निवासियों के सघर्ष का परिचय ऋग्वेद में देवों और असुरों के युद्ध की प्रतिध्वनि के रूप में ही मिलता है। तब ने दिवोदास-सुदास के काल (ई० पू० १२००) तक का इतिहास अन्वकारावृत्त है। उसके लिए हमें पुरातात्विक उत्खनन पर ही भरोसा करना पड़ेगा।

इस काल की पुरातात्विक सामग्री भी विरल ही मिल सकती है, क्योंकि भारत में प्रवेश करने वाले आर्य चाहे जो जैसे कुछ अनाजों का नाम जानते हो, पर ये वह पशुपाल और घुमन्तू। ऐसे लोगों पर नागरिक जीवन का प्रभाव

देर से पडता है, यह हमें चंगेजखान के मगोलो के उदाहरण से मालूम होता है। मध्य-एसियामे भी एक सप्त-सिन्धु, डलि-चु आदि सात नदियोकी उपत्यकाओ में था। यही रूसी भाषामें आज का सेमि-रेच्चे (सात नदी) प्रदेश है, जो जान पडता है, प्राचीन कालसे चले आते नामका अनु-वाद मात्र है। तेरहवी सदी के प्रथम पाद में मगोलो के आक्रमण के पहले इस प्रदेश में बहुत से समृद्ध ग्राम-नगर थे। पशुपाल मगोलोंके लिए उनका उपयोग नहीं था, इसलिए उन्होंने लोगो के खेतो को चरागाहो में बदल दिया। उस समय के यात्रियो ने कितनी ही वस्तियाँ देखी, जिनकी दीवारें अभी भी खडी थीं, उनके बाहर मगोलो के तम्बू लगे हुए थे और उनके पशु पहले के खेतो के स्थान पर वनी चरागाहो में चर रहे थे। घुमन्नु आर्यों ने भी अपने विरोधियो के साथ इससे बेहतर तम्बूक नहीं किया होगा। मगोलो के तम्बूओ के समूह को ओर्द (उर्दू) कहा जाता था। आर्य अपने निवासो के समूह को ग्राम कहते थे, जिसका अर्थ भी समूह ही है। शायद ताम्रयुग के अन्तिम काल के लोगोंके लिए, जिनमें कि ऋग्वेदिक आर्य रहते थे, ऊनी या सूती कपडो के तम्बू क्षमता के बाहर की चीज थे। उस समय प्राकृतिक जगलो से भरे दे-न में घास-लकडी की वनी झोपडियाँ अधिक सस्ती थीं। इनका एक यह भी लाभ था, कि यहाँ की वर्षा में वह तम्बूओ से अधिक उपयुक्त थी। आखिर, सप्त-सिन्धु की वर्षा मध्य-एसिया की तरह नाम मात्र की नहीं थी। ऐसी झोप-डियो वाले प्राचीन आर्य ग्रामो के अवशेष हडप्पा या मोहनजोडरो की तरह के नहीं हो सकते। तीन, माटे तीन हजार वर्षों को पार कर हमारे पास तक पहुँचने वाली उनकी सामग्री बहुत कम ही हो सकती है। ऐसी सामग्री पञ्जाव में ही मिल सकती है। दिवोदान-सुदान के काल में भी आर्य अभी नागरिक नहीं हो सके थे। उनके धन उनके अश्व और गाएँ ही थी, जिनके लिए वह अपने देवताओ से प्रार्थना किया करते थे।

आर्यों के बहुत-से जनो के नाम ऋग्वेद में मिलते हैं, पर जिन तरह बुद्ध-काल के सोलह जनपदो की भूमिको हम आज भी जान सकते हैं,

वही बात सप्त-सिन्धुके जनपदों के बारे में नहीं है। वैदिक काल के बाद, जनों के नामों को सप्त-सिन्धुकी भूमि पर से जान बूझ कर मिटा दिया गया। जो पाँच प्राचीन जन^१ (१।१०८।८) — पुरु, यदु, तुर्वश, अणु, द्रुह्य — सप्त-सिन्धु के प्रधान स्वामी थे, उनका वहाँ फिर पता नहीं लगता। उस समय के छोटे-छोटे जनों में एक परत जन अब भी मौजूद है, जिसके वंशज आज परतूनिस्तान की माँग कर रहे हैं, और जिसके कारण आज कल अफगानिस्तान और पाकिस्तान में तनातनी चल रही है। दूसरे जन भलान का नाम बोलन दर्रेके साथ लगा हुआ है। उस समय परत इतने विशाल क्षेत्र में नहीं रहे होंगे। जनोभी वृद्धि स्वाभाविक सन्तान के द्वारा ही नहीं होती, बल्कि कभी-कभी छोटे या निर्बल जन किसी बड़े और शक्तिशाली जन में विलीन हो जाने को अपने लिए श्रेयस्कर ममझ वैसा कर लेते हैं, यह हमें मध्य-एशियाके अवारो, तुर्कों और मंगोलोंके इतिहास से मालूम होता है। सप्तसिन्धु के आर्यजनोंमें भी ऐसा ही हुआ होगा। सप्त-सिन्धुकी नदियोंके नामों में भी ऐसा देखा गया। जिस परुष्णी पर इन्द्र^२ (४।२२।२) की विशेष कृपा थी, वह आज रावी (हरावती) कही जाती है। असिक्नी बदल कर चनाव (चन्द्रभागा) हो गई। विपाट् (विपाश्) जिसने कभी विश्वामित्र की सुन्दर स्तुति^३ (३।३३।१८) को सुनकर सुदास की सेना के लिए रास्ता दे दिया था, उसका नाम व्यास ऋषि के साथ जोड़ दिया गया। वितस्ता अब जेहलम है। हाँ, सिन्धु अब भी सिन्धु है। शुतुद्रि का पुराना नाम सतलुज में अब भी मौजूद है। सातवी नदी सरस्वती अल्पपरिचित्त-सी घग्घरकी शाखा मात्र रह गई है, जो कुरुक्षेत्र से होकर बहती है। सातों नदियों को भरद्वाज ने^४ (ऋ ६ ६१ १०) 'सप्तस्वसा सरस्वती' (सात बहने सरस्वती) कहा है। सरस्वती घग्घर में मिलकर उसी नामसे कुछ दूर जा राजस्थान के रेगिस्तान में लुप्त हो जाती है। उसकी सूखी धाराका पता बहुत दूर वहाँ तक मिलता है, जहाँ से चनाव - सतलुजका सगम कुछ ही मील रह जाता है, और सिन्धु भी बहुत दूर नहीं रह जाती।

हो सकता है, सरस्वती ऋग्वेदके काल में जाके सीधे सिन्धु में मिलती हो, पर वह हिमालय की हिमानियो से निकलने वाली नदी नहीं है, जैसी कि उसकी दूसरी छ वहने। घग्घरकी तरह उसकी दोनो शाखाएँ मरकण्डा और सरस्वती भी सिवालिक की तराई से निकलने-वाली छोटी नदियाँ हैं, जो वर्षाके जलको पाकर ही दो महीने इतरा के चल सकती हैं। ऋग्वेदमें तराई से निकल कर रेगिस्तान तक जानेवाली नदी का नाम सरस्वती था। जिस क्रम से तीनों नदियों के नाम मतलुज से पहले आये हैं, उससे जान पड़ता है, (३।२३।४) मारकण्डा का नाम आपया था, और घग्घर का दृपद्वती।

सप्त-सिन्धुकी भूमि सात वहनो सरस्वतीसे सीची जानेवाली धरती है। इस प्रकार आर्य जनो की भूमि सरस्वती (अम्बाला जिले) में सिन्धु उपत्यका तक फैली हुई थी। ऋषिपित्रयमें वृद्धतम भरद्वाजने यमुना का भी नाम लिया है, पर वह सीमान्त की नदी थी। अन्तिम ऋषियोंमें से एक प्रियमेघकी मन्तान सिन्धुक्षित्ने^{१०} (ऋ १०।७५।६) गगाका नाम भी दिया है, पर न वह सप्त-सिन्धुकी नदी थी, न उसे उन समय कोई प्रतिष्ठा प्राप्त थी। यह भी उल्लेखनीय बात है, कि आज की यह सर्वपुनीत नदी अपने अनार्य (सम्भवत किरात) नामसे प्रसिद्ध है। ऋग्वेदमें गगा का नाम सिर्फ एक बार यही नदी-सूची में आया है। यह सूची बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसमें शक नहीं। इसमें गगामें लेकर अफगानिस्तान के पहाडो तककी नदियोंके नाम क्रमशः पूरव में पच्छिमकी ओर गिनाये गये हैं—गगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रो, परष्णी (रावी), असिक्नी (चनाब), मरुद्वृधा, वितस्ता (जेहलम), आर्जिकीया, सुपोमा, तृष्टामा, रसा श्वेत्या, सिन्धु, कुभा, गोमती, क्रमु, मेहल्लु। सुपोमा शायद रावलपिण्डी की तराई में निकल कर अटक में काफी नीचे सिन्धु में जाकर गिरने वाली छोटी नदी मोहान है। मोहान हमारे इतिहास की एक पुनीत नदी है, क्योंकि इसकी ऊपरी उपत्यका हमारे देश के उन चन्द्र स्थानों में है, जहाँ खुशालाट और मक्खड में पुरापापाण दुर्गके

नदीके ऊपरवाले प्रदेशका नाम मालूम होता है, जो आर्जिकीयाके क्षेत्रमें पडता था ।

सप्तसिन्धुकी दक्षिणी सीमा राजस्थानकी महामरुभूमि थी । मरुकी वेदमें घन्व कहा गया है, पर इस महाघन्वका वहाँ स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता । मध्य-एसिया के घुमन्तुओकी तरह आर्य व्यापार (पण्य) और व्यापारियो (पणियो) को घृणाकी दृष्टिसे देखते थे (२।२४।६) ^१। पर, उन्हें पता था, कि व्यापारके लिए समुद्रमें नावें चलती हैं ।^२ (६।५८।३) । सिन्धु उस समय नदियोका साधारण और सिन्धुनदका विशेष नाम था । अर्ण (अर्णव) भी नदियोको कहते थे । पीछे इन शब्दोका प्रयोग समुद्रके लिए किया जाने लगा । पर, महासागरको तब भी समुद्र कहते थे । सप्तसिन्धुसे बड़ी-बड़ी नावें सिन्धुनद होकर ही समुद्रमें पहुँचती होंगी । निम्न-सिन्धु उपत्यकामें आर्य जरूर गये । वही उनके प्रतिद्वन्द्वियो का महान् नगर था, जिसके भव्य ध्वसावशेष आज मोहन-जो-डरोके नामसे प्रसिद्ध हैं । निम्न-सिन्धु सप्तसिन्धुके भीतर था, यह कहना मुश्किल है । वहाँ किसी परिचित जनका बसना निश्चित नहीं मालूम होता । चाहे सप्तसिन्धुके भीतर यह भाग न गिना जाता हो, पर वह ऋग्वेदिक आर्योके अधीन था और उस के रास्ते पणनके लिए जानेवाले पणि आर्योकी नजरमें हीन होते हुए भी उनके लिए पशु और अन्नसे भी महार्घ धनको प्रस्तुत करते थे । उनकी सहायता बिना आर्य न “निष्कग्रीव” हो सकते थे, न “रुक्मवक्ष” (छातीपर सोना झुलानेवाले) ।

पणि आर्योके पुराने तथा दक्षिण दिशाके शत्रुओमेंसे थे, जिनके साथके सघर्ष ऋग्वेदके समयमें बहुत पूर्व ही समाप्त हो चुके थे । अब उनके मघर्ष जिन शत्रुओसे हो रहे थे, वह पहाडके निवामी अर्थात् हिमवन्तवासी किरात थे ।

अध्याय २

आर्य-जन

§१. सिंधु-सभ्यता

ऋग्वेद उस समय नहीं अस्तित्व में आया, जबकि आर्य पहले-पहल सप्तसिन्धुमें आकर बसे। आर्योंका सप्तसिन्धु में छा जाना शान्तिपूर्वक नहीं हुआ। अपने से अधिक सभ्य तथा नागरिक होनेसे अपेक्षाकृत मृदुल-प्रकृति वाले प्रतिद्वन्द्वियोंसे उनका खूनी सघर्ष १५०० ई० पू० के आस-पास हुआ था। हडप्पा की खुदाईमें ऐसे निर्मम हत्याकाण्डका प्रमाण मिला है, जिसका उल्लेख मोर्टिमोर व्हीलर ने अपनी पुस्तक 'इण्डस सिविलिजेशन' में किया है। ऋग्वेदमें इन्द्र-वृत्र के युद्ध के रूपमें इसकी बहुत क्षीण-भी प्रतिध्वनि आती है, जिसे फिर इन्द्र-शम्बर के युद्ध से मिलाया गया है। सभी जनयुगीन जातियोंकी तरह आर्य-पुरोहित अपनी सभी बड़ी-बड़ी सफलताओं का श्रेय अपने देवता को देना चाहते थे, इसीलिए, अपने भरतों और दूसरे आर्य-जनो के साथ मिल कर पहाड (जलन्वर खण्ड) के किरात राजा शम्बर से अनेक जवर्दस्त लडाइयाँ लडते ४० वर्ष बाद दिवोदास विजयी होने में सफल हुआ, उसका सारा श्रेय उस काल का पुरोहित-वर्ग (ऋषि) अपने आराध्य इन्द्र को देना चाहता है। ऋग्वेद के इन स्थलोको पढ़ने में मालूम होता है, कि पराक्रमी दिवोदाम महान् इन्द्र के एक हथियार से बढ कर कुछ नहीं था।

१ Indus Civilization.—M Wheeler, Cambridge History of India, appendix

यह बतला चुके हैं, कि ऋग्वेदके ऋषि भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा उनके यजमान दिवोदास, सुदास आर्यों के सप्तसिन्धु में प्रवेश करने से बहुत पीछे पैदा हुए थे, इतना पीछे जबकि उनकी भाषा में मूर्धन्य उच्चारण वाले टवर्ग, और ळ जैसे रूपान्तर का सन्निवेश हो चुका था, और प्रथम सघर्ष की बहुत ही क्षीण-सी स्मृति रह गई थी। उच्चारण तक में परिवर्तन आना बतलाता है, कि विजेताओंका अपने विजितोंके साथ कहाँ तक घनिष्ठ सम्बन्ध हो चुका था। ऐसी घनिष्ठता के पक्षपाती न उनके ऋषि थे, न जन-साधारण, पर आर्योंके लिए मजबूरियाँ भी थी। उन्हें काम करने के लिए दास चाहिये थे। उनको अपने भूतपूर्व शत्रुओं के कितने ही विलास-साधनों को अपनाने में एतराज नहीं था। आर्यों ने वस्तुतः सिन्धु की पुरानी सम्यता को ध्वस्त करने, समाज के चक्र को उल्टे घुमाने की कोशिश की थी। वह अपने साथ लाए घुमन्तू जीवन को ही बरकरार नहीं रखना चाहते थे, बल्कि नगरो और नागरिक जीवन से ससार-विजेता चगेज के मगोलो की तरह ही घृणा करते थे। उनके विजेता दिवोदास और सुदास के किसी नगर या राजधानी का उल्लेख नहीं मिलता। अश्वो और गायो को ही अपना परम धन मानने वाले वह नगरो में रह कैसे सकते थे ? अश्व-गो-पालक आर्योंने कैसी सस्कृतिका स्थान लिया था ? सिन्धु-सम्यता के धनियो के पास मोहन-जो-डरो जैसे भव्य नगर थे, जिसके बारे में एक अप्रेज लेखक ने लिखा है— “मालूम होता है, हम आज कल के लकाशायर जैसे किसी नगरके ध्वसो से घिरे खडे हैं।” वहाँ, उत्तरसे दक्खिनकी ओर जानेवाली सडक इतनी चौडी थी, जिसपर पहियेवाली सवारियाँ और पाद-चारी मजे में चल सकते थे। नगरको एक सुव्यवस्थित योजना के अनुसार बनाया गया था। सडकें ९ से ३४ फट तक चौडी थी, जिनमें से कोई-कोई आधी मील तक ऋजु चली गई थी। वह एक दूसरे को समकोण पर काटती चौरस्ता बनाती थी। प्रत्येक वीथी और सडक पर सार्व-जनिक उपयोग के कुँए थे। अधिकाश घरोंमें अपने निजी कुँए और

नहान - कोट्टक थे। पानीके निकलने के लिए नालियाँ और मोरियाँ इस तरह लगाई गई थी, जिससे कितने ही आजकलके नगरोको भी ईर्ष्या हो सकती है। अमीरो, व्यापारियो, शिल्पियो और मजदूरो के मुहल्लो को उनके ध्वसो को देखकर बतलाया जा सकता है। नगर देखने मे 'एक लोकतान्त्रिक पूंजीवादी नगर' सा दीख पडता है। मकान अधिकतर पक्की ईंटोंके बने थे, जो आकार-प्रकार में आजकल की ईंटो-सी और रंगमे मटमैली लाल सूख थी। उनका जोड इतना वारीक है, कि उसमे वारीक चाकू के फल को घुसाना मुश्किल है।

हरेक घर बहुत सुखद और स्वच्छ था। सबसे छोटे घरमे दो कमरे थे, और बड़े-बड़े घर तो महल जैसे थे। बीच में ईंटो से बिछा आंगन था, जिसके किनारे कमरे, उनके द्वार और खिडकियाँ थी। मुख्य दरवाजा सडक की ओर खुलता था। हरेक घरका नहान-कोट्टक सडक के पास होता था। नीचे की ही मजिल में नही कोठो पर भी नहान-कोट्टक थे। पाखाना शायद छत पर होता था, जैसा कि पञ्जाब के पुराने घरो मे देखा जा सकता है। यह भी पता लगता है, कि गहर से सडको पर रात को दीपक जला करते थे।

लोग गेहूँ और जौ की खेती करते थे। घान, तिल और मटर भी पैदा की जाती थी। कम-मे-कम पिण्ड-खजूर के फल उनके खानेमें था। क्षीलो, नदियोकी ताज्जी मछलियो के अतिरिक्त वे गाय, बकरी, भेड, सूअर, मुर्गी ही नही कछुए और घडियाल के मांस को भी खाते थे। भंस, हाथी और ऊँटकी हड्डियाँ भी वहाँ मिली है, अर्थात् वे बँल, भंम, हाथी और ऊँट का इस्तेमाल जानते थे।

वे सूती-ऊनी कपडे पहनते थे। आम तौर से एक कपडा धोती की तरह पहना जाता और दूसरा उपरने या चादर के तौर पर जनेऊ की तरह दाहिना कन्वा खुला रखकर। स्त्रियोकी पोगाक भी पुरुषो की तरह ही थी। वे कुपाणोंके आने से पहले तक की हमारे यहाँ की स्त्रियो की तरह सिर को पगडी या कपडेमे ढाँक कर रखती थी। पुरुषोंके बाल लम्बे

होते थे, जिनको माँग फाड़ कर रखा जाता था। मूँछ छँटी और दाढी छोटी या छँटी रखते थे। स्त्रियोको सोने, चाँदी, ताँबे, पीतल और मिट्टी-पत्थरके जेवरों से बहुत प्रेम था। पुरुष कडा, कण्ठमाला और अँगूठी पहनते थे, केशों का चूड़ाभूषण भी उन्हें प्रिय था। स्त्रियाँ मुखचूर्ण और काजल ही नहीं शायद अघरराग का भी इस्तेमाल करती थी।

घर के सामान में ताँबे या पीतल की सूइयाँ, कुल्हाड़ा, आरा, हँसिया, चाकू, मछली की बन्नी आदि का इस्तेमाल होता था। नाप-तोल के साधनोंसे पता लगता है, कि वे उनका विभाजन आजकल के रूपों की तरह सोलह में करते थे।

लड़ने के लिए उनके पास ताँबे या पीतल के फरसे, भाले, कटार, तलवार थे। धनुष-बाण भी थे, जिनमें फल ताँबे-पीतलके होते थे। ताँबेकी पतली चादरोसे कवच बनाना भी वे जानते थे। गदाएँ उनकी पत्थर की थी।

सोने-चाँदी, दूसरी धातुओं और रत्नों के लिए उनका सम्बन्ध मसूर, काश्मीर, पूर्वी भारत ही नहीं, मध्य-एशिया और पश्चिमके देशों से भी था। उनकी नावे समुद्र में चलती थी, और मसोपोतामिया ही नहीं शायद मिस्र से भी वह व्यापारिक सम्बन्ध रखते थे। उनके ऊँचे वर्ग में पुरोहित, योद्धा और व्यापारी थे। व्यापारियों का ऐश्वर्य और प्रभाव कम नहीं था। पुरोहितों और योद्धाओं का प्रभाव आर्यों की विजय के बाद कम हो गया होगा, पर व्यापारी तब भी अपना महत्त्व रखते थे। पणि कहकर आर्य उनकी लोलुपता को घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। पणि शब्द मालूम नहीं किस भाषा का है, आर्य-भाषाका शायद नहीं है। यद्यपि संस्कृत में पण् धातु क्रय-विक्रयके लिए आता है, पर इसका अभाव भारत के बाहर की स्ववशीय भाषाओंमें बतलाता है, कि यह उधार लिया हुआ है।

फार्सी सिन्धु-सम्यता का समय २८००-२५०० ई० पू० मानते हैं, ह्वीलरके अनुसार यह समय २३००-१५०० ई० पू० है, अर्थात् उसका अन्त और आर्योंका आगमन एक ही समय होता है।

हम देख चुके, आर्यों ने कैमी सम्यता और भौतिक जीवन के नष्ट करने का प्रयत्न किया था। वस्तुतः, अश्वको छोड़ वह कोई नई चीज देने में असमर्थ थे। मोहन-जो-डरो, हडप्पा तथा ऐमे ही कितने और नगरों के सहार के बाद सप्त-सिन्धुकी विजित भूमि को पशुपाल आर्य-जनोंने आपस में बाँटकर उसे गोचर-भूमि में परिणत कर दिया। बहुत से नगर वीरान हो गए। गाँवोंके भी बहुत-से लोग पूर्व और दक्षिण की ओर भाग गए। जो रह गए, उन्हें विजेताओंने दाम या कमकर बना लिया। मोहन-जो-डरोकी भूमि किसी अल्पपरिचित आर्य-जन ने मँभाली, इसीलिए उसका नाम ऋग्वेद में नहीं मिलता। प्रधान जनो ने सिन्धु में पूर्व की भूमि पर अधिकार किया। जहाँ जो जन समा, उस भूमि या जनपद का नाम उस जन के नाम पर पडा। जनो का नाम भी पहले किमी पूर्वज या प्रधान व्यक्ति के नाम पर ही पडा होगा। पर, प्राचीन आर्य-जनो के ऐमे नामकरण का पता लगाना सम्भव नहीं है। कुरु (कोरोश), मद्र (मेद) जैसे ईरान में भी प्रचलित नाम बतलाते हैं, कि कुछ आर्य-जन अपने इस नाम से भारत में बाहर भी प्रसिद्ध रहे। सिन्धु - विजय के समय के उनके नामोंका पता नहीं है। ऋग्वेदके समय आर्यों के पाँच जन मुख्य थे। सारी आर्य-प्रजा को वल्कि पञ्चजेन, पञ्चचर्पणि, पञ्चक्षिति कहना बतलाता है, कि शायद वह पहले पाँच ही जनो में विभक्त थे। लेकिन ऋग्वेद के जनो की सख्या एक दर्जन में भी अधिक है, जिसमें यह निश्चय करना मुश्किल है, कि इनमें सबसे पुराने जन कौन रहे होंगे।

यदि मूल आर्य-जन-जिन्होंने सिन्धु-विजय किया था-पाँच थे, और अब उनकी मख्या एक दर्जन, तो यह इसी बातको बतलाता है, कि तब तक आर्योंको आए काफी समय बीत चुका था। वह भी उल्लेखनीय बात है, कि ऋग्वेदके प्रमुख आर्य-जन निम्न सिन्धु या उनके पानके इलाके में—जहाँ मोहन-जो-डरो और हडप्पा हैं—नहीं रहते थे, वह सिन्धु में ही नहीं वितन्ता (जेहलम्) और असिक्नी (चनाव) में

भी पूर्व रहते थे। पाँच जनो में सबसे प्रतापी पुरु लोग सप्तसिन्धु के पूर्वी छोर पर बसे हुए थे, जो यही वतलाता है, कि ऋग्वेद के समय में ही आर्यों का प्रतापकेन्द्र पूर्वकी ओर काफी दूर हट गया था। ब्राह्मण-उपनिषत्-काल (ई० पू० सातवीं सदी) में यह और भी पूर्व की ओर हटकर पश्चिमी उत्तरप्रदेश (कुरु-पञ्चाल) में पहुँच गया, जहाँ से अगली शताब्दी में (बुद्ध से थोड़ा पहले) काशी-कोसल और उससे अगली शताब्दी में मगध पहुँचकर हमारे ऐतिहासिक काल से मिल गया।

§२ आर्य-जन

१. पाच जन

(१) पुरु—यह जन ऋग्वेद-काल से कुछ पहले एक जन के रूप में, जान पड़ता है, परुष्णी (रावी) के पूर्व में रहता था। ऋग्वेद के समय इसकी कई शाखाएँ हो चुकी थी, जिनमें भरत, तृत्सु और कुशिक का नाम हमें मालूम है। कुशिक के नेता विश्वामित्र सुदास के परम-समर्थक थे। भरतों की एक शाखा तृत्सु थी। भरतों के मुखिया वध्र्यश्व, दिवोदास और सुदास—तीनों पितामह, पिता और पुत्र थे। दिवोदास-सुदास को पुरु-भरत भी कहा जाता था, और वह तृत्सु के भी मुखिया थे। इससे जान पड़ता है, अभी इन जनो में उतना विगाड नहीं हुआ था। पीछे मूल जन पुरु अपनी शाखा भरतजन से इतना हट चुका था, कि दाग-राज युद्ध में उसने भरतों का नहीं बल्कि उनके शत्रुओं का साथ दिया।

भरत कभी परुष्णी (रावी) के तीर पर रहते थे, पर आज उनके नाम पर हमारा सारा देश प्रसिद्ध है। सिन्धुने यदि भारत से बाहर हमारे देश को अपने नाम पर प्रसिद्ध किया, तो देश में परुष्णीके तीर-वाले भरतोंने अपना नाम हमारे देशको दिया। पुरुओं की भरतों द्वारा पराजय में वमिष्ठ का भी हाथ था। उन्होंने कहा है (७।८।४) अग्नियो ने भरत की (प्रार्थना) सुनी, युद्ध में पुरुओं के विरुद्ध खड़े हुए। दाशराज युद्ध

का वर्णन करते समय (७।१८।१३)-वह फिर दुष्ट वचन बोलनेवाले पुरुओं को युद्धमें पराजित करनेके लिए इन्द्र की प्रगसा करते हैं। पुरुओंके साथ तृत्मुओका ऐसा बुरा सम्बन्ध दिवोदासके समय नहीं था। दिवोदास के पुत्र परुच्छेप ऋषि ने^१ (१।१३०।७) बल्कि दिवोदास को मूल-जन के सम्पर्कके कारण पुरु कहा है। पर किमी समय दिवोदास का पुरुओ से झगडा भी हो गया^१ (७।८।४)। पुरुओ के तीन राजाओ के नाम ऋग्वेद में मिलते हैं—पुरुकुत्न, तत्पुत्र त्रसदस्यु, तत्पुत्र कुरुश्रवण। कुरुश्रवण नाम से वह भी पता लगता है, कि भावी कुरु-वंश का विकास पुरुओ मे हुआ।

✓ (२) यदु—ऋग्वेद का यह एक ऐमा जन है, जिसका पीछे भी पता लगता है। मथुरा का यदुवंश कृष्ण के कारण प्रसिद्ध है। करौली के राजा ब्रज में ही है, जो सम्माननीय यदुवंशी माने जाते हैं। जैसलमेर के भाटी भी यादव हैं, और उनसे अपना सम्बन्ध जोडनेवाले नाहन (सिरमौर) के पर्वतीय राजा भी यादव कहे जाते हैं। मुसलमानो द्वारा ध्वस्त देवगिरि (दौलता-वाद) महाराष्ट्र का एक शक्तिशाली राज्य भी यादव था। इस प्रकार मथुरा, राजस्थान, हिमालय ही नहीं सुदूर दक्षिण तक यदुओ का विस्तार रहा, पर ऋग्वेद - कालमें वह मत्त-सिन्धुमें ही और नोभी काफी पश्चिममे रहते थे। पुरु तो घरके ही शत्रु थे, पर पिता-पुत्र दिवोदास और मुदास को मवने अधिक मघर्ष यदु और तुवंश जनो से करना पडा था। तुवंश और यदु की जोडी थी, जिममे इनके कुल या म्यान की घनिष्ठता मालूम होती है। बहुत-मे स्थानो में मगलकामना या नाशकामना में इन दोनो जनो का नाम माय आता है। अगस्त्य (शायद घनिष्ठके भाई) ने एक स्थान पर *० (१।१७४।९) इन दोनो के लिए इन्द्र ने मगलनामना करते हुए कहा है—“इन्द्र, तुम तुवंग और यदु का पालन और मगल करो।” सब्य आगिरन ने भी^१ (१।५४।६) इन्द्र ने प्रार्थना की है—“घतक्रतो, तुमने नर्य, तुवंश, यदु की रक्षा की, तुमने तुर्वीति को (रक्षा की)।” कण्व के पुत्र वत्स भी तुवंग-यदु की मगलकामना करने

हैं (८।७।१८) — “(भरतो), क्योंकि तुमने तुर्वश - यदुकी, घनेच्छुक (मेरे पिता) कण्वकी रक्षा की, घनके लिए मैं (भी) तुम्हारा ध्यान धरता हूँ।” यदुओ और तुर्वशो के पुरोहित कण्व और उनके पुत्र वत्स आदि थे, इसलिए वह अपने यजमान की अमंगल कामना कैसे कर सकते थे? लेकिन इससे उल्टा वसिष्ठ चाहते हैं (७।१९।६८) — “मघवन्, अतिथिसेवक (सुदास) की भलाई करनेवाले हो, तुम तुर्वश और यादव को पराजित करो।”

(३) तुर्वश—ऋग्वेद में तुर्वश का नाम बराबर यदु के साथ आता है। दोनों के पुरोहित कण्व, तत्पुत्र वत्स और उनके वंशज थे। भरतो और पुरुओ ही ने नहीं अनार्य शत्रुओका मुकाबला किया था, बल्कि इन्होंने भी उन्हें पराजित कर पञ्च जनो मे नाम कमाया था। अत्रि (ऋग्० पाँचवें मण्डल के रचयिता) और उनके वंशज वैसे पुरुओ के पुरोहित थे, जो सतलुज से पूरव में रहते थे, पर अवस्यु आश्रेय यदु-तुर्वश के भी प्रशसक थे (५।३।१८) — “इन्द्र, तुमने यदु और तुर्वश को इच्छापूरक (सुदुघा)जल(या नदियाँ)प्रदान किए।” भरतो के पुरोहित होने से भरद्वाज तुर्वशो की सफलताओ का गान नहीं कर सकते थे। उन्होंने सृजयो के हाथ तुर्वशो की पराजय का उल्लेख किया है (६।२७।७) — “उस (इन्द्र) ने सृजय के हाथ मे तुर्वश दे दिये।” भरद्वाज बृहस्पतिके पुत्र थे। बृहस्पतिके दूसरे वंशज शयु इन्द्रकी स्तुति करते तुर्वश-यदुका गुणगान करते हैं (६।४५।१) — “वह तरुण इन्द्र हमारा सखा है, जो तुर्वश और यदु को दूर (पच्छिम) से अच्छी तरह लाया।”

तुर्वश और यदु भरतोके प्रतिद्वन्दी थे, जिनके मुखिया दिवोदास और सुदास थे। उधर सृजयोसे तुर्वशोकी पराजय घतलाती है, कि वह इनकी भूमिके नज़दीक रहते थे। जान पड़ता है, ये दोनों जन शतद्रु (सतलुज) और परुष्णी (रावी) के निचले भागोंमें नदीके दोनों तरफ ऐसी जगह बसते थे, जहाँ से सतलुज-व्यास (विपाश्) के बीच बसनेवाले सृजयोकी भूमि पास पड़ती थी। शयुके कहनेसे मालूम होता है, कि पहले ये दोनों जन

कहीं दूर (शायद सिन्धु के पास) रहते थे, जहाँ से आकर वह इस भूमि में बस गए। यद्यपि वह उसी इन्द्रके “लाए हुए थे”, जिसके भक्त भरत और सृंजय जन भी थे, पर उनका स्वार्थ एक दूसरेका अविरोधी नहीं था। भरतोंने जब अपनी प्रभुता सारे सप्तसिन्धु पर फैलाकर उसे एकतावद्ध करना चाहा, तो उनका सबसे अधिक मुकाबला तुवंशों और यदुओंने किया।

(४) द्रुह्यु—पच जनोर्में एक इम प्रतापी जनके पुरोहित भृगु थे। कुत्स आगिरस अपनी एक ऋचा” (१।१०।८।८) में आर्योंके दोनो प्रधान देवताओं—इन्द्र-अग्निकी महिमा गाते उनके वास-स्थान अथवा उपासकके तीर पर पाँचों जनोका नाम लेते कहते हैं—“हे इच्छापूरक, इन्द्र-अग्नि जो तुम (दोनो) यदुओंमें, तुवंशोंमें, द्रुह्युओंमें, अनुओंमें, पुरुओंमें रहते हो, वहाँसे आकर तैयार किए हुए (हमारे) सोमको पियो”। यदु-तुवंशके बाद और पाम-पासमें द्रुह्यु-अनुके जनपद थे। सभी पाँचों जन इन्द्र और अग्निके भक्त थे। द्रुह्यु, पुरुओं और तृत्सुओंके जैसे बलशाली थे, यह शयु बार्हस्पत्यकी निम्न उक्ति” (६।४६।८) में मालूम होता है—“हे मघवन्, तृत्सु, या द्रुह्यु अथवा पुरु जनमें जो कुछ बल है, उसे अमित्रोंको युद्धमें हरानेके लिए हमें दो”। लेकिन वसिष्ठ अपने यजमान सुदामके इन प्रतापी शत्रुओंको फूटी आँखोंभी नहीं देख सकते थे। दागराज युद्धमें सुदामके इन प्रतिद्वन्द्वियोंको भारी हानि उठानी पड़ी, यह वसिष्ठकी निम्न ऋचाओं” (७।१८।६७।१२, १४) में मालूम होता है—“धनके लिए तुवंशोंने, भृगुओं और द्रुह्युओंने (इन्द्रके) मखा (मुदासका) मुकाबला किया—(६)। “श्रुत कवप, वृद्ध और द्रुह्युको वज्रबाहु (इन्द्र)ने पानी (नदी) में डुबो मारा” (१२)। “गाय (घीनने) की इच्छावाले अनुओं और द्रुह्युओंके छियामठ हज़ार छियामठ वीर (मरकर) सो गए,—” (१४)। इममें मालूम होता है, अनुओं, द्रुह्युओं और पुरोहित कुलवाले भृगुओंने मिलकर सुदामपर आक्रमण किया था। शायद वह नीमान्तकी नदी (परुष्णी, रावी) को पारकर भरतोंकी भूमिमें आगए थे। नदीके पाम लटार्ड हुई, जिनमें हारकर भागने हुए उनके श्रुत कवप जैसे मुनिया नदीमें डूब गए और रणक्षेत्रमें उनके छियामठ हज़ारमें

अधिक आदमी मारे गए। द्रुह्य और अनुकी भूमि परुष्णी (रावी) के पश्चिम वितस्ता (जेहलम्) तक फैली थी। द्रुह्युओंके उत्तरमें अनु और दक्षिणमें तुर्वश लोग रहते मालूम होते हैं। स्थानका निर्देश ऋचाओंमें नहीं मिलता। किस पानीमें इतने सरदार डूब गए, इसका भी उल्लेख नहीं मिलता, पर दाशराज्ञ युद्धके पश्चिमी जनोंने परुष्णीको पकडकर एक बार सुदासकी स्थिति भयानक बना दी थी, यह हम पक्वोंके प्रकरणमें बतलाएँगे, जिससे परुष्णीके पश्चिम ही द्रुह्युओंका निवास माना जा सकता है।

(५) अनु—यह आर्योंके पाँच प्रधान जनोंमें एक तथा द्रुह्युओंका जोड़ीदार था। छियासठ हजार मारे जानेवालोंमें इनके वीर भी रावीके किनारे सदाके लिए सो गए थे। अनु कितने महत्त्वशाली थे, यह अवस्यु आत्रेयकी एक ऋचा^५ (५।३।१४) से मालूम होता है, जिसमें उन्हें इन्द्रके रथका निर्माता बतलाया गया है। तुर्वशोंके पुरोहित कण्वके वंशज देवातिथिका तो अपने यजमानोंकी तरह अनुओंके प्रति विशेष पक्षपात मालूम होता है। वह कहते हैं^६ (८।४।१)—“इन्द्र यद्यपि (तुम्हें) पूरव, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण (चारों ओर) से आदमी आह्वान करते हैं, लेकिन तुम तुर्वशों और अनुओंके लिए अधिक बुलाए जाते हो।” पर सौ जादू जाननेवाले (शतयातु) वसिष्ठ^७ (६।६२।९) झूठे (द्रोघवाक्) अनुओंके ऊपर अश्वि देवता-पुगलका हथियार गिरवाना चाहते हैं।^८

२. अन्य जन

इन पाँच मूल जनोंके अतिरिक्त और भी कुछ जनोंका उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है। उनमें कितने ही सिन्धु और असिक्नी (चनाब) के बीचके भी थे, जिन्होंने सुदासके विरुद्ध हथियार उठाए थे। पर उनसे अधिक उन जनोंके निवासका पता मिलता है, जो सिन्धुके पश्चिममें रहते थे। इनमें पक्वोंका नाम पहले आता है।

(६) पक्व—सुदासकी महत्त्वाकांक्षाको असफल करनेके लिए जिन दस राजाओं (जनो) और दूसरे कितने ही आर्यजनोंने तलवार उठाई थी,

उनमें पक्व भी थे। पक्व जन अब भी पस्तून (पठान) के नामसे सिन्धुके पश्चिममें काबुल तक वसा हुआ है, यद्यपि उनके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता, कि वह केवल पक्वोंके वंशज हैं। शायद अलिन, गन्धारि, विषाणि और भलानस भी आजके पस्तूनोंके रूपमें हमारे सामने मौजूद हैं। पक्व अश्विद्वयके उपासक आर्य थे। कण्वपुत्र सोभरिने^{१०} (८।२२।१०) इन जमुयें देवताओंकी प्रार्थना करते हुए कहा है—“जिन (प्रेरणाओं) से तुमने पक्वकी, अध्रिगुकी और वभ्रुकी रक्षा की, उनके साथ हमारे पास जल्दी आओ, (मीर) व्याधिग्रस्त की चिकित्सा करो।” सुदानके^१ इन विरोधियों का उल्लेख करते हुए वमिष्ठ कहते हैं^{११} (७।१८।७-९)—“पक्व, भलान, अलिन, विषाणी, शिव (जव) आए, तो तृत्सुओंके नेता आर्य की गाये युद्ध करके (बचा) ले आए। दुष्टों, भूखाने परुष्णी (रात्री) को आ पकडा।”

(७-९) भलान, अलिन, विषाणी—उपरोक्त ऋचामे दाशराज युद्धके एक प्रमुख नेता वमिष्ठ पक्वोंके साथ इनका भी नाम लेते हैं, अतः ये पक्वोंके पड़ोसी जन होंगे। भलान नाम अब भी वोल्गान दर्रेके नामसे सुरक्षित है, इससे जान पड़ता है, कि वाकी दो जन भी सिन्धु पारके लोग थे।

✓ (१०) शिव—यह शायद पीछेका शिवि देश वाला जन था, जो सिन्धुके इस पार जेहलम् (वितस्ता) से पश्चिम रहता था, और जिनके नाम वाला एक अभिलेख शोरकोटमें मिला है। सुदासके प्रतिद्वन्द्वी ये दम राजा मिलकर लडे थे, जिसके कारण वह युद्ध दम राजाओंके युद्ध (दाशराज-युद्ध) के नामसे ऋग्वेद और पीछेके ग्रंथोंमें प्रसिद्ध हुआ।

इनके अतिरिक्त सुदानके शत्रुओंमें निम्न जन या व्यक्ति भी गिनाए गए हैं, जिनमेंसे दो-तीन को छोड़ बाकीके लिए यह कहना मुश्किल है, कि वह नेता थे, या जन—

(११) शिम्यु (जन), (१२) श्रिवि (जन), (१३) मत्स्य (जन), पीछे यह जन आधुनिक जयपुरवाले प्रदेशमें रहता था।

(१४) वैकर्ण (व्यक्ति?), (१५) कवप, (१६) देवक मन्यमान, (१७) चायमान कवि, (१८) सुतुक, (१९) उचथ, (२०) श्रुत, (२१) वृद्ध, (२२) मन्यु, (२३) पृथु, (ये सब व्यक्ति)। सबसे बलवान् जन था (२४) भरत, जो कि पुराने पुरुओकी एक शाखा थी, यह हम बतला आए ह। भरतकी शाखा तृत्सु थे। दिवोदास और सुदास भरत भी कहे गए हैं, और तृत्सुओके उन्नायक भी। यद्यपि एक समय तृत्सुओसे सुदासकी खटपट भी देखी जाती है, पर उससे उनका और तृत्सुओका घनिष्ठ सम्बन्ध असिद्ध नहीं होता।

इन एक दर्जन आर्य जनोमें पांच बहुत पुराने थे। यह पांचो भी एक ही जगहके स्थायी निवासी नहीं थे, यह शयु वार्हस्पत्यके इस कथन^{११} (७।४५।-१) से मालूम होता है—इन्द्र उन्हें सुदूर पश्चिमसे (परावत) लाया था।

अथर्व ऋग्वेदसे पीछे (प्राय ई० पू० सातवी-आठवी सदी) की कृति है, उसमें पूरवमें अग-मगधसे पश्चिममें वाह्लीक (बलख) तक के देशोके नाम मिलते हैं, जैसे—अग, अन्तदेश, गन्धार, धन्व (मरुभूमि), पटूर, वह्लिक, मगध, मघ, मुजवत्, रुम (मरु), रुशत्, विक्षर, सोन्त देश। ऋग्वेदमें निम्न देशोके नाम भी आते हैं—

- (१) उद्व्रज (पानी और गोचर भूमिवाला देश, शायद कागडा मे नूरपुर के पास)।
- (२) कीकट (यह मगध नहीं, सप्तसिन्धु के पास ही कोई देश था।
- (३) कृत्वन्।
- (४) गाग्य (गगावाला प्रदेश, जो पीछे कुरुदेश कहलाया)।
- (५) गुगु (शायद कोई आर्य-भिन्न देश)।
- (६) दुर्ग (?)
- (७) यक्षु (गगा-यमुनाके बीच गाग्य देशमें ही किसी आर्य-भिन्न जनका देश)।

- (८) रुशम (?)
 (९) वेतसु (?)
 (१०) सरस्वतीवत्, सारस्वत (कुरुक्षेत्रकी सरस्वतीके पामका देश) ।
 (११) सिन्धु (निम्न सिन्धुवाला देश) ।

अथर्ववेदके समयमें आर्योंकी पहुँच अग और मगध तक अर्थात् वगालकी सीमातक हो गई, पर ऋग्वेदमे वह सप्तसिन्धु तक ही रहते थे, यही उनके जन अपना स्वतन्त्र पशुपाल जीवन विताते थे ।

भाग २

सामाजिक, आर्थिक

अध्याय ३

वर्ण और वर्ग

११ वर्ण (रंग)

ऋग्वेदिक आर्योंके काल (ई० पू० १२००-१०००) में भारतमें चार जातिया मुख्यत वसती थी, जिनमें कोल या कोलारी (निपाद, आस्ट्रिक) सप्तसिन्धुसे बहुत दूर रहते थे, इसलिए उनमें उम समय आर्योंका कोई मवध नहीं था। आर्योंके घनिष्ट सम्पर्क और सघर्ष में आनेवाले (१) मोहनजोडरो और हड़प्पाकी सम्य जाति—द्रविड और (२) कश्मीरमें आमाम और आगे के पहाडो तथा तराईमें वसनेवाली जाति किरयाकिरात (मोन्-स्मेर) मुख्य थी। आते ही आर्योंको नागरिक द्रविडोंमें पहले भुगतना पडा। फिर सप्तसिन्धुमें छा जानेके बाद जब वह हिमालयकी तराई और उमके भीतर घुसने लगे, तो उनका मघर्ष किरोंमें हुआ। ऋग्वेदिक आर्योंका वास्ता किरातो और उनके नायको शम्बर, चुमुरि आदिमें पडा था, यह भी हम बतलानेवाले हैं। द्रविड और किरात दोनोंमें ऋग्वेदने कोई भेद नहीं किया और दोनों हीको कृष्णचर्म, कृष्णयोनि या कृष्णवर्ण कहा है। यद्यपि किरात कृष्ण नहीं, बल्कि पाण्डुवर्ण मगोलायित थे। उनके चेहरेमें द्रविडोंमें काफी अन्तर था। आज भी तिब्बती और मुण्डा मनुष्य के चेहरेको देखकर यह भेद स्पष्ट जाना जा सकता है। आर्योंने दोनोंको कृष्ण, दस्यु या दान कहा। किन्ती भी विजेता जानिको, यदि वह विजितको अपना नाज़ीदार नहीं बनाती तो, वर्णभेद कायम रखना पडता है। आज दक्षिणी अफ्रीकामें विशेष तौरमें और अफ्रीकाके दूसरे भागोंमें नामान्य तौरमें यह वर्णभेद देखा जा

रहा है। आजके वैज्ञानिक और जन-जागृतिके युगमें यदि यह अन्धेरखाता, चल सकता है, तो आजसे सवा तीन हजार वर्ष पहलेके वारेमें कहना ही क्या है ?

१. आर्य-वर्ण

ऋग्वेदमें आर्योंके वर्णका सविवरण निर्देश नहीं है, पर अपने देवताओका जो रग-रूप उन्होंने वर्णन किया है, वह उनका अपना ही रग हो सकता है। मनुष्य अपने देवताको भी अपने रूपमें देखता है। “यदन्न पुरुषो ह्यत्ति, तदन्न तस्य देवता” (जो भोजन आदमी खाता है, वही उसका देवता भी खाता है), इतना ही नहीं, बल्कि साथ ही यह भी कहना चाहिए “यद् रूप पुरुषो भवति, तद् रूपा तस्य देवता” (जिस रूपवाला आदमी होता है, उसी रूपवाला उसका देवता होता है)। इस तरह अग्नि, इन्द्र आदिका जैसा रग-रूप ऋग्वेदमें वर्णित है, वही उनके भक्तोका भी था। यह भी ख्याल रखना चाहिये, कि ऋग्वेदिक आर्योसे छ शताब्दियो वाद हुये बुद्ध और हजार वर्ष वाद हुए महाभाष्यकार पतञ्जलिके समय आर्योंका जो वर्ण उल्लिखित है, वह भी इसी वातको बतलाता है। आर्य अपना विशेष रग रखते थे। पतञ्जलिन (महाभाष्य २।२।६ में) लिखा है—“गौर शुच्याचार कपिल पिङ्गलकेश इत्येनान् अभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान्कुर्वन्ति” (गौरा शुद्ध आचारवाला, कपिल, पीले केशवाला इन्हें ब्राह्मण होनेके गुण बतलाते हैं)। यह स्पष्ट है, कि ब्राह्मणका जो जो रूप-रग पतञ्जलिन बतलाया है, वह अपवादरूपेण नहीं था, क्योंकि उसके वाद वर्णके सम्बन्धमें वीद्वो और ब्राह्मणोका जो विवाद हुआ, उसमें ब्राह्मणके इस रग-रूपको प्राकृतिक कहकर वर्णव्यवस्थाको स्वाभाविक साबित करनेकी कोशिश की जाती थी। बुद्धके रगको सुवर्ण-वर्ण और आँखोंके रगको अलसीके फूलके रगका अभिनील बतलाया गया है। अपेक्षाकृत नवागन्तुक और दूसरोंके साथ रक्त-सम्मिश्रण न करनेके लिये उतारू ऋग्वेदिक आर्योंका रग जरूर कपिल, केश पीले (पिङ्गल) और आँखोंका रग बुद्धकी तरह प्रायः अभिनील रहा होगा।

(१) केशोंका रग—ऋषि अपने ऋग्वेद (५।७।७)^१ में अग्निकी मूँछ-दाढी (श्मश्रु) के वारेमें कहा है—“वह पीले दाढीवाले शुचिदात-युक्त बड़े और अप्रतिहत बलवान् है।” अगिरस-गोत्री वरुने इन्द्रके श्मश्रु और केशके वारेमें (१०।९६।८) कहा है—“जो पीले श्मश्रु, पीले केशवाला पत्थर सा दृढ है।” विश्वामित्रने (३।२।१३) अग्निके केशोंको भी पीला कहा है—“हम उन विचित्र गतिवाले हरित पिंगल केशवाले सुप्रकाशमान अग्निमें नवीन धनके लिये प्रार्थना करते हैं।” गोतम राहूगण (१।७९।१) के अग्नि भी “हिरण्यकेश (सुनहले केश), मेघ विखेरनेवाले कम्पक, वायुकी तरह शीघ्रगामी, शुभ्र प्रकाश-युक्त है।” हरिकेश और हिरण्यकेशका एक ही अर्थ है, यहा यह स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि अग्निको पहले हरिकेश कहा गया, और इस मन्त्रमें उसीको हिरण्यकेश कहा गया। यहा पीलेके लिये हरि (हरित) शब्दका प्रयोग किया गया है। मस्कृतका हरित और फारसी जर्द, रूमी जोल्त, अग्नेजी गोल्ड एक ही मूल शब्दके भिन्न-भिन्न रूप हैं। अभासतीय हिन्दू-युरोपीय भाषाओंमें इसका अर्थ अब भी पीला लिया जाता है। यद्यपि पीछे सस्कृतमें इसका वह अर्थ नहीं लिया गया परन्तु ऋग्वेदके कालमें अभी उम मूल अर्थका त्याग नहीं हुआ था। इन्द्र और अग्नि दोनो ऋग्वेदिक आर्योंके परमपूज्य देवता हैं। दोनोकी दाढी-मूँछका पीला होना उनके भक्तोंकी दाढी-मूँछके पीले होनेको बतलाता है। यदि अग्निकी शिखाओंके स्वाभाविक रग पीले होनेमें उमें अनिवार्य समझा जाय, तो इन्द्रके लिये वह बात नहीं कही जा सकती। इन्द्रका रूप तो नवल आर्य पुरुषका रूप था।

भरद्वाजने (६।२९।६) इन्द्रकी नासिका या मुखको हरि (पिगल) कहा है—“इस प्रकार हरित शिप्रवाले इन्द्र नु-आह्वान योग्य हैं, जो उपस्थित या अनुपस्थित होनेपर स्तोताओंको धन देते हैं; और इस प्रकार वह उत्तम बल-युक्त प्रकट हो दस्युओंका हनन करते हैं।”

वसिष्ठके कथनानुसार (७।३३।१) आर्योंका रग श्वेत था। वह अपने कुलवालोंके वारेमें कहते हैं “कर्मपूरक दक्षिणकी ओर जूडा रगनेवाले श्वेत

वसिष्ठ-सन्ताने मुझे प्रसन्न करती हूँ। मैं यज्ञसे उठते कहता हूँ, कि वह मुझसे दूर न जायें।" वसिष्ठने ही मरुत् देवताओंके वारेमें कहा है" (७।५९।-११) "स्वयं वलि कवि सूर्यसी त्वचावाले मरुतो, मैं यज्ञको पसन्द करता हूँ।" सूर्य-त्वक् अर्थात् सूर्यके समान चमड़ेके रगवाला का अर्थ अत्यन्त गौर वर्ण ही है। अत्रिकी सन्तान अपालाने इन्द्रकी स्तुति करते हुए" (८।८०।७) कृतज्ञता प्रकट की है—“सौ यज्ञ करनेवाले रथके छिद्र और शकटके छिद्रको मूँदनेवाले इन्द्र, तुमने अपालाको सूर्यत्वक् बनाया।” अपाला किसी चर्मरोग से पीडित थी, जिससे मुक्त होनेका इसमें संकेत है।

पिशग हिरण्य या हरित वर्णको ही (पिंगल) भी कहते हैं। गृत्समदने" (२३।१०) पुत्रकी कामना करते हुए कहा है—“त्वष्टा हमें पिशगरूप सुभर आयुष्मान् क्षिप्रकारी देव-भक्त वीर सन्तान दे। देवोंका अन्न हमारे पास और आये।”

(२) शरीर—इन्द्रका शरीर आर्योंके सबसे शक्तिशाली वीरके शरीर जैसा था। उसके वर्णनसे हमें सप्तसिन्धुके किसी पहलवानका संकेत मिलता है। ऋषि इरिन्विठ" (८।१७।८) ने इन्द्रके शरीरके वारेमें कहा है—“बड़ी ग्रीवा, पुष्ट उदर, सुन्दर वाटूवाले इन्द्र भोजनसे प्रसन्न हो शत्रुओं को मारते हैं।” प्रगाथ कण्व-पुत्रने भी" (८।५३।७)—“वृषभ, युवा, तुविग्रीव (बड़ी ग्रीवा) न झुकनेवाला इन्द्र है। कौन उसकी सपर्या (पूजा) करता है?”

ऋग्वेदके इन उद्धरणोंसे आर्योंके शरीर और वर्ण (रग) का पता लगता है। उनके प्रतिद्वन्द्वियोंके शरीर-लक्षणका पता भी ऋग्वेदकी कितनी ही ऋचाओंसे मिलता है।

२. अनार्य-वर्ण

विश्वामित्रने आर्योंके प्रतिद्वन्द्वियोंके वारेमें कहा है" (३।३१।२१) 'शत्रुनाशक गोपति गायें हमें दे। दीप्तिमान् तेजसे काली (कृष्णों) को

नष्ट करे। सत्यसे अगिरा मन्तानको गायें दें। उसने सारे दरवाजोको बन्द कर दिया।”

आगिरस शुनहोत्र-पुत्र गृत्समदने” (२।२०।७) आयोके शत्रुओके वारेंमें कहा है—“शत्रुनाशक दुर्गध्वमक इन्द्रने कृष्णयोनि (काले दाम) मेनाओको नष्ट किया। मनुष्यके लिये पृथिवी और जलका जन्म दिया। वह यजमानकी इच्छा पूरी करे।”

१२ वर्ग

१ दास-दासियां

पराजित शत्रु स्त्री-पुरुषोमे बहुतोको विजेता दाम-दानी बना कर काम लेते थे, यह दास-प्रथा के समय सर्वत्र देखा जाता था। हमारे देशमें दास-प्रथाका अन्त १९ वीं शताब्दीके दूसरे पादमें हुआ। ऋग्वेदिक कालमें, जब कि विजेता और विजितके रग-रूप और स्वार्थोंमें भारी भेद था, दास-प्रथा और भी क्रूर रही होगी, यह निश्चित है। वालखिल्य सूक्तों” (१४।८।८।३) में पृषध ऋषिने इन्द्रमे प्रार्थना की है—“मुझे नौ गदहे, नौ भेड़ और नौ दास दो।” आर्य अपने शत्रुओको भी दान और दान्यु कहा करते थे। उनको ही लेकर क्रय-विक्रय होनेव ले पुरुषोका नाम पीछे दाम पड गया। यहा ऋषिने नौ दामोकी जो कामना की है, वह जातिने भी और कार्य मे भी दास होते, यह निश्चित है। ऋषि गृत्समदने इन्द्रकी प्रार्थना करते “(२।२।४) कहा है—“हे इन्द्र, हम तुम्हारे शुभ्र बलको बढाते है। हाथोमें शुभ्र वज्रको धारण करने शुभ्र हो बढते तुन नूर्यने अपने तेज द्वारा दान लोगो (दाम विशा) को पराजित करो।” इसी ऋषिने फिर” (२।१२।४) कहा है—“जिमने इम विश्व (सारे) को बनाया, जिमने दान-वर्णको निकृष्ट (नीच) और गुहावानी बनाया, जो व्याधिकी तरह आर्य पुष्ट धनको देता है, लोगो, वही वह इन्द्र है।” वामदेव गौतमने भी उन्हींके वारेंमें कहा है” (४।२८।४) “हे सोम, तुम्हारी मियताने युक्त हो इन्द्रने तुम्हारी महायतामे मनुष्यके लिये मुख (जल) प्रवाहित किया, दग्धु (बहि)

को मारा, सप्तसिन्धुको प्रेरणा दी। ढँके हुए छिद्रोको खोला।” कण्व गोत्री या कण्व-पुत्र ऋषि सोभरिको पुरुकुत्स-पुत्र राजा त्रसदस्युने पचास वधुये दी थी। वधूका मूल अर्थ वादी है, यद्यपि वह वधूके अर्थमें भी ऋग्वेदमें प्रयुक्त हुआ है, किन्तु इस स्थल^{१८} (८।१९।३६, ३७) पर दासीके लिए ही इस्तेमाल हुआ है—“पुरुकुत्स-पुत्र अतिमहान् स्वामी (अर्य) सन्ने मालिक त्रसदस्युने मुझे पचास वधुये दी।” सुवास्तु (स्वात) नदी के तटपर तीन-सत्तर (२१०) काली गायोंके लानेवाले पतिने धन दिया।”

(आजीविका)

आर्योंका मुख्य धन गाय-घोड़े और भेड़-बकरिया थी। वह कुछ खेती भी करते थे, क्योंकि जौका सत्तू और रोटी उनके आहारमें शामिल थे। अधिक धनी और प्रभुताशाली आर्य अपने पशुपालन और कृषिमें दासों और दासियोंसे सहायता लेते थे। आखिर पचास-पचास दासियों और दासोंको लेनेका प्रयोजन क्या हो सकता था? पर, साधारण स्थितिके आर्य अपने ही कृषि और पशुपालन कर लिया करते थे। आर्योंको पहननेके लिये कपड़ोंकी भी आवश्यकता थी, जो ऊन या चमड़ेके होते थे। सप्तसिन्धुकी गर्मी उस समय भी कम असह्य नहीं रही होगी, पर वह ऊनकी पोशाक पसन्द करते थे। इसे आदत कहना चाहिये, नहीं तो सिन्धु-उपत्यका के निवासी उनसे पहले ही सूती कपड़ोंको पहनते थे। आज भी गडेरिये लोग कड़ी धूपमें कम्बलको ओढ़े अपनी भेड़ोंको चराते हैं। कहते हैं कम्बल तरावट देता है। यही बात सप्तसिन्धुके आर्य भी कहते होंगे। उनके घरोंमें कपड़े बुने जाते थे। कपड़े बुनने और दूसरे कामोंके बारेमें आगिरस-गोत्री ऋषि शिशु^{१९} (९।११३।१-४) ने कहा है—“हमारे और दूसरोंके भी अनेक प्रकारके कार्य हैं। तरखान (बढ़ई) अपना काम चाहता है, वैद्य रोगकी चिकित्सा करता है, ब्राह्मण सोम छाननेवाले यजमान को चाहता है। इन्द्रके लिये सोम परिस्सृत हो (छाना) जाये।

“पुरानी औपवियो, पक्षियोंके पखो द्वारा अश्म (घातु)के हथियारो
तौडनेवाले कमार मोनेवाले आदमीको चाहते हैं ॥२॥

“मैं कवि हूँ। मेरा पुत्र वैद्य है। मेरी कन्या पत्यरकी चक्की चलाने-
वाली है। धनकी कामना करनेवाले नाना कर्मोवाले हम गौओकी तरह
एक गोष्ठमे रहते हैं ॥३॥

“वाहक घोडे अच्छे रथको, पासवाले मन्त्री (उप-मन्त्री) हमनेको,
पुरुपेन्द्रिय रोम-युक्त भग्न स्थानको, मेढक जल-युक्त सरको चाहता है ॥४॥

यहा वैद्य, ब्रह्मा (पुरोहित) कमार, कारु (कवि), पिसनहारी और
उपमन्त्रीके कामोका उल्लेख है।

२. चार वर्ण

डा० वटेकृष्ण घोष ऋग्वेदकी भापाके बारेमे कहते हैं*—“मव
मिलाकर पहले नी मण्डलोकी भापा एक समान है, यद्यपि पहलेकी
वोलीके भेदोका असर, विशेषकर र और ल के बारेमें मिलता
है।” दसवें मण्डलको सभी विद्वान् भापा और दूसरे विचारोसे भी पीछेका
मानते हैं। पहले नी मण्डलोमें चारो वर्णोका नाम नही मिलता है, पर दसवें
मण्डलमे इसका स्पष्ट उल्लेख थाया है* (१०।१०।१२)—“इम (पुरुष) का
ब्राह्मण मुख है राजन्य (क्षत्रिय) दोनो वाहु। जो वैश्य है, वह उसकी
जाघ है, और पैरोमे शूद्र उत्पन्न हुआ।” ब्राह्मण या पुरोहित ऋग्वेदिक
आर्योंके आरम्भिक कालमें भी रहे, लेकिन वह लडाईमे दूसरोकी तरह ही
भाग लेते थे। भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्रके पुत्रो और कुलवालोने
दिवोदाम और सुदासके अनेक युद्धोमें शस्त्र चलाये। ब्राह्मणो और
राजन्यमें वैसा भेद उन समय नही था, जो उपनिषद्-काल और पीछे देखा
जाता है, अथवा जो इन पुरुष-सूक्तमे मिलता है। विश्व प्रजा या लोकका
पर्याय था। इममे सारी आर्य जाति शामिल थी। राजाको विशापति
(विशोका स्वामी) कहते थे। विश्वने उत्पन्न वैश्य शब्दको नये अर्थोंमें

बहुत पीछे इस्तेमाल किया जाने लगा, जिसे ही हम यहा पाते हैं । शूद्रसे दास वर्णका मतलब है, जो कि पहले आर्योंके प्रतिद्वन्द्वी और पीछे उनके शासित या दास बन गये । चारो वर्णोंकी कल्पना पीछे हुई, यह साफ मालूम होता है । पहलेकी आर्य प्रजामे, चाहे ब्रह्म (ब्राह्मण) हो या राजन्य (क्षत्रिय), उनके रोटीवेटीका कोई भेद नहीं था । पर, जब चारो वर्णोंकी कल्पना हो गई, तो उसके साथ ऊच-नीचका भाव भी आने लगा । उसके साथ ही धन और भोगमें उनके भागको कम-बेशी माना जाने लगा । इस विपमतासे वैमनस्य बढ़ना आवश्यक था । वैमनस्यको हटानेकी इच्छा न आर्य ऋषियोंको हो सकती थी, और न वह हटाया जा सकता था । तो भी आर्योंके भीतर समानता और भेदभावको हटानेका प्रयत्न वह जरूर करते रहे । ऋग्वेदके अन्तिम सूक्त ' (१०।१९१) में सवनन ऋषि इसीकी ओर ध्यान दिलाते हैं

• “तुम साथ चलो, साथ बोलो । तुम्हारे मन साथ सोचो । जैसे कि पूर्वकालके देव एकमत हो उपासना (भोग) करते थे ॥२॥

“इन (आर्यजनो) का मन्त्र एक सा हो । समिति एक सी हो, चित्त-सहित मन एक सा हो । एक से मन्त्रको तुम्हारे लिये मैं आमन्त्रण करता हूँ । एक समान हविमे तुम्हारे लिए हवन करता हूँ ॥३॥

“तुम्हारा अध्यवसाय समान हो, तुम्हारे हृदय समान हो । तुम्हारा मन समान हो, जिसमें कि तुम्हारा सुन्दर सगठन हो ॥४॥”

यह अनेक बार बतला चुके हैं, कि ऋग्वेदिक ऋषियों का काम आर्योंका सामाजिक या राजनैतिक इतिहास लिखना नहीं था । उनका उद्देश्य था देवताओको प्रसन्न करनेके लिये स्तुतिया और विधि-विधान बनाना । दूसरी बातें वहा आनुपगिक रूपसे ही आई हैं । पर, जिस सामाजिक और आर्थिक स्थितिमें आर्य थे, उससे उनके जीवनके अनेक अगोपर प्रकाश पडता है । आर्यों और आर्य-भिन्नो—द्रविडो और किरातो—में भारी आर्थिक-सामाजिक भेद था । विजेता और स्वामी होनेके कारण मवमे अधिक सम्पत्ति और भोगको आर्य अपने लिये चाहते थे, और बचे-खुचेको

ही हमारे पा सकते थे। पणि व्यापारी थे—पणि शब्दसे ही वणिक या वनिया शब्दकी उत्पत्ति हुई है। ये सम्पत्तिशाली थे। व्यापार भी उनके हाथमें था, और उनके पाम गायें भी बहुत होती थी। पणियोकी गायोको लूटना आर्य अपना धर्म समझते थे। इसके लिये वहानेकी भी जरूरत नहीं थी। यह मरमा और पणियोके सवादमे हम देखेंगे। यदि सर्वस्व-हरण कर लिया जाता, तो व्यापार हो ही नहीं सकता था। इसीलिये आर्य पणियोकी पूंजी और उनके व्यवसायके साधनोका हरण करना नहीं चाहते थे। उन्हें सोनेकी जरूरत थी। मणि और रत्न की भी कदर उनमें बढी थी। ये चीजें पणियो द्वारा ही मिल सकती थी। इसलिये पणियोकी रक्षा करना भी वह अपना कर्तव्य समझते थे। पणि भी उदारतापूर्वक आर्य ऋषियोको दान देते थे, यह भी हम देखेंगे।

३. पराजित

पणि जिस जाति—द्रविड—के थे, उसके सभी लोग ऐसे सौभाग्य-शाली नहीं थे। उनमे कितने ही आर्योंकी कृपापर कृपक या शिल्पी-रहकर जीवन-निर्वाह करते थे, कितने ही आर्योंके दास-दासी बने थे। पर्वत गुहावासी शम्बरकी लोग—किरात—नरनारी सभी लडने मरनेको तैयार थे। उन्हें आर्योंकी पकडसे बाहर जानेका मुभीता भी था। कागडेकी उपत्यका और पासके पहाडोपर आर्योंके साथ जो खूनी सघर्ष चला था, और दिवोदास चालीस साल की लडाईके बाद ही शम्बरका महार कर सका, इसीके कारण किरात पराजित हुये। उन वक्त जो भी युद्धवन्दी हाथ आये होंगे, वह दास-दासी बन गये होंगे, इसमें भी सन्देह नहीं। पर, द्रविडोकी तरह किरात एक जगह रहनेके लिये मजबूर नहीं थे। उनके उत्तर और भी दुर्गम पर्वत, वहाकी चरागाहें और हरी-भरी उपत्यकायें मौजूद थी। शवर-वशी उधर हट सकते थे, और वना ही हुआ भी। किर (किरात) लोग कागडेके निचले पहाडोमें किरग्राम (वैजनाय) जैसे नाम छोड गये हैं। आज उनका पता कागडाने

शताधिक मील दूर लाहुल, मलाणा (कुल्लू) और कनौरमें मिलता है। इसलिये आर्योंके पास जो दास-दासी थे, वह अधिकतर द्रविड जातिके ही रहे होंगे, किरात बहुत कम, इसमें सन्देह नहीं।

४ उत्पीडन और वर्ण-विभेद

आर्थिक तौरसे पराजितोका भीषण शोषण तो होता ही था, सामाजिक तौरसे भी उन्हें बहुत हीन समझा जाता था। गृत्समदने मान लिया था, कि देवताओंने ही नहीं उन्हें अधर (नीच) वर्णका बना दिया है। आर्योंको रक्त-सम्मिश्रणका डर कितना था, इसका अन्दाज हमे अमेरिकाके नीग्रो और श्वेतागोसे लग सकता है। अमेरिका सारी दुनियामे स्वतंत्रता और समानताकी ढोल पीटता है, पर वहा चिरागके नीचे अन्धेरा है। विश्व-विद्यालयोंमें काले छात्र गोरोंके साथ पढ नहीं सकते। किसी गोरी तरुणीका सम्बन्ध यदि नीग्रोसे हुवा समझा जाता, तो गोरे स्वयं कानूनको हाथमें लेकर उसे जला देते हैं। ऐसे खूनी काण्ड वहा हर साल हुआ करते हैं। दक्षिणी अफ्रीकाके गोरे तो इस बातमें और भी निर्लज्ज तथा क्रूर हैं। अपनेसे चौगुनी-पचगुनी सख्यावाले अफ्रीकियोंको वह मनुष्यरूपी पशु मानते हैं। उनको अपने घरों और वस्तियोंके पास नहीं रहने देना चाहते। रेलों और सवारियोंमें कालोंको अलग रखते हैं, जीविकाके साधनोंको कमसे कम देकर उन्हें अछूत बनाये हुए है। वर्ण-भेदके यह दो रूप हमारे सामने युक्त - राष्ट्र अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीकामें मौजूद हैं। आर्योंने वर्ण-भेदकी खाईको सुदृढ़ रखनेकी कोशिश की। यद्यपि वर्ण—रंग—का इस तरहका भेदभाव हभारी जातियोंमें आज बिल्कुल नहीं मिलता। ब्राह्मण भी कोयलेसे काले मिलते हैं, और शूद्र या अछूत अच्छे खासे गोरे। एक सा माफ-सुथरा कपडा पहनाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके लडकोंको खडा कर दिया जाये, तो कोई उन्हें नहीं बतला सकता। इतना होनेपर भी पुराने शास्त्रोंकी दुहाई देकर पुराने नीच-ऊँचके भेदकी कायम रखनेकी कोशिशकी जा रही है। इसका बुरा परिणाम हमारी तीन-चौथाई जनताको भोगना पड रहा है। बड़े वर्ण या जातिका

मतलब है सम्पत्तिका स्वामी होना, और छोटे वर्ण या जातिका अर्थ है सम्पत्तिसे वंचित होना। सम्पत्तिसे वंचित होनेका मतलब है, मनुष्यताके दूसरे अधिकारोंसे भी वंचित होना। सम्पत्तिके न होनेपर शिक्षा और सस्कृतिकी सुविधा नहीं रह जाती। हरेक देशमें विजेता और विजित के सम्बन्ध कटु होते हैं, पर यदि उनमें वर्ण-भेद, जाति-भेद न हो, तो कुछ समय बाद दोनोंमें एकता स्थापित हो जाती है, सम्बन्ध अच्छे हो जाते हैं। हमारे देशमें ऐतिहासिक कालमें यवन (ग्रीक), शक, श्वेत-हूण आये। उनके प्रति आरम्भमें कुछ भेदभाव जरूर रखा गया, लेकिन रगका सवाल नहीं उठ सकता था, क्योंकि नवागन्तुक वर्ण-सम्पत्तिमें आदिम आर्यों जैसे थे, जिनके रूप-रग, नख-गिखको हमारे यहाँ बराबर सौन्दर्यकी कसौटी माना जाता रहा। इसीलिए यवन-शक उच्च वर्णके लोगोमें मिल गये और उन्हें अछूत या सम्पत्तिहीन नहीं बनाना पडा।

तीव्र वर्ण-भेदके ख्यालसे आर्य अपने दास-दासियोंके माथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करनेके विरोधी थे। पर, दास-दासियोंके श्रमका वह कर्म त्याज्य कर सकते थे? दक्षिणी अफ्रीकाके गोरे भी कालोंके श्रममें लाभ उठानेसे वाज नहीं आते। सिन्धु-उपत्यकावामी भौतिक मस्कृतिमें आर्योंमें बहुत आगे बढ़े हुए थे। मोहनजोडरो जैसे ताम्र-शुगके भव्य नगरके निर्माण करनेवाले उनके शिल्पी, अपने कला-कौशल तथा शिल्पसे आर्योंके लिये लाभ-दायक थे। इस लाभमें वह अपनेको वंचित नहीं करना चाहते थे। कपडा बुनना, चिकित्सा करना, हथियार बनाना आदि कुछ शिल्प आर्योंको भारतमें आनेसे पहले ही मालूम थे। उन्होंने सिन्धु-उपत्यकावानियोंके अधिक विकसित शिल्प भी कुछ सीखे। उससे भी अधिक उन्हीं द्वारा काम करवा कर लाभ उठाया। पर, खान-पानकी जो छूत-छात पीछे पँदा हुई, उनका अस्तित्व उस कालमें था, यह कहना मुश्किल है। जहाँ तक उत्तर भारतका सम्बन्ध है "शूद्रा सस्कर्तार" (शूद्र पाचक है) बराबर माना जाता रहा। रोटी-पानीमें शूद्रोंमें नहीं, बल्कि अतिशूद्रोंमें भेद बरता जाता रहा, जिनका कारण वर्ण नहीं, बल्कि अधिक गन्दे नमझे जानेवाले काम थे। यह बिल्कुल

सम्भव है, कि ऋग्वेदिक आर्योंके धनी परिवारोंमें दसियाँ भोजन बनाती थी । उनके हाथके खाने-पीनेमें किसी को एतराज नहीं था । छूत-छातका रवाज आर्योंमें क्रमशः बढ़ा । सूत्र-ग्रन्थोंमें शीचके लिए जल लेनेका विधान नहीं है । गुरु-कुलसे सुशिक्षित होकर निकले स्नातकोंको वहाँ सूखे काठ इस्तेमाल करनेकी बात कहनेका मतलब यही है, कि अभी जलकी प्रथा नहीं चली थी । कच्चे-पक्के खाने और उमके छू जानेका भाव उम युगमें नहीं हो सकता था । ऊनके वस्त्रको पवित्र माननेकी भावना भी ऋग्वेदिक आर्योंकी ही देन है । आर्योंका कपासके वस्त्र न व्यवहार कर ऊनी वस्त्रको अपनाना दोनों वस्त्रोंके प्रति दो प्रकारके भावोंके पैदा करनेका कारण हुआ । कालान्तरमें ऊनको शुद्ध मान लिया गया, और कपासको अशुद्ध । सूती कपड़ेको बदल कर खाना खाने या रसोईमें जाना चाहिए । पर ऊनी कपड़ा स्वतः पवित्र है । कश्मीरमें सर्दिके कारण गीला चीका लगाना सुखद नहीं है, वहा ऊनी लोई चीकेका काम देती है और ऊनी कपड़ेसे ढँके घड़ेका पानी या भात मुसलमानके हाथमें पडकर भी अशुद्ध नहीं होता । किसी समय बैलके चमड़ेको भी ऊनके समान शुद्ध माना जाता था । कल्प-सूत्रोंमें (पारस्कर) वर-वधूको बैलके चमड़ेपर बैठा कर मधुपर्क देनेका विधान है । गायके चर्मकी शुद्धता पीछे जाती रही, पर मृगछाला अब भी शुद्ध-पवित्र माना जाता है । यह आर्योंके चमड़ेकी पोशाक होने के कारण ही ।

अध्याय ४

खान-पान

§१ खाद्य

१ मास

ऋग्वेदिक आर्य कृपि भी करते थे, लेकिन उनका सबसे बड़ा धन गौ-अश्व, अज-अवि था, इसीलिए उनमें शायद ही कोई ऐसा हो, जो मास न खाता था। बड़े-बड़े ऋषियोंके लिए भी आतिथ्य करनेके वास्ते मास अत्यावश्यक चीज थी। पीछेके धर्म-सूत्रकारोंने तो कहा—“नामासो मधुपर्कौ भवति”* (बिना मासका मधुपर्क नहीं हो सकता)। अतिथिके सत्कारके लिए जो खाद्य तैयार किया जाता, उसे मधुपर्क कहते थे। ऋग्वेदके बाद ब्राह्मण-काल (८०० ई० पू०) में भी मास आर्योंका प्रधान भोजन था, और इसके टोटके-टोने भी प्रचलित थे। बृहदारण्यक (६।४।१८) में बतलाया गया है, कि यदि कोई इच्छा करे, कि मेरा पुत्र पण्डित, प्रसिद्ध, सभा-समाजवाला हो, और ऐसी वाणी वाले, जिसे लोग सुनना चाहें, तथा वह सारे वेदोंको पढ़े, पूरी आयुको प्राप्त होवे, तो माताको चाहिए, कि घी-सहित साड या बँलके मासवाला ओदन पकाकर खाये।

“य इच्छेत् पुत्रोमे पण्डितो विगीत समितिगम शुश्रूषिता वाच भाषिता जायेत, सर्वान् वेदा अनुब्रवीत, सर्वमायुरियादिति, मामोदन पाचयित्वा सर्पिष्मन्त अश्ननीयताम् ईश्वरी जनयित्वा औक्षेण वाऽऽर्पमेण वा।”

* आश्वलायनगृह्यसूत्र १।२४

कोई सन्देहकी गुजाइश न रहे, इसके लिए शकराचार्य अपनी टीकामें कहते हैं—“मास-मिश्रमोदनम् । तन्मासनियमार्थमाह—औक्षेण वा मासेन । उक्षा सेचनसमर्थं पुगवस्तदीय मासम् । ऋपभस्ततोऽप्यधिकवया तदीय-मार्पभ मासम् ।” अर्थात् मास वयस्क बँल या उससे अधिक आयुके बँलका होना चाहिए । गोमासके प्रति आज चाहे जितनी जुगुप्सा हो, पर प्राचीन-कालमें इसके प्रति यह भावना नहीं थी । बुद्ध-कालमें भी यह बहुप्रचलित भक्ष्य था । मज्झिमनिकाय (३।५।४) में आता है—

“जैसे चतुर गोघातक या गोघातकका शागिर्द गायको मार कर गाय काटनेके तेज छुरेसे गायके भीतरी मास और बाहरी चमडेको नुकसान पहुँचाये बिना गायको काटे—जो जो वहाँ भीतर विलिम, स्नायु, वन्धन है, उसे तेज छुरेसे छेदन करे, काटे .। छेदन कर काट कर , बाहरी चमडेको धाड फटकार कर, उसी चमडेमें उस गायको ढाँक कर यह कहे— ‘यह गाय पहिलेकी तरह ही इस चर्मसे युक्त है’ ।”

गोमास काट कर गोघातकके चीरस्तेमे वेचनेके लिए राशि करके रखने का भी उल्लेख मिलता है । गौ काटनेके लिए जो स्थान होता था, उसे गोघातक सूना कहते थे । वहाँपर हड्डियोंकी लालचसे कुत्ते प्रतीक्षा करते रहते थे । मज्झिमनिकायमें (२।१।४) है—

“गृहपति, जैसे भूखसे अति-दुर्बल कुक्कुर गोघातकके सूना के पास खड़ा हो । चतुर गो-घातक या गोघातकका अन्तेवासी उसको मास-रहित लोहूमें सनी हड्डी फेंक दे । तो क्या मानते हो, गृहपति ! क्या वह कुक्कुर उस हड्डी को खाकर भूखकी दुर्बलताको हटा सकता है ?”

गाय काटनेके छुरेको गोभिकर्तन कहते थे (मज्झिमनिकाय २।४।५) । ऋग्वेद (१०।७९।६) में ऋषिने कहा है “निषर्वशश्चकर्तं गामिवासि” (जैसे तलवार पोर-पोर गायको काटे) । यह भी उसी बातकी तरफ इशारा है । बहुत पीछे यदि सातवी-आठवी सदीके भवभूति अतिथिके लिए बछिया मारनेकी बात कहते हैं, तो वह अवश्य अपने समयके प्रतिकूल हैं, परन्तु जहाँ तक प्राचीनकालका सम्बन्ध है, यह विल्कुल माधारणसी बात थी । जैन

आगमके "उपासगदसा" से भी इस बातकी पुष्टि मिलती है। वहाँ एक सेठानी ने अपने पीहरसे दो गायके वच्चो (गोपोतक)का मास मंगवाया था। वस्तुतः आर्योंके आनेसे ईसवी-मन्के आरम्भ तक यह भक्ष्य इतना प्रचलित था, कि उसके बारेमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। लेकिन, सबसे अधिक प्रिय माम आर्योंका मोटा भेडा और वकरा था। भेडेके लिए ऋग्वेद^१ (१०।२७।१७) में कहा गया है "पीवान मेपमपचन्त वीरा" (मोटे मेपको वीरोंने पकाया)।

उस कालमें घोडेका मास भी भक्ष्य था, और उसके पके सोधे मासको आर्यजन बहुत चावसे खाते थे। दीर्घतमा ऋषि कहते हैं^२ (१।१६२।१२) जो घोडेको अच्छी तरह पका देखते हैं और उसकी सुगन्धको वखानते हैं, और जो घोडेके मास भोजन का सेवन करते हैं। (ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिर्निर्हरेति। ये चार्वतो मासभिक्षामुपासते)।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है, कि ऋग्वेदका काम इतिहास या सामाजिक जीवनका चित्रण करना नहीं है। वहाँ देवताओकी प्रशंसाके प्रसंगमें ही कही-कही दूसरी बातें आती हैं। उममें यह मालूम ही होता है, कि प्रधान तौरसे मासभोजी आर्य गौ, अश्व, अजा, अविका न माम खाते थे। मछली खाते तो जरूर होंगे, पर ऋचाओमें उमका उल्लेख नहीं है।

कई तरहका गोरस भी उनका प्रधान भोजन था। घृत तो मुख्य था ही, पुरोडाश^३ (४।२४।५) भी उनका और उनके देवताओका प्रिय खाद्य था, जो शायद दूध और किमी अन्नको मिलाकर बनाया जाता था। पीछे तो खीरका यह पर्याय हो गया, लेकिन, ऋग्वेदमें चावलका कही उल्लेख नहीं है, अधिकतर जोका नाम आया है। हो नकता है, जोकी दलियाको दूधमें पकाया जाता हो, जिसे वह पुरोडाश कहते थे। विश्वामित्र^४ (३।२८।२) भी पुरोडाशके पकानेकी बात कहते हैं। दूध या दही में एक तरहका भोजन अगिर तैयार किया जाता था, जिसका उल्लेख बहुत जगहों पर हुआ है—^५ (१।१३४।६, ३।५३।१४, ८।२।१०, ११, ९।७५।५, ८६ ०१ १०।४६।१०, ६७।६) अगिर कई तरह के होते थे, जैसे गवागिर,

दध्याशिर । गवाशिर^१ (३।४२।१,७) और दध्याशिर^२ (५।५१।७) दोनो भोजन सोम और दूध-दहीके योगसे अथवा दूध-दही और दूसरी चीजोंके मिश्रणसे बनते थे। एक जगह^३ (८।७७।१०) क्षीरपाकका उल्लेख है। आजकल खीरपाक दूधमें पके चावलका ही दूसरा नाम है। उस समय क्षीरके साथ पका हुआ दूसरा अन्न जौ हो सकता था। पशुपालनकी प्रधानता रखनेवाले आर्योंके भोजनमें मास और गोरसकी प्रधानता थी। मासमें मसालेका उपयोग बहुत पीछे हुआ। लहसुन-प्याजका इस्तेमाल होता था, इसका भी कोई पता नहीं। घीमें तलने या बघाडनेको छोडकर और तरहका कोई मसाला उस समय उपयोगमें नहीं आता था। नमकका पहाड सप्तसिन्धुकी भूमि में था, इसलिए वह सुलभ था। हो सकता है, उसका इस्तेमाल किया जाता हो। आगमें भूनकर मासको खाना यह कृषि-युगसे पहले भी प्रचलित था। इस समय तो अब पकानेके लिए उखा (हडिया) का उपयोग होने लगा था^४ (१।१६२।१३), इसलिए उबले मासको भी खाया जाता था। “सुरभि पक्व मास” से भी इसी बातकी पुष्टि होती है।

२ अन्न

अन्नका अर्थ पुराने कालमें भोजन होता था, लेकिन धान्यकी प्रचुरताके कारण अब अन्न अनाजके अर्थमें भी प्रयुक्त होता है। तभी तो एक जगह^५ (१०।१४६।६) कहा गया है—“बह्वन्नमकृपीवला” (किसान-रहित बहुत अनाजवाली)। इससे किसान और अनाजका सम्बन्ध निश्चित है। “धाना, करभ, अपूप”^६ (८।८०।२) धाना, करभ^७ (३।५२।१,७), करभ^८ (६।५६।१, ५।७।२) के उल्लेख भरद्वाज, विश्वामित्र और वामदेव जैसे प्राचीन ऋषियोंने अनेक बार किये हैं। धाना भुने हुए अनाजको कहते हैं, आज भी उसे दाना कहा जाता है। करभ सत्तूका नाम था, और अपूप रोटीको कहते थे। आजकल पूआ या मालपूआ यद्यपि एक खास तरहके बहुत स्वादिष्ट घृतपक्व भोजनको कहते हैं, लेकिन ऋग्वे-

दिक आर्योका अपूप कण्डेपर या मिट्टीके तवेपर पकाई रोटी होगी। कृपिके आरम्भिक युगमें तन्दूरकी रोटी मध्य-एसियामें अनौके लोगोको मालूम थी, और तन्दूर आज भी मप्तसिन्धुकी रोटियोंके लिए प्रसिद्ध है। हो सकता है, आर्य लोग तन्दूरी रोटियां पकाते हों। इनके अतिरिक्त सक्तु " (१०।७।१२) का भी उल्लेख हुआ है, जो करभका ही दूसरा नाम था। सक्तूको छानकर इस्तेमाल करते थे, जैसा कि "सक्तुमिव तितउना" में मालूम होता है। भोजन बनानेके लिए इस्तेमाल होनेवाली चीजोंमें उलूखल (ओखल)" (१।२८।१), तितउ (छलनी), एक प्रकारकी हांडी चपाल" (१।१६२।६) और उखाका उल्लेख हुआ है। हो सकता है, इससे अधिक भी पात्र रहे हों। कमसे कम मोहनजोडरोमें इस्तेमाल होनेवाले पात्रोंको तो आर्य अपने सामने देख रहे थे।

आर्य कृपि भी करते थे, यह कृपीवल (किसान) (१०।१४६।६) में ही मालूम होता है। भूमि क्षेत्र और अरण्यमें विभक्त थी " (६।६१।१४), जिनमें क्षेत्रोंमें वह जौकी खेती करते थे, और अरण्य पशुओंके चरानेके काम आते थे। जाड़े में वनोंके पत्ते झड़ जाते थे—“हिमेव पर्णा मुपिता वनानि” " (१०।६८।१०)। आजकल इमें ऊंचे पहाड़ोंमें ही देखा जा सकता है। मप्तसिन्धुके कममें कम मध्य और पूर्वी भागमें इतना जाड़ा नहीं होता था, कि हिमकालमें वृक्षोंपर पत्ते न रहे। उनके गिरनेका समय जाड़ोंके अन्तमें आता है। पत्तों और घासोंकी पशुपालोंको बड़ी आवश्यकता थी, उमलिए ऋतु-अनुसार जो परिवर्तन आने थे, उमकी ओर उनका ध्यान जाता था।

उनकी खेतीमें जौकी प्रधानता थी। खेतीको वह बैलोंमें जोतते थे—“गोभिर्यव न चकृपत्”" (१।२३।१५ जैसे बैलोंमें जौके खेतको जोता जाये)। खेतीके लिए नहरोंका भी इस्तेमाल करते थे। ये नहरें छोटी नान्दिर्या होगी, जिनको कुत्या " (५।८३।८) कहते थे। आजकल भी पहाड़ोंमें इन्हे कूल या गुल कहते हैं। हल (लागल) का भी जिक्र " (४।५७।४) वाम देव ऋषिने किया है, और उन्होंने ही जोती हुई हराई सीता" (४।

५७।४) और फाल^१ (४।५७।८) का जिक्र किया है। लागलमें आजकल लोहेका फाल इस्तेमाल करते हैं। उस समय लोहा अज्ञात था ताँबेका फाल भी लग सकता था, लेकिन ताँवा अभी महार्घ धातु थी। इसलिए फाल भी लकड़ीका रहा होगा, हाँ, अपेक्षाकृत कड़ी लकड़ीका,

फल भी आर्य लोगोका भक्ष्य था। वह तो कृषि और गोपालनसे अपरिचित जातियोके लिए भी जगलमें सुलभ था। आर्य "स्वादो फलस्य जग्ध्वाय" * (१०।१४६।५, स्वादिष्ट स्वादु फलके खाने) की बात कहते हैं। फलको अधिक स्वादु बनानेका काम आदमीने कृत्रिम रूपसे किया। जगली फल सयोगसे भले स्वादु निकल आये, नहीं तो अधिकतर वह स्वादिष्ट नहीं होते, यह हम जगली सेव, नास्पाती, अगूर या जगली जामुन, शरीफे, आम आदिको देख कर जानते हैं। फलोको स्वादिष्ट बनानेके लिए बगीचोंके लगानेकी जरूरत थी, जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें ही नहीं, बल्कि काफी पीछे तक नहीं मिलता। आर्य लोग जगलोमें स्वतः उगे वृक्षोंके ही स्वादु फलोपर सन्तोष करते होंगे। पक्व फल वृक्ष^५ (३।५४।४) का भी उल्लेख देखा जाता है। आर्योंके भोजनमें फल भी शामिल थे। जिन्हे वह सुखा कर रख सकते थे, और दूसरे समयमें भी इस्तेमाल करते रहे होंगे। पञ्जावकी भूमिमें कौन से फली वृक्ष प्राकृतिक रूपमें मौजूद थे, इनकी गिनती करना मूर्खिकल है। आम रहा होगा, जामुन भी होगी, करौंदे, कुँदरू जैसे फल भी रहे होंगे, केलाके होनेमें सन्देह है, क्योंकि उसे अधिक वर्षाकी जरूरत है। कटहल-बडहल अब भी पञ्जावमें दुर्लभ फल है। जगली वेर जरूर रही होगी।

§२ पान

गोरस-सम्बन्धी पान अर्थात् दूध, दही, छाछ उनके सबसे प्रिय और सुलभ थे, जैसाकि अब भी पञ्जावमें देखा जाता है। सत्तू खानेमें दहीका इस्तेमाल जो पीछे देखा जाता है, वह उस समय भी रहा होगा। बहुत अधिक गायोंके रखनेसे छाछ या दही बहुत अधिक पैदा होता होगा। पनीर की शकलमें

सुखाकर रखनेका रवाज था, या नहीं, इसके बारेमें नहीं कहा जा सकता। पिछले कालमें पनीरकी तरहकी ही एक गीली-सी चीज आर्मिक्षाका उल्लेख मिलता है। आर्य मधु ^१ (१०।१०६।१०) से सुपरिचित थे वल्कि वह इस खाद्यसे बहुत पहलेसे परिचित थे, क्योंकि आर्योंके दूरके सम्बन्धी एसियोंके पूर्वज भी इसे जानते थे, यह दोनों भाषाओंमें मधु और मेदुके एक-से नामसे मालूम होता है।

१ सोम

आर्योंका सबसे प्रिय पेय सोम था। सोमका उल्लेख ऋग्वेदके सारे नवे मण्डल और सैकड़ों दूसरी ऋचाओंमें हुआ है। सोम कोई ऐसी पेय चीज नहीं थी, जो कि दुर्लभ होनेके कारण बहुत कम लोग ही उसे पी सकते हो। उसके घडेके घडे (चमू) भरे रहते थे ^{१०} (१।२०।६)। सोम छननेमें छना जाता था। छना हुआ (सुत) साम उस समयके आर्यों का बहुत प्रिय पान था। सोम उनके लिए दिव्य वस्तु था। ऋषि मधुच्छन्दा कहते हैं ^{११} (१।१।१५) —“स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुत।” (इन्द्रके पीनेके लिए छाने हुए हे सोम, स्वादिष्ट और मदिष्ट धारासे क्षरित होओ)। सोमपान स्वादिष्ट भी होता था। स्वादु ही नहीं, वल्कि अत्यन्त स्वादु और मदिष्ट भी। कहते हैं ^{१२} (८।४८।३) —“अपाम सोम अमृता भवेम’ (हमने सोम पिया और अमर हो गये)। सोम दुर्लभ अमृत सजीवनोका नाम नहीं था। सोम घडोंके घडे तैयार किये जाते थे, —“सोम चमूपु” ^{१३} (१।२०।६)। मदिर् सोम ^{१४} (८।२१।५) आर्योंका नित्य-प्रतिका पान था। सोम-यागमें विशेष तौरसे पीनेका विधि-विधान पीछे हुआ। हम देव चुके हैं, कि पके घोडेके मानकी तारीफ नोवा-नोवा कह कर आर्य लोग करते थे, यह मान केवल अश्वमेध यज्ञ तक ही सीमित नहीं था। उसी तरह मदिर्सोमका पान केवल सोम-याग तक ही सीमित नहीं था। शामके वक्त नृत्य और पानगोष्ठी आर्योंके स्वच्छन्द और सुखी जीवनका एक अभिन्न अंग थी। उस समय घडों सोम को जरूरत होती थी।

सोमको भाँग वतलानेपर पुराणपन्थी चौंक उठते हैं। प्राचीनोंने उसके वारेमें बहुत सी गप्पें उड़ाई हैं। चन्द्रमाका भी नाम सोम है, इसलिए सोमको उनके साथ जोड़ कर कहते हैं—सोमलता चन्द्रमाकी तरह एक-एक अश बढ़ती पूर्णिमाको अपनी पूरी ऊँचाई पर पहुँचती है, उसके बाद घटते-घटते अमावस्याको अत्यन्त खर्ब हो जाती है। कोई वनस्पति ऐसी देखने में नहीं आती। सूर्यके प्रकाश या हाथके स्पर्शसे छूर्छ-मूर्छ हो जानेवाली लाजवन्तीका हमें पता है। ऐसे भी वनस्पति मालूम हैं, जो कीड़ो-मकोड़ोको अपने विशेष स्थानपर पकड़ कर भख जाते हैं। लेकिन, कला-कला बढ़ने-घटनेवाली वनस्पतिका हमें पता नहीं है। यह भी नही कहा जा सकता, कि माढ़े तीन हजार वर्ष पहले जो वनस्पति इतने परिमाणमें मौजूद थी, कि उसका घड़ो रस तैयार किया जा सके और अब वह विल्कुल उच्छिन्न हो जाये। वस्तुतः सोमके साथ धीरे-धीरे जिन सैकड़ो दिव्य गुणोको जोड़ दिया गया, वह भाँगमें नहीं है। भाँग कितनी ही जगहोंमें अधिक उपजनेवाली वेह्या वनस्पति है, जिसको लोग भाड़ झोकनेके काममें लाते हैं, इसलिए दिव्य सोम यही भाँग है, इसे वह कैसे माननेके लिए तैयार हो सकते थे? पर, सोम है वस्तुतः भाँग। तिब्बतमें आज भी उसे “सोमराजा” कहते हैं। पठान लोग भाँगको “ओम” कहते हैं, जो सोमसे होम होकर बना है। सोममें दूध और मधु मिला कर सोमरस तैयार किया जाता था। दूधिया भाँग अपने स्वादके लिए हमारे यहाँ प्रसिद्ध है ही। अगर पता न हो, तो सामने रख देनेपर आदमी लोटा भर भाँग पी सकता है। भाँगकी भाजून उस समय नहीं बनती थी, जिसकी खोयेवाली वर्षी अपने स्वादके लिए प्रसिद्ध है। एक बार खतरेको न जानकर इन पक्षियों के लेखकने कई वर्षियाँ खा डालीं, जिसका दण्ड हफ्तो भुगतना पडा था। सोमको बहुत स्वादिष्ट बनाते थे, उसकी स्वादिष्ट धाराकी बडी ख्याति थी। और मंदिर होनेसे वह गम-गलत करनेके लिए किमी भी नशीली चीजसे कम नहीं था।

आर्य स्वास्थ्यप्रेमी थे। पशुपालनका जीवन परिश्रमका जीवन होता है। फिर आर्योंको सैनिकका जीवन भी विताना पडता था, इसलिए दुर्बल

आदमियोंकी उनके यहाँ कदर नहीं हो सकती थी। इन्द्र उनके इष्टदेवता पौरुषके आगर थे। उनके लिए कहा गया है^१ (८।१७।८) — “तुवि-
 ग्रीव वपोदर सुवाह्वु” (पुष्ट गर्दन चर्वीदार पेट और सुन्दर भुजाओवाला)।
 चर्वीवाला पेट अर्थात् तोदको शायद इन्द्रके प्रीढ होनेके स्थालसे कहा गया
 है, नहीं तो आर्य-तरुणोका आदर्श तुदिल शरीर नहीं हो सकता। हाँ, मोटी
 गर्दन और वलिष्ट भुजाके साथ विशाल छातीको वह पसन्द करते थे, जैसाकि
 गुप्तकालकी मूर्तियों और अजन्ताके चित्रोंमें देखा जाता है। भरद्वाज के
 बुढापेका चित्र ऐत्रेय ब्राह्मण (३।५।४९) में मिलता है, जहा वह दुबले
 लम्बे और श्वेतकेश (कृग, दीर्घ, पलित) बतलाये गये हैं। तरुणाईमें वह
 पलितकेश नहीं सुवर्णकेश रहे होंगे, लम्बे होंगे और मामल, पर छरहरा
 वदन रहा होगा।

आर्योंका खानपान बहुत पुष्टिकर और स्वास्थ्यकर था। मप्तसिन्धुकी
 गर्मियाँ उस समय भी असह्य रही होंगी, लेकिन अब १५ पीढ़ियोंसे रहते
 वह उनके लिए सह्य हो गई होंगी। पञ्जाव (सप्तसिन्धु) आजकी तरह ही
 तब भी अधिक स्वास्थ्यकर रहा होगा। सत्तू-रोटी और मास-गोरमका
 उस समय कोई अभाव नहीं था। कृषि और गोरक्ष्य ही उनकी जीविकाके
 साधन थे, गौओ की लूटसे भी कभी-कभी आमदनी हो जाती थी। पर,
 अब सारी मप्तसिन्धु भूमि उनको अपनी थी, आर्य-भिन्न लोग भी उनके
 अधीन थे, इसलिए वह तीन गताद्वियों पहलेकी तरह अपने लिए भी
 लूटकी छूट नहीं कर सकते थे। उनके कर्मठ जीवनको कायम रखनेके
 लिए उत्तरके पहाड़ोंके घाम्बर और उसकी जातिवाले शत्रु मौजूद थे।

२. सुरा

सुरा भी आर्य पीते थे, यद्यपि उसे मुपान नहीं मानते थे। इसके बारेमें
 अध्याय १४ में हम लिखेंगे।

भाग ३
राजनीतिक

अध्याय ५

ऋग्वेद के ऋषि

§ १ प्रधान ऋषि

यदि इन्द्र, अग्नि आदि अमानुष तथा कल्पित नामोको छोड़ भी दिया जाय, तो भी ऋग्वेदके ऋषियोकी संख्या साढ़े तीन सौ से कुछ ऊपर है। इनमें सबसे पुराने अगिरा, र्हूगण, कुशिक हैं, परन्तु उनके एकाव ही मन्त्र मिलते हैं। उनके बाद सबसे पुराने तथा प्रधान ऋषि एक सूक्तमें साथ आये हैं, जो क्रमशः भरद्वाज, कश्यप, गोतम, अग्नि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ हैं। यदि ऋग्वेदके दसों मण्डलोके क्रमके अनुसार देखा जाय, तो द्वितीय मण्डलके गृत्समद, तृतीय मण्डलके विश्वामित्र, चतुर्थ मण्डलके वामदेव, पञ्चम मण्डलके अग्नि, षष्ठ मण्डलके भरद्वाज, सप्तम मण्डलके वसिष्ठ और आठवें मण्डलके कण्व प्रधान मालूम होते हैं। प्रथम, नवम और दशम मण्डलोमें किसी एक ऋषि या उसके कुल-भोजकी प्रधानता नहीं है। बौद्ध त्रिपिटकके दीघनिकाय के तेविज्जसुत्त (१।१३) में और दूसरे स्थानोंमें भी मन्त्रोंके कर्ता मन्त्रोंके प्रवक्ता दस ऋषि गिनाए गए हैं—अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, जमदग्नि, अगिरा, भरद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप और भृगु। इनमें वामक नाम का कोई ऋषि नहीं मिलता, बाकी सबके मन्त्र ऋग्वेदमें मिलते हैं, और वामदेव, विश्वामित्र, भरद्वाज तथा वसिष्ठ तो सबसे अधिक मन्त्रोंके कर्ता हैं। यदि मन्त्रोंकी अधिक संख्याके कर्ताके अनुसार देखा जाय, तो सबसे अधिक—१०३ सूक्तों—के कर्ता वसिष्ठ हैं। उनके बाद दूसरे हैं—भरद्वाज ६०, वामदेव ५५, विश्वामित्र ४८, गृत्समद

४०, कक्षीवान् २७, अगस्त्य २६, दीर्घतमा २५, गोतम २०, मेघातिथि २०, श्यावाश्व १५, कुत्स १४, मधुच्छन्दा १०, प्रस्कण्व ९, पराशर ५, जमदग्नि ५ । कम सूक्तोंके कर्ता किन्तु कुछ महत्त्व रखनेवाले ऋषि हैं—
कवप ४, बृहस्पति २, हर्यत १, अपाला १, अप्टक १, कुशिक १ और सुदास १ ।
ऋग्वेदकालीन आर्यजनोंके पुरोहित निम्न ऋषि थे—

पुरोहित	जन	प्रदेश
१ भृगु	द्रुह्यु	(परुष्णी-असिकनीके बीच)
२ अत्रि, गृत्समद (पञ्चम मण्डल)	पुरु	(विपाश्-शुतुद्रिके)
३ भरद्वाज (षष्ठ मण्डल)	दिवोदास, सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के)
४ वसिष्ठ (सप्तम मण्डल)	सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के)
५ विश्वामित्र (तृतीय मण्डल)	सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के)
६ दीर्घतमा मामतेय	भरत-तृत्सु	(परुष्णी-विपाश्के)
७ कण्व (अष्टम मण्डल)	तुर्वश, यदु	(परुष्णी-असिकनीके)

अधिक मन्त्रोंके रचयिता और ऐतिहासिक महत्त्व रखनेके कारण आर्यजनोंके इन पुरोहित-ऋषियोंको प्रधानता देनी पड़ेगी, जो उमरमें छोटे-बड़े हो सकते हैं, पर समकालीन हैं । इनमें भी भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्रका सबसे अधिक महत्त्व है । यह शम्बर-युद्ध फिर राजा सुदाम के दाशराज्ययुद्धके समय मौजूद थे । वसिष्ठ और विश्वामित्रने घरू सघर्षमें मुख्य तौरमें हाथ बटाया था । “दाशराज्ययुद्ध” का काल ईसा-पूर्व १२००के करीब है और आर्य मत्त-सिन्धुमें ई० पू० १५००१ में आए, अर्थात् तबसे विश्वामित्रके काल तक आर्योंकी चौदह-पन्द्रह पीढ़ियाँ बीत चुकी थीं ।

जब हम ऋषियोंके पूर्वजोंको देखते हैं, तो किसीकी पीढ़ी अपने परदादासे आगे नहीं जाती । भरद्वाज के पिता बृहस्पति, पितामह लोकनामा और

प्रपितामह अगिरा थे। कण्वके पिता घोर और पितामह अगिरा थे। कश्यपके पिता मरीचिचक का ही नाम हमें मालूम है। गोतमकी भी एक ही पीढ़ी अर्थात् पिता रूह्यगणका पता मालूम है। अत्रिके पिताका भी नाम निश्चित मालूम नहीं है। विश्वामित्रकी चार पीढ़ी—अर्थात् पिता गाथी, पितामह कुशिक और प्रपितामह इपीरथ—मालूम हैं। वमिष्ठ और उनके भाई अगस्तके पिता मित्रावरुण बतलाए गए हैं, यदि वह मनुष्य नहीं देवता हैं, तो इसका मतलब है, कि उनके पूर्वजोंमें किसीका नाम मालूम नहीं है। भृगुके पिता वरुण थे। इस प्रकार चार पीढ़ी अर्थात् एक शताब्दी अथवा ई० पू० १३००से पहलेके किसी ऋषिपूर्वजका पता नहीं है। पीछेकी ओर देखते हैं, कि इन ऋषियोंकी परम्पराओंको काफी सुरक्षित रखनेकी कोशिश की गई है। यह आश्चर्य की बात है, पूर्वजोंकी स्मृति क्यों नहीं कायम रखी गई। लेकिन आश्चर्य करनेकी कोई जरूरत नहीं। आर्य जब सप्त-मिन्वुमे आए, तो घुमन्तू जीवन विताते थे, अभी वह जनयुग—कवीलाशाही—से बाहर नहीं आए थे। गाय-घोड़ों और भेड़ोंको पालना उनकी जीविकाका मुख्य साधन था। यदि कृषि करते थे, तो नामात्र ही। उनके उपयोगके लिए अन्न जुटानेवाले पराजित मिन्वुवामी मौजूद थे। लेकिन जीवन तथा विलासकी बहुत-सी सामग्रियोंको स्वीकार कर वह नामन्तयुगीन मस्कृति और आर्थिक जीवनमें अछूने कैसे रह सकते थे? सामन्तवादकी ओर बढ़नेके लिए जनयुगकी दीवारोंको तोड़ना आवश्यक था, अर्थात् भिन्न-भिन्न जनो (कवीलों)को एकताबद्ध करना था। एकताबद्ध करनेके प्रयासका अन्तिम परिणाम “दाशराजयुद्ध” हुआ था।

इस पृष्ठभूमिमें देखनेपर मालूम हो जाएगा, कि ऋषियोंकी जो पहले की तीन-चार ही पीढ़ियाँ हमें मालूम होती हैं, उनका कारण यही है, कि तभीने वह जनयुगमें सामन्त-युगकी ओर दृढ़ कदम रखने लगे। जिस तरह ऋग्वेदके प्रधान तीन ऋषियोंमें पहलेके ३०० वर्षोंका आर्योंका इतिहास हमें अन्धकाराच्छन्न मालूम होता है, वैसे ही उनके बाद—जहाँ तक ऐतिहासिक साहित्यरु-सामग्रीका सम्बन्ध है—फिर तीन सौ वर्षों तक अन्धकार छा

ऋषियों के वंशयुक्त—

ई० पू०

१२७५

अंगिरा

११५०

लोकनामा

घोर

...

वरुण

१२२५

बृहस्पति

कण्व

....

भृगु

१२००

भरद्वाज

प्रसाकण्व

वत्स

मेघातिथि

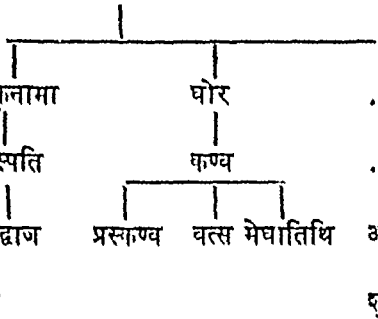
अजीगर्त

यमदग्नि

११७५

गर्ग

शुनःशप



डपीरथ				१२७५
कुशिक		रहूगण	पिजवन	१२५०
गाथी	मित्रावरुण	गोतम	वध्र्श्व	१२२५
विश्वामित्र	वसिष्ठ अगस्त्य	वामदेव	दिवोदास	१२००
मघच्छन्दा	शक्ति		सुदास	११७५
	पराशर गौरवीति			११५०

जाता है। ऋग्वेदके ऋषि सप्तसिन्धुके ऋषि थे। उस वक्त आर्योंका निवास और प्रभुता क्षेत्र सप्तसिन्धु अर्थात् सरस्वतीसे लेकर सिन्धुकी उपत्यका तकका देश (हरियाणा, पञ्जाब और पञ्चतान) था। तीन सौ वर्ष बाद यजुर्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण जैसे प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं। इन ब्राह्मणोंके कर्ता ऐतरेय महीदास और थाज्ञवल्क्य उस समय पैदा हुए, जबकि सप्तसिन्धु नही कुह-पञ्चाल (पश्चिमी उत्तर-प्रदेश) आर्योंका गढ़ बन चुका था और उनका प्रभाव पूर्वमें विदेह (उत्तरी बिहार) और दक्षिणमें भोज (मध्य नर्मदा उपत्यका) तक पहुँच गया था। यदि इन तीन सौ वर्षों की बातें अविच्छिन्न रूपसे प्राप्त होती, तो मालूम होता, कि आर्य सप्तसिन्धुसे पूर्वकी ओर किस तरह बढ़े ?

सप्तसिन्धुमें प्रवेश करनेकी बातका भी हमारे साहित्यमें कोई उल्लेख नही मिलता। हमें उसके बारेमें तुलनात्मक भाषा-विज्ञान और नृतत्व से मदद लेनी पडती है। फिर एकाएक कूदकर तीन सौ वर्षों बाद हमें दिवोदान और सुदास तथा उनके पुरोहित भरद्वाज, वसिष्ठ आदि एव उनके सघर्षोंका पता लगता है। इसके बाद फिर इतिहासकी सरस्वती लुप्त होकर तीन सौ वर्ष बाद ब्राह्मणोंके रूप में हमारे नामने आती है। तब हमें कुरु और पञ्चालके समृद्ध जनपद और राज्य दिखाई पडते हैं, तथा इमी समय उपनिषद्के रूपमें आर्य-विचारक जनयुगीन देवमालासे अपनेको ऊपर उठाते दिखाई पडते हैं।

प्रधान ऋषियोंके राजनीतिक जीवनके सम्बन्धमें हम उनके यजमानोंके सघर्षके वर्णनमें बतलाएँगे। वह वस्तुतः केवल धार्मिक नेता (पुरोहित) और कवि (कारु) मात्र ही नही थे, बल्कि अपने लोगों के प्रधानमन्त्री तथा नेनानायक भी थे। यदि बुढापेके कारण युद्धमें सीधे भाग नही ले सकते थे, तो अपनी तरुण सन्तानों और वंशजोंको उसमें शामिल होनेके लिए आह्वान करते थे। उनकी स्तुतियों और देवताओंकी कृपासे उनके यजमानोंको सफलता नही मिली, बल्कि उनके शक्तिशाली कुल-तरुणोंकी तलवारों और धनुष-बाणोंने सफलता में सहायता की।

१. भरद्वाज

रचनाके ख्यालसे ६० सूक्तोंके रचयिता बृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजका ऋग्वेदके ऋषियोमे दूसरा नम्बर आता है। वह सुदास के पिता दिवोदासके पुरोहित थे। यदि आर्यजनोंके आपसी सघर्षमें वसिष्ठने सुदासकी बड़ी महायता की थी, तो भरद्वाजका हाथ सुदासके पिता दिवोदासकी सफलताओं में कम नहीं था। ऋग्वेदका छठा मण्डल उनका और उनके वंशजोंका मण्डल है, जिसमें ऋषिने दिवोदासकी सफलताओंका वर्णन किया है। इनका अपना मोटो था “तरै हम तरै तेरी रक्षामे हम तरै” (५।१।१२) (६।१५।१५ आदि)। दूसरा वाक्य जो इनकी ऋचाओंमें दोहराया जाता है, वह है—“हम अच्छे वीरोंके साथ सौ सार्दियोतक आनन्दपूर्वक रहें” (७।४।८, ७।२४।१०)। इन्होंने आधे दर्जन से अधिक स्थानोंमें “अद्रोघ-वाच” (अमिथ्यावादी) शब्दका प्रयोग किया है (६।५।१, ६।६।१२ आदि)।

दिवोदासका उल्लेख इनकी बहुत-सी ऋचाओंमें मिलता है, किन्तु सुदासका कहीं नहीं है। तब मर गये होंगे या सुदासके लिए अमंगल कामनाएँ की हों इसलिये उन ऋचाओंका मग्नह नहीं किया गया। लोभ, द्वेषमें यह पुराने ऋषि-पुरोहित अपने आजके वंश-धरोंसे बहुत ऊपर नहीं थे इस-लिए जिस सुदान ने उनको राजपुरोहित पदसे दूबकी मक्खीकी तरह निकाल बाहर किया, उसके लिए वह अमंगल-कामना नहीं करेंगे, यह नहीं हो सकता। ऋग्वेदमें सगृहीत ऋचाएँ मुख्यतः ऋषि-पुरोहितोंके इष्टदेवताओंकी महिमा-वर्णन करनेके लिए हैं। भरद्वाजके देवता अमंगल मावित ऋग, फिर अमंगलताके प्रदर्शन के लिए उनकी की गई स्तुतिको क्यों मुरझित किया जाता ?

भरद्वाज अघ्यात्म-शक्तिके कायल नहीं थे। उन्होंने प्रार्थनाकी थी “अश्मा भवन्तु नस्तनू” (हमारे शरीर पत्थरके हों ६।७५।१२)। उनके यजमान दिवोदास और मारे आर्यजनोंका प्रबल शत्रु शम्बर नामक दस्यु-राजा था। वह विपाद् (व्यान) और परणो (गवी) के बीचवे

वर्तमान कागडावाले पहाडका राजा था और जैसा कि हमने अन्यत्र बतलाया है, वह द्रविड (सिन्धु) जातिका नहीं बल्कि किरात (मगोलायित) जातिका था। उसके सौ पहाडी दुर्ग थे, जिनमे १९वीं सदी तक शत्रुओके दात खट्टे करनेवाला कागडा जैसा कोई किला (पुर) शायद इमी स्थान पर था। आयसी (तावे जैसी दृढ) के स्थान पर दूसरी जगह अश्मन्मयी (पत्थर जैसी दृढ) पुरियों (किलो) का भी जिक्र आया है। ये पहाडी किले पत्थरके रहे होंगे। शम्बरके अलावा चुमुरि, घुनि, शुष्ण, अशुष, पिप्रु, नाम वाले दूसरे आर्य-विरोधी असुर राजाओका उल्लेख भरद्वाजने किया है। यह भी पहाडी राजा तथा शम्बरके सहयोगी थे। इसमे शक नहीं कि सबसे प्रबल शत्रु शम्बर था। भयकर युद्धोंके नेता-पुरोहित भरद्वाज यदि वर्म (कवच), घनु, ज्या, इपुधि (तर्कश), रथ, घोडे, परशु (फर्से) जैसे युद्धके सावनीका वर्णन करें, तो यह स्वाभाविक ही है।

क्षेत्र और अरण्यका भी उल्लेख भरद्वाज करते हैं^१ (६१।१४), जिससे पता चलता है, कि आर्योंको खेतो और जगलो दोनोंसे काम था। खेतोमे वे जी और दूसरे अनाजोकी थोडी-सी खेती करते थे, जिससे करम्भ (सत्तू) बना कर दही से खाते थे। पर, उनका प्रधान भोजन दूध और मांस था, जिसके लिए एक-एक परिवारके पास हजारो गाये होती थी। इस प्रकार खेतोंसे भी अधिक चरागाहोकी उनको आवश्यकता थी। घोडे इस वक्त युद्ध और साधारण सवारीके अत्यन्त उपयोगी जानवर थे और उनके मांसका उपयोग भी होता था। दिवोदासके पुत्र सुदासमे वसिष्ठने अश्वमेघ यज्ञ कराया था (ऐतरेय ८।४।२१)। अश्वमेघ यज्ञका यही सबसे पुराना उल्लेख है। चायमान अभ्यावर्ती राजाने दो हजार गायें दान दी थी। गोदान उस समय अधिक हुआ करता था, आर्य ऋषि प्रभूत गौओं और अश्वोकी कामना करते थे। भरद्वाजने दिवोदासकी सोम-गोष्ठियोंमे सह-मागी होनेका वर्णन किया है^२ (६।१६।५)। उस समय सोमपान इतना साधारण था, कि उसे सोमयाग कह कर दिव्य पूजाका रूप देनेकी आवश्यकता नहीं थी।

दिवोदामके पिता वध्न्यश्वने आर्योंमें कवीलाशाहीका अन्त करके उन्हें एकतावद्ध करनेका श्रीगणेश किया था, जिमको उसके सुपुत्र दिवोदामने आगे बढ़ाया। इसमें सबसे बड़े विरोधी यदु और दुर्वश दो आर्यजन थे। दिवोदामने उनको दवानेमें नफलता पाई। उसने ६० हजार दामो (अमुरो) का महार किया था। बार्हस्पत्य भरद्वाजने मात बहने सरस्वती '(६।६१।१०), तटोको तोडनेवाली सरस्वती' (६।६१।२) का भी उल्लेख किया है। दासोकी मात पुरियोको पुरुकुत्स (पुरुओंके राजा कुत्स) ने ध्वस्त किया था' (६।२०।१०)। इसमें मालूम होता है, कि भरतोंके राजा दिवोदामके ही कृपापात्र नहीं थे, बल्कि दूसरे जनोमें भी भरद्वाज क मान था। बृहस्पति देवताका भी नाम है। भरद्वाजके पिता यदि बृहस्पति देवता थे, तो इसका अर्थ यही हुआ, कि उनके पिताके नामका पता नहीं है। पर ऋग्वेदके ऋषियोंकी अनुक्रमणीको देखनेमें मालूम होता है, कि इनके पिता बृहस्पति लोकनामा ऋषिके पुत्र और अगिराके पौत्र थे। अगिराके एक और पुत्र घोर थे। अगिराकी मन्तानोंमें तिरश्ची, हिरण्यस्तूप, वसुश्रुत श्रुतकक्ष भी थे। तिरश्चीके ऋजिश्वा और मुमित्र दो बेटोंके ऋषि होनेका पता लगता है। लेकिन अगिराके घोर और लोकनामा दोनों पुत्रोंकी मन्तानें ही अधिक ख्याति-प्राप्त हुईं। घोरके पुत्र कण्व थे, जिनके वत्स, मेघातिथि, प्रस्कण्व, प्रगाय जैसे प्रसिद्ध ऋषि पुत्र थे। प्रगायके कई पुत्र ऋषि थे। अगिराके प्रपौत्र भरद्वाज भी योग्य पुत्रों और मन्तानोंके लिए नौभाग्यशाली थे। उनके पुत्र गर्ग, ऋजिश्वा, गिरिन्विठ ऋषि हुए।

२ वसिष्ठ

इन्होंने दूसरे नभी ऋषियोंमें अधिक मख्यामें (१०३) सूक्त रचे हैं। इनके बाद इनके प्रतिद्वन्दी भरद्वाजका नम्बर आता है, जिनके ६० सूक्त मिलते हैं। यह माना जा सकता है, कि इन ऋषियोंने जिन्दगीमें जितनी ऋचायें रची, मभी को उनके वंशज इतना नहीं कर सके। आविर रचनाकालसे कम से कम दो सौ वर्ष बाद (ई० पू० १,०००) ऋचाओंका संग्रह किया गया, और सो भी लिपिवद्ध करके नहीं, बल्कि केवल धृतिके

रूपमें कठस्थ करके; लिपिवद्ध करनेमें और कई शताब्दियाँ बीती । लिपिवद्ध होनेके बाद भी वेदपाठी अभी तक अपने-अपने वेदोंको स्वर-सहित कठस्थ करके रखते हैं । आधुनिक युगमें यह डर है, कि वेदपाठियोंकी सख्या का जिस प्रकार ह्रास होता जा रहा है, उससे सौ-दो सौ वर्ष बाद शायद उनका मिलना मुश्किल हो जाय ।

वसिष्ठके पिताका नाम मित्रावरुण देवता बतलाया जाता है । इनके सहोदर अगस्त्य मुनि थे । वसिष्ठके चित्रमह, मृलीक दो और पुत्रोंका भी नाम और उनकी रची ऋचाये मिलती हैं, पर उनके पुत्रोंमें प्रधान और शायद ज्येष्ठ भी शक्ति थे । इनके दो पुत्र पराशर, गौरवीति भी ऋग्वेदके ऋषि हैं । पराशरको व्यास या कृष्णद्वैपायनसे मिलानेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए । ब्राह्मणोंके पिछले साहित्य—महाभारत, रामायण और सबसे अधिक पुराणोंमें इन ऋषियों और उनके समकालीन राजाओंकी वशावलियों—में बहुत गड़बड़ी की गई है ।

ऋग्वेदके सातवें मंडलके ऋषि वसिष्ठ हैं । एक-एक मंडलके प्रथम ऋषि और भी हैं । लेकिन उनमें और वसिष्ठमें यह भेद है कि जहाँ दूसरे मंडलोंकी रचनामें उन ऋषियोंके पुत्र-पौत्रोंका भी काफी हाथ है, वहाँ वसिष्ठ सातवें मंडलके सभी १०४ सूक्तोंके कर्ता हैं । उनके पुत्र शक्तिकी रचना ३२ वीं और कुमार ऋषिके १०१-१०२ वें सूक्त सदिग्ध रूपसे बतलाये जाते हैं । वसिष्ठके मंत्रोंकी सबसे महत्ता यह है, कि इनकी रचना द्वारा तत्कालीन इतिहास और भूगोल पर जितना प्रकाश पड़ता है, उतना दूसरे किसी भी ऋषिकी रचनासे नहीं पड़ता । इनका तकियाकलाम “यूय पात स्वस्तिभि सदा न ” (तुम स्वस्तिके साथ सदा हमारी रक्षा करो) है, जिसको उन्होंने एक दर्जनसे अधिक बार अपने मंत्रोंमें दोहराया है । आर्यों और उनके ऋषियोंकी तरह वसिष्ठके भी सबसे बड़े आराध्य देवता इन्द्र थे । उसके बाद मित्र, सूर्य, अग्नि, विश्वेदेव, वरुण, अश्विद्वय, उषा, सरस्वती थे । जिस तरह आज शैव लोग मरने पर कैलाशवासी बननेकी इच्छा रखते हैं वृष्णव लोग वैकुण्ठके, कुछ कृष्णभक्त गोलोकवामी बननेकी इच्छा से भी

रे जाते हैं, उसी तरह उस समय आर्य मरनेपर इन्द्रलोकमें जानेकी इच्छा खते थे।

ऋग्वेदके बाद यद्यपि कालक्रमसे साम, यजु और अथर्व-वेदोंका नम्बर आता है, पर जहा तक इतिहासका सम्बन्ध है, उनमें हमें अधिक सहायता नहीं मिलती। उसके बाद प्राचीन ब्राह्मणोंका नम्बर आता है। ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेदका अपना ब्राह्मण है। ब्राह्मणोंका काम मन्त्रोंकी व्याख्या करना नहीं है। ब्राह्मण (ब्रह्म-सम्बन्धी) ग्रन्थ हैं, ब्रह्मसे अभिप्राय यज्ञ या मन्त्रका है। यह यज्ञोंकी भिन्न-भिन्न क्रियाओं और उनमें वेद-मन्त्रोंके विनियोगकी बात बतलाते हैं। ऐतरेय ब्राह्मणमें आगे दर्जन जगहों पर वसिष्ठका नाम आया है, एक (७।३।१६) से मालूम होता है, कि एक यज्ञमें विश्वामित्र होता, अग्नि अर्वाक्य, वसिष्ठ ब्रह्मा, अयास्य उद्गाता थे। इसी यज्ञमें सुयवमका पुत्र अजीगर्त एक पुरोहित था। लालची अजीगर्तने तीन सौ गीवोंके गोभमें अपने पुत्र शुन शेषको खुद तलवारसे काट कर बलि देना स्वीकार किया। पुत्रने ऐसे वापसे पिंड छुड़ानेके लिए विश्वामित्र को अपना पिता मानना चाहा और उनकी गोदमें जाकर बैठ गया। अजीगर्तने विश्वामित्रसे कहा—“ऋषि, मेरे पुत्रको मुझे दे दो।”

—“नहीं, देवोंने इसे मुझे दिया है।” उन्होंने शुन शेषका नाम बदलकर अश्वरात विश्वामित्र रख दिया। अजीगर्तने पुत्रसे प्रार्थना की—

“हम दोनों (माता-पिता) तुझे बुलाने हैं। तू आगिरम-गोत्री अजीगर्तका पुत्र ऋषि है। हे ऋषि, तू अपने वाप-दादोंके घरको मत छोड़। हमारे पास आ जा।”

शुन शेषने कहा—“मैंने तेरे हाथमें वह चीज (तलवार) देखी है, जो तू भी नहीं लेता। हे आगिरम, तूने तीन सौ गायोंको मुझने बद्धकर ली है।”

अजीगर्तने कहा—“तात, मैं अपने किये पर दुःखी हूँ। मैं उसका नुस्कार करता हूँ। मैं नौ गायें तुझे देता हूँ।”

शुन शेषने कहा—“जो एक बार पाप कर सकता है, वह दूसरी बार भी

कर सकता है। तू शूद्रतासे मुक्त नहीं है। जो पाप तूने किया है, वह किसी प्रकार निवारित नहीं हो सकता।”

विश्वामित्रने वीचमें कहा—“हाँ, निवारित नहीं हो सकता। यह सुयवसका पुत्र जब हाथमें तलवार लिये मारनेको तैयार था, उस समय बड़ा भयानक लगता था। इसलिए तू अपनेको उसका पुत्र मत समझ, मेरा पुत्र होजा।”

ऐतरेयके इस उद्धरणसे पता लगता है कि वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, अयास्य, अजीगर्त तथा शुन शेष एक कालमें मौजूद थे। दूसरे वाक्य (७।५।३४) से मालूम होता है, कि एक यज्ञविधिको वसिष्ठने सुदास पैजवनको बतलाया था। आठवीं पंजिका (८।४।२१)में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है—“इन्द्रके इसी महाभिपेकसे वसिष्ठने पैजवन सुदासका महाभिपेक किया और उसने पृथ्वी भरमें विजय पाई और अश्वमेद-यज्ञ किया।” उसके पिता दिवोदासके सम्माननीय पुरोहित भारद्वाजने क्यों नहीं सुदासका अभिपेक किया? वसिष्ठने क्यों किया? दिवोदासका एक पुत्र प्रतर्दन भी था, जिसे पीछे हुए काशिराज प्रतर्दनसे एक नहीं करना चाहिए। खानदानी पुरोहितको छोड़कर दूसरे पुरोहितको स्वीकार करना यही बतलाता है, कि दोनो भाइयोमें पिताके सिंहासनके लिए झगडा था। प्रतर्दन शायद बड़ा लडका था। दिवोदासकी गद्दी पर भरद्वाजने उसे अभिपिक्त किया। चन्द्रगुप्त (गुप्त-वशी) की तरह सुदास अपने पिताका योग्यतर अधिकारी था। दोनो भाइयोमें झगडा हुआ। भरद्वाजने प्रतर्दन का पक्ष लिया, पर सुदासकी पीठपर वसिष्ठ जैसा चतुर और बहुवर्णवाला पुरुष था। ऐतरेय ब्राह्मणमें साफ बतलाया गया है, इस ऋषिने “इन्द्रके महाभिपेकसे पैजवन सुदासका महाभिपेक किया।” यद्यपि स्वयं ऋग्वेदमें प्रतर्दन और वसिष्ठके झगडेका वर्णन नहीं है, और न यही बतलाया गया है, कि सुदासको गद्दी पानेमें अपने भाईसे मुकाबला करना पडा। पर ऐतरेय ब्राह्मणके कथनका वहाँ कोई विरोध नहीं मिलता, वल्कि वसिष्ठ का सुदासका पुरोहित बनकर दाशराज्ञयुद्धमें सफलता प्राप्त करनेके लिए सब कुछ करना, इसकी पुष्टि करता है।

सुदामके पिता दिवोदासने वसिष्ठके अनुसार ^{११}(७।४।७) साँ आयसी पुरियोका नाश किया था। वसिष्ठको इसका अभिमान था, कि भरतोके प्रताप को बढानेमे मेरा सबसे बडा हाथ है—“दण्डसे (पिटती) गौओकी तरह पहले भरत लोग (अनाथ) शिशु जैसे तथा परिच्छिन्न थे। वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए, तो तृत्सु वने लढेगे।” ^{१२}(७।३३।६) भरतोकी सफलताओका वसिष्ठने अपने मातृके मण्डलमे कई जगह वर्णन किया है। भरतोने पुरु लोगोको अभिभूत किया ^{१३}(७।८।४) सुदामके साथ मर्षर्ष मे द्रुह्यवो और अणुओके ६६ हजार आदमी मारे गये ^{१४}(७।१८।१४)। तृत्सुओने जमुनाके परे भेद, अज, शिशु और यक्षु लोगोको परास्त किया ^{१५}(७।१८।१९)। ये अनार्य जन मालूम होते है। वसिष्ठने अनार्य लोगोको “शिशुदेव” (लिंगको देवता माननेवाले) बतलाया है ^{१६}(७।२१।५)। वसिष्ठके एक कथनमे मालूम होता है, कि दाशराज्युद्ध मिन्वुके तीर पर हुआ था, जहा पर इन्द्रने सुदामकी रक्षाकी, अर्थात् सुदाम विजयी हुआ ^{१७}(७।३३।३)।

पीराणिक युगमे वसिष्ठको वेद्या-पुत्र कहा गया है। देव-(जन युगीन) कन्यायें मदा कुमारिया रहती है उनका प्रणय म्यायी नही होता है, इसलिए उन्हे देवगणिका भी कहा जाता है। वसिष्ठको मैत्रावरुण (मित्र और वरुणकी सन्तान) और उवशीमे उत्पन्न बतलाया गया है ^{१८}(७।३३।११)। अप्सरामे वसिष्ठका उत्पन्न होना भी उल्लिखित है ^{१९}(७।३३।१२)। देवता या देवकन्यामे उत्पन्न होनेका मतलब यही है, कि पीछेके लोगोको वसिष्ठके माता-पिताका नाम नही मालूम था। यातुधान, यातुमावान (जादूगर) ^{२०}(७।१०४।१५, ७।१।१५) का वर्णन वसिष्ठने किया है। झूठके लिए दरोग शब्द फारसीमे आज भी प्रयुक्त होता है, वसिष्ठने “द्रोववाच” ^{२१}(७।१०४।१४) का प्रयोग किया है। वसिष्ठ और अगस्त्य पीछेके साहित्यमे भाई बतलाये जाते है, जिनकी पुष्टि ऋग्वेदके एक मंत्र ^{२२}(७।३३।१०) मे होती मालूम होती है। वसिष्ठके जीवनी सबमे बडी घटना और सफलता दाशराज्युद्धमे सुदामको विजय अर्थात् मन्विन्वुके विचरे हुए आर्यजनोंको एकतावद्ध करना है। “दश राजाओंने मित्रकर

सुदाससे लडाई की" ^{१३}(७।८३।७)। तृत्सुओके देशमे दाशराज्ञ (युद्ध) में सुदासके लडनेका भी उल्लेख है (७।८३।७-८)।

३ विश्वामित्र—

यद्यपि गायत्रीके पुत्र कुशिकके पौत्र और इपीरयके प्रपौत्र, विश्वामित्रकी ऋचाओंसे अधिक सख्या रचनावाले गोतमपुत्र वामदेव है, किन्तु विश्वामित्रका महत्त्व वसिष्ठ और भरद्वाजके समान है, इसलिए हम उनको यहा ले रहे हैं। यह ऋग्वेदके तीसरे मण्डलके ऋषि हैं। विश्वामित्र और वसिष्ठका जो वर्णन हम रामायणमें पाते हैं, उसका ऋग्वेदसे कोई सम्बन्ध नहीं है, और वह ऐतिहासिक तथ्य नहीं, बल्कि पौराणिक कल्पना मात्र है। इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, पूषा, सविता, सोम, मित्र आदि देवताओंकी इन्होंने स्तुति की है, और ३३३९ देवो (३।९।९)०३३ करोड नहीं ३३ देवताओंका उल्लेख सबसे पहले इन्होंने ही किया—“त्रिंशत् त्रीश्च देवान्” ^{१४}(३।६।९, ३।२४।३०)। अपने साथी यमदग्नि ^{१५}(१०।१६७।११३) और अपने वश कुशिक (लोगो) ^{१६}(३।२६।१२) का इन्होंने उल्लेख किया है। पुरविये कुशिक सख्या और प्रभुत्वमे बढे-चढे थे, इसीलिए शायद सुदासको अपने अभिषेक करनेवाले तथा दाशराज्ञयुद्धमे परमसहायक वसिष्ठकी ओरसे मुंह मोडकर विश्वामित्रकी ओर मुंह फेरना पडा। उस मनस्वी कार्यार्थी राजाके लिए एक उपकारक पुरोहितको छोडकर दूसरे पुरोहितको अपनाना स्वाभाविक था। इस तोताचश्मीको देखकर वसिष्ठके पुत्र शक्तिने विरोध किया, लेकिन प्राण गंवानेके सिवा उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। नदियोंको थाहमें लानेका दावा वसिष्ठने भी किया है ^{१७}(७।१८।५ “सुदासे अर्णासि गाघानि अकरोत्”), और विश्वामित्रने भी। विश्वामित्रने व्यास और सतलुजको गाघा (घाहवाली) होनेके लिए सवाल-जवाबमे जो प्रार्थना की है, वह ऋग्वेदकी बहुत सुन्दर ऋचाओंमेंसे तथा अच्छा काव्य है। नदियोंके भी दिलको हिला देने वाली कविता वसिष्ठने नहीं विश्वामित्रने ही की थी। इसके कुछ अग निम्न प्रकार हैं— ^{१८}(३।३३)

विश्वामित्र—“विपाश् और शुतुद्री जल-सहित पर्वतोंके पाससे वन्धन-मुक्त घोड़ियोंकी तरह अट्टहास करती बछड़ोंके चाटनेकी इच्छावाली गुभ्र गौ-माताओंकी तरह नमुद्रकी ओर दीड रही है ।” ॥१॥

“हे दोनों नदियों, इन्द्र द्वारा प्रेरित, स्तुतियोंकी सुननेवाली तुम रथियोंकी तरह स्वच्छ समुद्रकी ओर जा रही हो। साथ-साथ चलती ऊर्मियोंसे बढी हुई हे शुभ्रो, दोनों पाम-पानमे चल रही हो ॥२॥

मेरे सौम्य वचनको (सुगनेके) लिए मुहूर्त भर अपनी दीड मे रुक जाओ। कुशिकका सुत विशाल नदियोंका आह्वान मैं मनकी बात के लिए कर रहा हूँ” ॥५॥

नदिषा—“वज्रहस्त इन्द्रने पर्वतका हनन कर हमारे लिए नदियोंकी परिधि छोदी। नुपाणि सवितादेव हमे ले जा रहा है। हम उमकी आज्ञामे विस्तृत होकर जा रही है” ॥६॥

विश्वा०—“ठहरो वहनो, (उम) कवि की बात सुनो, जो कि दूरने वैलके रथ पर आया है। थोडा नीची होकर मुपारा हो और (रथके) अक्षमे नीचेके जलवाली नदी वन जाओ” ॥९॥

नदिषा—“कवि, दूरने वनमुरथ द्वारा आये तेरे वचनको हम सुनती है। दूध पिलानेकी इच्छा वाली स्त्री, या पुरुषके लिए युवतीकी तरह हम तेरे लिए निम्न हो जाती है” ॥१०॥

विश्वा०—“प्यारियों, यदि नगाममे गावोंके इच्छुक तथा इन्द्र-प्रेरित भरत तुम्हें तर जाये, तो इनके लिए मैं तुम्हें यज्ञ-योग्य मानकर स्तुति करूँगा” ॥११॥ गो-इच्छुक भरत लोग (नदी) पार हो गये। विप्रने नदियोंकी मुन्दर स्तुति की ॥१२॥

विश्वामित्रने नुदासको बडा किया, मित्व् (नदी) को न्मिन्न किया “(३।५।३।९) और नुदानके पीछेकी विजयोंमें बड़ी नहायता की। अपने नमकालीन दोनों ऋषियोंकी तरह इनका भी एक मोटो था, जिसे इनकी अनेक रचनाओंमें” (३।१।२३, ३।७।११, ३।१५।७, ३।२।१।५, ३।२३।५) दोहराया गया है—“न्यात्र मूनुम्नयो विजावा ब्रम्मे सा ते

सुमतिर्भूत्वस्मे”, जिसके अनुसार वह पुत्र-पौत्रोको सतान और सुमति (मुस्तुति) वाले होनेकी प्रार्थना करते थे।^{११} (३।३०।२२)। उनको विश्वास था कि “विश्वामित्रका यह वचन भारत जनकी रक्षा करेगा।”^{१२} (३।५३।१२)।

तीन सौ गायोके बदले वैचकर मारनेके लिए तलवार उठाए अपने पिता अजीगर्तको छोड़कर शुन शेषने किस तरह विश्वामित्रका पुत्र बनना स्वीकार किया, इसका उल्लेख हम पहले कर आए हैं। वामदेव यद्यपि गोतमके पुत्र थे, लेकिन ऐतरेय ब्राह्मणसे मालूम होता है, कि विश्वामित्रके सूक्तोका उन्होंने प्रसार किया (ऐ० ६।४।१८)। ऐतरेयके अनुसार विश्वामित्र सवका मित्र था (६।४।२०), लेकिन बड़े-बड़े युद्धोका समर्थक कैसे सवका मित्र हो सकता था? हाँ, शुन शेषकी प्राणरक्षा जिस तरह विश्वामित्रके कारण हुई थी, उससे मालूम होता है, कि नर-बलिको वह मान्य नहीं समझते थे। विश्वामित्रके सौ पुत्रोकी बात सदेहास्पद है। हो सकता है, इसमे उनके पुत्रो, पौत्रो और प्रपौत्रोको भी गिन लिया गया हो। पर मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु और ऋत ऋषि उनके पुत्र मालूम होते हैं। पौत्रोमें मधुच्छन्दाके पुत्र अघमर्षण और जेता तथा ऋतके पुत्र उत्कील भी ऋषि हैं। ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—“विश्वामित्रके सौ पुत्र थे। ५० मधुच्छन्दा से बड़े और ५० छोटे। (शुन शेषका गोद लिया जाना) बडोको अच्छा नहीं लगा। तव विश्वामित्रने उनको शाप दिया—‘तुम्हारी सन्तान अभक्ष्यभक्षी हो जाए।’ इस प्रकार आन्ध्र, पुड्र, शबर, पुलिंद आदि दस्यु लोग विश्वामित्रकी सन्तान हैं। लेकिन मधुच्छन्दा और उसके पचाम भाइयोने कहा—“हमारे पिता जो कुछ कहेंगे, हम उसीको मानेंगे। हम तुझ (शुन शेष) को ज्येष्ठ मानते हैं। हम तेरा अनुसरण करेंगे। विश्वामित्र इस उत्तरमे प्रसन्न हो गये। उन्होने निम्न मन्त्रोसे पुत्रोके लिए स्तुति की—

मेरे पुत्रो तुम पशु और सन्तानमे फूलो-फलो।

तुमने मेरा कहा मानकर-मुझे पुत्रवान् बनाया।

हे गाधिकी मन्तानो, देवरातके मरक्षण मे तुम पुत्रवान् होगे

वह तुमको मृत्युके मार्गपर ले चलेगा ।

हे कुशिक-सन्तानो, वीर देवरातके अनुचर बनो ।

यह तुम्हारा पथ-प्रदर्शक और हमारी विद्याका दायभागी होगा ।

विश्वामित्रके सब सच्चे पुत्र और गायी के पीत्र जो देवरातके नाथ हुए, उनको धन, यज्ञ और कीर्तिकी प्राप्ति होगी ।” (७।३।१८)

यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मणने शुन शेषको देवरात वैश्वामित्र प्रस्थापित करनेकी कोशिश की है, पर ऋग्वेदके ऋषि शुन शेष आजीर्गर्तके नामने ही प्रसिद्ध है ।

४ वामदेव

गोतमके पुत्र वामदेव शायद वमिष्ठ, विश्वामित्रकी अगली पीढीके ऋषि थे, पर उनकी प्रतिष्ठा इन तीन महान् ऋषियोंमें कम नहीं है । विश्वामित्रके मूक्तोका वामदेवने प्रसार किया, इने हम अभी बतला आए हैं । अपनी ऋचामे वामदेवने “गोतमात्पितु”^१ (गोतम पिता मे ४।४।११) और “मामतेय”^२ (ममताका पुत्र ४।४।१३) का उल्लेख किया है, जिनमे वामदेवके पिताका नाम गोतम नामनेय जान पड़ता है । वामदेवने कही नाम और कही बिना नाम दिग् दिवोदान और उनके पुत्र सुदासकी भफल्ताओंका वर्णन किया है । अनिधिग्व दिवोदानने मी पुर जीते^३ (४।२६।३) । ये मी पुर (किले) आयनी थे^४ (४।२७।१) । दिवोदानके लिए मी अश्मन्मयो पुर उन्द्रने जीते^५ (४।३०।२०) । युद्धमे ३० हजार दाम नूँछिन हुए । पन्थी (भरतोकी नदी रावी) पर उन्द्रने कृपा की^६ (४।२१।२) । इन स्थलों पर वामदेवने भरतां और उनके राजाकी महिमा गाई है । महदेवशुन कुमार तामर, (४।१५।७-९), नृजयोका राजा देववात, वैदयो अजिष्वा, आर्जनेय कुन्म इन राजाओंकी भी वामदेवने प्रशंसा की है । ही नरता है, इनमेंने कुछ उनके स्मकालीन और दाता हो । ५० हजार कृणो (फाले अनुगे) के मारे जानेका भी उल्लेख वामदेवने किया है^७ (४।१६।१३) । अमिती (चनाव) का भी

उल्लेख उनकी ऋचा ^{३१}(४।१७।१५) में हुआ है। इनके समय आर्योंमें यह मशहूर था, कि, प्रातःकालकी देवी उषा जब आकाश में गमन कर रही थी, तो विपाश् (व्यास) नदीके तीर उसका शकट गिर गया ^{३२}(४।३०।११)। दामो मे कौलितर शम्बरका उल्लेख इन्होंने किया है ^{३३}(४।३०।१४-१५)। तुर्वश और यदु दोनो प्रभावशाली आर्यजनोका भी उल्लेख हैं। “कृपतु लागल” (४।५७।४), “मीता सुफला” (४।५७।६-७), “फाल” ^{३४}(४।५७।८), हलके जोतने, हलकी हराइयोके सुफल होने और हलके फालोका जिक्र करके वामदेवने आर्योंमे कृपिके प्रचारका उल्लेख किया है। मुस्कुराती हुई सुन्दर स्त्रियाँ ^{३५}(योषा कल्याण्य स्मयमाना ४।५८।८) में उन्होंने सुन्दरियोका उल्लेख क्या है। वामदेव और नोवाके पिता गोतम और पितामह रूहगण थे। वामदेवके पुत्रोमे मूर्धन्वा, वृहद्विव और वृहदुक्थ ऋपियोका नाम मिलता है।

६२ अन्य ऋषि

५. गृत्समद

यह शौनकके पुत्र थे। शौनकके तीरपर उल्लेख इनका ^{३६}(१।८६।४६-४८) हुआ है। शायद यह अत्रिके वंशज थे। ^{३७}(२-८-५) दिवोदास और शम्बरके सघर्षका इन्होंने भी उल्लेख किया है। दिवोदासने ९९ पुरो (किलो) को जीता ^{३८}(२।१९।६), शम्बरकी सौ पुरियाँ ध्वस्त हुईं ^{३९}(२।१४।६-७), शत्रु कृष्णयोनि (काली जातियाँ, दास) थे ^{४०}(२।२०।७)। शम्बरके अतिरिक्त स्वस्न, शुष्ण, अशुष, व्यस, पिप्रु, नमुचि ^{४१}(२।१४।५), चुमुरि, धुनि ^{४२}(२।१५।९), कुयव ^{४३}(५४।२।१९।६) जैसे दास-राजाओका भी इन्होंने उल्लेख किया है। “पहाडके चामी शम्बरको चालीसवें वर्षमें पकड़ा, ^{४४}(२।१२।११) यह उल्लेख वामदेवने किया है, अर्थात् चालीस वर्ष तक पराक्रमी शम्बर आर्योंके हाथ नहीं आया था। भेडके ऊनीवस्त्रमें छाने हुए मोम कलशोमे रखे है ^{४५}(“सोमो मेप्य पुनान कलशेषु

सीदति" १।८६।४७) के कथनसे मालूम होता है, कि सोमको पीम और घोलकर ऊनी कपडेके छत्रेमें छानकर कलशोमे रक्खा जाता था।

६ कक्षीवान्

यह दीर्घतमा औचय्यके पुत्र थे। पीछेकी परम्परा बतलाती है, कि दीर्घतमा और गोतम एक ही व्यक्तिका नाम है। कक्षीवान्ने गोतमका उल्लेख ^{५०}(१।११६।९) किया है, पर उममे यह नही मालूम होता, कि गोतमका इनमे पैतृक सम्बन्ध था। भरद्वाजका इन्होंने दो बार और अत्रिका दो बार उल्लेख किया, पर उसमे इन्हें भरद्वाज या अत्रिके वंशका नही कहा जा सकता। दिवोदामका इन्होंने भी उल्लेख ^{५१}(१।११६।१५, १६, १८, में) किया है। मौ पतवारोवाली नौका ("नौ गतारिया) ^{५२}(१।११६।५) का इनका उल्लेख बतलाता है, कि ममुद्रगामी पोत उम वक्त सप्तसिन्धुमें भी देखे जा सकते थे। विष्पला (१।११७।७, ११) घोषा ^{५३}(१।११७।७, ११) जैसी मेधाविनी आर्य महिलाओका भी उल्लेख इन्होंने किया है। सिन्धुतटवामी राजा, भाव्यने पुरोहितको बहुत-सा दान दिया था ^{५४}(१।१२६।१-४, ७)। इसमे शायद कक्षीवान्को भी कुछ प्राप्त हुआ। गन्वारकी भेडो ("गन्वारी अश्विका" (१।१२६।७) के उल्लेखमे मालूम होता है, कि वर्तमान पल्लूनिस्तान की भेडें अपने कोमल ऊनके लिए उम समय भी प्रसिद्ध हो चुकी थी। गोतम और दीर्घतमा यदि एक ही होते, तो गोतमके पुत्र वामदेव और नोषाके माय इनका भी नाम आना चाहिए था।

७. अगस्त्य

मित्र-वरुणके पुत्र तथा वमिष्ठके भाई अगस्त्य ऋग्वेदके २६ सूक्तोंके रचयिता हैं। इनकी रचनायें प्रथम मण्डलके १६५-१९१ सूक्तोंमें आती हैं। अपनी ऋचाओंमें वमिष्ठका इन्होंने उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि अपनी पत्नी लोपामुद्रा ^{५५}(१।१७९।४) का नाम दिया है। प्रसिद्ध आर्यमहिला विष्पला ^{५६}(१।१८२।१) का इन्होंने जिक्र किया

है और तुर्वश-यदु आर्यजनो का भी ६४ (११७ १९), पर उनके सघर्षों के बारे में कुछ नहीं कहा है। तुर्वश-यदु आदिके साथ सुदासका जो दाशराज्ययुद्ध हुआ था, उसके सारथी यदि इनके सगे भाई वसिष्ठ थे, तो उसकी कुछ प्रतिव्वनि अगस्त्यकी रचनाओंमें आनी चाहिए थी, पर उसका पता नहीं लगता। करम्भ (सत्तू) तथा लाभकारी तृण, शर, कुशर, दर्म और मूजका इन्होंने जिक्र किया है^{११} (११८७।१०, ११९-१।३)। अगस्त्यके नाम पर जो कथाये पुराणोंमें मिलती हैं, उनका ऋचाओमें कहीं भी आभास नहीं मिलता। वह पर्वतोंके गुरु थे, अन्तिम जीवनमें दक्षिणापथको चले गए, इसका भी कहीं पता नहीं है। उल्टे यह "पचक्षिति" (आर्योंके पाँच जनो) में चिपके रहनेवाले मालूम होते हैं^{१२} (११७६।३)।

८. दीर्घतमा

उच्य के पुत्र दीर्घतमा २५ सूक्तों के कर्ता है। अच्य^{१३} (११५८।२,४) और मामतेय दीर्घतमा^{१४} (११५८।१) के उल्लेख में मालूम होता है, कि इनके माता-पिता का नाम उच्य और ममता था। दासी का उल्लेख इन्होंने भी किया है^{१५} (११५८।५)। वीरो का उल्लेख करना^{१६} (११४०।१२) बतलाता है, कि इन्हें भी युद्ध में दिलचस्पी थी। घाँडे के पक्व सुगन्धित मास^{१७} ("वाजिन पक्व सुरभि मामम्" ११६२।१२) से पता लगता है, कि घोड़े का मांस खाया जाता था। यज्ञ में मारे गए घोड़े के बारे में ये कहते हैं "न म्रियते वाजी"^{१८} (घोडा नहीं मरता ११६२।१)

९. गोतम

रूग्ण के पुत्र गोतम वीमेक सूक्तों (प्रथम मण्डल ७४९३)^{१९} (१७८।५।७४)^{२०} (११८०।१६)^{२१} (१८३।४।५)^{२२} (१८४।१,१८)^{२३} (१।३।१।२२),^{२४} (१।९३।४) के कर्ता है।

१० मेधातिथि

कण्व के पुत्र मेधातिथि २० सूक्तों के कर्ता हैं। अपने खानदान वालों को "कण्व लोग" (कण्वास) के तौर पर इन्होंने याद किया है" (१।१४।२,५)। आर्जुनेय कुत्स का आभार इनके ऊपर था" (८।३।१६)। इनको मेघ्यातिथि भी कहा जाता है" (८।१।८,११)। मेधातिथि के पिता कण्व, पितामह घोर और प्रपितामह अगिरा थे।

११ श्यावाश्व

१५ सूक्तों के कर्ता अग्नि के पुत्र (या सन्तान) श्यावाश्व भी प्रसिद्ध ऋषि हैं। इन्होंने मुन्दर दान देने वाले अर्हत्" (५।५२।५) शब्द का प्रयोग किया है। उस समय अर्हत् शब्द का मुक्त-पुरुष अर्थ नहीं लिया जाता था, जैसा कि पीछे वीद्वो और जैनों में हुआ। सप्तमिन्वु के भूगोल के जानने में इनकी ऋचाएँ बड़ी काम की हैं। इन्होंने सप्तमिन्वु के पूर्वी छोर पर बहती यमुना" ((५।५२।१७) का उल्लेख किया है। उसके सबसे पश्चिम में बहने वाली कुभा (कावुल), ऋमु (कुरंम), मिन्वु (मिन्व) और सरयू (मिन्वु के पश्चिम की कोई नदी) का भी जिक्र किया है। एक जगह मुदान का भी नाम लिया है" (५।५३।२)। अग्नि के वगजों में ये सबसे बड़े ऋषि थे।

१२ कुत्स

१५ सूक्तों के कर्ता यह अगिरा के पुत्र (या सन्तान) थे। इन्होंने अपनी ऋचाओं में कुत्सका उल्लेख कई जगहों पर किया है" (१।१०४।२, १।१०६।६)। अर्हत् (१।१९५।१) का, दान-राजाओं में गुप्ता, पिप्रु, वृथ और शम्बर का भी उल्लेख किया है" (१।१०३।८)। कहा है, कुत्स अनुर की दो स्त्रियाँ थी" (१।१०४।३)।

१३ मघुच्छन्दा

विन्वामित्र के पुत्र तथा अपने पिता के भक्त मघुच्छन्दा दस सूक्तों के कर्ता हैं। मुष्टिहत्या" (१।८।२) का उल्लेख इन्होंने किया है और

स्वादिष्ट और मदिष्ट सोमका भी^१ (१।१।१)। इनके पुत्रों में जेता और अघमर्षण दो ऋषि हुए हैं, जो एक-एक सूक्तों के रचयिता हैं।

१४ प्रस्कण्व

कण्व के पुत्र इस ऋषि ने दस सूक्त रचे हैं। अपनी ऋचाओं में इन्होंने कण्व का उल्लेख आधे दर्जन से अधिक स्थलों में किया है। अग्नि, अगिरा जैसे ऋषियों तथा तुर्वश पक्व जनो का भी उल्लेख किया है। इनके उल्लिखित दशव्रज और गोशय सम्भवतः सप्तसिन्धु के पश्चिमोत्तरी भाग में कोई स्थान थे। "सिन्धूना तीर्थे"^२ (सिन्धुओं के घाट पर १।४६।८) के कहने से हम सिन्धु नदी का नाम नहीं ले सकते, क्योंकि उस समय सिन्धु शब्द नदी का भी पर्याय था। प्रस्कण्व घोड़े, भेड़, आदमी, नारी और गाय की मंगल कामना करते हैं—“श न करत्यर्वते मेपामेप्ये नृम्यो नारिम्यो गवे”^३ (१।४७।६)। सुदास और तुर्वश-जन का जिक्र इन्होंने किया है। तुर्वशों और यदुओं के कण्व और प्रस्कण्व पुरोहित थे, जिनका खूनी सघर्ष सुदास के साथ हुआ था। मुमकिन है पिता-पुत्रों ने अपने यजमानों की विजय के लिए इन्द्र में कामना की हो, पर विजय उनके शत्रु सुदास की हुई, इसलिए उन ऋचाओं के संग्रह करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

दस और उसके ऊपर सूक्तों के कर्ता ऋषियों के बारे में हमने यहाँ कहा। ऋषियों की संख्या साढ़े-तीन सौ से ऊपर है, यह हम वतला आये हैं। अन्य ऋषियों में शुन शेष अजीगर्त-पुत्र, पराशर शक्ति-पुत्र और अग्नि नी-नौ सूक्तों के रचयिता हैं। वसिष्ठ के पोते पराशर सप्तसिन्धु के ऋषि थे, उन्हें कुरु-पंचाल काल में नहीं लाया जा सकता। मेघातिथि के पिता तथा घोर के पुत्र काण्व, एव मरीचि के पुत्र कश्यप आठ-आठ सूक्तों के रचयिता हैं। सोभरि कण्व, प्रगाथ काण्व और जमदग्नि ने पाँच-पाँच सूक्त रचे हैं। ऋषियों में एक अपाला आर्यनारी भी है, जिसका एक सूक्त ऋग्वेद (८।८०) में मिलता है। प्रार्थना करने पर देवताओं ने

इसके चर्मरोग को हटाकर इसे सूरज जैमी चमड़े वाली बना दिया। आर्यनारियो मे पतियो से द्वेष करने वाली भी थी, इसका उल्लेख अपाला ने किया है ^{१९}(८।८०।४)। बुद्ध के उल्लेख किए दस ऋषियो में विश्वामित्र-पुत्र अष्टक का सिर्फ एक सूक्त (१०।१०४) मिलता है, जिसमें सप्तमिन्वु की सात नदियो, नौ शाखा नदियो और नव्वे नालो का उल्लेख किया गया है--“सप्तापो नवति न्रोत्या नव च स्रवन्ती”^{२०} (१०।१०४।८)। कई ऋषियो के पूर्वज वरुण-पुत्र भृगु, इपीरथ-पुत्र कुशिक के एक-एक सूक्त मिलते हैं और कण्व-वज्र वत्स का भी एक सूक्त है। सप्तसिन्वु से १८-१९ षताब्दियो बाद वत्स की वास्तविक स्थिति का कितना अज्ञान हो गया था, इसका पता हमे “हर्षचरत” मे वर्णित वत्स के जन्म आदि के बारे मे वाण के कथन मे मालूम होता है।

अध्याय ६

दस्यु

§१ सिन्धु-जाति (पणि)

सिन्धु-उपत्यकामें प्रवेश करनेके समय जिस जातिसे घुमन्तू आर्य घोड़-सवारोका मुकाबला हुआ था, वह वस्तुतः सिन्धु-उपत्यकाकी बहुत सस्कृत जाति थी, जिसके नगरोके अवशेष मोहनजोडरो, हड़प्पामें तथा जिसकी सस्कृतिके चिह्न दक्षिणमें गुजरात और पूर्वमें यमुना-उपत्यका तक मिले हैं। यदि वह पूर्वमें और दूर तक मिले तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पर, ऋग्वेदिक ऋषि अपने जिन भयकर प्रतिद्वन्द्वियोका उल्लेख करते हैं, वे मैदानके सिन्धु-सस्कृतिवाले—द्रविड—नहीं थे, बल्कि वे पहाडोंमें रहते थे। उनके किले (पुर्) पत्थरोके बने (अश्मन्मय) होते थे। इन किलोके तोडनेमें आर्योंको लोहेके चने चवाने पडे। सिन्धु-जाति के साथ आर्योंके सघर्षका समय ई० पू० १,५०० और पत्थरोंके किलोको तोडनेका समय अर्थात् ऋग्वेदके प्राचीनतम ऋषियोंका काल, उससे तीन सौ वर्ष बाद है, जबकि मण्डूक-प्लुति (गेंढककुदान) करके नहीं, बल्कि तर्प-गतिसे क्रमशः बढ़ते हुए आर्य सारे सप्तसिन्धु (जमुनासे सिन्धु पारकी भूमि) तक फैल गये। मोहनजोडरो और हड़प्पा जैसे ताम्र-युगीन भव्य नगरोके विजेता होनेपर भी आर्य घुमन्तू उनमें बसनेके लिए तैयार नहीं हुए। ये गी, अश्व चराने वाले लोग धरोके झुण्डो या ग्रामोमें रहते थे। उनके ग्राम स्थायी नहीं थे। जिन लोगोकी जीविका गायो-बोडो, अज-अवि (भेड-बकरियों) के पालन पर निर्भर हो, तथा जिनको घाना और करम्भ (सत्तू)के लिए थोड़े-मे जीकी जरूरत हो, वह एक जगह सालभर ठहरनेके लिए कैमै तैयार हो सकते थे ?

ये भी मध्य-एसियामे शक, हूण, अवार और तुर्क घुमन्तुओंकी तरह घोड़ेके वालोके तम्बुओमे ही अपना गुजर-बसर करते। लेकिन उसमें सबसे बड़ी बाधा भारतकी वर्षा थी, जिसके लिए घास-फूसकी झोपड़ियाँ अधिक अनुकूल और मस्ती थी।

मिन्वु-जातिके लोगोकी मुठभेड़ आयोंके साथ पहले हुई। यह निश्चय है, कि उन लोगोने आसानीमे हथियार नहीं रखा होगा। पर, ऋग्वेदके कालमें वे मुख्य प्रतिद्वन्द्वी नहीं थे। आर्य मिन्वु-जाति और अपने पहाड़ी दोनो प्रतिद्वन्द्वियोंको कृष्ण (काला) या कृष्णयोनि और अपने 'मभी प्रतिद्वन्द्वियोंको दास या दस्यु कहते थे। एक थोडा-सा भेद जरूर मिलता है। प्रतिद्वन्द्वियोंमे पणि प्रतिद्वन्द्वी नहीं, बल्कि दुधार गायें थे जो अपने धनके लिए बहुत पमिद्ध थे। उनके पास भी बहुत गायें थी। कभी-कभी उनसे झड़प भी होती थी, लेकिन वह ऐसी नहीं होती, जिसके लिए आर्य अधिक चिन्तित होते। मिन्वु-जातिके प्रतिनिधि यही पणि थे।

पणि-पणिसे ही पणन (वेचना), पण्य (विशेष वस्तु), आपण (बाजार) और वणिक (वनिया) शब्दोंका सम्बन्ध है। यह नाम शासनमे वचित पर श्रेष्ठतर मन्त्रितिके धनी मिन्वु जातिके लिए अधिक उपयुक्त था। राज्यमे वचित होनेके बाद दासतामे वचे लोग कृषि और वाणिज्यमे ही अपनी जीविका कमा सकते थे, जिनमें वाणिज्य अधिक लाभदायक था। ऋग्वेदमें पणियोंका उल्लेख बहुत स्थानोंमें है। इनका विक्र करने वालोंमें भरद्वाज, वसिष्ठ, दीर्घतमा औचव्य, गोतम, राष्ट्रग, गृत्समद, हिरण्यरूप, अनितदेव, जैसे प्रसिद्ध ऋषि हैं। मंत्रमे वृद्ध भरद्वाजका कहना है, कि अग्नि पणियोंके धनको हरण करता है' (६।१३।३)। कुन्सका पणियोंनि शगडा हुआ था, जिनके बारेमें भरद्वाज कहते हैं (६।२०।४) इन्द्र, तुम्हारे कृपापान वपि (कुत्त)मे नैकडो पणि भाग गये। अथ ऋषि देवल नीताजोनि ही पणियोंका धन हरण नहीं करते थे, बल्कि उनको प्रभावित करते भी राम निकालना चाहते थे। भरद्वाजने ही कहा है' (६।१३।३) हे पृथा, न देनेरी इच्छा करने वाले हो दान करनेके लिए प्रेरित करो, पणिके मनसो मृदु

करो। फिर कहते हैं^१ (६।५३।५) पणियोंके हृदयको फाड़ दो, हमारे वसमें कर दो, आरासे पणिके हृदयको छेद दो। भरद्वाजके समकालीन ऋषि वसिष्ठ भी पणियोंके साथ शाम-दाम दोनों नीतिके पक्षपाती थे। वह कहते हैं^२ (७।९।२) सुयज्ञ अग्निने पणियोंका दरवाजा खोला। पणि श्रद्धाहीन अयज्ञ वक्वासी हिंसावादी है। उन दस्युओंको अग्नि दूर करता है^३ (७।६।३)। इमी कालके ऋषि उच्य-पुत्र दीर्घतमाका कहना था^४ (१।१५।१।९) हे मित्रावरुण, सिन्धुओने तुम्हारे देवत्वको नहीं पाया और न पणियोने। पीछेकी परम्पराके अनुसार दीर्घतमा ही अन्वे-मे आँसु-वाले होनेके बाद गोतमके नाममे प्रसिद्ध हुए, परन्तु यह ऋग्वेदके प्रतिकूल है। दीर्घतमा उच्यके पुत्र थे और गोतम राहूगण के। इन दोनोंके सूक्त भी अलग-अलग हैं। गोतम की भी दृष्टि पणियोंके गायो के ऊपर थी^५ (१।९३।४) हे अग्नि-सोम, तुम दोनोंने पराक्रमसे पणिमे गायें छीनीं। अपने शत्रुओंकी गायो या धनका अपहरण करना, मुपना (चुराना) आयों और उनके देवताओंके लिए कोई दुरी बात नहीं थी।

यही नहीं, ऋषि गृत्समद^६ (२।२४।६)के कहनेके अनुसार अत्यन्त गुह्य (गुहा)-स्थानोमे निहित पणियोंकी निधिको भी आर्य ज्ञानियोने प्राप्त किया था। पणि धनी होनेके साथ अदित्सु (देनेके अनिच्छुक) हो, यह कोई नई बात नहीं थी। वनियोंके स्वभावके अनुसार वह कुछ अधिक कञ्जूस होते थे, जो अतिथि-सेवी अर्ध-धुमन्तू आर्योंकी प्रकृतिके विरुद्ध बात थी। हिरण्यस्तूप^७ (१।३३।३) इन्द्रको पणियोंकी मनोवृत्ति न धारण करनेकी प्रार्थना करते हैं—हे इन्द्र, बहुत-सा धन देते पणि मत होना, हमसे अधिक लाभ नहीं चाहना। पणियोंके लिए भी "वनिया अपने घापका नहीं होता" वाली कहावत थी। कक्षीवान्^८ (१।१२४।१०) चाहते हैं, कि पणि बिना जागे ही सोये रहें। पणियोंके धन और गायकी अभिलाषा-हरेक आर्य करता था, इसलिए उनका मोये रहना अपहारकोके लिए अनुकूल था। सवरण^९ (५।३४।७) के अनुसार इन्द्र पणियोंसे अन्न मुपने (चुराने)के लिए जाते हैं और यजमानोमे वाँटते हैं।

ऋजिश्वा" (६।५।१।१४)के कहनेके मुताबिक भोजन-सम्पन्न पणिको
 म नष्ट करे, क्योंकि वह वृक (भेडिया) है। असित देवल" (१।२२।७)
 मने प्रार्थना करते हैं, कि तुम पणियोंसे वसु (घन) और गायोंको
 लो। दिवोदाम-पुत्र परक्षेपके सुपुत्र अनानत सोमने प्रार्थना करते हैं"
 (१।११।१।२) तुमने पणियोंके घनको हथियाया।

वसु किसी राजामे कहते हैं" (१०।६०।६) राजन् दो लाल घोड़ोंको
 ममें जोड़ो और दान न देने वाले सारे पणियोंपर आक्रमण करो। शयु
 " (६।४५।३१) के समय पणियोंका मर्दार वसु गगाके विस्तृत कछारकी
 तरह ऊँचे स्थानपर रहता था। वसु जानता था, कि पणियोंपर गजब
 ढोनेकी प्रेरणा यही ऋषि देते हैं, इसलिए उनमें वृहस्पति-पुत्र शयुके साथ
 ऐसी उदारता दिखलाई कि वह मगन हो वसुकी प्रशंसा करने लगे"
 (७।४५।३१-३३)। वसु जिन भूमिमें रहता था, वही गगाकी कछारकी
 तरह ही विस्तृत नहीं थी, बल्कि उसका हृदय भी उतना ही विशाल था।
 उनमें वायुके वेग से धावित होते हजार गायोंका भारी दान तुरन्त किया।
 शायद शयु ही उसकी उदारतासे लाभान्वित नहीं थे, बल्कि अनेक कारु
 (कवि, ऋषि) हजारों गावें देने वाले, हजारों प्रशंसाके पात्र वसुका
 यशोगान करते थे।

पणियोंके साथ आयोंके सम्बन्धके बारेमें ऋग्वेदके दनवे मण्डलमें एक
 पूरा सूक्त" (१०।१०८) है, जिसमें पणि और सरमाका मवाद दिया
 हुआ है। सरमा देवताओंकी कुतिया थी, किन्तु यहाँ वह आयोंकी हिनापूर्ण
 लुब्धक मनोवृत्तिका प्रतिनिधित्व करती है। इन ऋचाओंके रचयिता
 (ऋषि) पणिगण और सरमाको बतलाया गया है, जिनका मतलब यही है,
 कि अमली रचयिताका नाम अज्ञान है। यह मनोरञ्जक वार्तालाप इन
 प्रकार है—

पणिगण—सरमा, क्या इच्छा करके तुम जाँ ? सरमा बहुत दूरका
 है, जिनपर मे नजर पीछे नहीं फेंकी जा सकती। हमारे पान क्या है ? कौन
 तुमने रास्तेकी नदियोंके जलको पार किया ॥१॥

सरमा—हे पणियो, मैं इन्द्रकी दूती होकर तुम्हारे निधियोकी चाह में डोलती हूँ। तुमने बहुत सग्रह किया, इसके लिए आई। जलने मुझे वचाया, मैं नदियो के जलको पार करती हुई आई ॥२॥

पणि—सरमा, कैसा इन्द्र है, जिसकी दूती होकर तुम दूरसे आयी ? वह इन्द्र आवे, हम उसे मित्र मानेंगे। वह गायोको लेकर हमारा गोपति बने ॥३॥

सरमा—मैं नहीं जानती (कौन है) जो उसे हरा सकते हैं, जिसकी कि दूती बनकर मैं दूरसे आयी हूँ। गहरी नदियाँ भी उसको नहीं रोक सकती। हे पणियो, उस इन्द्र द्वारा निहत होकर तुम सो जाओगे ॥४॥

पणि—हे सुभगे सरमा, आकाशके अन्तिम भागसे जिनकी इच्छा करती आई हो, उन गायोको बिना युद्धके कौन छीन सकता है ? हमारे आयुध तीक्ष्ण हैं ॥५॥

सरमा—पणियो, तुम्हारे वचन सैनिकोके से नहीं हैं, तुम्हारे शरीर पापी है। आनेका मार्ग अप्रचलित है। कही बृहस्पति तुम्हें सकटापन्न न कर दे ॥६॥

पणि—सरमा, हमारी निधि पर्वतोंसे सुरक्षित, घोडो, अश्वो, गायो और वसुओ (धनो)से पूर्ण है। सुरक्षक पणि उसकी रक्षा करते हैं। हमारे स्थानमें तुम व्यर्थ ही आई ॥७॥

सरमा—यहाँ सोममें मतवाले अयास, आगिरस, नवगु जैसे ऋषि आयेगे। वह इन गायोको छीन ले जायेगे। फिर पणियो, तुम्हारा यह वचन बकना भर है ॥८॥

पणिगण—हे सरमे, देवताओने डरकर तुम्हें यहाँ भेजा। हम तुम्हें अपनी वहिन (स्वसा) बनाते हैं, तुम मत जाओ। हे सुन्दरि, हम तुम्हें गाये देंगे ॥९॥

सरमा—मैं न भ्रातृत्व जानती, न स्वसृत्व (भगिनीपन)। इन्द्र और घोर-अगिरावशी जानते हैं, जिन्होंने गायकी इच्छासे मुझे सुरक्षित भेजा, मैं आई। पणियो, यहाँसे दूर भाग जाओ ॥१०॥

पणियो यहाँसे, बहुत दूर भाग जाओ। गाये वावासे कष्ट पा रही हैं, जिन निगूढ गायोको बृहस्पति, सोम, सोम पीसनेवाले पत्यर और विप्र ऋषि प्राप्त करें।

पणि वेचारोकी उस समय क्या स्थिति थी, यह इस सवादसे स्पष्ट मालूम होता है। यह ठीक उमी दृश्य को हमारे सामने उपस्थित करता है, जो १९वीं शताब्दीके पूर्वार्ध तक मध्य-एशियाके ग्राम-नगर निवासियों की उत्तरी घुमन्तुओके सामने थी, जो कि लूटके धनको घर्माजित धन समझते थे।

१२ शम्बरीय पहाड़ी

ऋग्वेदिक आयोंके अनली शत्रु शम्बर और उसके पहाड़ी लोग थे। शम्बर दिवोदासका प्रतिद्वन्द्वी था। उनमें पहले ही उसके पहाड़ी लोगोंने आयोंके बढ़ावको रोकने के लिए सघर्ष छेडा था। इन पहाड़ियों को आय दास और दस्यु नाम से पुकारते थे। पणियो के लिये भी यह नाम इस्तेमाल होता था, जो कि सिन्धु जातिके थे। ऋग्वेदके ऋषियोंका उद्देश्य व्यवस्थित इतिहास लिखनेका नहीं था, वे कभी-कभी ही इन बातोंका जिक्र करते हैं। यह आशा नहीं रखनी चाहिए, कि वहाँ हमें सिन्धु-जाति और पर्वतीय जातिके स्पष्ट परिचायक वाक्य मिलेंगे। तो भी उस समयकी स्थिति देखनेमें बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

पणि राजनीतिक सघर्ष छोड़ चुके सिन्धु-जातिके ही लोग थे। अब लवार पहाड़ियोंने उठायी थी। शम्बरके पान मी अजेय पर्वतीय दुर्ग थे, जिनको दिवोदासने नष्ट किया। दिवोदानका जन पुरुओकी शान्ता भरत था, जेने यित्नु भी कहते थे। पठण्णी (रावी) इनकी पश्चिमी सीमा थी, जिनके नानारे तक पहुँचकर मुदासके समय एक बार पयवो (पठानो) और मरे पश्चिमी आर्यजनोंने यित्नुओकी हालत बुरी कर दी थी। पूर्वमें यित्नुओ ने सीमा पर शत्रुद्रि (सतलुज) और विपाग् (व्याण) नदियाँ थी। पश्चिममें एतो, भलाननोके पास पश्चिमी पहाड जरूर थे, लेकिन भरतोके पासमें एक कागडा ही का पहाड था। इसलिए जिन पहाड़ी जातिने आयोंको लोहके

चने चववाये, वह कागडाके पहाडोकी ही होगी। लेकिन, वहाँके आजके खश या हिन्दी-आर्य निवासियोको हम तीन हजार वर्ष पहले ताम्र-युगकी जाति नही कह सकते। तब यहाँ कौन जाति रही होगी? क्या सिन्धु-जातिके ही लोग यहाँ भी रहते थे? इन पहाडियोके लिए भी कृष्ण और कृष्णयोनि (काला) शब्द यही बतलाता है कि शायद वह भी मोहनजोडरो-हडप्पाके निवासियोके भाई-बन्द थे। लेकिन यह भिन्न जातिके थे, इसे समझना आसान हो जाता है, यदि हम ताम्र-युगके हिमालयके किरातोपर विचार करते हैं।

§३ मोन्-ख्मेर (किरात)

किसी समय सारे हिमालयमें किरात लोग बसते थे। पश्चिममें चम्पासे लेकर पूर्वमें आसामके नागा लोगोकी भूमितक और आगे बर्मा-थाई होते हिन्द-चीन तक इस जातिका पता आज भी लगता है। आजकलके विद्वान् सस्कृतके किरातोको मोन्-ख्मेरके नामसे पुकारते हैं। किर या किरात जाति का उल्लेख ऋग्वेदमें नही मिलता, पर इन पहाडोमें उस समय केवल यही जाति निवास करती थी। आज इस जातिके अवशेष या तो तिब्बतकी सीमा के पास रह गये हैं या तराईके कितने ही स्थानोमे। पश्चिमसे जितना ही पूर्व चले, उतनी ही इनकी सख्या बढती जाती है, और पूर्वी नेपालको तो आज भी किराती देश कहते हैं। किरात लोग चीनी, मगोल, तिब्बती जातिसे सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन यह सम्बन्ध बहुत दूरका है, वैसे ही जैसा हिन्दी आर्योके पश्चिमी यूरोपीयोके साथ। किरात या मोन्-ख्मेरके मुखोपर मगोलायित मुख-मुद्रा होती है, इसलिए तिब्बती सीमापर बच रहे मोन्-ख्मेरोको कितने ही विद्वान् भी तिब्बती समझ बैठते हैं, साधारण लोगोकी तो बात ही क्या?

कितने ही मोन्-ख्मेर हैं, जो अपनी भापा छोड बैठे हैं, कुछ ने अपनी मुख-मुद्रा को भी अल्पसख्यक होनेके कारण खो दिया, तो इसमें आश्चर्यकी बात नही। कितने ही अब भी अपनी भापा बोलते हैं। ये लोग हैं,

चम्बाके लाहूली, लाहूलके निम्न भागोंके निवामी कुल्लूके मलाणा गाँवके वामी, ऊपरी सतलुजके किन्नर या कनौर, माणा-नीतीके मारछा, अस्कोट (अल्मोडा)के राजी या राजकिरात, पश्चिमी नेपालके मगर, गुरग, मध्य नेपालके तमग, नेपाल उपत्यकाके नेवार, पूर्वी नेपालकी तीनो किराती जातिया—लिम्बू, याग्वा, राई—सिकिमके लेपचा, आसामके नागा आदि। गणना और महाभूतोंके कितने ही नाम इनकी बोलियोंमे तिब्बतीमे मिलते-जुलते हैं, लेकिन कितने ही शब्द इनके स्वतन्त्र हैं। पानीके पर्याय ती शब्दको ले ले। यह चम्बामे नागा पर्वतोंतक एक-सा चला गया है। नेवार लोग यद्यपि पानीके लिए इस शब्दको इस्तेमाल नहीं करते, लेकिन मामके पानीके लिए वह ला-ती (माम-जल) कहते हैं, जिसमे पता लगता है, कि ती का प्रयोग उनके यहाँ भी रहा है। बदरीनाथमे कैलासकी ओर जाते वक्त एक निर्जन पड़ावका नाम ती-पानी है। यहाँ हिन्दी और किरात दोनों भाषाओंके एक ही अर्थके वाचक दो शब्दोंको रख दिया गया है। ये जातियाँ ऐसी हैं, जो अब भी किरात-भाषा बोलती हैं, और कितने ही जगहों पर इन्हे किरात कहा भी जाता है। लेकिन कुछ किरात ऐसी भी हैं, जो अपनी भाषा छोड़कर पहाड़ी या तिब्बती भाषा बोलने लगे। तिब्बती भाषा-भाषियोंके वारेमें कहना मुश्किल है, क्योंकि दोनोंकी मुख-मुद्रामें मे कोई अन्तर नहीं है। तो भी यह हमें मालूम है कि तिब्बती लोग ईमाकी सातवी नदीके उत्तरार्धमे पश्चिमी माननरोवर और नेपालके हिमालयोंकी ओर बटे। वह यहाँके पुराने लोगोंको मोन्पा और उनके देशको मोन्-सुल (मोनदेश) कहते थे। ठाठमाण्डूमे नीचे उत्तरकी तिब्बती मीमान्तके भीतरके डलावेको आज भी मोन्-सुल कहा जाता है।

यह मोन शब्द वर्माके पुराने वाग्निन्दोंके लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। उन्हें मोन् और कम्बोटिया (कम्बुज) के रमेरको लेकर विद्वानोंने मोन्-मेर नामको गढ़ा है। जान पड़ता है, स्मितीके लोग भी पहले मोन् (किरात) थे। नगोश्रीमे ऊपर नेलगके रहने वाले भी मोन् हैं, यद्यपि वह आज मोन् (किरात) भाषा नहीं बोलते। नीलो-भाषा के तोल्छा आज

भी पहाड़ी भापा बोलते हैं, उसी तरह अल्मोडाके मिलमवाले भी । पर इनके चेहरे-मोहरे किरातोंसे हैं । ये किरातोंके ही अवशेष हैं । नेपालमें जो मोन्-पा अधिक दक्षिणमें खस भापा बोलने वाली बहुसंख्यक लोगोंमें बसे हैं, वे धीरे धीरे अपनी भापा को भूल गये ।

किरात या मोन् लोगोंकी एक शाखा हिमालयके नीचे तराईमें बसती है, जिसे थारू या भोग्ता कहते हैं । थारू लोग हरद्वार या जमुना से पश्चिम नहीं पाये जाते, पर उनके ताम्र-युगीन पूर्वज जम्मू तक रहे हों, तो कोई आश्चर्य नहीं । आज थारू नैनीतालकी तराईसे दरभंगाकी उत्तरवाली तराई तक मिलते हैं, जिनसे पूर्वके मेची, कोच आदि भी मोन् हैं । थारू लोग अपने दक्षिण वाले सबसे नजदीकी पडोसियोंकी भापा बोलते हैं—उनमें मैथिली, भोजपुरी, अवधी भापाएँ प्रचलित हैं । लेकिन उनके चेहरे पर मगोलायित मुख-मुद्रा की छाप बतलाती है, कि वे अपने दक्षिणी पडोसियोंमें से नहीं हैं ।

ऊपरके कथनसे मालूम हुआ, कि हिमालयमें मोन् या किरात जातिके लोग अब भी रहते हैं । यह अवश्य है, कि पश्चिममें उनकी संख्या कम होती गई है । इसका कारण यही है, कि वहाँ उनकी भूमिमें दूसरे लोग जबरदस्ती घुस आये । इस प्रयत्नका श्रीगणेश ऋग्वेदिक आर्योंने कागडाके पहाड़ी किरातोंके दुर्गोंको छीन कर किया । कागडा जिलेमें केवल कल्लू सब-डिवीजनकी मलाणा-उपत्यकामें किरात बोली बोलने वाला मलाणा एक बड़ा-सा गाँव है । वह भापामें जरूर किरात है, किन्तु आसपासके खसोंके समुद्रमें एक छोटा-सा द्वीप कैसे जातीय तौरपर अपनेको अछूता रख सकता था ? मिलमवाले मुख-मुद्रासे मोन् होते भापामें खस हैं, उससे उल्टे मलाणा वाले मुख-मुद्रासे खस होते भापासे मोन् हैं । खास कागडामें न अब किरात मुख-मुद्रा मिलती है, और न किरात भापाका कही पता है । लेकिन स्थानोंके नामोंमें उसका पता जरूर लगता है । वैजनाथका ऐतिहासिक मन्दिर जिम गाँवमें है, उसे यद्यपि आजकल वैजनाथ कहते हैं, किन्तु दमवी-न्यारहवीं शताब्दीके शिलालेखमें उसे किरागाम (किरातोंका ग्राम) कहा गया है । वैजनाथ तराई से बहुत दूर भीतर नहीं है ।

परुष्णो, विपाश्-शुतुद्रिके बीच भरत त्रित्सुओकी भूमिके पडोसके पहाडी कागडाके लोग ही हो सकते थे और वे उस समय किरात थे। किरात काले नहीं, कुछ पीले रङ्गके होते हैं। ऋग्वेदिक आर्योंने क्यों पणियोकी तरह इन्हें भी कृष्ण कहा, इसका कारण समझना आसान है। ऋग्वेदिक आर्य रङ्ग-रूपमें यूरोपियनोंकी तरह गोरे थे, उनके लिए यह दोनो ही काले हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

पणियोकी तरह किरात जनोके घन-वैभवन आर्योंको अपनी ओर खींचा होगा, इसकी सम्भावना कम है। उस समय यद्यपि पहाडोमे भी जगल और अच्छी चरागाहें थी, लेकिन पञ्जावकी चरागाहो और जङ्गलोका वह मुकावला नहीं कर सकती थी। तो भी आर्योंकी सख्या और उनके गो-अश्वोंकी वृद्धि ने उन्हें उत्तरकी तरफ बढ़नेके लिए मजबूर किया, फिर पशु-पाल मोनो और आर्योंका झगडा शुरू हो गया। आर्यं बलपूर्वक पहाडके नीचे रहने वाले मोनोको भगानेमें सफल हुए। यह इससे भी नावित है कि सप्तसिन्धु—जमुनामे सिन्धु पार तककी भूमि—के उत्तरकी पहाडी तराईमे कहीं भी धारू जैमी मगोलायित जाति नहीं मिलती। लेकिन इमे मोन् चुपचाप बर्दाश्त कैसे कर सकते थे? आखिर वह भी पशुपाल, घुमन्तू और लडाकू लोग थे। उन्होंने भी बदला लेने के लिए आर्यग्रामोपर आक्रमण शुरू किया होगा। अब आर्य आगे बढ़े बिना रह नहीं सकते थे। फिर मोनोते पहाडी दुर्गोनि यही शस्त्र युद्ध था, जिमने उन्हें पाला पडा।

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

प्रागैतिहासिक काल होते भी ऋग्वेदके आदिम ऋपियो—भरद्वाज, विश्वामित्र, वसिष्ठ—के समकालीन राजाओ दिवोदास और उसके पुत्र सुदासके समयमें पहुँचकर हम देश-कालके बारेमें कल्पनामें टंगे नहीं रहते। भीतरी और उससे भी अधिक बाहरी हिन्दू-युरोपीय जातियोकी भाषा और दूसरी सामग्रियोके आधार पर आर्योंके सिन्धु-उपत्यकामें दाखिल होनेका समय ई० पू० १५०० ठीक मालूम होता है। ऋग्वेदके ऋपि इस कालसे इतने बाद हुए, कि अपने प्रथम पूर्वजोके बारेमें वह बहुत कम बतला सकते हैं। ऋग्वेदके ऋपियोने अपनी ऋचायें इतिहास या ऐतिहासिक पुरुषोके अमर करनेके लिए नहीं बनाईं। वह मुख्यतः पुरोहित थे, और अपने देवताओंके रिझानेके लिए ही इन ऋचाओको उन्होने रचा था। जहाँ-तहाँ बिखरी हुई यजमानोकी प्रशंसाओसे अनुमान होता है, शायद इस तरहकी और भी ऋचायें रही हों। लेकिन, अन्तमें तो ऋचाओका लक्ष्य देवताओको प्रसन्न करना ही था, इसलिए ऋपियोके उत्तराधिकारी अपने पूर्वजोकी हर तरहकी ऋचाओके कण्ठस्थ रखनेके लिए तैयार नहीं हो सकते थे। ऋग्वेदके समकालीन राजाओ दिवोदास, असदस्यु आदिको देखनेसे उनकी दो तीन पीढियो तकका ही पता लगता है।

ऋग्वेदके सबसे पुराने पाँच जन (कवीले) थे—द्रुह्य, अनु, यदु, तुर्वश और पुरु। सम्भव है इन जनोके नाम अपने किसी पूर्वज नेताके ऊपर पडा हो। उज्वेकोकी तरह घुमन्तू जातियोमें ऐसा अकसर देखा जाता है, और सप्तसिन्धुके आर्य घुमन्तू थे। यही क्यों ? उनके ऋग्वेदकालीन उत्तराधिकारी

भी अर्ध-धुमन्तू थे, जिनके ग्राम वस्तुतः गौओं और अश्वोंके सुविधाके स्यालमें तत्कालीन उपयोगके लिए इकट्ठे बसे घरोंके समुदाय थे। वही पासमें वह कुछ जीकी खेती भी कर लिया करते थे। इन्हीं पाँचों जनोकी प्रधानता थी। इसीलिये पीछे पञ्चजन शब्द मनुष्यका पर्याय माना जाने लगा। पाँचों जनो में सबसे पूर्वमें पुरु लोग बने हुए थे। ऋग्वेदके समयमें इनकी कुशिक, भरत, तृत्सु आदि कई स्वतन्त्र शाखाएँ हो गई थी, जिनमें कुशिक जमुनाके करीब सरस्वती-उपत्यकामें बसे हुए थे। सीमान्तपर विरोधियोंका भारी डर था, इसलिए वहाँ आर्योंके वही जन टिक सकते थे, जो मर्या और बल में अधिक थे। पुरु जन ऐसा ही था। पीछे इसी पुरु जनमें कुरु पैदा हुए, जिन्होंने जमुना और गंगाकी उपत्यकाओंमें अपने प्रभुत्वका विस्तार किया, लेकिन, यह ऋग्वेदसे पीछेकी बात है।

ऋग्वेदकालीन राजाओंके पहलेके राजाओंकी ओर जब हम ध्यान देते हैं, तो पाँच ही प्रभावशाली राजा पाते हैं—मनु, पुरूरवा, नहुष, ययाति और मन्धाता। पुरूरवाका सम्बन्ध सम्भवतः पुरु जनमें था। मनुकी प्रजा होनेमें मनुष्य आदिमियोंका वाचक समझा जाता है। वेदमें नाहुषी प्रजामें मनुष्य-साधारणका अर्थ लिया जाता है, जिनमें नहुषकी विशेषता मिद्ध होती है।

१ मनु

ऋग्वेदमें मनुका नाम ३१ स्थानोंमें आया है, लेकिन उनमें में कुछ जगहोंमें वह इन प्राचीन राजाका वाचक नहीं है। वस्तुतः ऋग्वेदमें पहलेके तीन नौ अर्थके कालमें सिर्फ तीन-चार राजाओंका नाम मिथ्या राजाओंकी दुर्लभताको ही बताना है, जिनका अर्थ यह है, कि अभी राजतन्त्र नहीं जनतन्त्र का बोलबाला था। मनुका नाम लेने वाले ऋषियोंमें भरद्वाज, गोतम और कुत्स जमें अत्यन्त पुराने ऋषि हैं। वामदेव भी उगी समयके ऋषि हैं, जिन्होंने मनुका उल्लेख किया है। दिवांसकके पुत्र या वराज परुच्छेपनं भी मनुका जिक्र किया है। गृत्समद, नदापूज, कश्यप भी

उनका नाम लेते हैं। मनु देवताओके भवत थे, यह ऋचाओसे मालूम होता है, और वैसे भी समझा जा सकता है। सदापूण ऋषिके कहने^१ (५।४५।६) से मालूम होता है, कि मनुने विशिशिप्रको जीता था। यह पता नहीं लगता कि विशिशिप्र आर्य क्षत्रु था या अनार्य ? अनार्य होने पर वह उत्तरके पहाड़ो (कागडा-जम्मू)का निवासी था, या मैदानका ? पिता या पितरके तीर पर मनुका अगिरस गोत्री कुत्स और गृत्समदने उल्लेख किया है। कुत्सके कहे अनुसार^२ (१।१४।२) पिता मनुने रुद्रकी पूजा की ? गृत्समदके अनुसार^३ (२।३३।१३) पिता मनुने मरुत् देवताओकी औपधि स्वीकार की। ध्रुवस्यु वान्दन (१०।१००।५) भी मनुको "हमारे पिता" कहते हैं। भरद्वाज^४ (६।२१।११)के अनुसार अग्नि देवताने मनुको दासोके ऊपर किया। दास आर्य-भिन्न सप्तसिन्धुके या पासके पहाड़ोके, निवासी थे, यह हमे मालूम ही है, कश्यप मारीच^५ (९।९२।५) कहते हैं, कि पवमान सोम देवताने दस्युसे मनुकी रक्षा की। इन कथनोसे पता लगता है, कि दासो या दस्युओके साथके सघर्षमें सफलता प्राप्त करनेपर ही मनुकी महिमा बढी। इतना तो निश्चित ही है, कि मनु आर्योके प्रथम या सबसे अधिक प्रभावशाली राजा थे। पर उनका राज्य सप्तसिन्धुमें कहाँ था, यह कहना मुश्किल है।

२. पुरुरवा

अगिरा गोत्रीय हिरण्यस्तूप ऋषि^१ (१।३१।४) के अनुसार अग्निने मनुके लिए धौ (स्वर्ग) को बनाया, पुरुरवाके लिए सुकृत (सुकर्म, स्वर्ग) सुकृत्तर हुआ। पुरुरवा वीर था, इसका उल्लेख ऋग्वेदमें है। वह एक रङ्गीला राजा था। अप्सरा उर्वशीके साथ उसका प्रेम कुछ ऐसी रोमाञ्चक घटना थी, जिसे ऋग्वेदके सग्रहकर्ता नहीं भूल सके। यह प्रेम-गाथा वास्तविक घटना हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। पर तब उर्वशी अप्सरा नहीं मानवी होगी। हो सकता है, वह किसी ऐसे पराक्रमी जनकी कन्या रही हो, जो पुरुरवाके प्रभावको नहीं मानता था। दोनों प्रेमी हृदयोको अग्नि-परीक्षासे गुजरना पडा था। पुरुरवा अपनी प्रेमिकाके हृदय पर अधिकार

प्राप्त करनेमें सफल हुआ, लेकिन सदाके लिए नहीं। इसीका वर्णन ऋग्वेदके दसवें मण्डल^३ (७।१०।१५)में है। यह सूक्त पुरूरवा और उर्वशीके सवादके रूपमें है, और जो ऋचाये जिमके मुंहमें कहलवाई गई हैं, उनको उमीकी रचना बतलाया जाता है। यह ऋग्वेदके उन थोड़े से सूक्तोंमें है, जो बहुत सरल हैं। हम यहाँ कुछ ऋचाओंको देते हैं—

पुरूरवा—हे जाया, हे घोरे (निष्ठुर), मन इधर कर ठहर, हम आपनमें वात करे। यदि हम दोनों मत्रणा न करेंगे, तो आनेवाले दिन हमारे मुखके नहीं होंगे ॥१॥

उर्वशी—इस हमारी बातमें क्या? प्रथम उपासी मैं तेरे पान आई हूँ। हे पुरूरवा, फिर अपने घर चला जा। वायुकी तरह मैं दुर्लभ हूँ ॥२॥

पुरूरवा—तेरे बिना मेरे तूणीरमें वाण नहीं फेंका जाता, ध्री नहीं मिलती, मैकडो गायोंको मैं जीत कर नहीं ला सकता, वीरो-रहित मेरे कार्य शोभते नहीं, न (मेरे) योद्धा नाद करनेकी सोचते हैं ॥३॥

उर्वशी—हे उपा, यदि वह उर्वशी श्वमुर्को धन देनेकी इच्छा करती, तो पानके घरमें शयन-घरमें जाती और दिन-रात आराममें रहती ॥४॥ हे पुरूरवा, दिनमें तीन बार मुझे तुम दण्डसे पीटते थे। मेरा किन्ही नीतमें झगडा नहीं था। मेरे ही घरमें तुम आते थे, तब तुम हे सुवीर, मेरे (अभिन्न) अग थे ॥५॥

जब पुरूरवा पैदा हुआ, उस समय देवपत्नियाँ आईं, वहने वाली नमर्य नदियोंने उसे पालापोसा। हे पुरूरवा, भारी रणमें दन्वुओंकी हत्याके लिए देवोंने तुम्हारा मन्वर्धन किया था ॥६॥

पुरूरवा—जब पुरूरवा मानुष होकर अमानुषियोंको नेवन करनेके लिए बड़ा, तो वे हरिणीकी तरह या रथमें जाने अश्वोंकी तरह भयभीत होकर भागी ॥७॥

जब (उसने) मरणधर्मा होने अमृताओंको नम्यकं करनेके लिए उनके पान जानेका प्रयत्न किया, तो वे अन्तर्धान हो गईं। उन्होंने शरीरोंको नहीं दिग्गया, श्रींटा करने अश्वोंकी तरह भाग गईं ॥८॥

विजलीकी तरह चमक धारण करती जो उर्वशी मेरी कामनाओको पूरा करती थी, जिसने (मेरे लिए) सुजात मानुष-पुत्र जना, वह उर्वशी उसे दीर्घायु करे ॥१०॥

उर्वशी—हे पुरुरवा, तू ने रक्षाके लिए (उसे) ऐसे पैदा किया, मेरे में ओज धारण किया। जानते हुए मैंने तुझे कहा था। उस मय मेरी बात तूने नहीं सुनी, (अब) क्यों व्यर्थ बोलता है ॥११॥

पुरुरवा—पैदा हुआ पुत्र (तेरी) इच्छा करेगा। क्या जानते हुए वह आँसू नहीं गिरायेगा? स्नेहयुक्त पति-पत्नीको कौन वियुक्त करेगा? जो श्वसुरके घरमें आग जल रही है, उसे कौन बुझाएगा ॥१२॥

उर्वशी—मैं तुझे बतलाती हूँ। वह तेरे पास आँसू नहीं गिरायेगा, न रोयेगा। मैं उसका कल्याण करूँगी, उसे मैं तेरे पास भेज दूँगी। तू घर लौट जा, तू मुझे नहीं पा सकता ॥१३॥

पुरुरवा—सुदेव (पुरुरवा) आज गिरेगा, अत्यन्त दूर जाके (वह) फिर नहीं लौटेगा। वह आपदाओके नीचे दवेगा, उसे भेड़िये बलात् खा जायेंगे ॥१४॥

उर्वशी—हे पुरुरवा, तू नहीं मरे, नहीं गिरे, न अशिव भेड़िये तुझे खायें। स्त्रियोकी मित्रता नहीं हूआ करती, (उनके) ये हृदय (नहीं, वे तो) शालावृको (भेड़ियों) के (हृदय) होते हैं ॥१५॥
नाना रूपमें धूमती मैंने मनुष्योमे चार शरदो (सालो)की रात्रियाँ, वितार्ई। थोडा-सा घी एक बार दिनमे खाया, उससे ही तृप्त हो विचरण करती रही ॥१६॥

पुरुरवा—आकाशको पूरनेवाली लोकोकी विमानवाली उर्वशीकी मैं वसिष्ठ (वामेच्छुक) प्रार्थना करता हूँ, मैं सुकृतका दाता तेरे पास हूँ। (हे) लौट आ, मेरा हृदय जल रहा है ॥१७॥

उर्वशी—हे ऐल (इला - पुत्र), यह देवता तुझसे कह रहे हैं, कि तू मृत्युका बन्धु होगा। तेरी प्रजा हविसे देवोकी पूजा करेगी और तू भी स्वर्गमें सुखी होगा ॥१८॥

इस सूक्तसे पता लगता है, कि पुरूरवाने दस्युओंके युद्धमें भाग लिया था। उसकी माँ का नाम इला था। उर्वशीने उसके एक पुत्र पैदा हुआ था। महाभारत और पुराणोंमें उर्वशी और पुरूरवाकी बहुत-सी कथाएँ आती हैं, पीछेके लेखकोंने प्रयागके नामने झूमी (प्रतिष्ठान) को पुरूरवाकी राजधानी बतलाया है। लेकिन, पीछेकी परम्पराओंका ऋग्वेदमें पग-पगपर इतना विरोध है, कि जो भी उनके सहारे वेदार्थ का उपवृहण करना चाहेगा, वह दलदलमें गिरे बिना नहीं रहेगा।

३ नहुष

वमिष्ठ^८ (७।६।५)ने कहा है, कि अग्निने नहुषको प्रजाओंका बलिहूत (शुल्क पानेवाला) बनाया। इसी बातको हिरण्यस्तूप जागिरन^९ (१।३१।११) ने भी दोहराया है—देवोंने नहुषको प्रजाओं (विशो) का पति बनाया।

४ ययाति

गय प्लात ऋषि^{१०} (१०।६३।१)के कहनेसे पता लगता है, कि ययाति नहुष्य, अर्थात् नहुषका पुत्र था। हिरण्यस्तूप जागिरन^{११} (३।१।१७) में मालूम होता है, कि अग्नि देवता की तरह ययातिके पाम मनु, अगिरा आया करते थे।

५ मन्धाता

यह भी दस्युहन्ता^१ (८।३१।८) प्राचीन आर्य राजा थे। ऋग्वेदके प्राचीनतम राजाओंमें यही पाँच नाम मिलते हैं। इनका आर्य-जनोंके विरोधियोंके नायकत्व भी हुआ था, पर यह नहीं कहा जा सकता, कि मज्जिमन्धु (जमुनाने मन्धुके परले पार तकनी भूमि)के किम स्वानके ये राजा थे, और आर्योंके मन्धु-उपत्यकामें प्रवेश करने (१५०० ई० पू०) के कितने बाद हुए, तथा इनने कितने बरों या पीढ़ियों बाद ऋग्वेदके प्रसिद्ध राजा शिवाशाम और नुदान आये।

अध्याय ८

शम्बर

§१ दस्यु

आर्य अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको दास कहते थे। ऋग्वेदके समय (१२०० ई० पू०) उनके मुख्य प्रतिद्वन्द्वी पर्वतवासी दास या दस्यु थे, मैदानी दासोंसे उनको कोई खतरा नहीं था। पर्वतीय दास हिमालयके किरात थे। यह हम वतला चुके हैं, कि इन्हींको नष्ट करनेके लिए आर्य तुले हुए थे। “इन कृष्ण-योनि दासोंका इन्द्रने नाश किया” (२।२०।७)। “इन्द्रने कृष्ण चमड़े वालोंको मारा”^१ (१।१३०।८) परुच्छेपने कहा। परुच्छेप पर्वतीय दासोंके सबसे प्रतापी राजा शम्बरके विजेता दिवोदासका पुत्र था। दासोंका रूप काला बढलाया गया है। वसिष्ठ उन्हें शिश्नदेव कहते हैं^१ (७।२१।५)। शिश्नदेवका मतलब है, लिंगको देवता मानकर पूजनेवाले। पूजाके लिए पाषाण-लिंग मैदानी दासोंके प्राचीन नगरो मोहन-जोडरो और हड़प्पामें भी मिले हैं। किरातोंके ताम्र-युगीन अवशेषोंकी अभी उतनी छान-बीन नहीं हुई है। सम्भव है, उनमें भी लिंगको देवता माना जाता हो। नागको देवता तो वह मानते ही थे, जिसके बहुत से नामावशेष हिमालय में मिलते हैं। शिश्नको देवता माननेवाले पर्वतीय शत्रु आर्योंके सत्य (ऋत)को दवान दें, इसकी वसिष्ठको बड़ी चिन्ता थी। भरद्वाज शम्बर-हन्ता राजा दिवोदासके पुरोहित थे। पुरोहितका अर्थ देवताओंकी स्तुति करनेवाला, यज्ञ-सम्पादक ही नहीं था। प्रधानपुरोधा अपने राजाका प्रधानमन्त्री भी था। दिवोदास और उसके पुत्र सुदास बड़े सेनानी थे। उनका सबसे बड़ा बल

योग्य पुरोहित था। पर्वतीय शत्रुओंके शिश्नदेव होनेका उल्लेख बभ्रु वैखानस ने भी किया है* (१०।९९।३)।

अपने उत्तरी शत्रुओंके जादू और मायामे भी आय बहुत डरा करते थे। वसिष्ठ भी शतयानु (सौ जादू वाले) कहे गये हैं* (७।१८।२१)। असुर(दस्यु) बडे मायावी थे। गृत्तमदके अनुसार इन्द्रने मायावी दानवको मायामे ही गिराया* (२।११।१०-१९)। जादू और मायाका अर्थ है, उनकी चालें बडी गम्भीर होती थी, उनके पञ्जे आयोंके गले पर पहुँचे रहते थे। वह केवल मीची लडाईं नहीं लडते थे, बल्कि अपनेसे हजार वर्ष वाद पैदा होने वाले कौटिल्यके कुछ वातामे गुरु थे।

अपने शत्रुओंमें सभी दुर्गुणोंकी और अपनेमे सारे गुणोंको देखना। आज भी देखा जाता है। आयोंको शम्बरके लोग सारे दुर्गुणोंकी खान जान पडते थे। प्रजापति-पुत्र विमदके अनुसार* (१०।२२।८) वह अकर्म (दुष्कर्मा) थे, वह अमन्तु थे। वह अन्यत्रत (दूसरे धार्मिक आचारोंके माननेवाले) ही नहीं बल्कि वह अमानुष भी थे। आर्य ऋषि मनुकी सन्तान तो वह सचमुच ही नहीं थे, इसी अर्थमे उन्हें अमानुष कहा गया है। विमद गिडगिडाकर कह रहे हैं, कि दस्यु हमारे चारो ओर हैं, अमित्रोंके हननकर्ता इन्द्र, इन दामोंको मार। लेकिन, क्या सचमुच ही दस्यु आयोंको चारो ओरमे घेरे हुए थे। दक्षिणके मैदानी इलाकेके लिए वह दावेदार नहीं थे। अधिक-से-अधिक वह हिमालयके चरणपर अवस्थित तराईके जङ्गलोंमे वास्ता रखते थे, और आयोंके आनेमे पहले ही उस भूमिमें उनका बनेरा था। पञ्जाबकी तराई उतनी अस्वास्थ्यकर न रही होगी, जितनी कि गगामे पूर्व की। अपने पूर्वजोंके समयसे चली आई धरतीको यदि वह छोटना नहीं चाहते थे, तो इनमें अपराध क्या था? जब उनके भीतर आर्य पशुपाल चुन आये, तो वह उन्हें चैनमे कैमे रहने देते?

गीतामें कहा गया है "यत् करोषि यदस्नानि यज्जुहोषि ददानि यत्। यत् तपस्यसि कोन्नेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।" (जो करते हो, जो माने हो, जो हवन करते हो, जो देते हो, जो तपस्या करते हो, उन सबको हे अर्जुन,

मुझे अर्पित करो)। सब कुछ को कृष्णार्पण करनेकी बात यद्यपि यहाँ कही गई है, लेकिन ऐसा सर्व-समर्पणकर्ता गीताकी इन पक्तियोंके लिखे जानेके बाद शायद ही कोई हुआ हो। लेकिन, ऋग्वेदके ऋषि इस वचनका पूरा-पूरा पालन करते थे। गीताके लेखकके समय वेदकी ऋचाये सिर्फ रटी जाती थी, उनके अर्थोंको जाननेकी जरूरत नहीं समझी जाती थी। ऐसा न होता, तो वाण जैसे प्रतिभाशाली लोग, वचनमें वेदको पूरी तौरसे कण्ठस्थ करके भी ऋषियोंके बारेमें ऐसी बातें न करते, जो वेदके विरुद्ध हैं। इसीलिए हम यह नहीं कह सकते, कि वेदके प्रभावके कारण गीतामें सर्व-समर्पणकी बात कही गई। वेदके ऋषि अपनी सारी सफलताओंका एकमात्र कारण अपने देवताओंको समझते थे। उनके लिए असली विजेता वध्र्यश्व, कुत्स, दिवोदास, सुदास या उनके प्रधान मन्त्रदाता भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र नहीं थे। वस्तुतः सारा काम इन्द्रने किया। मानुष विजेता केवल इन्द्रके हाथके हथियार थे।

वह नियति (विधिके विधान)को भी अपनी विजयोंका श्रेय नहीं देते थे। “इन्द्रने दास वर्णको नीचा और गुमनाम किया” (गृत्समद २।१२।४)। “हे इन्द्र, धनी दस्युको मारो” (हिरण्यस्तूप १।३३।४)। “इन्द्र, दास प्रजाको अभिभूत कर” (गृत्समद २।१।४) ऋषि साधनके तौरपर आर्योंके पौरुषसे इन्कार नहीं करते थे। कण्व-पुत्र घोरके अनुसार” (१।३६।१८) अग्नि के साथ यदु और तुर्वश लोग बुलाये गए। अग्नि इसी उद्देश्यसे नववास्तु वृहद्रथ तुर्वीतिको लाये। यदु और तुर्वश आर्योंके पाँच प्रधान जनोमें बहुत अधिक शक्तिशाली थे। एक समय तक भरतो और इन दोनों महान् जनोमें आर्योंके मुखिया बननेकी होड रही। दिवोदासने इनको अपने वसमें करनेमें सफलता पाई, लेकिन उसमें बलका उतना हाथ नहीं था, जितना कि षम्बरके विरुद्ध सभी आर्योंके एक होनेकी अवश्यकताका। नववास्तु (नये निवास वाले) वृहद्रथ, तुर्वीति इन्ही दोनों जनोके उस समय नेता थे, जब वह पश्चिमसे उस भूमिमें आये, जो कि दासोंके सघर्षका मैदान बनी हुई थी। ऋषि वामदेव ने कहा है” (४।१६।१३) “इन्द्रने ५० हजार कृष्णों (कालों) को मारा। उनके दुर्गों (पुरों)को ध्वस्त किया।” यह ५० हजार कृष्ण किस

वक्त मारे गये? शायद उन्नीममय, जब कि दिवोदासने दामोका जीवन-मरणका सघर्ष चल रहा था। गृत्समदके अनुसार" (२।२०।८) "इन्द्रने दस्युओको मारकर उनके आयसी पुरोको नष्ट किया।" अयस्से यहाँ न लोहे का मतलब है, न ताँवे ही का, क्योंकि उन्ही पुरोको कितनी ही जगह अश्वन्मयी भी कहा गया है, जिसका अर्थ है पापाणमय। इन पुरियोका नष्ट करनेवाला दिवो-दाम था।

दामोमे शत्रुओंने सिर्फ पुरुष ही नहीं लडते थे, बल्कि उनकी स्त्रियाँ भी टटकर मुकाबला करती थी। आर्य अपनी स्त्रियोको हथियारबन्द नहीं करते थे। हो सगता है, मप्तमिन्वुमे १५ पीढियाँ रहनेके बाद उन्होंने परा-जित मिन्वु-जातिके लोगोके नागरिक आचार-विचारकी कितनीही बातें सीखी थी, उनमे एक यह भी थी—हमे स्त्रियोको पुम्पोकी पवित्रमे नहीं लाना चाहिए। बभ्रुकी एक ऋचा" (५।३०।९)में है—“दानने स्त्रियोको आयुध (हथियार) बनाया।” इस पर इन्द्रने कहा—“इसकी अवला मेना मेरा क्या करेगी?” स्त्रियोके लिए अवला शब्दका प्रयोग शायद यही नवने पहिले हुआ, जिसमे ध्वनित होता है, कि स्त्रियोमें योद्धा होने की योग्यता नहीं है।

ऋग्वेदके सवने पुराने ज्ञात आर्य-गामकका नाम मनु है। मनु ऋषि और विजेता था। वह ऋग्वेदने बहुत पहले हुआ था। ऋग्वेदमें शम्बर-चुद्धने पहलेके ऋषियोकी ऋचाओको जमा नहीं किया गया है। तो भी वनिष्ठके पुत्र शक्तिके मुत गौरिवीतिके अनुसार" (१०।७३।७) मनु ऋषि थे—“ऋषि मनुके लिए इन्द्रने दान नमुचिको मारा।” नमुचि शायद शम्बरका पूर्वज पहाडी राजा था। पीछेकी परम्परा इसका सम्बन्ध शम्बरने ही बन-लानी है। शम्बरके प्रतिद्वन्द्वीके प्रधान-मन्त्रदाता भद्रराज भी कहते हैं" (६।२०।६) “दाम नमुनिके निरको उन्द्रने नृपं विना”, दूमने स्यान्" (५।३०।७,८)ने अनुसार “उन्द्रने दान नमुचिके निरको काटा।” यह कटाकटी मनुके नमयमें हुई थी। वागदेवके अनुसार" (८।३०।२१) “दमीतिके लिए ३० हजार दान नुश दिये।” जायँ राजा दमीतिका प्रतिद्वन्द्वी कौन

दस्यु था, जिसके ३० हजार आदमी खेत आये ? हो सकता है दभीति दिवोदाससे पहलेका कोई आर्य-नायक था ।

आर्योंको जिन दास-सेनानियोका जवर्दस्त मुकाबला करना पडा था, उनके नाम हमें कई ऋचाओमें मिलते हैं, जैसे —

भरद्वाज^{११} (६।१८।८) — चुमुरि, घुनि, पिप्रु, शम्बर, शुष्ण ।

वसिष्ठ^{*} (७।९९।४) — दास वृषशिप्रका उल्लेख करते हैं ।

कुत्स आगिरस^{१२} (१।१०३।८) — शुष्ण, पिप्रु, कुयव, वृत्र, शम्बर ।

गृत्समद^{१३} (२।१४।५) — शुष्ण, अशुष, व्यस, रुधिका ।

वश अश्व-पुत्र^{१४} (८।४६।३२) एक सज्जन दस्यु वत्सूतका नाम लेते हैं, जिसने उन्हें सौ दास (गुलाम) प्रदान किये थे ।

पुराने दास महावीरोमें नमुचि और ऋग्वेदकालीनोमें शम्बर महा-पराक्रमी थे । शम्बरके सहायकोमें कितने ही और भी पराक्रमी सेनानी थे, पहाडी शत्रुओके पास सिर्फ शम्बर ही एकमात्र महान् सेना-नायक नही था । शम्बरके बाद जिस पहाडी वीरका सबसे अधिक उल्लेख उसके शत्रु करते हैं, वह शुष्ण है ।

§२ शंवरके सेनापति

१. शुष्ण

शुष्ण और उसके प्रतिद्वन्द्वी कुत्स आर्जुनेय औशिज, शम्बर और दिवोदासके समकालीन तथा उनके ही सेनानी थे, यह स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेदमें नही मिलता, लेकिन सब देखनेसे यही पता लगता है, कि शुष्ण शम्बरका, और कुत्स आर्जुनेय दिवोदासका दाहिना हाथ था । ऋग्वेदमें तीन कुत्सोका पता लगता है । कुत्स आगिरस एक ऋषि थे, और शायद कुत्स आर्जुनेय के समकालीन थे । पुरु जनका एक कुत्स (पुरुकुत्स) था, जो शम्बरके युद्धसे कुछ पहले हुआ था । शम्बरके प्रतिद्वन्द्वी दिवोदासका समकालीन त्रसदस्यु (दस्युओको त्रास देने वाला) इमीका पुत्र था । तीसरा कुत्स यही अर्जुन-पुत्र था, जो पराक्रममें दिवोदाससे कम

नहीं था। शुष्णको इसीने खतम किया था, लेकिन आर्य ऋषि किसी मनुष्यको यह श्रेय कैसे दे सकते थे? इसीलिये नाभाकने कहा^{१३} (८।४०।१०।११) —“इन्द्रने शुष्णके अडो (सतानो)को भी छिन्न-भिन्न कर दिया।” कण्व-पुत्र मेधातिथि^{१४} (८।१।२८) के अनुसार शुष्णके चलायमान (चरिष्णु) पुरोको नष्ट किया गया था। पुर उन नमय मोर्चाविन्द स्थान, दुर्ग या किलेको कहते थे। यह पत्यरके और लकड़ीके भी होते थे। लेकिन, खाम कर पहाड़ी लोगोको पत्यरोको जोड़ कर पुर बनानेमें अधिक मुभीता और लाभ था। स्थायी पुरोके अतिरिक्त चरिष्णुपुर शायद वह थे, जो लडाईके दौरानमें या घमत्प्रीके लिये मोर्चाविन्दी करके बना लिये जाते थे।

हिरण्यस्तूप आगिरम^{१५} (१।३२।१२) के अनुसार “इन्द्रने शुष्णको छिन्न-भिन्न किया।” पर यह छिन्न-भिन्न करना इतना जानान नहीं रहा होगा, क्योंकि शुष्ण बड़ा मायावी था। उसके दाव-पेचका मुकाबला इन्द्र जैसा आर्योका सर्वश्रेष्ठ देवता ही कर सकता था, इसीलिये विश्वामित्रके पीत्र और मवुच्छन्द्रके पुत्र जेताने कहा है^{१६} (१।११।७)—“हे इन्द्र, तुमने माया (चाली) द्वारा मायी शुष्णको नष्ट किया।” नम्य आगिरम^{१७} (१।५६।३३) ने भी शुष्णको मायी और उनके दुर्गोको आयमी (पत्यरका) कहा है। “शुष्णके पुरोको चूर्ण किया गया”^{१८} (वामदेव ४।३।१३)।

शुष्ण और कुत्स—जब शुष्णको नष्ट करनेवाले इन्द्र थे, तो उन वाहुओंके उल्लेखकी क्या अवश्यकता, जिन्होंने शुष्णका महार किया था? पर, ऋषि लोग ऐसी वाहुओंमें इन्कार नहीं करते। इसीलिये वशिष्ठ कहते हैं^{१९} (७।११।२)—“इन्द्र, तुमने कुत्सकी रक्षा की, जो कि तुमने दाम शुष्ण और कुयवको आर्जुनेयके लिये मारा।” कुत्स आर्जुनेयका प्रतिद्वन्दी शुष्णके अतिरिक्त कुयव भी था, वह उनमें पता लगता है। वशिष्ठ भी कुत्स और शुष्णके युद्धता उल्लेख करते हैं^{२०} (७।२०।५)—“इन्द्रने नारयो कुत्सके लिये शुष्ण (जैने) महान् शत्रुको मारा।” कुत्सको भरद्वाज नारयो कहते हैं। लेकिन, नारयोमें हमें यहाँ वह अर्थ नहीं देना

चाहिए, जो कि महाभारत और पुराणोंमें जिया जाता है। सारथी महारथी या महामेनापतिका वाचक था। इन दोनों ऋषियोंके तरुण समकालीन वामदेव^{१३} (४।३।१३) सिर्फ शुष्णकी पुरियोंके नष्ट करनेकी ही बात कहते हैं। कुत्स बड़ा दानी (दाशुप) था (भरद्वाज ६।२६।३)। जिस वक्त शुष्ण और कुत्सकी लड़ाई हो रही थी, उस समय कुत्स युवा था, यह नोवा गौतम^{१४} (१।६३।३) के वचनसे मालूम होता है। सव्यके अनुसार^{१५} (१।५।१६) इन्द्रने युद्धमें कुत्सको शुष्णसे बचाया था। जिसका अर्थ यही है कि शुष्णने तरुण कुत्सके जीवनको सकटमें डाल दिया था। कुत्सको वायुके घोड़ोंसे बहन करते इन्द्रने शुष्णका बध किया था^{१६} (१।१७।४), जिसका अर्थ शब्दश यह नहीं लेना चाहिये, कि कुत्स आर्जुनेय घोड़ेपर चढ़कर युद्धसे भाग गया, और इन्द्रने आकर अपने वज्रसे शुष्णका शिरश्छेद किया।

शुष्णके साथी कुयवके साथ कुत्सके संवर्षका उल्लेख वामदेव करते हैं^{१७} (४।१६।१२)—“कुत्सके लिये शुष्ण असुरको मारा, इन्द्र, तुमने कुयवके हजारों दस्युओंका तुरन्त हनन किया।” शुष्ण और अशुपके मारने और कुत्सकी रक्षा करनेकी बात सव्य आगिरम^{१८} (१।५।१६) भी करते हैं। कुत्स आगिरस ऋषि^{१९} (१।१०।४।३) आर्जुनेयको लिये कुयवके ही नहीं बल्कि उसकी दो पत्नियोंको भी मारनेकी बात कहते हैं। कुयवको क्षीरमे स्नात कहा गया है। हो सकता है, दुग्ध-स्नानको टोटकेके तीरपर उम समय माना जाता हो। कुयवकी दोनों पत्निया अपने पतिके साथ हथियार लेकर लड़ती होगी। न लड़तीं, तब भी स्त्रियों पर आर्य इतनी उदारता दिखानेके लिये तैयार नहीं थे। सारथी (महामेनापति) कुत्सके लिये शुष्ण, अशुज और कुयवके मारने तथा दिवोदानके लिये शम्बरकी ९९ पुरियोंके इन्द्र द्वारा नष्ट होनेका उल्लेख गुत्समद^{२०} (२।१९।४) ने भी किया है। गौरिवीति^{२१} (५।२९।९) और भरद्वाजने सारथी कुत्सका उल्लेख किया है। सारथी विशेषण कुत्स आर्जुनेयके लिए विशेष तीरमे प्रयुक्त मालूम होता है।

२ पिप्रु

यह दूमरा दस्यु सेनानी था, जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें अनेक बार आया है। इमने आर्य-वीर ऋजिश्वाके साथ युद्ध किया था। महानतम चार ऋपियोमें वामदेव^३ (४।१६।१३) ने कहा है, —“इन्द्र, तुमने विदयीके पुत्र ऋजिश्वाके लिये पिप्रु मृगयुको मारा, ५० हजार कृष्णों (कालों) को नष्ट किया, और उनके पुरोको ध्वस्त किया।” वञ्चु वैखानमके अनुसार^४ (१०।९९।११) “ऋजिश्वा औशिजने पिप्रुके व्रजको विदारित किया।” इससे पता लगता है, कि ऋजिश्वा उशिज-कुलका था। पिप्रु अपने व्रज (गौओंके क्षुण्ड) को लेकर रहता था, इन्ही समय ऋजिश्वाने गौओंको लूटके लिये उसके ऊपर आक्रमण किया, और उसका आक्रमण सफल रहा। वनिष्ठके पौत्र गौरिवीति इम सफलतामें जपने भी श्रेय लेना चाहते हैं, इसीलिये कहते हैं^५ (५।२९।११)—“गौरिवीतिकी स्तुतियोने इन्द्र, तेरी वृद्धि की, और तूने विदयीके लिये पिप्रुको मारा।” ऋजिश्वा पिप्रुके मघर्षमें खतरमें पडा था, या ऋपिने योही इन्द्रको उमका श्रेय दिया, यह नहीं कहा जा सकता। सव्य आगिरम^६ (१।५।१।५) के अनुसार भी “इन्द्रने पिप्रुके पुरको नष्ट किया, और दस्यु-हत्या (दानयुद्ध) में ऋजिश्वाकी रक्षा की।”

चालीस सालने ऊपर तक शम्बर और उसके महायकोंके साथ आर्यों का जो युद्ध हुआ, उसे ऋग्वेदमें दस्यु-हत्या कहा गया है। हत्या केवल व्यक्तिगत हत्याको ही उस समय नहीं कहा जाता था, बल्कि वह युद्धके लिये भी उन्नेमाल होता था।

३ वगृद, ४ करज, ५. पर्णद

ऋजिश्वाके मुकाबिलेमें लटने वाले मेनानियोमें पिप्रुके अतिरिक्त वगृद भी था। नवरके अनुगार ऋजिश्वाने वगृदके नीं वीरोको हराया था^७ (१।५३।८)। ऋजिश्वाने वद्वतने वृष्णगर्भों (दस्युओं) को मारा था, इमें कुल आगिरम भी बतलाते हैं^८ (१।१०।११)। पिप्रुके

साधन बहुत दृढ थे। अग औरव^{४८} (१०।१३।८।३) के अनुसार पिप्रु असुर माघी था, जिसे इन्द्रकी सहायतासे ऋजिश्वा हरानेमें सफल हुआ। यहा असुर शब्द पिप्रुके लिये इस्तेमाल किया गया है, दास और असुर दोनो शब्द पर्याय माने जाते थे।

६. वर्ची

उदव्रजमें शम्बरके साथ वर्ची भी मारा गया था, यह गर्गके कथन^{४९} (६।४२ २१)से मालूम है। वसिष्ठने उदव्रज और शम्बरका एक साथ उल्लेख नहीं किया है, पर उनके कहने^{५०} (७।९९।५) से मालूम होता है, कि वर्चीने भारी सख्यामें असुर योद्धाओंके साथ दिवोदासका मुकाबला किया था—“सौ हजार वीरोंके साथ वर्ची असुरको मारा।” सौ हजार (एक लाख) योद्धा किसी एक जगह जमा होकर मारे गये होंगे, इसकी सभावना कम है। इसका यही अर्थ है, कि बहुत भारी सख्यामें दास युद्ध में काम आये। दासों की इतनी बड़ी सेना जहा एकत्रित हुई होगी, वहा आर्योंकी भी सेना कम नहीं रही होगी, इसलिये उदव्रज किसी ऐसे स्थानमें रहा होगा, जो पहाडमे होने पर भी काफी समतल था, और वह स्थान कागडेके पहाडोमें घुसनेका द्वार होगा, जैसे घमेरी (नूरपुर)। वर्चीके सौ हजार आदमियोंके मारे जानेकी बात गृत्समद^{५१} (२।१४।६) भी करते है, और वामदेव^{५२} (४।३०।१५) भी कहते है—“दासस्य वर्चिन सहस्राणि शता ववी।” (दास वर्चीके सौ हजार मारे।) इससे यह भी पता लगता है, कि वर्ची शम्बरका कोई मामूली अनुयायी नहीं था, वह अपने तौरसे भी बहुत भारी प्रभुता रखता था।

गृत्समद^{५३} (२।१२।१४) वर्ची के शतसहस्र आदमियोंके मारनेके साथ शम्बरके सौ पुरियोंके ध्वसकी भी बात करते है।

जिन असुर सेनापतियोंका उल्लेख अभी किया गया है, उनके अतिरिक्त कुछ और भी रहे होंगे, लेकिन इन्द्रकी महिमा गानेके लिये उनके नामोंके गिनानेकी आवश्यकता^{५४} (७।१८।२०) नहीं थी। मन्यमान

पुत्र देवकको शम्बरके साथ इन्द्र द्वारा मारे जानेका उल्लेख वसिष्ठने किया है। जिसमें मन्देह होता है, कि देवक भी शम्बरकी तरह अनार्य राजा था। पर, देवक और पिताका नाम मन्यमान उसे आर्यजनका आदमी बतलाते हैं। देवक अपने लोगोंके विरुद्ध अमुरोकी तरफ रूहा होगा, इस तरहका उदाहरण हमें ऋग्वेदमें और नहीं मिलता। उस समय सप्तमिन्धुके आर्योंका शम्बरमें ज्वरदन्त मुकाबला था। शम्बर ईटका जवाब पत्थरमें देना चाहता था। यदि आर्य कृष्णां, कृष्ण-गर्भोंका नाम तक मिटा देना चाहते थे, तो वह भी श्वेतो और श्वेतगर्भोंको कम ने कम अपनी सीमाके पाम जिन्दा नहीं छोड़ना चाहता था। शम्बरके लोग बड़े वीर और लडाके थे, इनकी गवाही ऋग्वेदके ऋषि भी देते हैं, और माय ही हमें यह भी मालूम होना चाहिये, कि जिन गोरग्वोकी वीरताको देखकर अग्नेजोने उन्हें अपनी भाडेकी सेनामें नवमें ऊचा स्थान दिया, और आज भी भरती करके अपने साम्राज्यकी रक्षा के लिये मलायाके जंगलोंमें जिन्हे कटवा रहे हैं, उनमें नवमें बड़ी नव्या किरात-मतानोंकी हैं, जिसे आप उनकी आख और नाकपर मगोलायित मुख-मुद्रा देखकर जान सकते हैं।

पिप्रुके व्रजमें पता लगता है, कि दस्यु लोग बहुत भारी मन्ध्यामें गायांको रखते थे। आर्योंकी आजीविका मुख्यत गो-अश्व तथा उमके बाद अज-अवि (भेड-व्रकरी) थे। दाम शायद अश्वका अधिक उपयोग नहीं रखते थे। पहाड़ी रास्तोंके लिये अभी पहाड़ी टायन तैयार नहीं हुए थे, और आर्योंके वृहत्काय मन्धव घाटे पहाड़ी युद्ध और यात्राके लिए उनमें नहायक नहीं हो सकते थे। कुल्ल अर्जुनेयको यद्यपि नारयो कहा गया है, किन्तु पहाड़ी युद्धमें रखका कोई उपयोग न हो सकता था, इनमें भी मालूम होता है, कि नारयो रखचालक नहीं बल्कि सेनापति जैसी कोई बड़ी नैतिक उपाधि थी।

५३ शम्बर

ऋग्वेदिक आर्योंके समय दो बहुत ज्वरदन्त युद्ध लड़े गए थे—
दस्यु-रत्ना (घबर युद्ध) या दामोंके नाय युद्ध और इन्द्रा आर्योंके अपने

बीचका “दाशराज्ञ-युद्ध।” पहले युद्धके प्रधान प्रतिद्वन्द्वी शम्बर और दिवोदास थे, और दूसरे में दस राजाओंके खिलाफ सुदासने तलवार उठाई थी। इन दोनों युद्धोंका उल्लेख यद्यपि ऋग्वेदमें है, लेकिन सबसे अधिक शम्बर-हत्या (शम्बर-युद्ध) को ही दोहराया गया है। इसका कारण भी है। दाशराज्ञ-युद्धमें लड़नेवाले दोनों पक्ष इन्द्रके भक्त थे, इसलिये इन्द्रकी महिमा बढ़ानेके लिये उसका उतना उपयोग नहीं हो सकता था। अधिकसे अधिक यही कहा जा सकता था, कि इन्द्रने दस राजाओंसे किसी कारण रूठ कर सुदासको विजय प्रदान की। लड़ते वक्त दोनों ही ओरके ऋषि इन्द्रको प्रसन्न करनेकी कोशिश करते रहे होंगे। शम्बर-हत्या (४० वर्षों)की तरह दाशराज्ञ युद्ध भी बहुत दिनों तक चलता रहा—उसमें सदा अंतिम विजेताकी ही विजय नहीं होती रही। बीच-बीचके विजयोंके लिये दसो राजाओंके ऋषियोंने इन्द्रकी महिमा गाते ऋचायें बनाई होंगी, जिन्हें पीछे सुरक्षित रखनेकी आवश्यकता नहीं थी। शम्बर-हत्या इन्द्रदेवो और शिशुदेवोंके बीच थी। इसमें दस्युओंकी पूर्ण पराजय और इन्द्रके भक्तों की विजय हुई। इन्द्रकी महिमा को पूरी तौरसे यही दिखाया जा सकता था, इसीलिये ऋग्वेदमें सबसे अधिक आई इन्द्र-सम्बन्धी ऋचाओंमें यदि शम्बर-हत्याका अधिक उल्लेख हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। कुछ विद्वानोंका तो कहना है, कि सारे ऋग्वेदमें शम्बर-हत्याकी ही प्रतिध्वनि पाई जाती है।

भरद्वाज, वसिष्ठ, वामदेव सभीने शम्बरके युद्धका वर्णन किया है, लेकिन, शम्बरसे लड़नेवाला दिवोदास था, जिसके पुरोहित (पवान-मन्त्री) भरद्वाज थे। भरद्वाजने सोम (भाग या भाग जैसी किसी नशीली वनस्पति) को महिमा गाते हुए कहा है^{१४} (६।४३।१)—“जिसके मद में (मस्त) इन्द्रने दिवोदासके लिये शम्बरको मारा।” शम्बरके पिताका नाम कुलितर था, यह वामदेवके कथन^{१५} (४।३०।१४) से मालूम होता है—“इन्द्रने दास कौलितर शम्बरको बड़े पर्वतोंके भीतर (वृहत् पर्वतादधि) मारा।” शम्बर वृहत् पर्वतके भीतर रहता था। वृहत् पर्वत उस समय हिमालयको

कहा जाता था। भरतोंकी भूमि उन समय परुषिण (रावी) और शुतुद्रि-विपाश् (नतलुज-व्यान) के बीचमें थी, इसके पास बड़ा पर्वत कागडेका हिमालय ही था। मिवालिक्का छोटा पर्वत उनीमें मिला हुआ था, जिसे अब भी अलग नहीं समझा जाता। छोटे पर्वतमें नहीं, बल्कि बृहत् पर्वतमें शम्बरके होनेकी बात यही बतलाती है, कि उसके पुर मिवालिक्के पीछेवाले बड़े पहाडों में थे। १९वीं शताब्दीके आरम्भ तक अजेय माने जानेवाला किला-कागडा उनीमें पडता है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इस पहाडीने शम्बरके पुरका भी काम दिया हो। किला-कागडामें इस शताब्दीके भयानक भूकम्पके पहले बहुत सी पुरातात्विक सामग्री थी, जिनमेंने अधिकांश को भूकम्पने ध्वस्त कर दिया। यह ऐसे क्षेत्रमें पडता है, जिसे भूकम्पका क्षेत्र माना जाता है, इसलिये शम्बरकी अदमन्मयी किमी अजेय पुरीके अवशेषके पानेकी आशा नहीं रखी जा सकती।

शम्बरके पुरोंके दर्दराने (ध्वस्त करने), तथा धन-सम्पन्न (वमुमन्त) पर्वतमें आयोंके प्रवेश करनेका उल्लेख मोमाहुतिने किया है" (२।२४।२) — "शम्बर पर्वतोंमें रहता था (पर्वतेषु क्षियन्)" और ४०वें वर्षमें उसे मारनेमें आयोंको नफलता मिन्त्री ^{५०}(नृत्समद २।१२।११)। वह गिरि का दाम था, जिसे मारकर अपनी अद्भुत रक्षाओंके इन्द्रने दिवोदानको बचाया — वामदेव" (६।२६।५)। वमिष्ठके अनुसार" (७।९।५) — "इन्द्र और विष्णुने शम्बरको ९९ पुरियोंको भ्रष्ट किया।"

शम्बरको ९९, १०० या ९० पुरियोंके होनेका उल्लेख मिलता है। वमिष्ठकी तरह वामदेव भी" (४।२६।३) शम्बरको ९९ पुरियोंके नष्ट करने और एक (सौवीं) पुरीको दिवोदान अनियिन्त्रको देनेका उल्लेख करते हैं। वामदेवने अपनी ऋषियोंके इन्द्रके मुामें नारी बानें कहलवाई है, जिसमें पता लगता है, कि ऋषियोंके ऊपर उनके देवता बाने थे। यह आश्चर्यकी बात नहीं। हिमाचलमें अब भी हजारों ऐसे पुरोपन्थी मिलेगे, जिनके गिर पर देवता आकर "मैं" वह घर नारी बातें बतलाते

हैं। हिमालय ही में क्यो, दूसरी जगहोंमें भी ऐसे ओझा-सयानो या देववा-
हनोकी कमी नहीं है। फर्क इतना ही है, कि ऋग्वेद-कालमें जिस तरह
सभी लोग देवताओके ऐसे प्रादुर्भाव पर एकान्त श्रद्धा रखते थे, वैसे
श्रद्धा अब मैदानमें नहीं देखी जाती। दिवोदासका दूसरा नाम अतिथिग्व
था। कितनी ही ऋचायें उसे केवल अतिथिग्वके नामसे स्मरण करती हैं।
इस शब्दसे यह तो साफ मालूम होता है, कि दिवोदास अतिथियोका अनन्य
सेवक था। अतिथिके साथ गौ शब्द क्यो इस्तेमाल हुआ, इसका अर्थ लोग
गोधनसे लगाते हैं। लेकिन उसको उपाधियोमें शामिल करनेकी कोई
आवश्यकता नहीं थी। गौका कोई ऐसा ही अर्थ था, जिससे दिवोदासके
अतिथिदेव होनेका भाव निकलता हो।

दिवोदासके पुत्र या सतान परुच्छेप" (१।१३०।७) ने ९९ नहीं,
९० पुरियोके नष्ट करनेका उल्लेख किया है—“इन्द्रने दिवोदास अतिथिग्व-
के लिये ९० पुरिया छिन्न-भिन्न की।” पीछेके ऋषि सुहोत्र" (६।३।१।४)
के अनुसार “दस्यु शम्बरकी सी पुरियोको इन्द्रने नष्ट किया।” यह
९०, ९९ और १०० पुरियोका भेद क्यो? वसिष्ठ और भरद्वाजका कहना
ही ठीक है ९९ पुरियोको दिवोदासने नष्ट कर दिया, और एक को अपने
लिये सुरक्षित रक्खा।

शम्बरको कहा मारा गया, इसका उल्लेख भरद्वाजके पुत्र गर्ग करते
हैं" (६।४७।२१), जो शायद शम्बर-युद्धके समय अपने पिताके दाहिने हाथ
होकर दिवोदासकी सहायता कर रहे थे। उनका कहना है—“इन्द्र
(दिवोदास) ने शम्बर और दास वर्चीको उद्व्रजमे मारा।” दूसरे दासोंकी
तरह शम्बरके भी व्रज या गोष्ठ रहे होंगे। किसी विशेष जलके पास एक
व्रज था, जिसे उद्व्रज कहते थे। यह स्थान कागडा जिलेमे ही कही रहा
होगा, लेकिन तीन हजार वर्ष बाद भी उस स्थानका वही नाम रहे, यह
जरूरी नहीं है।

शम्बर और उसकी जातिके साथ जो भीषण युद्ध हुआ था, उसका
कुछ वर्णन हम विजेता दिवोदासके प्रकरणमे भी करेंगे।

१४ किरात

जान पड़ता है, कागडेमें अब भी इस सघर्षकी परंपरा नामान्तरमें जीवूद है। कागडा प्रदेशका नाम जलन्वर है। हिमालयके पाच खण्डों—पाल, कूर्माचल (कुमाऊ), केदार (गढवाल), जलन्वर और कश्मीरमें क जलन्वर है। कश्मीरकी सीमासे पूर्व सतलुज तकके इलाके को जलन्वर और पश्चिमी को दुर्गर (डोगरा) इन दो हिस्सोंमें बाटा जाता था। दोनों की सीमा रावी थी। आज जलन्वरका अर्थ मैदानी जलन्वर नगर लिया जाता है, लेकिन पहले यह पहाडी भागका नाम था। पौराणिक परम्परा बतलाती है जलन्वर एक भयकर राक्षस था, जिसे देवीने मारा। देवी नगर-फोट (भवन) की प्रसिद्ध भवानी थी। मरने पर जलन्वरका विशाल शरीर जेतने भूखडमें गिरा, उसका नाम जलन्वर पडा। जलन्वरके कानकी जगह पर बने गढका नाम कनगढा या कागडा पडा। जलन्वर शब्दका अर्थ जलो (रावी आदि) का धारण करनेवाला। इस भूभागसे होकर सतलुज, व्यास, जैसी नदिया आती हैं, इसलिये उसका यह नाम उचित ही है।

वैदिक-कालकी परंपरा वृत्रको पानीको रोक रखनेवाला बतलाती है, जिसे इन्द्रने अपने वज्रसे मारकर पानियोंको मुक्त किया। शम्बरको भी वृत्र कहा गया है। यद्यपि अपने नमकालीन ऋषियोंके वचनोमें वह एक दुर्दान्त अनुर घातू, बहुत यातु (जादू) और माया रखते भी वह आदमी ही था। जैसे-जैसे समय बीतता गया, शम्बर के आदमीके रूपको लुप्त कर उमे दानव बना दिया गया। शम्बरके साथ ४० वर्षों तक जो भीषण सघर्ष चला था, उसको पुराने कालमें इन्द्र-वृत्र-युद्ध भी कहा जाता था। उम नमय पौराणिक-कालकी दुर्गा भवानी आर्योंमें त्यागि नहीं रखती थी। पीछे इनकी महिमा बढी। इन्द्रको जब लोग भूल ने गए, तो शम्बर-दिवोदास, वृत्र-इन्द्रके युद्धको देवी और जलन्वरका युद्ध बना दिया गया, और जलन्वरके विकराल शरीर के पर्वताकार गिरनेने इस भूमिका नाम जलन्वर रख दिया गया।

हमारे पास तक शम्बर-दिवोदास (किरात-आर्य) युद्ध की जो कुछ भी सूचना आई, वह आर्योंके स्रोतोसे ही आई। शम्बरके लोग भी इस घटना को जरूर याद करते रहे होंगे, पर उसके जाननेका हमारे पास अब कोई साधन नहीं है। जहा तक शम्बरकी जाति के लोगोका सवाल है, ४० सालके युद्धमें लाखोकी सख्यामें मरने पर भी, पहाडमें उन्हें शरण लेनेके लिये बहुत जगह थी, जहा पर आर्य पहुंच नहीं सकते थे। पराजित होने पर वह पहाडमें और भीतर की तरफ चले गये। व्यास, रावीके ऊपरी भागोंमें चम्बा-कुल्लूके इलाकोमें वह बहुत समय तक आर्योंसे सुरक्षित रहे, लेकिन अब वहा भी उनका पता केवल चम्बाके लाहूली, लाहूलके निचले भागो और कुल्लूके मलाणा गावमें ही किरात-भापाके उपयोगके कारण लगता है। यह लोग भी भाषामें किरात-वशकी ही सूचना देते है, धर्ममें अपने दूसरे भाइयोकी तरह ही है। किरातोकी मगोलायित मुख-मुद्रा चनाबके ऊपरी भागोंमें ही देखी जाती है। पर, उनसे आशा नहीं हो सकती, कि वह शम्बर-युद्ध सम्बन्धी अपनी प्राचीन परम्पराको रक्षित रखेंगे। तो भी उनकी लोक-परम्पराओ और पुरातात्त्विक अवशेषोके अध्ययनकी आवश्यकता है।

किरातोको निचले पहाडोंसे भगानेवाले आर्य थे। उनको अपने में विलीन करने वाले या और उत्तरकी ओर भगानेवाले आर्य नहीं, बल्कि उन्हीके मध्य-एसियाके भाई-वन्द खस थे, जो मैदानसे नहीं, बल्कि पहाडो ही पहाड काशगर, कशकर (गिलगित), कश्मीरने अपने खस या कश नामकी छाप छोड कर आगे बढ़े थे। वह किरातोकी भूमिमें नेपाल तक प्रवेश कर गये। यह प्रवेश शान्तिपूर्वक ही नहीं रहा होगा। दोनो ही जातिया पशुपाल थी। चरागाहोंके लिये पशुपालोकी खूनी लडाइया हुआ ही करती है, यह ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दीके मध्य-एसियामें हूणो और शकोके वारेमें हम जानते है। चीनके प्रहारसे जान बचाकर भागते हूण (मगोलायित) जब अपनी भूमिसे निकल पशुपाल शकोकी भूमिमें आये, तो दोनोमें खूनी संघर्ष हुए, जिनमें असफल हो शक अपनी भूमिको छोडनेके लिये मजबूर हुए,

और भागते हुए हिन्दुस्तान तक पहुँचे। खसो और किरातोंके भी आरम्भिक सघर्ष हुए होंगे। किरात जिन उपत्यकाओंको छोड़ते गए, खस उनपर अतिकार करते गए। जो किरात आत्म-समर्पण करनेके लिए तैयार हुए, वह वही रह कर समयान्तरमें खस बन गए।

शम्बरके वंशजोंका यही परिणाम हुआ।

अध्याय ६

दिवोदास

१. पूर्वकालके आर्य-नेता

१ दध्यङ्ग (दधीच)

दिवोदासके पहले मनु आदि राजाओंके वारेमे हम बतला चुके हैं। दिवोदासके पुत्र या सन्तान परच्छेपने निम्न प्राचीन आर्य नेताओंका नाम लिया है ' (१।१३।९) दध्यङ्ग (दधीच), अगिरा, प्रियमेघ, कण्व, अत्रि, मनु। इनमें अत्रि, कण्व राजा थे, इसमें सन्देह है।

२ रुम, ३ रुशम, ४ श्यावाक, ५ कृप

कुछ और भी राजाओंका नाम ऋग्वेदमें मिलता है, पर यह नहीं कहा जा सकता, कि वह दिवोदाससे पहले हुए या बादमें। मेघातिथि^३ (८।३।१२) ने रुशम-श्यावक-कृपकी इद्र द्वारा रक्षा करनेकी बात कही है। देवातिथि ने^४ (८।४।२) भी रुम, रुशम, श्यावक, कृपके रक्षणकी बात कही है। पिजवन भी कोई पुराना वंश-स्थापक था, जिसके ही कुलमें दिवोदासका पिता वध्र्यश्व और पुत्र सुदास पैदा हुए। पिजवनके वारेमें इससे अधिक कोई सूचना हमें नहीं मिलती।

६ वध्र्यश्व

वध्र्यश्वके साथ हमारा पैर इतिहासकी ठोस भूमिपर पडता है। भरद्वाज और सुमित्रने इसका उल्लेख किया है। सुमित्र अपनेको वध्र्यश्वकी सन्तान (वध्र्यश्व) कहता है। उसके कहे अनुसार^५ (१०।६९।१,

२।११।१२) वध्र्यश्व द्वारा स्थापित अग्नि दर्शनीय था। अग्नि सप्त-सिन्धुके आर्योंके लिये जीता-जागता देवता था। हरेक घरमें अग्निकी स्थापना और पूजा होती थी। आर्य इस साकार देवताके बड़े भक्त थे। सुमित्रके अनुसार (२) वध्र्यश्वका अग्नि घृतवर्धन था। पुराने जमानेमें उसे वध्र्यश्वने जलाया था। जैसे पिता पुत्रकी, उसी तरह वध्र्यश्व अग्निकी सपर्या (सेवा) करता था (१०)। वध्र्यश्वकी अग्निने वरावर शत्रुओंको जीतनेमें सहायता की। वध्र्यश्वकी अग्नि वृत्रहा (शत्रु-नाशक) है (१२)। सुमित्रके इन वचनोंसे पता लगता है, कि वध्र्यश्व एक शक्तिशाली आर्य-वीर था। उसने बहुतसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। शत्रुके लिये वृत्र शब्दका उपयोग बतलाता है, कि वह दस्यु रहे होंगे। वध्र्यश्वके पुत्र दिवोदासके प्रधान शत्रु यद्यपि दस्यु थे, पर उन्हें हाथमें करने के लिये आर्योंसे भी उमें लड़ना पडा था। वध्र्यश्व आरम्भिक विजेता था, जैसाकि इतिहासमें हम सिकन्दरमें पहले फिलिप, समुद्रगुप्तसे पहले चन्द्रगुप्तको पाते हैं। पुत्रकी विजयोंके सामने पिताकी कीर्ति धूमिल हो गई। वध्र्यश्व जिस भरत-पुरु-त्रित्मु जन का था, उसका निवास रावी-सतलुजके बीचमें था। भरद्वाजके कथन (६।६।१।१) के अनुसार सरस्वतीने वध्र्यश्वको प्रतापी पुत्र दिवोदास प्रदान किया। जान पडता है, अपनी विजयोंके सिल-सिलेमें वह सतलुजसे पूर्व सरस्वतीके किनारे पहुँचा, वही सरस्वती-तट पर दिवोदासका जन्म हुआ। सरस्वती सप्तसिन्धुकी पवित्र नदी थी। उसका माहात्म्य आजकी गंगा जैसा था।

भरद्वाज—दिवोदासकी मफल्ताओंके बारेमें कहनेसे पहले भरद्वाजके बारेमें कुछ विशेष तौरमें कहना आवश्यक है, क्योंकि भरद्वाज ही दिवोदासके चाणक्य, अपने नमयके नवमें प्रभावशाली पुरोहित थे। वह ऊँचे दर्जेके कवि थे। उनकी सैकड़ों ऋचायें ऋग्वेदके लठे मण्डलमें मिलती हैं, जिसका नाम ही भरद्वाज-मण्डल है। भरद्वाज भरतोंके ही नहीं, दूसरे जनोंके राजाओंके भी धर्माभाजन थे। जिन राजाओंने उन्हे बडे-बडे दान दिये, उनका उल्लेख स्वयं, उनके पुत्र गंग तथा दूसरे ऋषियोंने

किया है। उनसे साफ है, कि ये सभी राजा भरद्वाज और दिवोदासके समकालीन थे।

७ अम्यावर्ती चायमान

पार्थवोके इस सन्नाटने वधूके साथ एक रथ और वीस गायें दीं (६।२७।८)। वधू दासीको भी कहा करते थे। चायमानने दासीके साथ रथ दिया था।

८. सुमीढ

भरद्वाजको सुमीढने दो घोड़ियाँ और सौ गायें, पेरुकने पक्व अन्न और शाडने हिरण्यसहित दस रथ दिये (६।६३।९)। सबसे अधिक दान शाडका था।

९. पुरुनीथ

नोधा गौतम (१।५९।७)के अनुसार पुरुनीथ शातवनेयने भी भरद्वाजको दान दिया। शतवन शायद किसी स्थानका नाम था।

१० प्रस्तोक

गर्गके अनुसार (६।४७।२२) इसने "दस कोश और दस घोड़े दिये।" कोश आजकल खजानेको कहा जाता है, लेकिन उस समय यह कोई निश्चित निधि थी। यही गर्गने यह भी बतलाया है, कि "दिवोदास अतिथिग्वसे शम्बरका धन हमने पाया।" शम्बरने जो धन मिला था, सभी भरद्वाजको कैसे दिया जा सकता था, उसके और भी भागीदार थे। शायद इसीलिए गर्ग अगली ऋचा में कहते हैं—“मैंने दिवोदाससे दस घोड़े, दस कोश, दस वस्त्र-भोजन, और दस हिरण्यपिण्ड (सोनेके डले) पाये।”

दिवोदासके मरनेके बाद यद्यपि भरद्वाज या उनके पुत्र गर्गको पुरोहिती (प्रधानमन्त्रित्व) नहीं मिली, और दिवोदासके प्रतापी पुत्र सुदासके पुरोहित वसिष्ठ बने, पर, जान पड़ता है, इसके कारण वसिष्ठ और भरद्वाजका वैमनस्य उतना उग्र नहीं हुआ, जितना कि वसिष्ठका स्थान विश्वामित्रके

लेन पर। वमिष्ठ सन्तानोंमें भी कडवाहटका पता नहीं लगता, जैसाकि मृच्छीक वसिष्ठकी इस ऋचासे मालूम होता है^{१०} (१०।१५०।५)—
“अग्निने अग्नि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्वकी रक्षा की,” अग्निको वसिष्ठ आह्वान करते हैं।

इन उद्धरणोंसे मालूम होगा, कि भरद्वाज अनेक जनोमें प्रभाव रखते थे। उन्होंने अपने इस प्रभावका शम्बर-युद्धमें दिवोदासके पक्षमें पूरी तौरसे इस्तेमाल किया था। बाहरी शत्रुओंके इस भयकर सघर्षके समय आर्योंके भीतरी सघर्षको यदि स्थगित न किया गया होता, तो इसमें सन्देह है, कि ४० वर्ष की लडाइयोंके बाद भी शम्बर पर विजय प्राप्त की जा सकी होती। इसमें भरद्वाजका महत्त्व मालूम होता है।

११ कुत्स आर्जुनेय, १२ श्रुतर्य, १३.तुर्वीति, १४ दभीति,
१५.ध्रसति, १६.पुरुषात।

आर्य मेतानियोंके बारेमें हम कुछ बतला चुके हैं, जिनमें कुत्स आर्जु-
नेय मुख्य था। भरद्वाजने^{११} (६।२०।५) सारथी (मेनापति) कुत्सके लिए स्तुति की है। वसुक्र ऋषि ने तो^{१२} (१०।२९।२) कहा है, कि इन्द्र स्वयं कुत्सके साथ रथ पर बैठकर लड़ने गये। क्या इसी कारण तो कुत्स को सारथी नहीं कहा गया? कुत्स वागिरस (कुत्स आर्जुनेयसे भिन्न)^{१३} (१।११२।९,२३)के अनुसार “इन्द्रने वमिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य, कुत्स आर्जुनेय, तुर्वीति और दभीतिकी रक्षा की थी।” ये सभी नमकालीन थे, वह कहना मुश्किल है। भरद्वाज^{१४} (६।१९।१३) एक ही वाक्यमें कुत्स, आयु और अतियिग्वकी रक्षा करनेकी बात करते हैं। अतियिग्व दिवोदान था, कुत्स आर्जुनेयको हम जानते हैं, आयु भी इसी समयका कोई आर्य योद्धा रहा होगा।

१७ देवक मान्यमान

शम्बर और उनकी जाति वालोंके अतिरिक्त एक आर्य नाम वाला व्यक्ति देवक मान्यमान है, जिने एक ही ऋचामें शम्बरके साथ मारे जानेका उल्लेख वमिष्ठने किया है^{१५} (७।१८।२०)। अन्य आर्य राजाओं या

जननायकोके सघर्षका जो उल्लेख ऋग्वेदमें है, उनके वारेमें हम निश्चय नहीं कह सकते, कि वह दिवोदासके समकालीन थे। कुछ उनमें समकालीन रहे होंगे, और कुछ उसके बाद के।

१८ सुश्रवा

भव्यने इन्द्रकी महिमा गाते^{१९} (१।५३।९) बतलाया है, कि उसने सुश्रवाके ऊपर आक्रमण करनेवाले दो-दस (बीस) जन-राजाओं को ६० हजार ९९ आदमियोंके साथ हराया। यह बीस जन-राजा (जन-राज) कौन थे, और सुश्रवा कौन था? भव्य ही आगे कहते हैं^{२०} (१।५३।१०)—“तुम (इन्द्र)ने सुश्रवाकी रक्षा की (१०)। सुश्रवाके वारेमें इसमें अधिक हमें कुछ मालूम नहीं है।

१९ तुर्वयाण

भव्य आगिरसने सुश्रवाके साथ तुर्वयाणकी भी इन्द्र द्वारा रक्षा की बात कही है (१०), और कुत्स, अतिथिग्व और आयुको तरुण महान् राजा सुश्रवाके अधीन होनेकी बात बतलाई है। इससे सुश्रवाके वारेमें हमारी जिज्ञासा बढ जाती है, परन्तु आगे कोई समाधान नहीं मिलता।

२०. ऋणचय

यह रुशम जनका बहुत ही घनाढ्य राजा था, जिसने वधु^{२१}—(५।३०।१२, १४)को चारहजार गायें दी—“रुशमोके राजाने चारहजार गायें दी, ऋणचयके धनको मैंने ग्रहण किया। वह रात मैंने रुशमोके राजा ऋणचयके पास वितार्ई।” चार हजार गायोंके (आज ८ लाख रुपये) दान देने वाले राजाका वैभव असाधारण रहा होगा।

२१ पाकस्थामा कोरयाण

कण्व ऋषि दिवोदासके समकालीन थे, और तुर्वश-यदु जनोके पुरोहित होनेसे उनके सहायक और उनके पुत्र सुदास के विरोधियोंके समर्थक

रहे होंगे, यदि वह तब भी जिन्दा थे । उनके पुत्र मेवातिथि (मेव्या-
तिथि) ने कुरयाणके पुत्र पाकस्यामाकी महिमा गाई " (८।३।२१, २२)
है—“मरुत् देवताओंने जो दिया था, उसे पाकस्यामा कौरयाणने मुझे
दिया । पाकस्यामाने मुन्दर घुरोवाला लाल रङ्गका रय दिया । उसने
वस्त्र और शक्तिदायक अम्यञ्जन दिने । लाल (रय)के दाता उस भोज
(पाकस्यामा) का मैं वर्णन करता हूँ (२४) । यदु-तुवंश जनोकी भूमिके
पास ही पाकस्यामाकी भूमि रही होगी । कुरयाण उमके जनका नाम होगा,
अथवा पिता या पूर्वजका ।

२२. देवश्रवा, २३. देववात

देवश्रवा और देववात भारत थे, जिसका अर्थ है, वह भरतजनके
थे । पीछे हुए भरत राजाका ऋग्वेदमें कोई वर्णन नहीं आता । देववात-
की सन्तान सृजयका उल्लेख वामदेवने भी किया है" (४।१५।४), इन-
लिए यह देववात पहले ही का कोई पुरुष है । देवश्रवा और देववात
दोनों भाई, अग्नि देवताके परम उपानक थे, जिनकी महिमा गाते
हुए दोनोंने कहा है" (३।२३।१-५)—“अग्नि मयित हुआ, (वह)
पुत्रा, कवि, अध्वरका नेता गृहमें है । वनोंको विनाश करते भी वह अजेय,
अमृत जातवेदा है । भरतोकी सन्तान देवश्रवा और देववातने सुदक्ष धनवान्
अग्निको मया । दस अगुलियोने पुरातन, मुजात, माताओंमें प्रिय अग्निजो
पंदा किया । देववात-देवश्रवा के अग्नि की तुम स्तुति करो । . . .
पृथ्वी के श्रेष्ठ धन-मम्पन्न स्थानमें स्थापित किया । हे अग्नि, तुम दृष्टवती
आपया, नरन्वतीके तट पर धनसहित प्रज्वलित रही ।”

लकड़ीके दो पाटोवाली अरणियोंमें मय (रगड)कर अग्निको उत्पन्न
किया जाता था, उगीका जिध्र यहाँ आया है । उन ऋचाओंमें वर्णित दृष्ट-
वती आजकी घग्घर नदी है, नरन्वती आज भी निमालिकने कुरक्षेत्र होकर
बहने वाली इमी नामसे पुकारी जाती है । उन दोनोंके बीचकी नदी नरन्वती
ही आपया है ।

२४. सृञ्जय दैववात, २५. महिराघ साञ्जंय

उपरोक्त दैववातके पुत्र सृञ्जयका उल्लेख भरद्वाजने^{३३} (६।२७।७) किया है—“उस (इन्द्र) ने तुवंशको सृञ्जयके लिए प्रदान किया, वृचीवतोको दैववातके लिए दिया।” तुवंश और वृचीवतोको दैववात सृञ्जयके वसमे करा देना यहाँ अभिप्रेत है। दैववात अपत्य वाचक है, मुख्य नाम सृञ्जय है, यह वात वामदेवके इस कथनसे स्पष्ट हो जाती है^{३४} (४।१५।४)—“यह जो अग्नि पूर्वमें दैववात सृञ्जयके लिए प्रज्वलित हुआ”। भरद्वाज-पुत्र गर्गके कथन^{३५} (६।४७।२५)से यह भी पता लगता है, कि “सृञ्जय-पुत्र (साञ्जंय)ने भरद्वाजोकी पूजा की।” यह सृञ्जय-पुत्र कौन था ? महिराघ।

२६. पुरुकुत्स

कुत्स नामधारी तीन व्यक्तियोंका पता ऋचाओसे मिलता है, यह हम वतला आये हैं। यह कुत्स पुरुजनका था, इसीलिए इसे पुरुकुत्स कहा गया। इसका पुत्र त्रसदस्यु सुदासका समकालीन था, इसलिए पिता दिवोदासका समकालीन रहा होगा। भरद्वाजने इसकी महिमा गाई, इससे भी इसी वातका समर्थन होता है। भरद्वाजके कहने^{३६} (६।२०।१०)से पता लगता है, कि इन्द्रने पुरुकुत्सके लिए दासोकी सात शारदी पुरोको दर्दराया। शरदकालीन पुरोके कहनेसे जान पड़ता है, कि पहाडके लोग उस समय सर्दियोंसे बचनेके लिए तराई की गरम जगहोंमें आ अपने दुर्गवद्ध स्थानोंमें रहते थे। कुमाऊँ-गढवालमें ठण्डी जगहोंके निवासियोंका अपने पशुओंके साथ तराईमें घमत्पपीके लिए आना अब भी देखा जाता है। पुरुकुत्स ने किरातोकी ऐसी सात शारदी पुरोको लूटा होगा। वसिष्ठके भाई अगस्त्य^{३७} (१।१७।४।२)की ऋचामें भी इस वातका उल्लेख मिलता है—“इन्द्रने मृधवाच (म्लेच्छ)के सात शारदी पुरोको नष्ट किया, और युवा पुरुकुत्सके लिए अनवद्य अरणा (नदी)को देकर वृत्र (शत्रु)का वध किया।” इससे पता लगता है, कि सात पुरियोंको लेते उनके पास वहनेवाली नदीको भी

पुरुकुत्सने दखल कर लिया। नोवा गोतम भी यही बात * (१।६३।७) दुहराते हैं—“इन्द्रने पुरुकुत्सके लिए सात पुरोको ध्वस्त किया।” कुत्स आगिरम * (१।११२।७) बतलाते हैं, कि अश्विद्वयने पृष्णिगु पुरुकुत्सकी रक्षा की। पृष्णिगु विचित्र गौओ वाले पुरुकुत्सका विशेषण है, या वह एक अलग राजा था ?

२७ असदस्यु पौरुकुत्स्य

यह मुदामके पुरोहित वमिण्डके अनुसार * (७।१९।३) पुरुकुत्सका पुत्र था—“इन्द्र तुमने मुदासकी रक्षा की, वृत्रहत्या (शवर-युद्ध) में पौरुकुत्सि असदस्युकी रक्षा की।” असदस्युने स्वयं कहा है, * (४।४२।८-९)—“दौर्गह असदस्युके वन्वनमें रहते समय सात ऋषि पितर थे, उन्होंने इस असदस्युके यज्ञ को कराया। पुरुकुत्सानीने इन्द्रवरुणको हव्य प्रदान किया। तब राजा असदस्युको शत्रुनाशक अर्धदेव मिला।” पुरुकुत्सानी असदस्युकी माँ रही होगी। इसका नाम ही बतलाता है, कि यह दस्युओंके लिए आसकारी था। अर्धदेव क्या इसके पुत्रका नाम था ? असदस्युको दौर्गह कहा गया है, दुर्गह कोई पूर्वज रहा होगा ? भवरण * (५।३३।८)ने गंरिधित पौरुकुत्स्यमे हिरण्ययुक्त दम नफेद घोडोके पानेका उल्लेख किया है। गंरिधित या मतलब है गिरिमें रहने वाला। घायद उत्तर (ध्याम-मतलुजके बीच) के पहाडोमें असदस्युका कोई दुर्ग था। वामदेवके कहने * (४।३८।१)मे मालूम होता है, कि असदस्यु भारी दाता था। असदस्युमे दान पाने वालोंमें गौभरि भी थे, जिन्होंने कहा है * (८।१९।३६, ३७)—“अतिमहान् अयं, नत्पति पौरुकुत्स्य असदस्युने मुझे पचास वयुये दी, और नूरास्तु नदीके किनारे तीन-भत्तर (२१०) ध्यामा गौएँ दी।” वयुओका अर्थ यहाँ बहुत नहीं है। गौभरिसे उननी वयुओकी जावय्यतना क्या था ? वह दानियाँ थी, जो परंतवागियोभी लटकियाँ रहीं होंगी। गौभरिने इसी सूत्रमें * (८।१९।३२) में कहा है—“अग्नि नन्नात् असदस्युका रक्षक है।” नन्नात् मन्त्र का अभी उनना प्रचार नहीं था, और न

उसका वैसा भारी अर्थ उस समय लिया जाता था, जैसाकि आजकल पुरुकुत्सका पुत्र होनेके कारण त्रसदस्यु पुरु-जन का था, जो कि मतलुज-व्यासके पूर्वमें पहाड तक उस समय निवास करता था ।

२८ कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र

इसीके नाममें पहले पहल हम कुरु शब्दका उपयोग पाते हैं । पुरुकुत्सका पौत्र होनेके कारण यह पुरु और सुदासके समय भी मौजूद और शायद उसका शत्रु भी था । इसका पुरोहित कवप ऐलूप था, जो दाशराज्ञ-युद्धमें पानीमें डूबकर मरा था । कवपने अपने यजमानकी उदारताका (१०।३२।९ और १०।३३।४) उल्लेख किया है । “दाता कुरुश्रवणके दिये हुए धन भद्र है । मैं (कवप ऋषि) ने त्रसदस्युके पुत्र राजा कुरुश्रवण मे याचना की, जो कि दाताओमें बहुत बडा है ।

§२ दिवोदास के कार्य

१. दिवोदास अतिथिग्व

दिवोदासको अपने आर्य जनोके साथ भी पहिले कुछ सघर्ष करना पडा था, लेकिन उतना नहीं, जितना कि उसके पुत्र सुदासको । यह हमें मालूम ही है, कि दस्युओके साथ लोहा लेने वाले आर्य-नायकोमें कुत्स आर्जुनेय, ऋजिश्वा, वैदथी आदि भी थे । हम यह भी वतला चुके हैं, कि कुत्स आर्जुनेय शायद दिवोदासका सेनापति था । पञ्चजनोमें तुर्वश और यदुने पश्चिमसे आकर दस्युओंसे लोहा लिया था । जान पडता है, तुर्वश और यदुने शम्बरसे निर्णायक युद्ध लडनेके पहले ही दिवोदासने समझौता कर लिया था । यह समझौता विल्कुल शान्तिपूर्वक नहीं हुआ था, क्योंकि दिवोदासके मरनेके बाद उसके उत्तराधिकारी सुदासके साथ लडने वाले दस राजाओमें यह दोनो जन मुख्य थे । जहाँ तक दिवोदासका मन्त्रन्ध है, वसिष्ठके अनुसार^{१९} (७।१९।८) तुर्वश और याद्व (यदु) ने अतिथिग्वकी अधीनता स्वीकार की थी । अमहीयु आगिरस^{२०} (९।६१।२)ने भी सोमकी

महिमा गाते हुए कहा है, कि उमने तुर्वंग और यदुको दिवोदामके वगमे कर दिया ।

शम्बरके अतिरिक्त कुछ और दम्यु-शासकोको दिवोदासने हराया था, जिनमें वर्चो तो शम्बरके माय ही उदङ्गजके महायुद्धमें मारा गया । सव्य आगिरस कहते हैं^{२८} (१।५३।८)—करञ्ज और पर्णयको अतिथिग्व (दिवोदाम)के लिए इन्द्रने मारा । वगृदके ती पुरोको ऋजिग्वाने तोडा । मौ पुरोका तोडने वाला दिवोदास था । वगृद शम्बरका दूसरा नाम नहीं है । मव्यकी मौ मव्याका अर्थ वदमरत्यक है । किमी अज्ञात ऋषिकी एक ऋचा (१०।४८।८)में इन्द्रमे कहलाया गया है—“मने गुंगुओमे अतिथिग्व (दिवोदाम)को अन्न-धन दिलवाया, पर्णय और करञ्जको मारा ।” गुंगु जान पड़ता है, किमी अनार्य कवीलेका नाम था ।

दिवोदाम देवोका प्रिय था, यद्यपि उनन अशोककी तरह “देवाना प्रिय”की उपाधि नहीं धारण की । उसके पुत्रने ऋचाओको बनाकर ऋषियोंकी सूचीमे नाम लिखवाया, और पौत्र या दूसरा पुत्र परुच्छेप भी ऋषि था, लेकिन, दिवोदामकी कोई ऋचा नहीं मिलती । तो भी देवताओंका नाशालकार उमे होता था । दीर्घतमाके पुत्र कक्षीवान्के अनुमार^{२९} (१।११६।८) दोनों अश्वि-देवता दिवोदामके पान आये थे । कुत्न आगिरसके अनुमार^{३०} (१।११२।१४) अश्विद्वयने शम्बर-हृत्यामें अतिथिग्व दिवोदामकी रक्षा की थी । कक्षीवान् (१।११९।४) मिफं अश्विद्वय द्वारा दिवोदामकी भारी रक्षा करनेकी ही बात नहीं कर्ने, बल्कि यह भी सूचित करते हैं, कि उन्होंने उमे बचाया । भुज्यु शायद दिवोदाम का कोई महकागी आर्यनायक था ।

२ शम्बर-हत्या

शम्बर के वधमें हम हम महायुद्ध के बारे में भी बातें आये हैं । उनमें तान के तरोव दम्युओ के मारे जाने की बात अनिरञ्जित है । दिवोदामके पुत्रोहित (प्रधानमन्त्री) भद्रराजके प्रभावकी बात हम बनला चुके हैं । इनमें पाप नहीं, आर्यजनोंमें इन समय जाँ पड़ता थी, उनका

बहुत कुछ श्रेय भरद्वाजको है। जहाँ तक हथियारका सम्बन्ध है, जिसको ही बलपर शम्बरको जीता गया था, उसका श्रेय दिवोदासको ही देना होगा। ऋषि अपने देवताओको दूर स्वर्गमें रहकर तमाशा देखनेवाले नहीं मानते थे। देवता सघर्षोंमें उनके साथ रहते सीधे भाग लेते थे। कुत्स आर्जु-नेयके रथ पर इन्द्र स्वयं चढ़कर शृष्णसे लड़ने गया था। देवताओके साथ यह सम्पर्क कैसे स्थापित होता था, इसका स्पष्ट वर्णन हमें नहीं मिलता। लेकिन, वामदेवने अपनी ऋचाओमें इन्द्रको उत्तम पुरुष "मै" में जिस तरह वर्णित किया है, उससे जान पड़ता है, कि देवता शरीर पर आया करते थे। गढ़वालमें पाण्डव-नृत्य होते हैं। वहाँ पञ्च पाण्डव और द्रौपदी जीवन भरके लिए एक व्यक्तिको चुन लेते हैं, और उनके शरीर पर आकर सारी बात उत्तम पुरुषमें वतलाते हैं। वह पाण्डव-नृत्यमें भी अपने वाहनके शरीर द्वारा शामिल होते हैं। किन्नर देशमें अब भी देवताओके साथ उनके भक्तोका सजीव सम्बन्ध देखा जाता है। वहाँके एक देवताने तो एक बड़े अग्नेज अफसरके ऊपर इतना प्रभाव डाला था, कि उसने उसके लिए राजासे कहकर जमीनकी माफी दिलवाई। यह ठीक है, कि इसके भीतर यदि कोई वास्तविकता है, तो यही, कि आदमी हैननाटिज्ममें आकर वैसी चेष्टाएँ करने लगता है, और चित्तकी अत्यन्त एकाग्रताके कारण उसकी कुछ बातें सही भी निकलती हैं। इन और दूसरे स्थानोंमें आधुनिक उच्च-शिक्षा-प्राप्त पुरुषोंको भी आज इसके बारेमें अकल वेच खाते देखते हैं, तो आज से तीन हजार वर्ष पहले इन बातों पर कितना विश्वास किया जाता होगा, यह आसानीसे समझा जा सकता है। इन्द्र, अग्नि, सोम, अश्विद्वय आदि वेदकालीन आर्य देवता ऐसे ही किसी ढङ्गसे अपने भक्तोंके सहायक होते थे।

भरद्वाजके अनुसार " (६।२६।३) इन्द्रने अतिथिग्व (दिवोदास)की महिमा बढ़ाते अमर्मा (शम्बर)के सिरको काटा। परुच्छेप दैवोदासि" (१।१३०।७)के अनुसार—“इन्द्रने दिवोदासके लिए ९० पुर तोड़े, अतिथिग्व के लिए शम्बरको पहाड़से नीचे मारा।”

शम्बर-हत्याके प्रत्यक्षदर्शी भरद्वाज कहते हैं—

“अग्नि, तुमने सोम छानने वाले दिवोदासका बहुत श्रेष्ठ घन, भरद्वाजको भी दिया” (६।१६।५)।”

“वृत्रहा (शत्रुनाशक) अग्नि दिवोदानका मच्चा पति है” (६।१६।१९)।

“इन्द्र, तुमने दिवोदासके लिए शम्बरको मारा। यह सोम छना है, इसे पीयो” (६।४३।१)।

इन वचनोंमें पता लगता है, कि शम्बरको पहाड़के नीचे लडाई लटनी पड़ी। युद्धका स्थान उदध्रज था, इमें ऋषि गर्गने वतलाया है*।

भरद्वाजके समकालीन वामदेव भी कहते हैं (४।२६।३)—“मैं (इन्द्र)ने शम्बरकी ९९ पुरियोंको तोड़ा, और माँवीको दिवोदान अतिथिग्र को दिया।” इस प्रकार नीवी पुरी इस दिवोदासके हाथमें पहाड़ोंमें उसके और उसके वंशजोंके हाथमें रही, जिसमें वह पहाड़के लोगों पर अपना प्रभुत्व रखते थे। शम्बरकी भूमिका देश नुमन्त (घन-सम्पन्न) था। यह तो निश्चय ही है, कि उस समयकी खनने उपयोगी धातु ताम्र—जिसे आर्य अयम् कहते थे—उसी तरफ से आर्योंके पान आती थी। गाय-भेड़-बकरी भी पहाड़ निवासियों के पालन बहुत थी।

ऋचाओंके जङ्गलमें विचरती ऐतिहासिक सूचनाओंमें माहूम होता है, कि दिवोदास और नुदान यद्यपि अपने कालके नवने बड़े आर्य-नायक थे, किन्तु वही एक मात्र नायक नहीं थे। दूसरे भी वंशधरों ने नगण्य थे, न पुराणमें। पुराणोंमें पुरुकुल्य, प्रमदस्यु और कुन्धवर्ग अपने समयके प्रतापी राजा थे, जो हजारोंका दान देने थे। पुराणोंकी कीर्ति बढानेमें उन्होंने बहुत काम किया था, और उसीके कारण वेद-कालके बाद पुराण-युग बनाया प्रतापी बना। यद्यपि इन हजार ऋचाओंके जङ्गलमें ने हमें सूचीकी तरह ऐतिहासिक तथ्योंको ढूँढना पड़ता है, पर वह अत्रिक्त निश्चयनीय है। उनके बादकी परम्परा महाभारत रामायण और पुराणोंमें मिलती है, जो अधिर

* देखो अध्याय ८।३ (पृष्ठ १०२)

व्यवस्थित रूपमें होनेपर भी उतनी विश्वसनीय नहीं है। तो भी, सप्तसिन्धु के वाद में गगा-जमुनाकी उपत्यकाओंसे कुरुओंकी प्रधानता स्थापित हुई।

§३ हथियार

ऋग्वेदिक आर्य ताम्र-युगमें थे, जिसमें सिन्धु-उपत्यकाके नागरिक उससे डेढ़ हजार वर्ष पहलेसे रहते आये थे। अयस्, लोह, अश्मन् ताँबेके नाम थे। इसीके इषु (वाण), कुलिश या वज्र (गदा), परशु (फरसा) जैसे युद्धके हथियार बनते थे। उनके निपग (तूणीर), और ज्या चमड़ेके थे। असैनिक हथियारोंमें वाशी (बसूला), आदि ताँबेके थे।

१. इषु, २ निषंग

प्रजापति-पुत्र ऋषि यज्ञने^{१०} (१०।१०३।२, ३) कहा है—“योद्धा पुरुषो, इन्द्रकी सहायता पा विजयी बनो, शत्रुओंको पराजित करो। रुलाने-वाले जागरूक विजयी अजेय दुर्घर्ष (वीर) हाथमें वाण लिये हैं ॥२॥

“हाथमें वाण लिये तूणीरवालोंके गणके साथ स्वयवशी इन्द्र युद्धमें रहते हैं। फेंके वाणों द्वारा शत्रुको जीतनेवाले सोमपायी और श्रेष्ठ धनुर्धर इन्द्र, शत्रुओंको परास्त करते हैं।”

३ धनुष, ४ ज्या, ५ वर्म

भारद्वाजके पुत्र पायु हथियारोंकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। आखिर उनके पिता शम्बर-विजेता दिवोदासके पुरोहित (प्रधानमन्त्री) भी तो थे। अपने पिताकी तरह ही दिवोदासके युद्धमें उन्हें भी सर्वस्वकी बाजी लगानी पड़ी होगी। उन्होंने वर्म, कवच, धनुष, इषुधि (तर्कश) की तारीफ की है। ज्याके बारेमें कहते हैं^{१०} (६।७५।१-४) यह ज्या युद्धसे पार ले जानेकी इच्छा करती है, मानो प्रिय वचन बोलनेके लिए ही धनुर्धरके कानके पास आती है, जैसे स्त्री प्रिय सखाका आलिंगन करती बात करती है ॥३॥

“वेमनस्क स्त्रीकी तरह ही शत्रुके ऊपर आक्रमण

करते समय, पुत्रको माताकी तरह रखा करें, और अच्छी तरह जानते (दिवोदासके) शत्रुओको वेध डालें ॥४॥”

मुदास ऋग्वेदका एक महान् विजेता था। वह यदि हथियारोंकी महिमा गाये, तो आश्चर्य क्या? उसने अपने सूक्त^१ (१०।१३३।१) की मातमे मे छ ऋचाओमे यही प्रार्थना की है, कि दूसरो (शत्रुओ) की ज्या छिन्न-भिन्न हो जाये—“अन्येषा ज्याका अधिवन्त्रपु नभन्ता।”

६ कुलिश

विश्वामित्रने कुलिशकी उपमा देते हुए कहा है^२ (३।२।१)—“हम यज्ञ बढ़ानेवाले वैश्वानर (अग्नि) के लिये पवित्र घृतकी तरह स्तुति करेगे। जैसे कुलिश (कुल्हाडा) रथको बनाता है, वैसे ही मनुष्य और ऋत्विक् देवोंको बुलाते दो प्रकारके (गाहंपत्य और आहवनीय) अग्निका सम्कार करते हैं।”

७ परशु

कुलिश केवल वज्र या गदाको ही नहीं कहा जाता था, वह कुल्हाड़ेका भी पर्याय था। परशु लडाईका फरमा था, जिसे परशुरामके नाममें भी हम देखते हैं। विश्वामित्रने परशुका उल्लेख करते हुए कहा है^३ (३।५३।२२)—“हे इन्द्र, जैसे फरसेको पाकर गिम्बल (वृक्ष) दुग्नी होता है, वैसे ही हमारे शत्रु सन्तप्य हो। जैसे मेमलका वृक्ष गिर जाता है, जैसे हांडी (जगा) उबलकर फेन गिराती है, वैसे ही हमारे शत्रु गिर जायें।”

८ वागी, ९ ऋषि

वागी आजकल बगूलेको कहते हैं। इसका इन्तेमाल उन समय भी होता था। ऋषि द्यावात्यकी ऋचा^४ (५।५७।२) है—“हे सुवृद्धि मनीषी मरुतो, तुम वागी-महित, ऋषि (छुरी)-महित, मुन्दर धनुष-मुपन, वाण-मुपन, तूणीरवारी मुन्दर घोंटे, मुन्दर रथवाले, मुन्दर आयुत्रके नाथ तैयार होओ।” मरीचि-मुत्र कश्यप भी^५ (८।२९।३) वागीका उल्लेख

करते हैं—“देवोंमें निश्चल(वह) एक आयसी (ताँबेकी) वाशी (बसूला) हाथमें धारण करता है।”

१०. वज्र

वज्रको कुलिश भी कहते हैं। यह एक तरहकी गदा थी, जो पापाण-युगसे चली आई थी। दधीचि विदथ-पुत्रकी हड्डियोंका इन्द्रने वज्र बनाया, यह कथा पुराणोंमें आती है। कश्यपने^{१४} (८।२९।४) कहा है—“एक (देव) हाथमें रखे वज्रको धारण करता है, उससे वृत्रो (शत्रुओं) का नाश करता है।”

११. अत्क

यह एक परिधानका भी नाम था, पर शुनहोत्र^{१५} (६।३३।३) के कथनसे किसी हथियारका भी यह नाम मालूम होता है—“हे सूर्य इन्द्र, तुम आर्य और दास दोनों अमित्रो वृत्रो (शत्रुओं)को मानो तेज धारावाले अत्कोसे मारते हो, युद्धमें मनुष्योंको विदारण करते हो।”

१२. नाव

हलके वारेमें हम वामदेव ऋषिके प्रकरणमें बतला आये हैं। आर्य नावोका इस्तेमाल करते थे, व्यापारकी ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक नहीं थी। उनकी नावें अधिकतर साधारण यातायातके साधन के तौरपर इस्तेमाल होती थी। दीर्घतमा-सन्तान कक्षीवान्की ऋचा^{१६} (१।११६।५) में सौ पतवारो वाली (शतारित्रा) नावका उल्लेख आया है—“हे दोनों अश्विनीकुमारो, तुमने निरालम्ब, अयुक्त स्थान, अगाध समुद्रमें सौ पतवारोवाली नावपर बैठाकर डूबते भुज्युको पार किया।”

अध्याय १०

सुदास

§१. सुदास वीतहव्य

एक महाप्रतापी राजाके बाद उसका पुत्र उसमें भी अधिक प्रतापी हो, मा इतिहासमें कम देखा जाता है। सुदास अपवाद रूपमें प्रतापी पुत्र था, उसने दिवोदासकी सफलताओंको बहुत आगे बढ़ाया। दिवोदासने पहाड़के स्युओंके नकटको नष्ट करके मत्स्यसिन्धुको आर्योंके लिये सुरक्षित ही कर दिया, वल्कि हिमालयकी समृद्ध चरागाहों और उपत्यकाओं, उनकी पानोंका रास्ता भी खोल दिया, और सिन्धुने मरुभूमि तकके आर्य-जनोमें एकता स्थापित करके उसे एक राज्यका रूप दे दिया। लेकिन, नारे आर्यजन उसके लिए तैयार नहीं थे, इसलिए दिवोदासके मरने ही उन्होंने हर जगह पर उठाया। इसके लिए सुदानको अपने पिताने भी अधिक नम्रप करना था। सुदान और दाशराज्यपुत्रके मन्त्रन्वकी बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्री हनुमदमें मिलती है। बनिष्ठका एक पूरा सूक्त (७।१८) इनोके वर्णनमें है। प्रित्नु जन भी पहले विद्वध था। प्रित्नु-भरतके वंशजके लिए ही उनमें नम्रप किया था। पूयु और पर्गु जन भी उनके महायक थे। पूयु और पर्गु नामके जन ईरानियोंमें भी मिलते हैं। इनमें यह नहीं समझना चाहिए, कि इतिहासिक पूयु-पर्गु पीछे ईरानमें देने जानेवाले पर्मियन और पार्थियन जन हैं। ईरानी और मत्स्यसिन्धुके आर्य एक ही वंशके दो शाखाएँ थीं। दोनोंने एक जगह रहनेके समय प्राचीन पूयु-पर्गु जनक ही कुछ लोग ईरानमें गये और कुछ मत्स्यसिन्धुमें आये, यह अमंभ्रम नहीं है। सुदानके महायकोंमें

भरतोके पुराने पुरोहित दीर्घतमाकी सन्तानें भी थी। भरद्वाजकी सन्तानोको यद्यपि सुदासके समय पुरोहित (मन्त्री) पदसे वचित किया गया, किन्तु उन्होंने सुदासके शत्रुओका साथ दिया हो, ऐसा पता नहीं लगता। वसिष्ठ तो युद्धके मुख्य सूत्रधार थे, और शायद उनके सम्बन्धी जमदग्नि भी उनके साथ रहे। विश्वामित्रने पीछे वसिष्ठका स्थान ग्रहण किया, दाशराज्ययुद्धमें वह और उनका जन कुशिक सुदामका सहायक था।

दस राजा शत्रु थे, लेकिन उसका यह अर्थ नहीं, कि शत्रुओकी सख्या केवल दस ही थी। मुख्य शत्रु दस थे। लेकिन इनकी गणना ऋग्वेदमें नहीं दी गई है। विद्वानोका भी इसमें मतभेद है। तो भी दस प्रधान शत्रुओमें १ तुर्वश, २ यदु, ३ अनु, ४ द्रुह्यु, ५ पुरु तो अवश्य ही थे। बाकी पाँच ६ गिम्यु, ७ कवप (कुरुश्रवणका पुरोहित), ८ भेद, ९-१० दो वैकर्ण रहे होंगे। तुर्वश और यदुके पुरोहित कण्व थे, एव द्रुह्युके भृगु (गृत्समद), पुरुके अत्रि। इनके भी अपने यजमानोके साथ होनेकी अधिक सम्भावना है। कवपके कारण उनका यजमान कुरुश्रवण भी सुदासके विरोधमें खिच गया हो, तो कोई अचरज नहीं। तुर्वश-यदुने मत्स्योपर एक वार प्रहार किया था, लेकिन मत्स्य अब अपने शत्रुओके साथ मिलकर सुदासके विरोधी थे। इस प्रकार (११) मत्स्य दसकी सूचीसे बाहरके शत्रु थे। १२ पक्य (पह्लून), १३ भलानस, १४ अलिन, १५ विपाणी, १६ अज, १७ शिव, १८ शिशु, १९ यक्षु ये सभी किमी न किसी समय शत्रु थे।

युच्यामधि, चायमान कवि, सतुक, उचथ, श्रुत, वृद्ध, मन्युके नाम भी आते हैं, जो भी सुदासके विरुद्ध इस मधर्पमें शामिल हुए थे।

१ वसिष्ठ पुरोहित

भरद्वाज दिवोदासके समय बहुत प्रभावशाली पुरुष थे, लेकिन सुदामके दाशराज्ययुद्ध-विजयके समय वसिष्ठ उनमें भी अधिक प्रभाव रखते थे। वसिष्ठ अपनेको भरतो (सुदामके जन) का विधाता मानते थे। वह

कहते हैं' (७।३३।६)—“गौकी तरह भरत पहले दण्डमे भयभीत अ-जन, (अनाय) वच्चे ने थे, इसमे पहले (जब) कि वमिष्ठ उनके पुरोहित हुए। फिर त्रित्मुओ (भरतो) की प्रजा खूब बढ़ी।” दुर्मित्र (त्रित्मु) मुदामके अपने जन युद्धमें भागनेके लिए मजबूर हुए, और उन्होंने मारा घन (भोजन) मुदामको प्रदान किया (७।१८।१४)।” मारे भोजनके देनेकी बातका उल्लेख फिर (१७) वमिष्ठ करते हैं। भर-द्वाजके कुलवालोंने शरीरमे भी दिवोदामकी महायता की थी। उम वक्त अभी श्रुवा और अमिका पक्का बेटवारा नहीं हुआ था, और न जमि उठानेका काम किसी एक वर्गके हाथमें दे दिया गया था। वमिष्ठके लोग सुदासके लिए खुल कर लड़े थे, जिनके लिए श्रुपिने स्वयं उन्हें प्रेरित किया था (७।३३।१-३)—“मेरे गोरे, दक्षिण ओर चूडा बांधनेवाले प्रमन्न हो, मैं उठकर कहता हूँ, कि तुम मुझमे दूर न रहो।” फिर सुदानकी गफायनामे अपने कुलवालोंकी महायताका उल्लेख करते कहते हैं (३)—“कौन इन प्रकार नदी पार हुआ है, विमने इस प्रकार भेदको मारा, विमने इस प्रकार दादाराजमे मुदामकी रक्षा की? वमिष्ठो, तुम्हारी बाणीमे उन्ने रक्षा की।” फिर पर मारे केशको रचना प्राचीनकालमे मुमश्मानोते, आनेके समय तरु हमारे यहाँ प्रचलित था। उने वक्त राजा तर जूडेकी शकलमे बांधा जाता था। चूडा (जूडा), अलग-अलग जनोकी अलग-अलग दण्डमे बांधी जाती थी। वमिष्ठके कुलके लोग निरके दाहिनी ओर बांधने थे, इनाइए उन्हे “दक्षिणत कपर्दा” (दाहिने जूडावाले) कहा गया है। उमवी मनुके जारम्भ होनेके तरीख तक स्त्रियाँ भी पगटी बांधती थी। वैदिक नारियाँ भी उने बाँधती होंगी। ऐसा होनेपर वमिष्ठके कुलकी स्त्रियाँ भी दक्षिणत कपर्दा रती होंगी। कुमारियाँ चार-चार कपर्द बाँधती थीं। (१०।११४।३) उन्हे चतुष्कपर्दा कहते थे। यहा कपर्दमे जूडा नहीं, बल्कि चाँदी अभिप्रेत हो सकती है—शायद दो कपर्द पानोंके पतनने नामने उदरने थे, जो दो पीछेती ओर।

मुदामका फाँट भाँट प्रतर्दन भी था। गजपि ऋत्नाजोमें उन्के चिह्न

कोई प्रमाण नहीं मिलता। कुछ वेदानुशीलकोका मत है, कि प्रतर्दन बड़ा लड़का था, जिसे भरद्वाजने पिताकी गद्दीपर बैठाया। पर, मनस्वी सुदास इसे वर्दाश्त नहीं कर सका, अथवा वह योग्य पिताका योग्य पुत्र नहीं था, और दिवोदासकी सफलताओंको अक्षुण्ण नहीं रख सकता था। असन्तुष्ट लोगोंने सुदामका पक्ष लिया, जिनमें वसिष्ठ मुख्य थे। वसिष्ठने सुदासका अभिषेक करके उसे भरतोका राजा घोषित किया। दोनों भाइयोंमें लड़ाई हुई, जिसमें ही शायद प्रतर्दन मारा गया, और जिस तरह समुद्रगुप्तकी गद्दीपर बैठे अपने बड़े भाई रामगुप्तको मारकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य बन बैठा, वैसे ही सुदास भरतोका अधिराज हुआ। ऐसा माननेपर त्रित्सुओंके साथ आरम्भमें सुदासके सघर्षकी भी व्याख्या हो जाती है।

२. सुदास

वसिष्ठको सुदासने दान दिये, जिनका उल्लेख वसिष्ठने स्वयं किया है (७।१८।२२-२३)—“देववातके नाती सुदासने वधुओंके साथ दो रथ और दो सौ गायें मुझे दी। हे अर्हन (पूजनीय) अग्नि, पैजवन (सुदास) के दानको पा होताकी तरह मैं स्तुतिगान करता घर जा रहा हूँ।” “पैजवन (सुदास) ने मोनेके आभूषणवाले चार घोड़े मेरे लिये दान दिये (२३)।”

दिवोदासका पुत्र सुदास था, इसपर कुछ विद्वान् सन्देह प्रकट करते हैं, जिसकी वसिष्ठके इस वचन (७।१८।२५) से गुजाइश नहीं रहती—“हे भरतो, पिता दिवोदासकी तरह सुदासकी सहायता करो (दिवोदास न पितर)। और पैजवनके घरकी रक्षा करो।” वसिष्ठ सुदासके ही श्रद्धाभाजन नहीं थे, बल्कि पौरुक्त्ति त्रसदस्यु भी उनकी कृपाका पात्र था, इसीलिये वह इन्द्रकी महिमा गाते कहते हैं (७।१९।३)—“तुमने सुदासकी सारी रक्षाओंसे रक्षा की, युद्धमें पौरुक्त्ति त्रसदस्युकी रक्षा की।” इसमें यह मन्देह हो सकता है, कि त्रसदस्यु सुदाससे नहीं लड़ा, पर यह भिन्न समयकी बात हो सकती है। वसिष्ठ कहते हैं—

“इन्द्र, हवि-दाता दानी सुदामके लिये वह भोजन अन्न-घन सदा है
“(७।१९।६)।”

“इन्द्रने सुदामके लिये लोक बनाया, घन दिया” (७।२०।२)।”

“इन्द्र, तुम्हारी मँकटो रक्षायें और सहस्रो प्रशमायें सुदासके लिये
हो” (७।२५।३)।”

“सुदामके रथको न कोई हटा सकता, न रोक सकता है, जिसका कि
रक्षक इन्द्र है। वह गौओं-वाले व्रजमें जाता है” (७।३२।१०)।”

“हे इन्द्र-वरुण, दास और आर्य शत्रुओंको मारो, सुदामकी रक्षा करो।”

वसिष्ठके कथनमें^{१३} (७।८३।१) पता लगता है, कि इन्द्र-वरुणकी
कृपा पा पृथु और पशु गायोंके (लूटनेके) लिये पूर्व दिशामें गये। “तुमने
दामों और शत्रुओंको मारा, आर्य शत्रुको मारा और सुदाम की रक्षा की।”
पहले जिन शत्रुओंके विरुद्ध ऋषि अपने देवताओंमें प्रार्थना करने थे,
वह दस्यु थे, किन्तु अब आर्य और दस्यु दोनोंके नाशके लिये उन्हें प्रार्थना
करनी पडी। सुदामके शत्रु तो मुख्यत आर्य ही थे।

§२. दाशराज्युद्ध

१. शत्रु

गम्बर-युद्धकी तरह दाशराज्युद्ध भी कोई एकाघ मालका मघर्ष नहीं
था। इसमें सुदानका काफी समय लगा था। वसिष्ठ कहते हैं”
(७।८३।६-७)—“इन्द्र-वरुणने दश राजाओंमें वाधित सुदानकी
शत्रुओंके नाश रक्षा की।” इसका अर्थ यह है, कि शत्रुओंके नाश जो
गृह-तन्त्र हुआ था, वह अब शान्त हो गया था, एव दश राजाओंने सुदान
और उनके शत्रुओंको पराजित करनेका प्रयत्न किया था। अगली श्रृंखलमें
वसिष्ठ कहते हैं, कि ज-यज्ञानां अ-भक्त दश राजाओंने ररुद्धा हो (मगिता)
सुदानने युद्ध किया। “ममिता” का अर्थ पराजित होना है, या ममिता
(युद्धक्षेत्र) में लड़नेकी बात यहाँ की गई है। सुदानके शत्रुओंमें कुबज और
यदु मन्त्र थे। वसिष्ठके कहनेमें^{१४} (७।१८।६-८) पता लगता है कि

“तुवंश, मत्स्य, भृगु और द्रुह्युने मिलकर एक दूसरेका सहायक वन आक्रमण किया था।” अगली दो ऋचाओं (७, ८) से मालूम होता है, कि पक्वो, भलानसो, अलिनो, विपाणियो, शिवोने भी आक्रमण किया था, जिसमें आर्यकी गाये त्रित्सुओंको मिली। दुर्दान्त, बुरी नीयतवाले शत्रुओंने परुष्णीको ले लिया, पर अन्तमें चयमानका पुत्र कवि पृथिवीपर गिर पडा। परुष्णीमें शत्रुओंको मुंहकी खानी पडी, और सुदासने उनको छिन्न-भिन्न कर दिया अन्यत्र” (७।८३।८) फिर इमी युद्धके बारेमें वसिष्ठ कहते हैं—“दाश-राज्ञमें मव तरफसे धिरे सुदासको इन्द्र-वरुणने सहायता की। युद्धमें कपर्दवाले सफेद त्रित्सु प्रार्थना करते थे।”

विश्वामित्रने व्यास और सतलुजको अगाधसे गाध वननेके लिये ऐसी सुन्दर प्रार्थना की है, जिसे ऋग्वेदकी सर्वोत्कृष्ट कविता कह सकते हैं। परन्तु, नदियोंको गाध बनानेका दावा वसिष्ठ भी करते हैं। नदिया ऋषिकी प्रार्थनासे गाध न हुई हो। सयोगसे वैसा हो जाना असम्भव नहीं। शत्रुओंका पीछा करते सुदासके घोडसवारोंने कही पर नदीमें कम पानं। पाया होगा। यह घटना दाशराज्ञयुद्धके समय हुई थी, अत वसिष्ठको ही इमका श्रेय देना पडेगा। वसिष्ठ इसके बारेमें कहते हैं” (७।१८।५)—“इन्द्रने सुदासके लिये नदियोंको गाध और सुपारा कर दिया।” इमके बाद ही तुवंश, मत्स्य, भृगु, द्रुह्य आदिके ऊपर प्रहार और चायमान कविके मारे जानेका उल्लेख है। इमसे यही जान पडता है, कि जिस नदीको पार करके सुदासने शत्रुओं-पर आक्रमण किया था, वह शतुद्रि और विपाश् नहीं, बल्कि परुष्णी (रावी) थी। दोनो वैकर्णोंके २१ लोगोको राजा (मुदास) ने काटा, वैसे ही जैसे ऋत्विज यज्ञमें कुशको काटता है।” (७।१८।११-१४) यही नहीं, बल्कि चही (१२) उल्लेख है, कि वज्रवाहु (इन्द्र) ने श्रुत कवप, वृद्ध और द्रुह्युको पानीमें डुबा दिया। जान पडता है, परुष्णी (रावी) को पार कर शत्रुओंने एक बार भरतोकी भूमि (रावी और सतलुजके बीचके द्वाव) में आनेमें सफलता प्राप्त की थी। मुदासने उनके ऊपर जो भीषण आक्रमण किया, उमसे भागते शत्रुओंके कितने ही लोग नदीमें डूब कर मर गये।

सुदासने किमी जगह नदीको सुपार पा उमे पार कर शत्रुओका पीछा किया । वसिष्ठके आगेके वचन (१३) मे यह पता लगता है, कि सुदासने अपने शत्रुओके मात दुर्गोको ध्वस्त किया । उनकी बहुत सी सम्पत्ति त्रित्नुओको मिली । इस युद्धमें भारी नर-महार हुआ था—“वाक्रमणकारी अनु और द्रुह्यके साथ मौ, छ हजार, छियामठ वीर मर कर मो गये (१४) ।”

सुदासका मवने बडा युद्ध यही दाशराजयुद्ध था, जिसमें उसने अपने वुरी तरह से हरा कर शत्रुओको परुष्णी(रावी) के पश्चिम भगाते उनके देशपर आक्रमण किया ।

वसिष्ठ सुदासके शत्रु भेदका भी उल्लेख^{१८} (७।१८।१८) करते सुदासकी सफलताका श्रेय इन्द्रको देते हुए कहते हैं—‘इन्द्र, तुम्हारे बहुतने शत्रु पराजित हो गये । अब अश्रुद्वालु भेदको वममें करो । जो (कोई) तुम्हारी स्तुति करता है, उसको यह हानि पहुँचाता है । उमे वज्रमे मारो ।’ भेद नाम आर्य जैसा मालूम नहीं होता, हो सकता है, दाशराजयुद्धमे सुदासको फसा और निर्बल देखकर इस नामके किमी राजा या जनने हाय-पर फैलाने की कोशिश की हो ।

उन सफलताओके बाद सुदासको कीर्तिका वदना स्वाभाविक था । वसिष्ठने भी कहा है^{१९} (७।१८।२४, २५)—जिम (सुदास) की कीर्ति पृथिवी-आकाशके भीतर विस्तृत है, जिमने नूव दान वाटा है, लोग जिमको स्तुति इन्द्रकी तरह करने हैं, जिमने युद्धमें युध्यामघिको नष्ट किया । मस्तु इस सुदासको पिता दिवोदामकी तरह मानें । पैजवनके निवेत की रक्षा करें, सुदासका बल अविनाशी अजर तथा अगिनिल हो ।”

२ युद्ध

वसिष्ठकी पुरोहिती (प्रधान मन्त्रिन्व) में ही सुदासने दाशराज-युद्ध^{२०} (७।८३।१-१०) और पूर्वमें जमुना तकके विजय-यात्रा की थी, यह वसिष्ठके इन वचन^{२१} (७।१८।१९) मे मालूम होता है—“जमुना और त्रित्नुओने इन्द्रको संतुष्ट किया । यह भेदको इन्द्रने मारा । बज,

शिग्रु और यक्षु अश्वोंके सिरोकी वलि लेकर आये।" भेद जमुनाके पास का ही कोई राजा या जन था। अज, शिग्रु और यक्षु शायद जमुना और गगाके बीचमें रहनेवाली आर्य-भिन्न जातिया थी, जिन्होंने सुदासकी अधीनता स्वीकार की।

वसिष्ठने भरतोंके नामको अमर करते हुए कहा ^३ (७।८।४)—“जव सूर्यकी तरह बड़े प्रकाशके साथ अग्नि चमकते हुये (उन) भरतोंकी स्तुति सुनते हैं। जिस भरत जनने कि युद्धमें पुरुओको पराजित किया।”

सुदासकी सफलताका सबसे अधिक श्रेय वसिष्ठ और उनके लोग लेना चाहते थे, इसके लिये सुदास बहुत दिनों तक तैयार नहीं रह सकता था। हाँ सकता है, अभिमानवश कुछ अवहेलना भी की गई हो। वसिष्ठका पुत्र ने शक्ति शायद पिताकी गम्भीरताका उत्तराधिकारी नहीं था। पीछेकी परम्परासे मालूम होता है, कि मन्त्रिपदको दूसरेके हाथमें देना उसे बहुत बुरा लगा, और विरोधका परिणाम शक्तिको सुदासके हाथो अपने प्राणोंसे हाथ धोना पडा। सुदासके पहले सघर्षोंमें विश्वामित्रने भी सहायता की थी, इसलिए वसिष्ठसे विमुख होने पर सुदासने विश्वामित्रको वह स्थान दिया।

३. सुदेवी रानी

सुदासकी रानी सुदेवी अपने पतिकी योग्य पत्नी थी, जिसे सुदास ने कुत्स आगिरस^४ (१।११२।१९) के अनुसार अश्विन्का प्रसादसे पाया।

५३. अश्वमेध

१ विश्वामित्र

विश्वामित्रके नदी-सूक्तके देखनेसे मालूम होता है, कि वह ऋग्वेदके सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनको इसका कुछ अभिमान भी था ^५ (३।५३।१२) — ‘जो यह दोनो पृथिवी और आकाश है, उनकी और इन्द्रकी मैंने स्तुति की। विश्वामित्रकी यह स्तुति भरतोंके जनकी रक्षा करती है।’ विश्वामित्रने नदियोंको गाव बना कर सुदासको पार कराया, यह दावा

गन्त मालूम होता है, लेकिन विश्वामित्र कहते हैं ^१ (३।५३।९) —“महान् ऋषि विश्वामित्रने मिन्यु अर्णव (नदा) को रोका, जिसमें इन्द्रने कुशिकोके साथ प्यार करते पार कराया।”

कुशिक पुराने पुरुजनने ही सम्बन्ध रखनेवाला एक जन था, जो सरस्वती की उपत्यकामें रहता था। वमिष्ठक लोगोकी तरह यह भी बहुत शक्तिशाली जन था। विश्वामित्र कहते हैं ^१ (३।२६।३)—“वैश्वानर अग्नि अश्वकी तरह हिनहिनाते कुशिकोके यहा प्रज्वलित किये जाते हैं। वह अग्नि हमें सुवीर्य, सुअश्वयुक्त रत्न प्रदान करे।” “कुशिक लोग एक-एक घरमें अग्निका सेवन करते हैं” (३।२९।१५)। सरस्वतीकी उपत्यकाके ये आर्य इस बातका अभिमान करते थे, कि हमारे हरेक घरमें अग्निकी प्रतिष्ठा है, सभी अग्निदेवके भक्त हैं। जहा तक बटे शत्रुओके पराजय करने और जमुना-उपत्यकाके अनार्योंको अधीन करनेका सम्बन्ध था, यह काम वमिष्ठके नमय ही हो चुका था। विश्वामित्रके समय इन नफलनाओको कायम रखना भर था, लेकिन उत्तनेमें विशेषता क्या रहती? उन्नीलिये विश्वामित्रने सुदाससे अश्वमेध करवाया।

२. अश्वमेध

नुरभि सुगन्धित अश्व-मास आर्योंका एक प्रिय साध था, यह ऋचाओ ने मालूम होता है ^{१८} (१।१६२।१०)। पर, अश्वको हवनके रूपमें बलि देकर एक बड़े यज्ञ द्वारा अपने प्रभुत्वको प्रख्यापित करना साध्य इन्नी नमय पहलपहल किया गया। इन यज्ञका ऋचाओमें सिर्फ एक उल्लेख है, यद्यपि वहा अश्वके साथ मेघके शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन, निम्न ऋचा ^१ (३।५३।११) ने स्पष्ट हो जाता है, कि सुदानने जो घोड़ा छोड़ा था, उनका उद्देश्य राजनीतिक था—“हे कुशिको, मजग हो जाओ, सुदानने घोड़ेको छोड़ा है। राजाने पूर्व, पश्चिम और उत्तरमें शत्रु का नाम किया। वह पृथिवीमें यग(पैदा) कर रहा है” पूर्व, पश्चिम और उत्तर (प्राक्, पश्चाद्, उदर) का ही नाम लेना और दक्षिणही छोड़ देना बतलाता है, कि सुदान

की विजय सिन्धुनद, हिमालय और जमुनाकी ओर हुई। दक्षिण (मरुभूमि) का बहुत सा भाग उस समय भी शायद इतना समृद्ध नहीं था, कि वह किसी विजेताका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता। इस घोड़ेको रोकनेवाला शायद कोई नहीं था, इसलिये इसके कारण और कोई सघर्ष नहीं करना पड़ा, अन्यथा विश्वामित्रकी ऋचाओंमें उसका उल्लेख जरूर होता। भरतो के राजा सुदासके विश्वामित्र जीवन भर पुगेहित रहे। भरतोके अभिमानके प्रति भी उनकी एक ऋचासे असतोष व्यक्त होता है^{१०} (३।५३।२४)—“हे इन्द्र, भरत-पुत्र लडाई (फूट) जानते हैं, मेल नहीं। शत्रुकी तरफ घोडा भेजते हैं और नित्य युद्धमें धनुष धारण करते हैं।”

सुदासके समय सप्तसिन्धुके आर्योंका चरम उत्कर्ष हुआ। उसीके समय सबसे बड़े ऋषि पैदा हुए। यही समय है, जब कि जन-तन्त्रकी अलग-अलग रखनेकी मनोवृत्ति पर भारी प्रहार हुआ। हरेक अभिमानी आर्यजन अपनी सीमाओंके भीतर किसी दूसरे जनके हस्तक्षेपको बरदाश्त नहीं कर सकता था, पर, यह नीति तभी तक चल सकती थी, जब तक कि किसी प्रबल शत्रुसे मुकाबिला नहीं था। दुर्दान्त शम्बरने अपनी सफलताओंसे आर्यों को बतला दिया, कि तुम्हारी डेढ चावलकी खिचडी बहुत दिनों तक नहीं पक सकती। पड़ोसके आर्यजनोंने शत्रुओंके मुकाबलेमें पूरी सफलता न देखकर यदुओ और तुर्वशोको पश्चिमसे बुलाया। फिर पृथु और पर्शु भी इसी उद्देश्यसे पूर्वकी ओर आये। लेकिन, अलग-अलग रह कर कोई सफल नहीं हो सकता था। दिवोदासने सारे आर्यजनोंके बलको लेकर शम्बरकी शक्तिका सर्वदाके लिये उच्छेद किया। दिवोदामके बाद फिर आर्यजनोंने अपनी पुरानी मनोवृत्तिको अपनाना चाहा। पर, वह उसमें सफल कैसे होते? विकसित आर्थिक जीवन और पराक्रमी मुदाम उसमें बाधक थे। उमने सारे सप्तसिन्धुको एकताबद्ध करनेका काम किया, और जमुनासे पूर्व भी आर्योंके प्रसारका रास्ता खोला।

अध्याय ११

राज-व्यवस्था

§ १. शासक, शासित

यह बतला चुके हैं, कि सप्तमिन्धुमें पहलेपहल आते नमय आर्य जन-व्यवस्थामें थे। उनके प्रमुख पांच जन थे, जिनमें सबसे पूर्ववालेका नाम पुरु था। इसीकी एक शाखा भरत जन था। दिवोदाम और सुदान भरत जनमें हुए। आर्योंके निवास और प्रभावको पूर्वमें बढ़ानेमें यही जन सबसे आगे था। पीछे भरत नामक कोई राजा भी हो सकता है, लेकिन देश की ख्याति उनके नामपर नहीं, बल्कि ऋग्वेदके इसी भरतजनके नामपर हुई। जन-प्रधाने निकलकर अब वह नामन्ती-व्यवस्थामें आ चुके थे, और पितृ-सत्ताके स्वच्छन्द वातावरणमें निकल राजाकी निरकुशताकी ओर बढ़ रहे थे। पर, जनतान्त्रिकतामें उनको उस तरह छुट्टी नहीं मिल सकती थी। आर्योंकी आर्थिक व्यवस्था अभी पुरानी थी। गाय-गोड़े, भेड़-बकरी उनके सबसे बड़े धन थे, वही उनकी जीविकाके साधन थे। अपने पशुओंके चरनेके लिये उन्हें खुली गोचर भूमि और रहनेके लिये गोष्ठ चाहिये थे। एक-एकके पास हजारों गायें-गोड़े होते थे। ऐसे लोगोंके लिये घना वना नगर उपयुक्त नहीं हो सकता था। मोहनजोदरो और हड़प्पा जैसे नगर संजुद थे, पर ग्राम उनके अधिक अनुकूल थे। जारम्भमें ग्रामका जब झुण्ड था, अर्थात् हूण और तुर्क भाषाका ओर्द। पीछे ग्राम मनुष्योंके झुण्डकी जगह मरानोंका झुण्ड माना जाने लगा। आर्य वस्त्रियोंका विभाजन, ग्राम और राष्ट्रके रूपमें था। राष्ट्र और जनपद एक ही अर्थमें वाच्य थे। जनोकी प्रभुत्वता

द्योतक—जनोका निवासस्थान—जनपद और सामन्तोकी प्रधानताका द्योतक राष्ट्र । ग्रामके मुखियाको ग्रामणी (ग्राम + नी) कहते थे, और राष्ट्रके मुखियाको राजा । राजाके लिये सम्राट्, स्वराट्, शास, ईशान, भूपति, पति का भी प्रयोग देखा जाता है । राजाकी सन्तानोको राजपुत्र और राजदुहिता कहते थे ।

१. ग्रामणी

ऋषि नाभानेदिष्टने मनुको ग्रामणीकी उपाधि दी है, जो ग्रामके नेताके लिये नहीं, बल्कि आर्योंके समूहके नेताके लिये इस्तेमाल हुआ है । इससे हजार वर्ष बाद सिंहलके एक प्रतापी राजाको ग्रामणी—नटखटपनके कारण दुष्ट-ग्रामणी—कहा जाता था । ऋषिने मनुकी उदारता की प्रशंसा करते कहा है (१०।६२।११)—“सहस्रके दाता ग्रामणी मनुका कोई अनिष्ट न करे । इसकी दक्षिणा (दान) सूर्यके साथ सब जगह पहुँचे । सार्वणि मनुको देव आयु प्रदान करे, जिससे न थके हम धन पायें ।”

२ राष्ट्र

वसिष्ठने वरुणको राष्ट्रोका राजा कहा है (७।३४।१०, ११) —
“इन नदियोंके जलको सहस्र नेत्रवाले उग्र वरुण देखते हैं ।”

“वह राष्ट्रोंके राजा, नदियोंके रूप है । उनका क्षत्र (बल) अपूर्व और सर्वगत है ।”

एक कल्पित महिला-ऋषि जुहने भी राष्ट्रका उल्लेख किया है (१०।१०९।३)—

“उन्होंने कहा, हाथसे इमको ग्रहण करना चाहिये, यह ब्रह्मजाया है ।

भेजे दूतमें यह (वैसे ही) आसक्त नहीं हुई, जैसे कि क्षत्रियसे रक्षित राष्ट्र ।”

क्षत्रिय (राजा) अभी अपने पुराने अर्थमें व्यवहृत होता था, जैसा कि ईरानके सम्राट् दारयवहु (दारा) ने इस शब्दको अपने लिये इस्तेमाल

किया। जुहूको उसके पति वृहस्पतिने त्याग दिया था। उने पत्नीको पुन स्वीकार करनेके लिये इन ऋचाओमें कहा गया है।

३. विश्

विश्वका अर्थ जनता था, जिनमे ही पीछे वैश्य (विश्वकी मन्तान) शब्द बना। विश्व शक्तिशाली जनका वाचक था, वैश्य या वनियेका नहीं। विश्व राजाको बनाने-विगाडनेका अधिकार रखती थी, जैसा कि राजाके गद्दीपर बैठनेके समय पडे जानेवाले (आगे उद्धृत) मन्त्रोंमें मालूम होगा। नर्वपुरातन ऋषि भरद्वाजने विश्वोंके राजाको उपन्यास (मुजरा) करनेका उल्लेख किया है (६।८।४)—“महान् मरुतोने आकाशमे अग्निको धारण किया, विश्वोंने पूजनीय नमस्कर उस राजाकी स्तुति की। विश्वन्यान् (सूर्य) के दूत वायुने दूरमे वैश्वानर अग्निको यहा पहुचाया।”

४ राजा

राष्ट्रोंके राजाके बारेमे अभी हम (बनिष्ठके वचनमें) कह चुके है। उनके वृद्ध नमस्कारिक भरद्वाजने अग्निकी उपमा राजाके दी है (६।४।४)—“हे अग्नि, तुम हमें अन्न दो। राजाकी तरह मनुओंको नाष्ट करके अन्न हमें प्रदान करो।” आगे भी (६।१२।२)—“हे राजन्, तुम यमस्वी बुद्धिमान् हो। यज्ञ करते (यजमान) बहुत ना ह्य्य तुम्हें प्रदान करते है। तुम त्रिभुवनमें अवस्थित मनुष्यके उत्तम हृद्योगों बडे वेगने (देवताओं के पान) ले जाओ।”

फिर (६।३०।५) भरद्वाज कहते है—“इन्द्र, तुमने जलको फेंकनेके लिये मुक्त किया, दृढ पर्वतको तोटा। सूर्यने नाच चाँ और उभागा पैदा करने तुम नगरके शोभोंके राजा हुए।” अथवा (६।३६।४) इन्द्रको “जनोंके जडिनीय रति और नारे भुवनका एक राजा” कहा है। बनिष्ठ भी इन्द्रके बारेमे भरद्वाजके वचनका समर्थन करते है (६।२७।३)—“इन्द्र जगन् (जगम) के लोकोके राजा, पृथिवीमें नाना नद जो धन है, उनके राजा है। उनीने वह मत्ता (यजमान) को धन देने है, या स्तुति करनेपर

हमारे पास धन भेजें।" वसिष्ठने मित्र (सूर्य) और वरुणकी एक साथ स्तुति करते उन्हें राजा कहा है" (७।६४।२)—“महान् सत्य-रक्षक, सिन्धुओंके पति, क्षत्रिय (राजा) मित्र-वरुण सामने पवारो। हे शीघ्र दाता, मित्र और वरुण द्यौलोकसे अन्न और वृष्टि भेजो।”

कण्वपुत्र प्रगायने इन्द्रको जनोका राजा कहा है" (८।५३।३)—“हे इन्द्र, तुम छाने और अनछाने (सोम) के स्वामी हो। तुम जनोके राजा हो।”

§ २ राजा

१ राजाभिषेक

अगिराकी सन्तान ध्रुवने उन मन्त्रों" (१०।१७३) को बनाया है, जिन्हें राजगद्दीके समय हाल तक पढा जाता था। इनमें राजाको चेतावनी दी गई है, कि विश्व (जनता) की इच्छा ही तुम्हें अचल रख सकती है—

“मैंने तुम्हें लाकर बैठाया। तुम भीतरसे बढो, ध्रुव और अचल बनो।

“सारी विश्व (जनता) तुम्हें पसन्द करे, तुम राष्ट्रसे भ्रष्ट न हो। तुम्हारा राष्ट्र भ्रष्ट न हो ॥१॥

“पर्वतकी तरह अचल हो यहा बढो, च्युत मत हो।

“इन्द्रके समान यहा ध्रुव रहो, इस राष्ट्रको धारण करो ॥२॥

“इस (राजा) को हव्यसे इन्द्रने ध्रुव करके धारण किया।

“उसे सोमने, ब्रह्मणस्पतिने आशीर्वाद दिया ॥३॥

“द्यौलोक ध्रुव (अचल) है, पृथिवी ध्रुव है, ये पर्वत ध्रुव है।

“यह मारा जगत् ध्रुव है, विशोका यह राजा ध्रुव है ॥४॥

“तेरे राष्ट्रको देव बृहस्पति ध्रुव।

“राजा वरुण ध्रुव, इन्द्र-अग्नि ध्रुव धारण करें ॥५॥

“ध्रुव हविप्से हम ध्रुव मोम (विजया) को मिश्रित करते है।”

“इन्द्र प्रजाओंको एक तथा बलि लानेवाली बनाओ ॥६॥”

२. सम्राट्

सम्राट्का अर्थ राजाओका राजा नही था। याज्ञवल्क्यने बृहदारण्यक उपनिषद् (४।२।१) में जनकको "सम्राट्" कहा है। पर, जनक केवल विदेह जनपदका राजा था। भरद्वाजने" (६।७) वैश्वानर अग्निको भी उमी या अच्छे राजाके अर्थमें सम्राट् कहा है—

"द्युलोककी मूर्धा, भूमिके विचरनेवाले, यज्ञके लिये उत्पन्न,

"कवि, सम्राट्, जनके अतिथि वैश्वानर अग्निको देवताओंने पंदा किया ॥१॥

वसिष्ठने सविता (सूर्य) को सम्राट् कहा है" (७।३८)—

"देवी अदिति देव सविताकी सेवा करती आज्ञा पालन करती स्तुति करती है। वरुण, मित्र अर्यमा-महित सम्राट् (सम्यक् प्रकाशमान) देवताकी स्तुति करते हैं ॥४॥"

३. शास

शासन राजाके अर्थमें आया है। शासन शब्दमें वही भाव मिलता है। पीछे राजाके लिये शास (शाह) ईरानमें ही रह गया। स का ह होना ईरानी भाषामें आम तौरमें देया जाता है—शासका शाह और शासानु-शासनका शाहशाह बना। ऋग्वेदमें भी यही उमरा अर्थ है, जैसा कि विश्वा-मिगती ऋचा" (३।४७) में मालूम होता है—

"मरुतो-महित वृषम, वरुणशील दिव्य शासन (राजा),

विश्वविजेता उन उग्र उन्द्रको हम नवीन रक्षाके लिये यहा आश्रयन करते हैं ॥५॥"

४. ईशान

ईशान ऋग्वेदमें अभी शकरीया पर्यायवाची नहीं बना था। यह भी राजाके लिये वैसे ही इस्तेमाल होता था, जैसे बहुत पीछेतरक ईश्वर और परमेश्वर। वसिष्ठने इन्द्रके बारेमें कहा है" (७।३२)—

"हे सूर्य इन्द्र, न दुही गायत्री तरह हम तुम्हें नमस्कार करते हैं।

इस जगत्के सर्वदर्शी जग-स्थावरके ईशान तुम्हें ॥२२॥”

५. स्वराट्

राट्, राजा एक ही शब्द है, और उसके साथ स्व लगानेसे उसका अर्थ स्वयं राजा होता है। गौतम नाथाने कहा है^{१०} (१।६१)—

“द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्षसे भी बढ कर इसकी महिमा है। इन्द्र अपने गृहमे स्वराट् है ॥८॥

६ नृपति

आगिरस कुत्सने इन्द्रकी प्रशंसामे कहा है^{११} (१।१०२)—

“हे नृपति, तुम बलमें तेहरी रस्तीकी तरह, तीन भूमि और तीन प्रकाशोवाले हो। तुम इस सारे भुवनको वहन करते हो। सनातनसे जन्म लिये तुम शत्रु-रहित हो ॥८॥”

७ पति राजा

पति और राजा दोनो शब्दोका इकट्ठा राजाके लिये इस्तेमाल आगिरस तिरश्चीके वचन^{१२} (८।८४) में मिलता है—

“हे इन्द्र, द्येन (वाज) द्वारा लाये गये छाने हुए सुखमय सोमको खुशीके लिये पिये। तुम शाश्वत विशो(जनता)के पतिराजा हो ॥३॥”

८ राजपुत्र, राजदुहिता

राजा होनेपर राजपुत्र और राजदुहिताका होना स्वाभाविक है। राजा जनताका आदमी नहीं था, उसका सिंहासन अब उसके ऊपर था, वैसे ही, जैसे कि इन्द्र, अग्नि, वरुण, मित्रका। इसलिये राजाका लडका होना विशेष सम्मानको प्रकट करता था। दीर्घतमासन्तान ऋषि कक्षीवान्की पुत्री घोषा अपनेका राजदुहिता कहती है। इससे यह जरूर मालूम होता है, कि राजाका शब्द अभी बहुत व्यापक था, तभी कक्षीवान् राजा हो सकते थे। घोषाने दोनो अश्विनीकुमारोकी स्तुति करते कहा है^{१३} (१०।४०)—

“हि अश्विनो, सवेरे जगानेके लिये दो बूढ़े राजाओंकी तरह तुम्हारी स्तुतिकी जाती है। नेवाके लिये किमके घर तुम जाते हो? किसके पास नष्ट करते हो? नरो, किमके सवन (यज्ञ) में राजपुत्रकी तरह तुम जाते हो ॥३॥

हे नरो अश्विनो, राजाकी दुहिता घोषा चारो ओर घूमती, तुम्ह पूछती है। दिन हो या रात तुम मेरे पास रहते हो। रथ और अश्व-युक्त मेरे भतीजेका दमन करते हो ॥५॥”

इन उद्धरणोंमें मालूम होगा, कि विश्व (जनता) अभी पगु नहीं हुई थी। वह अश्व-वद्ध मौजूद थी। उनके अश्वोंकी जरूरत हर जगह थी। गावोंके निवासके कारण आर्य जनयुगीन अयंतन्त्रमें विल्कुल मुक्त नहीं हुए थे, इसलिए निरकुश राजा पैदा नहीं हो सकता था। तो भी अब राजा विश्वमें ऊपर था।

१३ शासन-यत्र

ऋग्वेदमें उस कालके प्रशासनका नकेत भर मिलता है। गण-गति शब्द में गण का नकेत मिलता है। बुद्धके समकालीन रिच्छवि और विन्ने ही हमारे गण मौजूद थे। बुद्धका जन्म ग्रामका मुग्गिया ग्रामणी होता था, जिसे ग्रामजेट्ट (गावता मुग्गिया) भी कहते थे। गावके ज्येष्ठको प्रतिच्यनि हिमालयके कुछ न्यानोंमें बूढ़े या बुढ़ेरेमें मिलता है। बूढ़े गावमें व्यवस्था रखनेके जिम्मेदार होते थे, हर उगाहनेमें भी उनमें सहायता दी जाती थी। ऋग्वेदके ग्रामोंके ग्रामणी भी वही काम करते होंगे।

१ नभा

नभा और गमिनिता उल्लेख ऋग्वेदमें कई जगह आया है। नभाका अर्थ कुछ व्यापक था। उनमें राजनीतिक—ग्राम, राष्ट्र, जन—नभावें ही शामिल नहीं थीं, बल्कि ज्येष्ठो नभा भी। कदा एतद्-पुत्रने उक्ता उल्लेख किया है^१ (१०।३४)—

“जुआडी पूछनेपर शरीर फुलाकर ‘मैं जीतूंगा’ कहते सभामें जाता है।

“पाशे कभी इसकी इच्छा पूरा करते हैं, कभी प्रतिद्वन्द्वीकी ॥६॥”

सभाका प्रयोग, जान पडता है, पीछे जूयेकी सभाके लिये ज्यादा होने लगा, इसीलिये जूआशालाके अध्यक्षको सभिक कहा जाता था। शुनहोत्र-पुत्र गृत्समद सभेयको सभासद्के अर्थमें प्रयुक्त करते हैं (२।२४) —

“ब्रह्मणस्पतिके वाहन (घोड़े) हमारा स्तोत्र सुनते हैं। सभेय विप्र (ऋत्विक्) स्तुति-सहित हव्य प्रदान करते हैं ॥१३॥”

आर्य अपने जवानोको “सभेय” होनेकी प्रार्थना करते थे, अतः उनकी सभायें महत्वपूर्ण थी, जिनमे उनके जवान अपनी वाग्मिता दिखलाते थे। देवातिथि काण्व कहते हैं (८।४) —

‘हे इन्द्र, तुम्हारा सखा, अश्व-युक्त रथी, सुरूप, गोमान्, धनी, वयसे युक्त हो सदा आह्लाद करता सभामें जाता है ॥९॥’

भरद्वाजने भी गायोकी प्रशंसा करते सभाका उल्लेख किया है (६।२८) —

“हे गायो, हमें तुम मोटा करो, हमारे कृश और असुन्दर शरीरको सुदर बनाओ, घरको भद्र बनाओ। हे भद्र बोलनेवालियो, सभाओमें तुम्हारे महाभोजन (अन्न) का बखान किया जाता है ॥६॥”

२ समिति

समिति ही युरोपीय भाषाओमें कमीटी या कमीती है। (शतम और केन्तमका मुख्य भेद यह है, कि शतमके श का केन्तम में क हो जाता है।) समिति या कमीटी आज छोटी सभाको कहते हैं, लेकिन ऋग्वेदिक कालमें यह राजसभा, राष्ट्रकी बड़ी सभा अथवा ससद्को कहा जाता था। बुद्धकालमें गणोकी पार्लियामेण्टके लिये मस्था शब्दका प्रयोग होता था। हरेक गण-राजधानीमे मस्थागार (मथागार) का होना आवश्यक था। पालि-सूत्रोंमें उन्ही नगरोंमें मथागारोका उल्लेख मिलता है, जो गणराज्योंकी राजधानी थे। ऋग्वेदमें संस्थाका प्रयोग नहीं है। उस समय भी मस्था रही होगी,

पर राजतंत्रके अधिक अनुकूल समिति थी। मरीचि-पुत्र कश्यप ने सोमकी उपमा देते कहा है^५ (१०।९७।६)—

“राजा जैसे समितिमें जाते हैं।”

लेकिन, समितिका अर्थ युद्धक्षेत्र भी होना था, जैसा कि कश्यपके ही वचनमें मालूम होता है^६ (९।९२।६)—

“जैसे होता ऋत्विज पशुगृहमें जाते हैं, जैसे भला राजा युद्ध में जाता है। वैसे ही पवित्र होता सोम कलशोंमें जाता है।

सवनन ऋषि समितिका उल्लेख मन्त्र (मलाह) के मन्त्रन्धमें करते हैं^७ (१०।१९।१३)—

“तुम्हारा मन्त्र नमान (एक साथ), समिति एक तो हो।”

३. ब्राजपति, कुलप

शासन या नामाजिक व्यवस्थामें कुलों और ब्राज (नमुदायो) का भी स्थान था। प्रतर्दने^८ (१०।१७९।२) कुलप और ब्राजपतिका उल्लेख किया है—

“हे उन्द्र हवि पक चुका है, आबों। नूर्य काल (दिन) के भागके मध्यमें पहुँच गया है। कुलप जैसे विचरने ब्राजपतिका वैसे ही (तुम्हारे) मन्त्रा निधियोंके साथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।”

इसमें मालूम होता है, कि कुलोंके मुखिवामें ऊपर ब्राजोंके मुखियाका स्थान होता था। ग्राम कुलोंका नमुदाय था। शासक ग्राम नमुदाय ब्राज कहा जाता था, जिसका पति ब्राजपति था। एक ग्राम कई कुलोंमें बँटा होता था। बड़े गाँव या नगरको पुर नहीं कहते थे। शम्बरवी पुत्रिया किलेचन्द्र स्थान थे, यह हम देख चुके हैं।

ऋग्वेदमें जो छिटपुट वर्णन जाता है, उनमें उम समयके शासनका पूरा रूप क्षरित करना सम्भव नहीं है। राज-व्यवस्थामें प्रशासन, न्याय-व्यवस्था, कर (बलि) उगाहना मुख्य था। प्रशासनके लिये शासक १ कुलपति, ० ब्राजपति, ग्रामणी, गणपति और जन्ममें नमिति तथा उमरा प्रदान

३ राजा था। दीवानी-फौजदारी मुकद्दमोको देखनेका भार भी इन्हीके ऊपर होगा। विश्का वलिहृत् (कर देनेवाला) कहा गया है। बहुत सम्भव है, कर नगद नहीं, जिन्स के रूपमें उगाहा जाता था। कर उगाहने में कुलपति, ब्राजपति सहायक होते होंगे।

सैनिक प्रशासनके वारेमें इतना ही कह सकते हैं, कि आर्य सैनिक अनुशासनवद्ध थे। वह हजारोकी सख्यामें शत्रुओपर आक्रमण करने या प्रति-रक्षण के लिये जाते थे। सेनाका सबसे ऊपरका अधिकारी राजा था, लेकिन आर्जुनेय कुत्सको सारथी उपाधि शायद राजाके बाद सबसे बड़े सेनापति होनेके कारण मिली थी। सम्भवत अफसर दशिन् (दशपति), शतिन् (शतपति) और सहस्रिन् (सहस्रपति) होते थे। चतुरग नहीं त्रिरग सेना थी—रथ, घोड़े और पैदलकी। अभी हाथीकी सेना नहीं बनी थी। सप्तसिन्धुमें सिंह जरूर थे, पर हाथियोके होनेका ऋग्वेदसे पता नहीं लगता, और न उनके पालतू बनानेका ही कोई उल्लेख है।

४ पुरोहित (प्रधान-मंत्री)

राजाके पुरोहितका काम केवल यज्ञ और धार्मिक बातोंमें सलाह देना भर नहीं था। वसिष्ठने बड़े अभिमानसे कहा है। त्रित्सु भरत अनाय शिशुकी तरह थे। जब वसिष्ठ उनके पुरोहित हुये, तो वह शक्तिशाली बन गये। पुरोहितको बृहस्पति भी कहा जाता था। वामदेवने बृहस्पति पुरोहित के वारेमें कहा है* (४।५०।१)। वसिष्ठने तृत्सुओकी अपनी पुरोहितीका उल्लेख किया है* (७।८३।४)।

भाग ४
सांस्कृतिक
,

अध्याय १२

शिक्षा, स्वास्थ्य

§१ शिक्षा

चाहे कितनी भी पिछड़ी मानव-जाति हो, उसके लिये भी पूर्वजों द्वारा अर्जित ज्ञान और अनुभवको एक पीढ़ीमें दूसरी पीढ़ीमें पहुंचाना आवश्यक होता है, जिनके वास्ते उसे किमी न किमी तरहकी शिक्षा-प्रणाली अपनानी पड़ती है। वैदिक आर्य अपने पूर्वार्जित ज्ञानको एक पीढ़ीमें दूसरी पीढ़ीमें पहुंचाते थे। जिन ज्ञानको वह पन्म पवित्र मानते थे, वह वेदके मन्त्र थे। ऋग्वेदिक आर्योंके समयमें पहले मोहनजो-डरोंके योग एक तरहकी चित्रलिपि उम्मेमाल कर्ने थे, जिनके हजारोंके कारीर अधर मिल चुके हैं, पर अभी तक पढ़नेकी कुर्जी नहीं मिली है। लिपिनेका पूरी तीरमें प्रचार हो जाने पर भी वेदोंको गुम्मुससे नुनकर पढ़ने का स्वाज हमारे यहां अभी भी पनद किया जाता था, फिर ऋग्वेदके काममें उसे लिपिवद्ध कर्नेका प्रयत्न किया गया होगा, उसकी सम्भावना नहीं है। आर्य बहुत पीछे तक वेदके लिपिवद्ध करनेके खिलाफ रहे क्योंकि तब उनकी गोप्यता नष्ट हो जाती। वैदिक वाद्यमय ही स्यों, बौद्ध और जैन पिटर भी शताब्दियों तक रडम्य रने गये। बौद्ध त्रिपिटक बद्ध-निर्वाणोंके चार शताब्दी बाद और जैन-जागम आठ शताब्दी बाद लिपिवद्ध हुये। तानमें नूनतर नीचे जानेके कारण वेदको धृति करने हैं। शमीरिये भारी विद्वान्ता बटुधुन—बहुत नुना हुन—रहा जाता। हमारी लिपिकी उत्पत्ति कर्ने हुरं और उमना नम्वन्ध किम

पुरानी लिपिसे है, इसका निर्णय अभी नहीं हो सका है । इतना मालूम है, कि हमारी सबसे पुरानी वर्णमाला ब्राह्मी है, जिसके निश्चित कालवाले नमूने अशोक के अभिलेखोंमें मिलते हैं, जो ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दी में या बुद्ध-निर्वाणसे ठाई सौ वर्ष बादके हैं । पिपरहवाके ब्राह्मी अक्षर बुद्धकालीन हैं, यह विवादास्पद है । ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दीसे पहिलेकी वर्णमालाके नमूने मोहनजोडरो, हडप्पाकी चित्रलिपिमें मिलते हैं । दोनो लिपियोका सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल है । यद्यपि मोहनजोडरोकी चित्रलिपिसे उच्चारणवाली वर्णमाला का निकलना बिल्कुल सम्भव है, पर, ब्राह्मी मोहनजोडरोकी लिपिसे निकली, इसे सिद्ध करना अभी सम्भव नहीं है ।

उस समय किसी प्रकारकी मौखिक शिक्षा पुरानी (अतएव पवित्र) कविताओकी जरूर होती थी । उसका सग्रह ऋग्वेदमें होना चाहिये था । पर, वैसा नहीं देखा जाता । ऋग्वेदके प्राचीनतम ऋपि और उनकी कृतिया, हमें भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र तक ले जाती हैं । उससे पुराने दो-चार ही ऐसे ऋपि मिलते हैं, जिनकी कृतिया पुरानी हो सकती हैं, पर, भाषा और सग्रहकी गडबडी ने उनकी प्राचीनताको बहुत कुछ गवा दिया है । अनुमान किया जा सकता है, कि ऋग्वेदके महान् ऋपियोने इन्द्र, अग्नि, मित्रके ऊपर जो हजारो ऋचाये बनाई थी, उनमें कुछ शब्द या भावमें भरद्वाजसे पुरानी हो सकती हैं, पर, इसे निश्चयपूर्वक नहीं बतलाया जा सकता । हमारे सबसे पुराने देवता द्यौ और पृथिवी है, जिन्हे ऋग्वेदमें पितरौ (दोनो माता-पिता) कहा गया है । द्यौ पिता और पृथिवी माता द्यौ-पितर का ख्याल बहुत पुराना है । वह केवल शतम (आर्य-स्लाव) वंश का ही नहीं बल्कि केन्तम् (ग्रीस, रोम आदि) का भी पूज्य देवता था । जुपितर द्यौ-पितरका ही शब्दान्तर है, ज्यौस द्यौस् ही है । द्यौ-सम्यन्वी कितनी ही ऋचायें मिलती हैं, किन्तु ऋग्वेदिक कालमें द्यौकी नहीं, बल्कि इन्द्र की प्रधानता थी ।

ऋग्वेदसे पहलेकी परम्परामें आई ज्ञान-सम्पत्ति अलग नहीं मिलती, इसलिए हम नहीं कह सकते, कि उन कालमें श्रुतिकी शिक्षण-परम्परा किम तरहकी थी। शिक्षा, शिक्षण, प्रशिक्षण शब्दोंका जो अर्थ आज है, वह उन समय नहीं था। ऋग्वेदमें शिक्षाका अर्थ देना है, जैसा कि वमिष्ठकी एक ऋचा' (७।२७।२) में मालूम होता है—

“हे पुरुहित इन्द्र, जो तुम्हारा बल है, उसे मन्त्रा मनुष्योंको दो (शिक्ष)।”

वमिष्ठकी ही दूसरी ऋचामें (७।१०।३५) शिक्षाका अर्थ अनुकरण है—

“इन मेंढकोंमें एकके वचनको दूसरा शक्ति (आचार्य) की तरह अनुकरण करता बोलता है। मेंढको, जब तुम मुन्दर तीरने बोलते हो, तो जलमें सब अग अच्छा हो जाता है।”

यहा वरमात के आरम्भमें मेंढकोंको एक दूसरेका अनुकरण करने बोलनेको ऋग्वेदकाश्रीन गुरु-शिष्योंके पाठमें तुलना की गई है। गोस्वामी तुलसीदासने उन ऋचाको शायद ही देखा हो, पर जान पड़ता है वह उपमा परम्परामें चली आई थी, इसीलिये उन्होंने कहा—

“दादुर धुनि चहु ओर मुहार्ज। वेद पढइ जनु बटु ममुदाज।”

एक मेंढक आवाज निकारता है। उसके बाद दूसरे अनुकरण करते हैं, फिर लड़ी लग जाती है। पुराने समयकी वेद पढ़ानेकी प्रश्रिया अब भी देनी जानी है। गुरु स्वर-रहित मन्त्रको एक बार पढ़ता है। शिष्य उसे दो बार दोहराते हैं। आज गुरु-शिष्य पुस्तकका सहारा लेते हैं। वेद जब लिपिबद्ध नहीं थे, तो गुरु कठिन ऋचाको एक बार बोलता होगा और शिष्य दो बार। इन प्रकार बगैर दोहराने छाटी आयुमें ही बच्चोंको अपना वेद कठिन हो जाता था। यद्यपि नामको छोड़कर और किसी वेद तो मगीतके स्वरोंके साथ नहीं पढ़ा या दोहराया जाता था पर तो भी पढ़ पाठनी तरह उन की एक लय हो ही जानी थी। पवित्र ऋचाको या छन्दोंकी शिक्षा शिष्य गुरुने इसी तरह पाता था। भगद्वाङ्मनिसिद्धी चौकी-पाचवी पीठी तरारे ही रचित मन्त्र ऋग्वेद में मिलते हैं, ऋग्वेदके

सबसे पिछले ऋषियोंने गुरुमुखसे अपने पूर्वज ऋषियोंके ब्रह्म (मन्त्र, पद) का अध्ययन किया था।

ब्रह्म (ऋचा) में अद्भुत शक्ति मानी जाती थी। तभी तो विश्वामित्रने कहा^१ (३।५३।१२) —

“जो यह दोनो द्यौ तथा पृथिवी है, उनसे मैंने इन्द्रको तुष्ट किया। विश्वामित्रका यह ब्रह्म भारत-जनकी रक्षा करता है।”

वेदवाणीकी अद्भुत शक्तिको स्वयं प्राचीनतम ऋषियोंने अपने मुंहमें बखाना था, इसलिये उसके सीखने और कठस्थ करनेकी ओर लोगोका ध्यान बहुत हो, यह स्वाभाविक था।

लेकिन, केवल देवताओंको प्रसन्न करनेसे ही उनकी लोक-यात्रा नहीं चल सकती थी। उस समय सीखनेकी और भी बहुत सी चीजे थी। जिस युद्ध-कौशल को आर्य तरुण गुरुमुखसे सीखते थे, वह सब वेदमें नहीं दिया गया है। नाना शिल्प भी उस वक्त प्रचलित थे, जिन्हें भी सीखना जरूरी था। इन शिल्पोंमेंसे कुछ का ही नाम ऋग्वेदमें मिलता है। मोहन-जोडरो और हड़प्पामें ऋग्वेदसे ढेढ़-दो हजार वर्ष पहलेकी जो चीजें उपलब्ध हुई हैं, उनसे पता लगता है, कि उस समय इजीनियर (वास्तुशिल्पी), राज-गीर, शखरकार, पटकार (जुलाहे) सुनार, चर्मकार, वेणुकार, लोहार, कुम्हार आदि बहुतसे शिल्पकार थे, जिन्हें अपनी बातें अगली पीढ़ी में पहुचानी पडती थी। खेती और उसके लिये उपयोगी ऋतुओंके ज्ञानकी भी शिक्षा आवश्यक थी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्योंको जितनी शिक्षा लेनी पडती थी, वह उतनी ही नहीं थी, जिनका उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है।

§२. स्वास्थ्य

आर्य यथार्थवादी थे। अपने देवताओं पर उनकी परम भक्ति थी, लेकिन पौरुषको भूल कर नहीं। वह जानते थे, इन्द्र भी दिवोदास, सुदासके पौरुषके सहारे ही शत्रुओंका सहार कर सके, इसलिये शरीरकी पुष्टि और स्वास्थ्यकी ओर उनका ध्यान विशेष था। सप्तमिन्वुमें अपनेसे अधिक

मन्य, मन्वृत तथा माधन-मम्पन्न लोगोको पराजित करनेमें आर्य इनीलिये सफल हूये, कि उनके पान तेज चलनेवाले घोडो और घुमन्तुओ की लडाकू प्रकृति के अतिरिक्त तगडा शरीर भी था। उनके सामने मोहनजोडर के नागरिक खर्वकाय थे। हरेक घुमन्तू या अर्ध-घुमन्तूकी तरह आर्य नुलेमे रहना पसन्द करते थे, इमीलिये उन्होने अपना वान नगरोमे नही, ग्रामोमें रखा। सुली ह्वामे वाग, दूध-धी-माम प्रधान-भोजन स्वास्थ्य-मवर्धनके ये गवमे अच्छे माधन उनके पान मांजूद थे। घुडमवारी न्यय एक व्यायाम है। उम समय गायद ही कोई ऐना आवे हो, जो चतुर घोटमवार न हो। शयुओमे प्रतिरक्षा तथा स्वय भी दूमरोकी गायो और भेडोको लूटनेके लिये उह हर वक्त हथियारबन्द रहना पडता था। इमी लिये वह घोटमवागीमे भी चुस्त थे। मल्ल या मल्लविद्याका उल्लेख ऋग्वेदमे नही मिलता। पर, पीछे पजाव और पूर्वी उत्तर-प्रदेशमे एक जनका नाम मल्ल बतलाता है, कि उनमे कुस्तीका ग्राज था। मुष्टियुद्धका स्पष्ट उल्लेख विद्यामित्र-पुत्र मनुच्छन्दातो ऋचा' (१।८।२) में है—

“हे इन्द्र, तुम्हारे द्वारा रक्षित हम घोडोंमे मुष्टिहत्या (मुष्टियुद्ध) द्वारा शयुओतो रोकने।”

कुस्ती (मल्लयुद्ध) या मुष्टियुद्ध केवल स्वास्थ्यके लिये ही उपयुक्त नहीं थी, बल्कि युद्धमें भी इनका उपयोग था, इनलिये आर्य तरुण उनको अच्छी तरह सीखते थे।

नृत्य मनोरजनकी एक उत्तम और मानवकी नयने पुनानी रत्नकला है। यह अच्छा व्यायाम भी है। पौर जाटके दिनोमे जर्होरोंके नृत्य नाचने एक तरुणको मने पनीने-पमीने होते देखा या। उन समय आधुनिक व्यायामके गीकीन एक तरुण दशकने बतलाया था, कि उम नृत्यमे तमरके दोनो तरफकी पैगियोंपर भी बहुत जोर पड रहा है जहापर आधुनिक व्यायामकी शैलियीमे भी जोर पडुवाना सम्भव नहीं, ना मूलित है। अगिरान्नीथी मन्वने नर्तयन् (नचाने) शब्दका प्रयोग (१।५१।३) किया है, पर वह हथियार नचानेके अर्थमें—

“हे इन्द्र, तुमने अगिराओ (पुरोहितो) के लिये वर्षा कराई। अत्रिको अतदुर हथियारसे वचनेके लिये भगाया। विमदको अन्न-सहित (घन) दिया, और सग्राममे वज्र नचाते हुये स्तुतिकर्त्ताकी रक्षा की।”

मस्कृत-असस्कृत सभी आदिम तथा सम्यतामें सबसे आगे बढी आधुनिक जातियोंमें नृत्य बहुप्रचलित व्यायाम और विनोद है। ऋग्वेदिक आर्य सोम (भाग) के बड़े प्रेमी थे। उसे पीकर मस्त होनेमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था। मस्ती और आनन्द दोनोंके लिये मद शब्दका प्रयोग इसीको बतलाता है। आर्य नर-नारी अपनी सोमगोष्ठियोंमें गीत और नृत्यका भी आनन्द लेते थे, जिससे उनके स्वास्थ्यको बहुत लाभ था।

§३ रोग

रोगोंमें यक्ष्मा, हृदयरोग, कुष्ठका उल्लेख ऋग्वेदमें आता है। यक्ष्मा शायद ज्वरका ही दूसरा नाम था, और तपेदिक (टी० वी०) के लिये राज-क्ष्माका प्रयोग होता था। आयर्वन ऋषिने कहा है^१ (१०। ९७। ११, १२)

“जब मैं इन औषधियोंको हाथमें लेता हूँ, तो यक्ष्माकी आत्मा वैसे ही नष्ट होती है, जैसे पकडनेवाली मृत्युमे जीव।

“हे औषधियो, जैसे उग्र और मध्यस्थ दूसरोको बाधित करता है, वैसे ही तुम इसके पर्व-पर्व (पोर-पोर) में व्याप्त हो यक्ष्मको हरो।”

कल्पित नाम वाले प्रजापति-पुत्र यक्ष्मनाशन ऋषि यक्ष्मामे राजयक्ष्माका भेद करते हुये कहते हैं^२ (१०। १६१। १)—

“हवि द्वारा तुझे अज्ञात यक्ष्मा और राजयक्ष्मामे भुक्त करना हूँ। यदि किमी ग्रह (भूत-प्रेत) ने पकडा है, तो उससे इन्द्र-अग्नि इसे मुक्त करें।”

हृदयरोग पुराना रोग है। बुढापेमे शरीरके भीतरी अगोंके जीर्ण-शीर्ण होनेका ही यह एक रूप है। बिना किमी ज्वर या दूसरे रोगके हृदयके विपन्न होनेमे आदमीका एकाएक प्राणान्त होने को पुरानी परिभाषामें रोगियोंकी (श्लघनीय) मृत्यु कहा जाता था। मृत्यु न देकर यदि वह

कष्ट देता रहे, तो वह उत्पीडक रोग है। कण्व-पुत्र प्रस्कण्वने मित्र (सूर्य) ने इसमें वचनेकी कामना की (१। ५०। ११)—

“आज द्यौलोकके ऊपर चढता मित्र (सूर्य) मेरे हृद्रोग और पीलि याको नष्ट करे।”

पीलियाके कारण शरीर पीला (हरिमाण) हो जाता था।

यक्ष्मा, जान पड़ता है, शरीरके बहुतसे रोगोंका नाम था, जैसा कि ब्रिवृहा काश्यपके कथन (१०। १६३। १-६) ने मालूम होता है—

“तेरे दोनो नेत्रो, दोनो नासिका-छिद्रो, दोनो कानो, चिद्रुक, मस्तिष्क और जिह्वाने शीपंस्यानीय यदमाको दूर करता हूँ ॥१॥

“तेरी शीवाने, यमनियोमे, स्नायुओंमे, हृत्तीमे, दोनो पदुओं, दांनो बाहुओं और दोनो कन्धोंमे यदमाको दूर करता हूँ ॥२॥

“तेरी अतडियोमे, गुदाने, हृदयने, म्रानयने, यवृत्तने, तेरे मास-पिण्डोंमे यदमाको दूर करता हूँ ॥३॥

“तेरी जाघोंसे, दोनो पिण्डियोंमे, दोनो गुल्फोंमे, दोनो एडियोमे, दोनो नितम्बोंमे, गमर और मन्त्रस्थानने यदमाको दूर करता हूँ ॥४॥

“तेरे मृत्रस्थानने, लोमने, नावने, तेरे नर्व आत्मा (शरीर) ने इन यदमाओं में दूर करता हूँ ॥५॥

“अग-अगने, रोम-रोमने, पर्व-पर्वने उत्पन्न तेरी गारी आत्मा (शरीर) ने इस यदमाको दूर करता हूँ ॥६॥”

घोषाके कुष्ठ रोगने पीडित होनेकी वात्ता न्यष्ट उल्लेख ऋग्वेदमें नहीं आता, जिनका कि दूसरी जगहों में जिक्र आता है। शीरंता-मुत्र कर्श-वान्ने कथन (१। ११३। ७) ने मालूम होता है कि वह किसी रोगने पीडित होकर बिना प्राहे ही पिताके घरमें बैठे थी—

“हे अश्विनो, तुमने स्तुति करते एता-मुत्र विष्वक्त विष्वापुतो पिताके घरमें प्रेथी जाती घोषाके लिये पति प्रदान किया।

रोगीकी तन्त्रा उन समय भी काफी होगी, पर उनके रोगों का अधिका विभाजन नहीं हुआ था।

१४. चिकित्सा

ऋग्वेदसे छ शताब्दियों वाद बुद्धके समय औपधियोका काफी विस्तार-और विकास हो चुका था। पर, अभी रस और घातु-भस्मोंके प्रयोगमें आने-में शताब्दियोंकी देर थी। बुद्धके समय पचभैषज्य (घी-मक्खन-तेल-मधु-खाड), चर्वी, मूल, कपाय, पत्ता, फल, गोद, नमकवाली दवा कच्चे मास-रक्तकी दवाइया प्रचलित थी। अजन, तेल, नस्य, घूमवत्ती और मद्ययुक्त औषध भी इस्तेमाल किये जाते थे। ताप देकर पसीना निकालना, सींगसे खून निकालना, मालिश, चीर-फाड, मलहम-मट्टी, सर्प-चिकित्सा, विष-चिकित्सा पाण्डुरोग-चिकित्सा, ग्रह (भूत) चिकित्सा, चर्मरोग-चिकित्सा का भी उल्लेख "विनय-पिटक" (महावग्ग, भैषज्य-स्कन्धक) में आता है। इनमें से अधिकांश औषधियों और चिकित्साओंका पहिले भी प्रचार रहा होगा।

ऋग्वेदमें निम्न रोगोंका उल्लेख आता है—

अगद, अजका, अज्ञात यक्ष्मा, अनमौव, अनूक्य, अप्वा, अम, अशीपद, अशीमिद, जीवगृभ, दुर्नामा (बवासीर), नवज्वार, पृपन्य, पृष्ठ्यामयी, यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, वदन, वधि, विववृ, विसूचि, सुराम, श्राम, हरिमा, हृद्रोग।

औषधियोंकी सख्या बहुत थी, तभी तो भिषग् आयर्वनने" (१०। ९७।६) कहा है—

"जैने राजा लोग समितिमें एकत्रित होते हैं, वैसे ही जिसके पास औषधियोंका समागम होता है उसे रोगनाशक, राक्षसनाशक विप्र भिषग् कहा जाता है।"

आजकल वैद्य लोग घन्वतरिको इष्ट मानते हैं, किन्तु वैदिक कालमें यमल अश्विनो (अश्विनीकुमारो) की महिमा गाई जाती थी। इरिन्विठिने "(८।१८।८) कहा है—

"वे (दिव्य) भिषग् अश्विद्वय हमारा कल्याण करें, वाघाओंको यहासे दूर हटावें।"

हिरण्यम्नूप अश्विनोकुमारोकी प्रशमामें कहते हैं' (१।३४।९-९) —

“शुभके स्वामी, हे अश्विनो हमें तीन बार दिव्य, तीन बार पायिव और तीन बार जल्योय दवाइयोको दो। नयुकी तरह मेरी मन्तानोको तीनों प्रकारमें सुख दो ॥६॥

“हे नामत्यो, तुम्हारे तीन प्रकारके रथके तीन चक्के कहा हैं? नौड-सहित तीनों घुरे कहा हैं? उम शक्तिशाली गदहेका जोटना कब होगा, जिमके साथ तुम यज्ञमें आओगे ॥७॥”

उममें भागूम होता है, कि जश्विनोकुमारोके रथमें गदहा (रानभ) जुतता था। चाहे घोडेके समान न नमजते हो, लेकिन गदहे पालने और उमके इस्तेमाल करनेमें आर्य हीनता नहीं अनुभव करने थे।

मादक मोमको भी औषध माना जाता था, यह आश्चर्यकी बात नहीं। आजकल भी दवाइयोंमें मद्यमारका प्रयोग काफी देखा जाता है। प्रगाय-पुन हयंतने कहा है” (८।६१।१७) —

“मित्र, वम्ण, सूर्यके उदय होनेपर मोमकी ग्रहण करने है, मो आतुर (रोगी) का भेषज है।”

कण्व-पुत्र नोभरि ऋग्वेदके प्रसिद्ध ऋषि हैं। वह अश्विनोकुमारोकी महिमा गाते हैं” (८।२२।१०) कहते हैं—

“हे जिनने तुमने पत्थकी, जिनने अधिगु, जिनने वज्रकी रक्षाकी, उनके साथ अति शीघ्र आओ। जो आतुर (रोगी) है, उसकी चिन्तना करो।”

स्त्रियोका वस्त्रसे सु-आच्छादित रहना अच्छा समझा जाता था। विश्वमना आगिरस कहते (८।२६।१३) है—

“हे अश्विद्वय, सेवा करनेपर वस्त्रसे आच्छादित वधूकी तरह यज्ञ द्वारा सेवित हो तुम मगल करते हो।”

वस्त्रोका अधिक व्यवहार होनेपर भी वह कितने प्रकारके थे, इसका पता कम लगता है। उनके परिधान थे—

१ द्रापि—वामदेवने इस वस्त्रका उल्लेख (४।५३।२) किया है—

“द्युलोकके धारक, भुवनके प्रजापति कवि (सविता) पिशग (पीली) द्रापि धारण करते हैं। वह प्रार्थित तर्पित हो विचक्षण सविता सुन्दर धन प्रदान करें।”

दीर्घतमा-मन्तान कक्षीवान् भी द्रापिका वर्णन करते हैं (१।११६।१०)—

“हे अश्विकुमारो, द्रापिकी तरह तुमने च्यवनके वुढापेको खोल फेंका है दर्शनीयो, तुमने उस परित्यक्त के जीवनको बढाया, और (उसे) कन्याओका पति बनाया।”

अजीगर्त-पुत्र शुन शेष वरुणकी प्रशंसा करते हैं (१।२५।१३)—

“सुनहली द्रापिको धारण करते वरुण (अपना) पुष्ट शरीर ढाकते हैं। चारो ओर किरणें फैलती है।”

इन ऋचाओंसे मालूम होता है, कि पिशग, हिरण्य अर्थात् (पीली), सुनहली द्रापि पहनी जाती थी। शायद हिमालयके बहुत से स्थानोंकी स्त्रियोंके दोडू (चादर) की तरह इसे पहिना जाता था।

२ अत्क—भरद्वाजने इसका उल्लेख किया है (६।२९।३)—

“इन्द्र, श्रीके लिये तेरे पैरोकी हम सेवा करते हैं। वज्र-युक्त तुम शत्रुओको बलमे पराजित करते हमे दक्षिणा देते हो। हे नेता, दर्शनीय सुरभि अत्कको पहने तुम सूर्यकी तरह भ्रमण करते हो।”

कल्पित वेन भार्गव ऋपि वेन नामक देवताका वर्णन करते कहते हैं (१०।१२३।७)—

“गन्धर्वं स्वर्गमें ऊचे स्थित, नामने विचित्र आयुधधारी, सुरभि अत्क पहने दर्शनीय (वेन) प्रिय मुन्व उत्पन्न करते है।”

३ शिश्र—यह गिरस्त्राण और उष्णीप (पगडी) दोनोंका नाम था। वनिष्ठने इन्द्रके लिये कहा है^{१४} (७।३५।३)—

“हे शिश्रवाले (इन्द्र), मुदामके लिये तेरी नैकड़ो रक्षाये, महनो अभिलापाये और दान हो। इन सब मदकि हथियारोको नष्ट करो, और (हमें) उज्ज्वल रत्न दो।”

वामदेवके कथनने^{१५} (४।३७।४) मालूम होता है, कि शिश्र गिरस्त्राण था—

“हे ऋभुओ, तुम्हारे अश्व मोटे है, रथ चमकते है, तुम ताम्र-गिर (अय. शिश्र), अन्नवान् और अच्छे निष्क (मुवर्ण) वाले हो। हे इन्द्रके पुत्रो, बलके नातियो, तुम्हारे आनन्दके लिये यह अग्रणी भेवन किया जा रहा है।”

शिश्रने वहा नावेके गिरस्त्राणका पता लगता है। पर. गिरस्त्राण भी उष्णीप (पगडी) काही एक विकसित रूपहै। इसप्रकार आयोकी पीगाकमे उष्णीप भी थी। प्राय ईसवी नन्के आरम्भ तक भारतमें स्त्री-पुरुष दोनों उष्णीप (पगडी) वाधते रहे। उन समय भारतने जो लोग बाहरके उपनिवेशोमें जाकर बसे, वहा भी नर-नागी दोनोंके नाय उष्णीप गयी। बर्माकी नीमान्त पर चीन में—जहाँ पुराने समयमें पूर्व-गन्धा उपनिवेश आबाद था—आज भी स्त्री-पुरुष पगडी वाधते हैं। द्रापिका ही स्पान्तर पीछेता उत्तराग (चादर) है। मुवान या अच्छे जन्तर्वाभने पीछे धोतीका रूप लिया। म्दियोंमें उमीने उत्तरीय या उत्तरा-गने जुडकर नाडीका रूप लिया, या घेरके बटा देने पर लहंगा बन गया। मोहन-जोड़ो और हडप्पाकी पीगाकमें भी जन्तर्वाभ और उत्तरा-गना पता लगता है। मुचन यापायजामा गहोली पीगाक थी, जो उन्हीके नाय ईसा-पूर्व और परवान्ती प्रथम गनान्दियोंमें भारत आया, और पीछे हमारे राजाओंने उने अपनी पीगाकमें सजिज कर लिया, यह अपने निक्की परगुन्पन पहने गुन्त राजाओंको देनेने मालूम होता है।

§२ भूषा

आभूषणोंमें कुण्डल (कर्णशोभन), गलेकी तावीज या हमेल, छातीका हार तथा हाथमें ककण (खादि) का पता लगता है। यह जेवर सोने और मणिके होते थे। वैदिक कालमें चादीका यदि अभाव नहीं, तो प्रचार जरूर कम था। पुराने समयमें चादीकी दुर्लभताके कारण चादी और सोनेका भाव बराबर देखा जाता है, यह भी उसके प्रचारमें बाधक था। सोना हमारे यहाँ थोड़ा बहुत होता था, और उससे भी अधिक सोना अल्ताईकी खानें ताम्रयुगके एमिया के भिन्न-भिन्न देशोंको प्रदान करती थी, जो वीचकी जातियोंसे होता भारत पहुँचता था।

१ कर्ण-आभूषण—कुरुसुति ऋषि कर्णशोभन (कर्णाभरण) का उल्लेख करते हैं" (८।६७।३)—

"हे शत्रुनाशक इन्द्र, तुम वसु, तुम प्रशसनीय सुने जाते हो। हमें बहुतसे कर्णशोभन प्रदान करो।"

कक्षीवान् ^{१०}(१।१२२।१४) विश्वे (सारे) देवोंसे प्रार्थना करते हैं—

"हे विश्वेदेवो, हमें हिरण्यकर्ण (सुवर्ण-कुण्डली), मणिग्रीव (मणिकण्ठावाला), रूपवान् पुत्र प्रदान करो। सद्य निकलती हमारी श्रेष्ठ वाणी और हव्यको पसद करो।"

२ सोनेका कण्ठा—गलेमें निष्क (सोने) पहननेका उल्लेख है। निष्क सोनेकी मुद्रा नहीं था। कुपाणोंसे पहले सोनेकी मुद्रा भारतमें किसी राजाने नहीं ढाली न उसका नगूना कोई मिलता। हो सकता है, गलेमें पहननेके लिये विशेष आकारके मोनेके टुकड़े बनते हो, जिन्हें निष्क कहा जाता था। अग्नि-गोत्रीय वन्न, ऋषि गलेमें निष्क पहने हुए ऋत्वजोका उल्लेख करते हैं" (५।१९।३)—

"स्तुतिकर्ता अन्नाकाक्षी, निष्कग्रीव ऋत्विज इस अग्निके बलको बढ़ाते हैं।"

निष्कग्रीव हीके लिये वमिष्ठने सुनिष्क कहा है" (७।५६।११)—

“वे सुन्दर आयुधवाले गतिशील मुनिष्क मरुत् स्वयं शरीरको सजाते ।”

कक्षीवानुने विश्वेदेवोको (१।१२२।१४) मणिग्रीव वतलाया है, जिमने पता लगता है, कि आर्य पुरुष-स्त्री गलेमें निष्क ही नहीं, मणियोंकी भी माला धारण करते थे ।

३ रुक्मवक्ष—वमिष्णने (७।५६।१३) छातीपर रुक्म और कन्धेपर खादिके धारण करनेका उल्लेख किया है—

“हे मरुतो, तुम्हारे कन्धोपर खादि और वक्षपर रुक्म (स्वर्णाभरण) पडा हुआ है । जैसे वृष्टिके समय बिजली चमकती है, वैसे ही जल देते हुए तुम अपने आयुधोंमें शोभित होते हो ।”

४ सादि, ५ ऋष्टि, ६ शिप्र—ऊपरकी ऋचामें पता लगता है, कि खादि कन्धेपर पहनी जाती थी । श्यावाश्वकी ऋचा (५।५४।११) में भी उल्लेख है—

“मरुतो, तुम्हारे कन्धोपर ऋष्टि (हथियार), पैरोमें सादि, वक्षपर रुक्म (स्वर्णाभरण) है । खपर तुम शोभायमान हो । किरणों (हाथों) में आगकी तरह चमकनेवाली बिजलिया और निरपर फँले सुनहले शिप्र है ।”

यहां कन्धेपर नहीं, बल्कि पैरोमें सादिका वर्णन वतलाता है, कि पैरके कडेको भी सादि कहा जाता था । सादि कर्णको भी कहते थे, यह श्यावाश्वकी एक ऋचा (५।५८।२) में मालूम होता है—

“हे विप्रो, गन्धिधाली हाथमें सादि पहने, कपानेका बनी, मायावी, दाता इन मरुतोंके गणकी वदता करो, जो मुखदाता अमित महिमावाले बडे ऐन्द्रिय-धाली हैं ।”

भन्दाज (६।१६।४०) भी मित्रुके हाथमें सादि (कर्ण) का उल्लेख करते हैं—

“सुन्दर गजघाटे प्रियो (जनता) की अग्निको (यह) हाथमें सादि-गुप्त उत्पन्न मित्रुकी तरह धारण करते हैं ।”

मोहनजोडरोके लोगों और ऋग्वेदिक आर्योंके आनूपामें कुछ नमानता धर रही होगी, क्योंकि मोहनजोडरोपाले अधिक नष्ट होनेसे भूषण

ऋग्वेदमें आर्य नर-नारियोकी वेप-भूपाके वारेमें जो बातें मिलती हैं। उनसे पता लगता है, कि आर्य उन्हे कपडा पहननेका शौक था, जो ऊनी और कुछ चमड़ेके भी होते थे। वह तरह-तरहके सोने और मणिके आभूषण पहनते थे। केशोका सिंगार फूलोंसे करते थे। सभी आर्य पुरुष दाढी रखनेके शौकीन नहीं थे, प्रौढोंमें उसका अवश्य रवाज था।

अध्याय १४

क्रीडा, विनोद

§१ नृत्य

नृत्य-भीत, मोंमपान, घुडसवारी, कुश्ती, जूआ मप्तमिन्दुके आयोंके मनोरञ्जनकी चीजे थी। इनका विशद वर्णन ऋग्वेदमें न होना स्वाभाविक है, क्योंकि उनके मग्रहका यह उद्देश्य नहीं था। आगिरम नव्य ऋषि नृत्य' (१।५७।३) का उल्लेख करने हैं, लेकिन, साकेतिक भाषामें ही, वहा इन्द्रके वज्र नचानेकी बात कही है।

§२ संगीत

नगीन भी आयोंके लिये मनोरञ्जनका एक माधन था, ऋग्वेदका नवा मण्डल और प्रायः नारा सामवेद नोम-नाम्वन्त्री गानरे लिये ही है। गान-नापन (गायत्र) होनेके कारण आठ अक्षरवाले तीन पादोंके छन्दको गायत्री कहा जाता था। घोर-भुव कषत्र ऋषिने उगीरिये कहा है (१।३८।१८) —

"मंहम ष्योव वनाआ, पर्वन्व मेघ ती नरह विन्तुत करो। उवय्य (मेघ) गायत्रता गान करो ॥१८॥"

तम वनाव चरे है दि आज भी विघ्न आदि पहाडी तथा मैदानी और-भीतोंमें भी तीन पादवाले उन छन्दता बहुत ग्राज है। वैदिक गायत्र नाम और लोच-भीतारे तीन पादवाले गानोंका नवरा कुत्तानाका अग्रवत गायद तमें मन्मिन्दुके आयोंके गान-विधिता परिवत दे मने।

§३. पान

(१) 'सोम—मादक पानोंमें सोमका आर्योंमें बहुत रवाज था। एक तरहकी सुरा भी वह पीते थे, पर उसे महन्व नहीं दिया जाता था। (१) कण्व-पुत्र कुसीदि इन्द्रके प्रिय सोमपानके लिये कहते हैं' (८।७।१।७-८)—

“चमसो (प्यालो) और चमुओ (काष्ट-पात्रो) मे तुम्हारे लिये जो सोम छाना गया है। हे इन्द्र, इसे पियो, तुम इसके स्वामी हो ॥७॥”

“जो सोम चमुओमें पानीमें चन्द्रमाकी तरह दिखाई देता है, इसे पियो, तुम ईश्वर हो ॥८॥”

सोमवाला नवा मडल विश्वामित्रके पुत्र मधुच्छन्दाके सूक्तसे शुरू होता है, जिसकी प्रथम ऋचा (९।१।१) है—

“इन्द्रके पीनेके लिए छाने गये हे सोम, तुम स्वादिष्ट और मदिष्ट (मस्त करनेवाली) धाराके साथ प्रवाहित होओ।”

शुन शेष ऋषिने कहा है (९।३।१)—

“यह अमर देव द्रोणो (घडो)में बैठनेके लिए पक्षीके समान डाला जाता है।”

सोमके सबसे अधिक सूक्तोंके रचयिता काश्यप असित-देवल कहते हैं (९।५।१)—

“सुप्रकाशित, सवके पति, पवित्र, कामवर्षक, प्रसन्नकर्ता, सोम शब्द करते विराजते हैं।”

“पवमान (छाने जाते, पवित्र) सुन्दर महान् सोम, रात्रि और दर्शनीया उपाकी कामना करते हैं ॥६॥

“पवमान सोमकी भारती, सरस्वती, इला तीनों महान् सुन्दरी देवियाँ हमारे इस यज्ञमें आयें ॥८॥”

असित फिर कहते हैं (९।८।४, ६)—

“तुम्हें दसो अगुलियाँ मार्जित करती हैं, सात स्तुतिर्याँ प्रसन्न करती हैं, (तुम्हें पी) पीछे विप्र मस्त होते हैं ॥४॥

“कलशोंमें छाने हुए पीले सोमके वस्त्रोंके नमान गव्य (गोरख) आच्छादित करता है ॥६॥

फिर कहते हैं ° (९।११।१, ३, ६) —

“हे नरो, पवमान सोमके लिए गीत गाओ। यह देवोंके लिए यजन करना चाहता है ॥१॥

“देवताओंके लिए कामनासे सोम देवताको अथर्वों (ऋषियों) ने मधुमें मिश्रित किया। सो हे राजा सोम, तुम हमारे लिए बहो, हमारी गायोंके कल्याणके लिए, जनोके कल्याणके लिए, घोड़ोंके कल्याणके लिए, औषधियोंके कल्याणके लिए बहो ॥३॥

“अरुण स्वशक्तिमान् द्यौका छूनेवाले सोमके लिए गाया गाओ ॥४॥

“नमस्कारके नाय पान जाओ, सोमको दहीमें मिश्रित करो, इन्द्रके लिए सोम प्रदान करो ॥६॥”

वह ध्यान देनेकी बात है, कि सोमकी स्तुतियाँ अधिकतर तीन पदवाले गायत्री छन्दमें हैं। लोकोत्पीतोमें आज भी उत्तरी-भारतके बहुत व्यापक क्षेत्रमें उन छन्दका प्रयोग होता है। अन्तिम तीसरे पदकी गाने यकन दोहरा दिया जाता है, जिनसे वह चौपदा हो जाता था। यही ऋग्वेद-कार्यों में होता होगा। ऋग्वेदिक आर्योंका मन्त्र प्रिय पान सोम था, जो उनके देवताओंको भी मन्त्र करना था, इसीलिए अनित देवल गद्गद् होकर सोमका गुणगान करते हैं (९।१५।१, २, ४) —

“यह धूर सोम इन्द्रके बनाये स्वानमें नृधम स्तुतियोंके नाय शीघ्र-गानी रथों द्वारा जाता है ॥१॥

“यह (उम) प्रडे यज्ञ में बहुत काम करना चाहता है, जहाज जमर रहने है ॥२॥

“यह नृपितृणां अोजने इन धारण करता, यद्यपि वृषभ सींगोंको हिमता, तेज करता है ॥४॥”

फिर (९।१७।४, ७) —

“सोम कलशोमें दौडता, पवित्र (-पात्र) में सीचा जाता यज्ञो म उक्थो (सामगान) द्वारा वधावा पाता है ॥४॥

‘वाजी (अन्नवान्) (सोम), तुमको रक्षा-इच्छुक विप्र नर यज्ञके लिये स्तुतियो द्वारा मार्जित करते हैं ॥७॥”

फिर *(१।२२।१,२,३७)—

“यह सोम, बना कर छोड़े जाने पर तेज रथोकी तरह अन्नवान् हो जाते हैं ॥१॥

“विस्तृत वायुकी तरह, पर्जन्यकी वृष्टियोंकी तरह, अग्निकी शिखाकी तरह, यह सोम व्याप्त है ॥२॥”

‘दीर्घ-मिश्रत इस पवित्र सोमको विप्र स्तुतियोंसे व्याप्त करने हैं ॥३॥”

“हे सोम, तुम पणियोंसे गो-हितकारी धनको लेते हो, विस्तृत यज्ञमें शब्द करते हो ॥७॥”

सोमका उस समय इतना अधिक उपयोग होता था, कि वह दुर्लभ नहीं हो सकता था। सोम (नवम)-मण्डल के ११४ सूक्तोंमें सोमके गुणोंकी जितनी महिमा गाई गई है, उतना उसके उद्गम और दूसरी बातोंके बारेमें नहीं कहा गया है। रूहगण-पुत्र गोतमके कहने” (१०।३२।२) में जान पड़ता है, कि सोम ऊँचे पहाड़ों पर होता था—

“पहाड़ (वर्षिष्ठ मानु) पर बैठे भूरे (सोम), तुम्हारे लिये गाये, घी-दूध दुहाती हैं ॥२॥”

रूहगण पुराने भरद्वाजसे भी पुराने ऋषियोंमें थे, उनके दिव्य-पान सोमकी प्रशंसामें गाये जानेवाले लोक-गीत यदि पीढियों तक लोगोंकी जिह्वापर रहें, तो कोई आश्चर्य नहीं। रूहगण कहते हैं (१।३७।१)—

“राक्षसोंको नाश करता देव-कामी तृप्तिकारक छना हुआ सोम पीनेके लिये पवित्र (पान-पात्र) में जाता है ॥१॥”

“वह भीगा हुआ सोमदेवता कवि द्वारा प्रेषित इन्द्रके लिये द्रोण (घड़ों) में दौडता है ॥६॥”

अयाम्बने मोमके गुणगानमे तीन सूक्त (४४-४६) रचे है। वह एक जगह" (१।४६।१,२,५) कहते हैं—

“पर्वतमे बटे मोम वरण करते निपुण घोडोकी तरह यज्ञके लिये तैयार किये जाते है ॥१॥”

“पिता-माता द्वारा नवागी कन्याकी तरह परिष्कृत उडु (मोम) वागुं पाम जाते है ॥२॥”

“हे धन जीतनेवाले, मार्ग-जाता मोम, (हमें) महाधन प्राप्त कराने वही ॥५॥”

अवलार ऋषिकी कविता है" (१।५६।३)—

“हे मोम, तुम्हे दसों अगुलिया उमी तरह बुझाती है, जैसे जारकी कन्या। प्रदान करने के लिये तुम शोरे जाने हो ॥३॥”

मोमको मंत्रविजेता कहा जाता था ।" (१।५९।१)—

“हे गो-विजेता, अश्व-विजेता विश्व-विजेता, रमणीय-विजेता मोम, वही। (मेरे लिये) गन्तान-सहित रत्नको ले आओ ॥१॥”

• यह भी" (१।६०।१)—

“हजार जागवाले सूक्ष्मदर्शी छाने जाने मोमका गान गायत्र-नामने करो ॥१॥”

अमहीयु जागिरन मोमके ऐतिहासिक कव्योंको बनाने हुये करते है" (१।६१।१,२,३०)—

“हे माम पीतेके लिये बहो, तुम्हारे ही मदने निन्यानरे पुगिया लट की गई ॥१॥”

“(तुमने) उन प्रसंग सम्बन्धी पुगियों को और नृसंग-नृसंगों रिशोसंगों वजमे तुल्य कर लिया ॥२॥

“तुमने अमित क्षमते माना दिन-प्रति-दिन अन्न दिया। तुम मोक्षता और अन्नशता हो ॥२०॥

निधुत्र गायत्र मोमकी सतिमा गाने हुये करते है" (१।६३।३,६,५)—

“इन्द्र-विष्णुके लिये छाना (जो, सोम कलशमें) टपकता रहता है, वह वायु (देव) के लिये मवुमान् हो ॥३॥”

“यह शीघ्रगामी भूरे सोम सत्यकी धाराके साथ दुष्टो की ओर जाते हैं ॥४॥”

“इन्द्रको वधावा देते जलमें जाते सबको आर्य बनाते यह सोम सूमडोको मारते हैं ॥५॥”

आर्यसमाजी “कृष्वन्तो विश्वमार्यं” (सबको आर्य बनाते) वाक्यको लेकर उड चलते हैं, और यह नहीं जानते, कि निध्रुव ऋषिने सबको आर्य बनानेका श्रेय सोम(भग) पान को दिया था। आगे ऋषि कहत है”
(१।६३।१२,१३)—

“तुम हमें गौ और अश्व-युक्त सहस्र धन, और अन्न तथा यश भी दो ॥१२॥”

“सोम सूर्य देवताकी तरह पत्थरोसे घोटा छाना जाकर कलशमें सरस प्रवाहित होता है ॥१३॥”

यमदग्नि भृगु-पुत्रका गीत है * (१।६५।१।८,१५)—

“कुशल वहिनें (अगुलिया) लुगाइया क्षरणकी इच्छासे महान् स्वामी सोमको प्रेरित करती है ॥१॥”

“जिसका रग पीला (हरि), मवुरसप्रद है। उस सोमको इन्द्रके पानके लिये पत्थरोसे (पीसकर) निचोडते हैं ॥८॥”

“(सोम,) जिस तरे मदकारक तीव्र रसको पत्थरोसे दूहते हैं, तो तुम पापनाशक होते वही ॥१५॥”

यमदग्नि अपनी सोमगाथामें सोमके उद्गमका कुछ परिचय देते हैं
*(१।६५।२८-२५)—

“जा सोम परे जो उरे और जो शर्यणावतमें निचोडे गये ॥२२॥”

“जो आर्जीकां (व्यास-तटवासियो), कृत्वो (याग कर्मकुशलो) में, जो पस्त्योके मध्यमें और जो पाचो जनोमें (निचोडे गये) ॥२३॥”

“वे निचोडे गये देव सोम आकाशसे वृष्टि और सुवीर सन्तान लावें ॥४॥”

“गायके चमडेपर तैयार किया जाता यमदग्नि द्वारा प्रग्नित पीला म बह रहा है ॥२५॥”

जागिरन पवित्र ऋषिने निम्न मन्त्रको नोमकी महिमामें गाया था, न्तु गमानुजी उनीको लेकर मात-आठं गतान्द्रियोमि करेडो आदमियोंकी माओको धातुके शम्ब-चक्रमे माज्की तरह दाग रहे हैं। इन जन्धेरखातेका कोई ठिकाना है? मन्त्र है^३(१।८३।१)—

“हे ब्रह्म (मन्त्र) के पति, तुम्हारा पवित्र रूप फैला हुआ है। प्रभु होकर गाग्रोमें चारो ओर व्याप्त हो। जो तपे हुये तनवाला नहीं हैं, वह रिपक्व उने नहीं प्राप्त करता। जो परिपक्व हैं, वही वहन करते प्राप्त करते हैं ॥१॥”

गृत्समद नोमके बारेमें कहते हैं^३(१।८६।४७)—

“छाने जाने (ममय) तुम्हारी धारायें भेडके नूदम रोमांको लाघ जानी हं। हे नोम, दो चमुओं (पाग्रो) में जब तुम गोरगने मिलाये, नें जाकर कलगोमें बैठते हो ॥४७॥”

वनिष्ठ नोमकी महिमाको जानते थे—युद्धमें नोम पीकर मन्त्र योद्धा श्नुन पराक्रम दिग्ग्याते, और धान्तिके ममय उने पीकर लोग आनन्द-भोग होते हैं। प्राचीनताका भवन होने पर भी आधुनिक आदमीको नोमके नें ऋषियोंके भावका पता नहीं लग सकता, क्योंकि नगीले पानके विराफ जके प्रायुमण्डलमें चिद्रांह, मृणा भरी हुई है। विजया (नांग) की प्रगना कविनाको यदि मुने, तो मान्म होगा, कि मन्त्रनिन्द्युके आर्य क्यों नोमने नें भक्त थे, और क्यों गर्हाप वनिष्ठ कहते हैं^३(१।९०।३)—

“(हे नोम) शर-नामृहवाते मव वीरोदाते दन्वागु जेता धनीति शना धग आयुष-युपन, क्षिप्र धन्त्यवाले, युद्धोंमें अन्वै, यज्ञज्योमें गाग्रोंकी मन्त्र करनेवाले होकर तुम रहो ॥३॥”

प्रवर्तन प्रनापी दिवोदानम पुत्र थे। अनेक युद्धोंमें उन्होंने भाग था था। गायर उन्हें वचित करके युदान भग्नात्त गता हुआ। पना की जाती है, प्रवर्तन दिवोदानम जेडा लज्जा होने पर भी

युद्ध और शासनकौशलमें अपने अनुज सुदासके समान नहीं था। खानदानी पुरोहित भरद्वाजने प्रतर्दनका पक्ष लिया होगा, पर उससे कुछ नहीं बन सका। वसिष्ठ सुदासकी पीठपर हुये, और वह भरतोका प्रतापी राजा बन गया। प्रतर्दन सोमकी प्रशसामें २४ त्रिष्टुपोको गाते अपनेको योग्य ऋषि सावित करने हैं। वह सोमके वारेमें ऐसी उपमाये देते हैं, जो एक सैनिक ही के मनमें आ सकती हैं “(९।९६।१,५,६,११,१२)

“सैनानी शूर सोम गौ (के लूटने) की इच्छासे रथोंके आगे जाता है, उसकी सेना हर्षित होती है। इन्द्रके आह्वानको भला बनाते सोम मित्रोंको बहुतसे वस्त्र देते हैं ॥११॥”

“बुद्धियो (कविताओ) का उत्पादक, द्यौलोकका उत्पादक, पृथिवीका उत्पादक, अग्निका उत्पादक, सूर्यका उत्पादक, इन्द्रका उत्पादक और विष्णुका उत्पादक सोम वह रहा है ॥५॥”

“सोम देवोंमें ब्रह्मा, कवियोंकी कविता, विप्रोंमें ऋषि, मृगोंमें महिष, गृध्रोंमें वाज, वनोंका कुठार (हो) शब्द करता पवित्र (-पात्र) में उफन कर बहता है ॥६॥”

“हे पवमान सोम, तुम्हारे साथ हमारे पहलेके पितरोंने कर्म किये। वीर, तुम बिना रुके अश्वोंमें शत्रुओंको मारते हो। तुम हमारे मघवा (इन्द्र) बनो ॥११॥”

“धन-धारक शत्रुनाशक आयुधधारक हविमान् हो जैसे तुम मनुके लिये बहे। ऐसे ही धनधारक हो इन्द्रकी सहायताके लिये बहो, आयुधोंको पदा करो ॥१२॥”

क्या अपने अनुज सुदासके साथके मघर्षमें प्रतर्दनने सोमकी महिमा गाते इन त्रिष्टुपोको रचा ?

कुत्स ऋषिने ६० हजार धन सोमकी कृपामें पाये थे ‘ (९।९७।५३) — “हमारे श्रुत (वाणी) तीर्थमें उस पवित्रतासे बहो, जिममें तुमने पक्व वृक्ष (-फल) की तरह आनन्दके लिये शत्रुको हराकर साठ हजार (गो) धन दिये ॥५३॥”

गायप रेभके रहनेमे मायूम होता है, कि सोमके छाननेके समय पुराने कायकी गाथाये गाई जाती थी" (१।१०।४) —

"पुने (छाने) जाने उन सोमकी पुरानी गाथाओंमे स्तुति करने है। और डवर-उधर बूमती अगुलिया देवोका नाम (हवि) गिये घूमती है।४।"

विश्वामित्र वाक्-पुत्र या प्रजापति ऋषि सोमके छाननेमे उनके कपडे और गायके चमड़ेके आवश्यक होनेका उल्लेख करते है
 "(१।१०।१।१६) —

"भेडके चाओमे गायके चमड़ेपर सोम छाना जाता है। तृप्तिवर्ता हरित वर्ण वह (सोम) षट् करता उन्द्रके स्थानमें जाता है।१६।"

कश्यप मरीचि-पुत्र सोमपानके स्थानोका निर्देश करते है ' (१।११।३। १,२,७,९,११) —

"वृथनाशक उन्द्र शरीरमें बल धारण कर पराक्रम करनेकी उच्छाने शयणावन्मे सोमपान करे। हे सोम, उन्द्रके गिये तुम क्षरित होओ ॥१॥"

"दिशाओं के पति ऋत वचन, मत्य, ध्रुवा और नपने छाने गये हे निचत सोम, आर्जोका (ध्यान-उपलव्या) मे क्षरित होओ ॥२॥"

"जहा निरन्तर ज्योति है, जिन लोकमें स्वर्ग अवस्थित है। हे परमान सोम, उन ह्यान-रहित अमर लोकमें मुझे ले चलो ॥३॥"

"जिन तीन (प्राणके) उत्तम स्वर्गमें उन्द्रानुगार चिरणोरा निवर्ण होता है। जहा ज्योतिबाले रोह है वहा (हे नरान) मुझे अमर बनाओ ॥४॥"

"जहा आनन्द जोर मोद और नृद, प्रनृद है, जहा (मार्गे) रो गाननाये प्राप्त होती है, वहा मुझे अमर बनाओ। हे सोम, उन्द्रके गिये चलो ॥५॥"

यह रहनेकी प्रवृत्तता नहीं, कि सोम सप्तसिन्धुके आषोंके सिन्धे जालन्धरायत आँ मरुतारण एत श्रेष्ठ पय ही नहीं था, बल्कि वेदगायके प्रथम गन्तेके सिन्धे उतरे पाप यह एत वृत्त जगत्स्य सारण एत। राम में जो गू, मान आदितो तदि वेदगायके प्रदान गन्ते वे उम्मे

कितना ही आगमें जलकर उनके काम नहीं आती थी। गायके चमड़ेपर दो पत्थरो द्वारा पीसे घोंटे गये ऊनी (वालके) छन्ने में छाने, लकड़ीके चमूओ और धातुके द्रोणो-कलशोमें सुसज्जित रक्खे सोमके पीनेके लिये इन्द्र, अग्नि आदि देवताओका आह्वान किया जाता था। आर्यभक्तोंके विश्वासके अनुसार देवता आकर उन्हे पीते थे। पुराने ऋषियोंकी गोष्ठीमें इन्द्र और अग्निने, वरुण और मित्रने साकार रूपमें आकर सोमपान किया था, इसके वारेमें पीछेके ऋषि शपथ खानेके लिये तैयार थे। सोमरम देवपूजाका ऐमा साधन था, जिसकी एक बूंद भी नष्ट नहीं होती थी, और चमू तथा कलशमें भरा दधिमधुसे मिश्रित सारा सोमरस भक्तोंके काम आता था।

सोमपान आर्योंके लिये अतिसाधारण पेय होते भी दिव्यपान था। इसलिये देवताओंके पीछे ही वह उसे प्रमादके तौरपर ग्रहण करते थे। आजकल भी वैरागी सावु स्वादिष्ट भोजनको सीधे अपने खाने की बात न कह कर उसके साथ "रामजीके पीछे" लगाते हैं अर्थात् सभी भोजन पहले रामजीको अर्पित होगा, उसके बाद हमारा और आपका "पावना" (खाना) होगा। इसी तरह वैदिक आर्य भी देवताओंके पीछे ही प्रसाद-रूपमें सोमको ग्रहण करते थे।

सोम पवित्र और परम ग्राह्य था, पर, सुरा (मद्य) नीची दृष्टिमें देखी जाती थी। आज भी हिन्दुओंके वही भाव भाग और शरावके वारेमें देखे जाते हैं। तिव्वतमें भागको 'सोमराजा' कहते हैं। वहा वह बहुत पैदा होती है। तिव्वती लोंगोमें शायद ही कोई हो, जो नशा न करता हो। लेकिन, देखनेमें ऐमा मालूम होता है, कि मानो उनको मालूम ही नहीं है, कि उनका सोमराजा (हमारी भाग) नशेकी चीज है, और उसे दूध-चीनी मिचं-इलायची मिलाकर अत्यन्त स्वादिष्ट बनाया जा सकता है। वह "सोमराजा" का अर्थ नहीं जानते। उनके यहा सोमराजाका वही उपयोग है, जो हमारे यहा मन और पटमन का। वह उसके छिलकोकी रस्मी बनाते हैं। हमारे यहा पुराने समयमें भागके रेशेकी कपडा बनता था। अभी भी कुमाऊ और गढ़वालमें भगेडा बनता है, जिसे आजमें भी साल पहले

लोग पहनते थे, अब वह थोड़ेका काम देता है। कोरियामें भी भागके रेशोका कपड़ा बनता है। वहावाले भी तिब्बतियोंकी तरह उनका यही उपयोग समझते हैं। तिब्बती लोग "गोमराजा"के पान तक नहीं फटकते। उनकी जगह वह अपनी छद्म(जी की कच्ची गराव) पीते हैं। जरा (अरब, चुवाई गराव) अधिक पसन्द करते हैं, लेकिन वह महगी चीज है। ऋग्वेदिक बायोमि तिब्बतियोंकी चार उलटी है। वह भागवो नहीं पसन्द करते, गुगको अच्छा समझते हैं।

(२) सुरा—मज्जिमन्वुके गोमभक्त आर्य सुरामे कोई चान्ना नहीं रखते थे, यह तो नहीं कह सकते, पर उमे हीन दृष्टिसे देखते थे, वह मेघातिथि काण्डकी निम्न ऋचा * (८।२) मे माद्रूम होता है—

"जंम सुरा पिये वदमस्त हो हृदयमें लटने, नगे गो-मनोकी तरह रहने हैं ॥१२॥"

निष्ठ भी सुराको नापसन्द करने थे " (७।८६)—

"हि वगण, अपने बन नहीं बन्कि, सुरा, प्रोध, जुवा, अजानने वह दोष होता है। गेठा निष्ठको और न्वप भी(उन्हे) पापमें ले जाता है ॥६॥"

पर सुराके प्रेमी भी थे, तभी तो कहा गया "(१०।१०७।९)—भोज (शता) गुगको पाने है।

§४. जूआ

जूयैता स्वाज, जान पड़ता है, मज्जिमन्वुके बायोमि ताफी था। महा-भारतके मृषिष्ठिरने उं अपने पूर्वजोमे नोंग था। जूयैके माने लोग नवाह हो जाने थे, इगलिये आर्य ऋषि उन्हे ब्रचनेका उपदेश देने थे, जैसा कि तत्रप गेरूप ने अपनी ऋत्ताओं ' (१०।३४) में किया है

जूआकी वृत्ता है—"उं पागे (अस) हिन्ने-डुने उपर-उपग गुज्जो न्ने बहुत प्रचन करने है। मुज्जान् (पयंत) ने उत्पन्न (जैने) गोम पिया जाता है वंमे ही विभीरु (बहेने) के सागन्त जस मुंने गुग रहने है ॥१॥"

“यह मेरी पत्नी मुझमे न कभी उदास हुई न लज्जित हुई। मेरे लिये और मित्रोंके लिये (यह) कल्याणी रही। केवल अश्व (पाशे)का भक्त होनेके कारण मैंने अनुव्रता भार्याको छोड़ दिया ॥२॥”

“सास द्वेष करती है, जाया (स्त्री) छोड़ देती है। मागनेपर वह (जुआडी किसीको) पसन्द करनेवाला नहीं पाता। जैसे बूढ़े घोड़ेको कोई नहीं खरीदता, वैसे ही जुआडीके भोगको मैं (कही) नहीं पाता ॥३॥”

“खलमें आकर्षक पाशेने जिसे पकड़ा, उसकी जायाको दूसरे विगाडते हैं। पिता-माता और भाई उसके लिये कहते हैं ‘हम इसे नहीं जानते, इसे बाध कर ले जाओ’ ॥४॥”

“शरीरसे बूढ़ा कहनेपर ‘मैं जीतूंगा’ कहता जुआडी (घूत-) सभामें जाता है। पाशे (कभी) इसकी इच्छा पूरा करते हैं, और कभी प्रतिद्वंद्वीके कामको सिद्ध करते हैं ॥६॥”

“जुआडीकी जाया मन-भारे सतप्त होती है। (आवारा) धूमते पुत्रके वारेमें माता “कहा है” पूछती है। ऋणी हो धन के तकाजेमें डरता वह दूसरोके घरमें रात बिताता है ॥१०॥”

“स्त्रीको और दूसरोकी जायाको, अच्छे वने घोरोको देखकर जुआडी मतप्त होता है। पूर्वाह्णमें उसने (शानसे) लाल घोडेको जोड़ा था, और (दिनके) अन्तमें वृषल (अकिचन) सर्दिके डरके मारे अग्निके पास बैठता है ॥११॥”

“पाशेसे मत खेलो, कृपि करो। उसी धनको बहुत मान कर रमण करो। हे जुआडी, वही गाये हैं, वही जाया है, सो मुझे इस स्वामी सविताने वतलाया है ॥१३॥”

जूयके इस वीभत्स रूपको देखकर भी जूआ खेलनेमे आर्य वाज आते होंगे, इसकी सम्भावना नहीं है। जूआ खेलनेके लिये राजदण्ड होता था, इसका ऋग्वेदमें पता नहीं।

अध्याय १५

देवता (धर्म)

आर्य अपने देवताओंके परमभक्त, पौम्पके पूजक तथा आशावादी थे। उनके देवता भी उन्हीं गुणोंके धनी थे। यद्यपि उनके देवताओंकी मन्त्र्या ३३ और ३३३९ बतलाई गई है, पर उतने देवताओंके नाम ऋग्वेदमें नहीं मिलते। देवताओंके अतिरिक्त पितरों—मृतपूजों—को भी वह पूजनीय समझते थे। देवताओंकी अचना वह निष्काम भावमें नहीं करने थे। निष्काम उपासना बहुत पीछेकी बात है। आर्योंका परलोकपर विश्वास था, वह स्वर्ग-नरक मानते थे, पर पुनर्जन्मका ऋग्वेदमें वही पता नहीं है।

§१. देवता

आजका देवही जगह देवता शब्द अधिका इन्नेमाल किया जाता है, इनके दो कारण हैं। पुराने समय में राजाको भी देव कहते थे, इनलिये एक अलग शब्दों कहनेकी जरूरत महसूस हुई। फारसीके सम्पर्कमें आनेपर हमारे लोगोंको माझूम हुआ, कि देव राक्षसोंको भी कहते हैं, उनलिये अपनी पूज्य भावनाका सम्मान करने लिये इन्होंने नक्षत्र देव शब्दों छोट कर देवता कहना शुरू किया। चित्रम्बान्-मुद्र मन्त्रों उन्ना '(८।३०।१) दोनोंमें नाचालिग कोई नहीं होता—

“हे देवो, तुम्हारेमें न कोई गिन्तु ! और न कोई प्रच्छा । तुम स्वयं महान् हो।”

१ देव-संख्या

ऋग्वेदमें देवोंकी गणना तरह-तरहसे हुई है। भरद्वाज^२ (६।५०।१) और वसिष्ठने^३, (७।३५ और ७।४१।१) सख्याका उल्लेख किया है। भरद्वाजने^३ (६।५०) अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, अर्यमा, सविता, भग (१), रुद्र, वसुगण, मरुत् (४), रोदसी (द्यौ-पृथिवी) (६), दोनो भिपग् (अश्विनौ), (७), नासत्य (अश्विनौ) (१०), सरस्वती, वायु, ऋभुक्षा, पर्जन्य (१२) का उल्लेख किया है। उन्होंने^३ (६।५१।५) द्यौको पिता, पृथिवीको माता, अग्निको भाई बतलाया है। आदित्य, आदितिका भी वही उल्लेख है। ऋषि लोग पृथिवीकी सुन्दर और ऐश्वर्यशाली वस्तुओंको भी देवता मानते थे। इसीलिये भरद्वाज^४ (६।५२।४-६) ने उपा, पर्वतो, पितरो, सिन्धुओ (नदियों) के साथ सरस्वती (नदी), पर्जन्य (मेघ) से भी रक्षाकी कामना की—

“उगती उपायें, मेरी रक्षा करे। फूलती नदिया मेरी रक्षा करें।

अचल (ध्रुव) पर्वत मेरी रक्षा करें। देव-यज्ञमें देवताओंके साथ चुलाये पितर मेरी रक्षा करें ॥४॥”

“हम सदा सुन्दर मनवाले होकर उगते सूर्यको देखें। देवोंके पास ह्विले जानेवाले वसुओंके पति अग्नि (देव) शक्ति-युक्त होकर आवें ॥५॥”

“इन्द्र रक्षा के साथ हमारे पास आये। सिन्धुओंके साथ फूलती सरस्वती, ओषधियोंके साथ हमारे पास पर्जन्य, पिताकी तरह सुप्रशसनीय सु-आहूत सुखमय अग्नि हमारे पास आय ॥६॥”

वसिष्ठने एक सूक्त^५ (७।३५) में निम्न देवोंकी गणना की है—

“इन्द्र-अग्नि, इन्द्र-वरुण, इन्द्र-सोम, इन्द्र-पूषा, भग, पुरन्वि, अर्यमा, घाता, रोदसी (द्यौ-पृथिवी), अद्रि (पर्वत), अग्नि, मित्र-वरुण, अश्विद्वय, अन्तरिक्ष, इन्द्र, वसुगण, रुद्र, त्वष्टा, ग्नायी (देविया), सोम, ब्रह्मा, ग्रावा, यज्ञ, सूर्य, चार प्रदिशायें, पर्वत, सिन्धु (नदिया), आप, अदिति, मरुत्गण, विष्णु, पूषन्, वायु, सविता, उपा, पर्जन्य, क्षेत्रपति, विश्वदेव (देवसमूह),

“महम-मूनु, युवा, अद्रोघवाच, अतितरुण तुम्हें स्तुति द्वारा हम पुकारते हैं, जो कि तुम जानी, अद्रोही सबसे प्रिय धनोको प्रदान करते हो।”

भरद्वाज अग्निकी महिमामें कहते हैं “ (६।८) —

“वह व्रत-पालक आग्न परमव्योममें उत्पन्न हो व्रतोकी रक्षा करता है। वह मुकर्मा आकाशको नापता है। वैश्वानर (अग्नि) अपनी महिमामें नाक (स्वर्ग) को छूता है।२।”

“आकाशमें महिष (महान्) ने उसे ग्रहण किया, विशोने पूज्य राजा ममल्लकर उपस्थान (सम्मान) किया, विवस्वान् (सूर्य) के दूत अग्नि वैश्वानरको वायुने दूरमें लाकर धारण किया।४।”

भरद्वाज अग्निको युग-युगका अमर दूत कहते हैं “ (६।१५।) —

“है अग्नि, देव और मनुष्य युग-युगके अमृत दूत, हव्यवाहक, रक्षक, पूज्य, जागृत, विभु, विशोके स्वामी तुम्हें धारण करते और नमस्कार पूर्वक बैठाने हैं।”

विश्वामित्र “ (३।२६) —

“हम कुशिक लोग अग्निको हवि-युक्त मनने नमल्लकर मत्य-युक्त स्वर्गके जानकार, मुदानो, रयी, अणु, देव अग्निको धनवी इच्छामें पुकारते हैं।१।”

“मानाओ जैसे ने कुशिक अश्वकी तरह हिनहिनाते वैश्वानरको* युग-युगमें प्रज्वलित करते रहें। सो अमरोमें जागरूक अग्नि हमें सुवीर, मुअश्व-वाला बनाये।३।”

“मैं अग्नि जन्मने ही नव जाननेवाला हूँ। धृत मेरी बान् (है) और जम्त मेरे मुत्रमें है। मैं त्रिविध तेजवाला, अन्तरिक्षका विमान, अजम्-ताप हवि नामवाला हूँ ॥७॥”

वानरेय अग्निकी स्तुतिमें कहते हैं “ (४।३) —

“जाओं, त्रिये वतके राजा, न्द्र होना छो और पृथिवीके मन्त्रे

*सभी नरो का पूज्य अग्नि

यजमान । सुनहले रूपवाले अग्निको अचित्त विजलीसे तुम्हारी रक्षाके लिये बनाओ ॥१॥”

“हे अग्नि, पत्तिकी कामना करती सुन्दर परिधान-युक्त स्त्रीकी तरह हम तुम्हारे लिये यह स्थान बनाते हैं । तेजसे सम्मुख हो यहा बैठो, और सामने स्वपाक बनो ।२।”

सप्तसिन्धुके भरत-सन्तान देवश्रवा और देववात अग्निकी स्तुति करते हैं ॥ (३।२३।४)—

“हे अग्नि, हम अन्नस्थान वाली उत्तम पृथिवीमें सुदिनके लिये तुम्हें स्थापित करते हैं । तुम दृपद्वती (घग्गर), आपया (मरकण्डा), सरस्वतीके तट पर धन-युक्त हो मनुष्योंमें दीप्तिमान् होओ ।”

२ अरण्य—पूज्य, दाता और प्रकाशमान होनेके कारण ऋषि लोग किसी वस्तुको भी देवता मानते थे । इसीलिये अरण्य (जगल) भी उनके लिये देवता थे । जब हम भारतमाताकी प्रशंसामें वन्देमातरम् गान करते हैं, उस समय भी उमी तरहकी कल्पना हमारे दिमागमें घूमती है । सप्तसिन्धुके आर्योंके परम धन थे गाय-धोडे, भेड-बकरी । इनके लिये अरण्य भारी अवलम्ब थे । इसीलिये इरम्मद-पुत्र देवमुनिने अरण्यकी स्तुति बडे भक्तिभावसे की है ॥ (१०।१४६)—

“यदि दूसरे (सिंह आदि) न आवें, तो अरण्यानी हिंसा नहीं करती । वहा स्वादु फल च्वाकर ययेच्छ रह सकते हैं ।५।”

“अजन-वर्ण (काली) सुगन्धि-युक्त, किसान के बिना बहुत भोजन-वाली, मृगोकी माता अरण्यानीकी मैं स्तुति करता हू ।६।”

३ आप—आप जल और नदी दोनोको कहते हैं । दोनो ही आर्योंके पूज्य थे । उनके भाईवन्द पारसीक भी आप देवताओंके माननेमें उनके साथी थे । सिन्धुदीप-पुत्र अम्बरीपने आपकी स्तुति करते कहा है ॥ (१० ९)—

“आप देवी, सुखमय हो । वह हमें धन दें, भली-भाति देखने (जानने) के लिये ज्ञान दें ।१।”

“हे आपो, जो तुम्हारे पान अत्यन्त शिव (मंगलमय) रस हैं, उने लान्नात्राली माताकी तरह हमें प्रदान करे ।२।”

“देवी आप हमारे कल्याणके लिये, पानके लिये हो। हमारे चारों ओर कल्याणकी वर्षा करें ।४।”

४ इच्छा—नरन्वती उषा, आप की तरह इच्छा भी आयोंकी देवी थी। इच्छाका अर्थ अन्न है। अन्न देवता में भी बड़ कर है ही। विश्वामित्रने उच्छाके माय भारती और सरस्वतीकी स्तुति ^१ (३।४) की है—

“भारतियोंके नाथ भारती, देवों और मनुष्योंके नाथ इच्छा, अग्नि, नारस्वतीके नाथ नरन्वती, तीनों देविया (हमारे) नामने इन यज्ञमें बँटें।”

भारतीका अर्थ आजकी नरन्वती लेना नहीं होगा। अनेक भारतियोंके नाथ भारतीका रहना कुछ विशेष अर्थ रचना है। शायद बहुत-सा भारतीयमें यहा भग्न देशकी पूज्य देविया अभिप्रेत हो, और नारस्वत-नमुदायमें नरन्वती-नटके निवानी देवी-देवता।

५ इन्द्र—इन्द्र आयोंके मन्त्रमें बड़े जोर तेजस्वी देवता थे। यद्यपि ईगनी आयोंने जरयुस्तके मन्त्रके अनुसार देव शब्दका अर्थ राक्षस और देवोंके राजा इन्द्रको राक्षसराज बना दिया है, पर यह नमसना गलत होगा कि जरयुग्मने पहले भीष्मका यही अर्थ था। हम जानते ही हैं, हिंमिना अपवादके सभी इन्द्रो-युगेपीय जातियोंके पूर्वज दिव्य अर्थ हीमें देव शब्दका उपयोग करते थे। ऋषिप्रथमें नरने ज्येष्ठ भरद्वाज इन्द्रकी महिमामें कहते हैं ^१ (६।१७)—

‘इन्द्र, रक्षा करो, जो कि तुम यशुजंभि रक्षक, जो वृषभ (मनोमानना पूरक), जो मिश्रवान्, जो मतिवा (अभिल्याषां) ता यथा वृषभ हो, जो पर्वणोंके पिदारक वज्रधर, जो पौंडरीक चरनेवाले, वह इन्द्र विचित्र अन्न-धन प्रदान करे ।२।”

भरद्वाजके पुत्र गंगने इन्द्रकी रक्षा करने द्युपे प्रायना की है ^१ (६।४७)—

“आता इन्द्र, अविता (रक्षक) इन्द्र, हर यज्ञमें सुन्दर तीरसे पुकारे गये इन्द्र, धूर इन्द्र, शक्र, पुष्कृत (बहुत पुकारे जानेवाले) इन्द्रको मैं पुकारता हूँ। मघवा (धनवान्) इन्द्र हमारी स्वस्ति करे। १११”

“जो इन्द्र रूप-रूपमें भिन्न रूप हुआ, सो उसके रूपको बतलानेके लिये है। इन्द्र (अपनी) मायाओंसे बहुरूप होता है। इसके रथमें हजार घोड़े जुते हैं।”

वसिष्ठ^{१३} (७।२९) इन्द्रको सोम पीने के लिये बुलाते हैं—

“हे इन्द्र, यह सोम तुम्हारे लिये छाना हुआ है। हे घोड़ेवाले, उसके पास जल्दी आओ। इस चार (भली प्रकार) छनेको पीयो, और हे मघवा, आकर हमें मेघ (धन) दो। १।”

सोम आर्यों और उनके देवताओंका अत्यन्त प्रिय पेय था। उसको पीकर वह प्रसन्न और मस्त होते थे। वसिष्ठने^{१४} (७।३२) कहा है—

“यह दही मिला कर (दध्याशिर) सोम छाने गये हैं। हे वज्र-हस्त, मस्त होने के लिये दोनो घोड़ोंके साथ उनके लिये उनके पास के स्थानमें आओ। ४।”

वसिष्ठ दातयातु (सौ जादूवाले) कहे जाते थे, लेकिन वह जादूमें चतुर थे, इन्द्रके बलपर ही। इसीलिये वह इन्द्रसे प्रार्थना करते हैं^{१५} (७।१०४)—

“हे इन्द्र, माया (छल) से हिंसा करनेवाले यातुधान (जादूगर) पुरुष और स्त्रीको नष्ट करो। बिना गर्दनके राक्षस नष्ट हो, वे उगते सूर्यको न देख पायें। २४।”

विश्वामित्र तीनों ऋषियोंमें सबसे पीछे प्रभुतामें आये। उन्होंने सुदासको अश्वमेध-यज्ञ कराया। वह इन्द्रकी स्तुति करते कहते हैं^{१६} (३।३२)—

“हे इन्द्र, गयाशिर (दूध-महित) मधे सफेद (शुक्र) मोमको पियो। तुम्हारे मदके लिये हम (इसे) देते हैं। ब्रह्मकृत् (मन्त्रकर्ता), मस्तगणो और रुद्रोंके साथ तृप्त होने तक (इसे) पियो। २।”

“इन्द्र, जो तुम्हारे शक्ति और बलको बढ़ाने है, वह मरुन् तुम्हारे आजको बढ़ायें। हे वज्र-हस्त, मुमुकटवर (मुनिप्र), गण-महित रक्षोके नाय मध्याह्नके मवन (मय) में (नोम) पियो।३।”

“नागे देव इन्द्रके सुकृत को, बहुतने वनोवाले कर्मको नष्ट नहीं कर सकने। जिमने द्यौलोक और इम पृथिवीको धारण किया, मुदर्यना पूर्ण और उपाको पैदा किया।८।”

त्रिध्वामित्र इन्द्रके घोडोंको मोरखली बतलाने है “ (३।४५) —

“हे इन्द्र मोरके रोमवाले मरुन् घोडोंके नाय बाओ। (जालने) फगानेवाले वहेलियेकी तरह, मरुभूमिकी तरह कोई तुझे न रोके।१।”

वामदेव इन्द्रको प्रगणामे कहते हैं “ (४।१६) —

“इन्द्र सूर्यके ममीप रूप धारण करता है। अमृतके धनेर-हस्तवाले मृगकी तरह, तेजमें जलाने सिंहकी तरह, भयानर होने आयुषोको धारण करता है।१४।”

“हे धूर, जनोंके किसी युद्धके भीतर तीक्ष्ण अग्नि गिरे। हे स्वामी, जब घोर युद्ध हो, तो हम श्रेयोंके शरीरकी तुम रक्षा करना जानो।१७।”

“तुम वामदेवकी स्तुतियोंके रक्षक हो। (हमारे) अगदु हो युद्धमें मगा वनो। हे महामुद्धिमान्, हम तुम्हारा अनुगमन करें। तुम मश स्तुति-कर्त्ताओंके बहुप्रगमनीय होओ।१८।”

वामदेव फिर कहते हैं “ (४।१७) —

“हे इन्द्र, तुम महान् हो। महा पृथिवीने तुम्हारा अनुमोदन किया। जैसे तुम्हें माना। तुमने अपने बलमें वृषको मारा, अहि (वृष) द्राग शरीर जानी मिन्युओं (नदियों) को मृत किया।१।”

“तुम्हारे प्राणमते जन्मनेपर शौल्योफ चमाने गया। तुम्हारे पोंगमें भयभीत भूमि रपी, मुन्दर होनेवाते भेष बडे, नदिया आद्र कर भयभूमियों को नष्ट करती पत्नी।२।”

वामदेव फिर माने हैं “ (४।२२) —

“कामनापूरक श्रेष्ठ नेता शची-वान् उग्र इन्द्र चार धारवाले ऋषको दोनो बाहुओमें लिये ऊनवाली (भेडोवाली या ढाकती) परुष्णी (रावी) का मेवन करते हैं, उसके स्थानोंको मित्रताके लिये वयन करते हैं।२।”

“जो उत्पन्न देव, देवतम महान् अन्नो और महान् बलसे युक्त है। दोनो बाहुओमें बल धारण किये उसने अभिलपित, धी और भूमिको बहुत कपाया।३।”

वामदेव इन्द्रके मुंहसे उसकी महिमा कहलवाते हैं ^{२२}(४।२६)—

“मैं मनु हूँ, मैं सूर्य और कक्षीवान् विप्र ऋषि हूँ। मैंने आर्जुनेय कुत्सको अलकृत किया, मुझे ही उष्णा कवि करके देखो।१।”

“मैंने आर्यके लिये भूमि दी, दाता मर्दको मैंने वृष्टि दी। मैं शब्द करते जल लाया। देव मेरे सकल्पका अनुगमन करते हैं।२।”

“जब मैंने युद्धमें अतिथिग्व (दिवोदास) की रक्षा की, मैंने मस्त हो शम्बरके नौ और नव्वे पुर (दुर्ग) ध्वस्त किये। तो सौवीको (उसे) रहनेके लिये दिया।३।”

गृत्समद भी ऋग्वेदके प्रसिद्ध ऋषियोंमें है। वह इन्द्रकी सर्वशक्ति-मत्ताके बारे में कहते हैं ^{२३}(२।१२)—

“जिसकी आज्ञामें अश्व है, जिसकीमें गायें, जिसकीमें ग्राम, जिमकी आज्ञामें सारे रथ हैं। जिसने सूर्य और उपाको पैदा किया, जो नदियोंका नेता है, हे लोगो, वह इन्द्र है।७।

“जिसने पर्वतोंमें रहनेवाले शम्बरको चालीसवीं धरदमे (मार) धरा। ओजस्वी हो जिमने मोये द्युये अहि दानवको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है।११।”

वमिष्ठने आर्योंकी सारी विजयोका श्रेय इन्द्रको दिया है। इनके दो सूक्तोंमें (७।१८।१०) ऋग्वेदिक आर्योंके मघर्षोंके सम्बन्धमें बहुमूल्य सूचनाये मिलती है, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। वह कहते हैं ^{२४}(७।१८)—

“हे इन्द्र, हमारे पितरोंने तुम्हारे स्तुति करने नारे बटिया घन प्राप्त किये। तुमने ही मुन्दर दुवार गाये, तुमने ही अश्व है। देवोंके भक्त को तुम बहुत ना घन देने हो।१।”

“जैसे गिवाओके साथ राजा, वैसे ही विद्वान् और ववि तुम युक्तियोंवाले होकर रहते हो। हे मयवन्, मन्त्राओंको गोमो और अश्वोंके साथ रूप दो। घनके लिये हमें तुम गिवाओ।२।”

“देवभक्ति-महित स्पर्श-युक्त यह मेरे मधुर स्तुतिया तुम्हारे पान जा रही हैं। हे इन्द्र, तुम्हारा पथ्य घन हमारी ओर आवे। तुम्हारी सुमनिसे हम शर्म (सुन)-युक्त होंगे।३।”

जैसे घेनुके लिये मुन्दर तृण, वैसे ही तुम्हें दुहनेके लिये वगिठने तृणो (मनो) को रचा। नव तुम्हें ही गो-मति कहते हैं। इन्द्र हमारी मुन्दर स्तुतिके पान आयें।४।”

आगिरग प्रियमेव कहते हैं^{१५} (८।५८)

“जो पानमं प्राप्त है, उस प्रयधारी उन्द्रके लिये गाये मधुर आगिर (रु) दुहनी है।७।”

हे प्रियमेव-गन्तानो, अचना करगे, म्व अचना करो, अचना करो। दुर्गधनकको जैसे वैसे ही ते पुरी अचना करगे।८।”

“गगर (दाजा) जामान कर रहा है, गोमा (गोके चमड़ेवाला बाजा) ध्वनि कर रही है। पिगा (पीलो प्रत्यया) चिन्ता रही है। उन्द्रके लिये ब्रह्म (स्तुति) उद्यत हो।९।”

“निगुमारकी तरह नमीन चपर नडे पिता-माता (दोपेक और पुत्रियों) के नामने बट (इन्द्र) मतिप (मत्तान्) नृगों समल और बहुत मनंपादे हैं।१५।”

‘हे मुन्दर मुकुटवाले ग्यासो, मुनरने गपार चडो। गह गगार, गीत-गीत निपाप, म्वरने चानेवाले मुनरने गपार चडो। नव इम दोनो मितो।१६।

आयोंमें मुकुट नोय उन्द्रो अन्विष पर नडे रने में जेमा मि भूग-गोप्रीत नेनो गार।” (८।६०) के नाम होत है—

“यदि सत्य है तो हे युद्धेच्छुको, इन्द्रके लिये सच्चे स्तोम (स्तोत्र) को पढो। नेम ऋषि तो कहता है, इन्द्र नहीं है। किसने (इन्द्रको) देखा, फिर किसकी स्तुति करें।३।”

नेमके ऐसा सन्देह करनेपर इन्द्रने स्वयं जवाब दिया—

“हे भगत, यह हूँ मैं, देख मुझे। यहा सारी सृष्टिको (अपनी) महिमा से मैं वशमें करता हूँ। दिशायें मेरे सत्यका वधावा देती है। मैं भुवनोका विदारक हूँ।४।”

ऋषि इन्द्रको शरीरधारी समझते थे। उसके मुकुट और दो भुजाओका वर्णन ऊपर हो चुका है। विमद (प्रजापति-पुत्र) ने इन्द्रकी मूँछ-दाढी (श्मश्रु) का वर्णन किया है^{१०} (१०।२३)

“दाहिने हाथमें वज्र-युक्त, कार्य-निपुण घोडोंके रथवाले इन्द्रकी हम पूजा करते हैं। सोम द्वारा प्रसन्न हो सेनाओ और अन्नके साथ अपनी श्मश्रुको हिलाते शत्रुओंके सहारके लिये वह प्रकट हुये।१।”

“जैसे वृष्टि पशुयूथको भिगोती है, वैसे ही हरित (पीले) सोमसे इन्द्र अपने श्मश्रुओको भिगोते हैं। फिर सुन्दर यज्ञमें जा छने मधुर सोमको पीकर जैसे वायु वनको वैसे ही अपने श्मश्रुओको हिलाते हैं।४।”

विमद ऋषि केवल सोम-पानसे ही इन्द्रकी तृप्ति नहीं समझते, वह उनके भोजनके बारेमें कहते हैं^{११} (१०।२३)—

“हे इन्द्र विमद-लोगोंने सुदाता तुम्हारे लिये अपूर्व विस्तृत स्तोम (स्तुति) रचा। इस (इन्द्र) राजाके भोजनको हम जानते हैं, इसलिए गोपालोकी तरह (ग्रास) दिखा कर पास पशुको बुलाते हैं।६।”

वसुध इन्द्रकी अद्वितीय प्रतिभापर विश्वास रखते समझते हैं, कि इन्द्र असम्भवको सम्भव कर सकते हैं^{१२} (१०।२८ ३)—

“हे मधवन् इन्द्र, अन्नके लिये पुकारते समय तुम्हारे लिये जल्दी-जल्दी पत्थरसे मददायक सोमको, (पीसकर हम) छानते हैं, तुम उसको पीते हो। वे बँल पकाते हैं, तुम उन्हें खाते हो।३।”

“हे स्तुत्य, मेरे लिये तुम ऐसा कर दो, कि नदिया उल्टी दिशामें बहें। घाम खानेवाया मृग मिहको भगाये, नियाग बराहको बनमें हटा दे।४।”

“इन्द्रकी कृपा होनेपर शशक श्वापदका सामना कर नवता है। मं नमीप जा डेलेमें पहाडको तोड सकता है। (उनकी कृपा में) महान् भी धुड के वनमें आ सकता है, बछडा नाटमें उड सकता है।१।”

“पिंजरेमें बधा मिह चारो ओर अपने पैरको जैसे रगडे, वैसे ही गरुड (बाज) पक्षी अपना नख रगडने लगे। जो रुया प्यामा महिप है, उनके लिये यह गोधा पानी लये।१०।”

इन्द्रके रूप आदिके बारेमें आगिरम वर कहते हैं” (१०।१६) —

“धमका वह वस्त्र हरित (पीला) है, जो आयन (ताब्रे या पत्थर का) अत्यन्त गुन्दर दोनों हाथोंमें है। धनी, नुधिप्र (नुमुकट), गुन्दर, क्रोधरूपी वाणमाले इन्द्रको हरित (नुनहले) नोममें जनिपिक्त रिया।३।”

“जो हरित (पीले) मोछ-दायी पीले बेशवाले ताम्रने दृढ नोम पी कर शरीर (बल) को बढाते हैं, जिसे हरित घोंटे वनमें ले जाते हैं, वह दो घोडोंपर चढे मारी दुर्गंतिको दूर करने हैं।८।”

इन्द्र मनुष्यकी तरह नासार था, इन बातोंसे उल्लेख यान्त्र भी करने हैं (निरस्त उत्तरपट्टक ७।२।२) —

“देवताओंके आकारका चिन्तन करते वह पुराणमें लगते हैं। चेतनावान् (मनुष्य) को तरह ही स्तुतिया (श्रुचायें) बतलानती हैं। पुराण जैसे अर्गके साथ उनकी स्तुति ही जाती है।”

इन्द्र-सम्बन्धी श्रुचाओंके देखनेमें भी यान्त्रको बाणी मन्वतारा पता लगता है। इन्द्र निप्र (निर टुट्टी या मुट्ट) वा है। ऊर् घोंटेंगे रूप पर नवार होकर चलते हैं। वह नोम पीकर मन्त्र पाने हैं। उनमें दोनों हाथोंमें चार घागेमाला उच्च हैं। उनके घोंटे मोन्दरी हैं। उनमें गुं-पर पीली दाडी-मुंछ है। उनमें यानों लिये मन्वतारा बृश्म पताने हैं। पानि उनकी पत्नी है शशादि।

पृथिवी और द्यौलोककी स्तुति माता-पिताके तौरपर ऋषियोंने की है।
 ✓१० पुरुष—पुरुष-सूक्त ऋग्वेदके पीछेके सूक्तोंमें^{१०} (१०।१०) है।
 इसके ऋषि नारायण कल्पित मालूम होते हैं। सूक्तमें ब्रह्माण्डमय विराट्
 पुरुषकी कल्पना है—

“हजार सिरोवाला, हजार आखोवाला, हजार पैरोवाला पुरुष है।
 वह चारो ओर भूमिको ढाक कर दस अगुलमें अवस्थित होता है ॥१॥

“यह जो कुछ भूत और भावी है, सब पुरुष ही है। वह अमृतत्वका
 स्वामी है, जो कि अन्नसे अतिरोहण (वर्धन) करता है ॥२॥

“पुरुषरूपी हविसे देवोंने जिस यज्ञको पसारा। उस (यज्ञ) का धी
 वसन्त था, ईधन ग्रीष्म, हवि शरद थी ॥६॥

“उससे अश्व और जो कुछ भी मुखमें दोनो ओर दातवाले (प्राणी)
 हैं, उत्पन्न हुये। गाये उममे उत्पन्न हुईं। उसमे भेड-वकरिया उत्पन्न
 हुईं ॥१०॥

“इसका मुख ब्राह्मण हुआ, दोनो बाहे राजन्य (क्षत्रिय) बनी।
 उसकी दोनो जाधें वैश्य (हैं), दोनो पैरोमे शूद्र उत्पन्न हुआ ॥१२॥”

११ पूषन्—पुष्टिकारक देवताके लिये यह नाम दिया गया है। इसके
 गुण सूर्यपर अधिक घटते हैं। एक देवताके भी अनेक गुणोंको लेकर
 ऋषि अनेक देवताओंकी कल्पना कर लेते थे, जैसे एक ही सूर्य आदित्य,
 सविता, मित्र, सूर्य और पूषन्के नामसे अलग-अलग माना जाता था। ऋषि-
 ग्रथमें सबसे ज्येष्ठ भरद्वाजने पूषन्की प्रशंसोंमें ६ सूक्त (६।५३-५८)
 रचे हैं, जिससे इस देवताका महत्त्व मालूम होता है। भरद्वाजकी ऋचाओंसे
 पूषन्के व्यवितत्वका भी पता लगता है,^{११} (६।५३) —

“हे पथके पति पूषन्, अन्न प्राप्तिके लिये रथकी तरह हम तुम्हें सन्मुख
 करते हैं।

“प्रकाशमान पूषन्, अन्नाता कृपण पणि को दानके लिये प्रेरित करो।
 (उस) के मनको मृदु बनाओ ॥३॥”

दूमरे सूक्त^{१२} (६।५४) में भरद्वाज कहते हैं—

"हे पूषन्, तुम हमें ऐसे विद्वान्में मिलाओ, जो बतलावे 'यही है'।

"हमारा गोधन नष्ट न हो, हमारा (पशुधन) कूएमें न गिरे। न्वस्ति-युक्त गोवाँके नाथ तुम आओ ॥७॥

"पूषन् अपने दाहिने हाथको चारो ओर रखने । हमारे नष्ट (लुप्त) गोधनको वह फिर लावे ॥१०॥"

भरद्वाजकी उपरोक्त ऋचाओंमें मालूम होता है कि, पूषन् भूशेको रास्ता बतलाने वाला, गोओका रक्षक देवता था। उन्हींके एक मन्त्र^{१५} (६।५५।२) में मालूम होता है, कि पूषन्के निरपर कपर्द (जूड़ा) था।

"महारथी, कपर्दी उँसान मित्रने हम धनकी प्रायना करने हे।"

भरद्वाजने पूषन्को मत्तू (करम्भ)-प्रिय कहा है" (६।५६) —

"जो (मनुष्य) उम पूषन्को करम्भ (दान)ने प्रायना करना, उमे दूनरे देवती प्रायना करनी नही पठनी ॥१॥

"महारथी, नच्चे स्वामी इन्द्र अपने गगा (पूषन्) के नाथ दग्धुओंको मारते हे ॥२॥

"महारथी मूर्य (पूषन्) मुनहले चबोतो चलाने हे ॥३॥"

यहा पूषनको मूर (मूय) कहा गया है। भरद्वाजके कथन^{१६} (६।५७)में मालूम होता है, कि जैसे इन्द्र नोमपानको पनन्द करने हे, वैसे ही उनके मित्र पूषन करम्भ (मत्तू) को—

"पायमे छाने नोमतो पीनके न्विये एत (इन्द्र) पान आते हे, अन्य (पूषन्) करम्भ (मत्तू) चाहने हे ॥२॥

"एकता वाहन बरसा हे, जो दूनरेतो पाँटे के जानेपाँटे में। एत शोनीति नाथ (दा) दग्धु (दग्धुओं) को मारने हे ॥३॥"

भरद्वाज कि पूषन्को मूर्यको वाह म्नुति करने हे" (६।५८) —

"बारी-पाँडेवाला, पाँडेवाला, अन्धगामी म्नुति-प्रिय जो पूषन् माँ विद्यममें पान है। का देव-भुक्तको प्रसाद करने विधिले लागतो —
दग्धु भरद्वाज मरता हे ॥३॥

“हे पूषन्, तुम्हारी जो नावें समुद्रके भीतर और आकाशमें चलती हैं, स्तुति किये जाते सूर्यकी कामनासे (तुम) दूत बनते हो ॥३॥

“पूषन् द्यौ और पृथिवीके सुन्दर बन्धु, अन्न-पति, घनवान्, दर्शनीय रूपवान् हैं। स्वेच्छासे बल-युवत, सुन्दर गतिवाले हैं, जिन्हें देवोंने सूर्य लोक के लिये दिया ॥४॥”

इन ऋचाओंसे मालूम होता है, कि पूषन्का सूर्य और पोषण (पशु पोसने) से विशेष सम्बन्ध था, और वह इन्द्रके सखा अन्नके देवता और स्वयं सत्तूके प्रेमी थे—आजके, तिब्बती लोगोकी तरह सारे आर्य उस समय सत्तू प्रेमी (सातूखोर) थे।

✓ १२. प्रजापति—परमेष्ठी प्रजापति ऋषि यह कल्पित नाम मालूम होता है। इस नामसे रचित सूक्तका सारे ऋग्वेद में एक विशेष महत्व है। यद्यपि वह दसवें मण्डलका सूक्त ५। (१० १२९ में होनेसे पीछेकी कृतियोंमें है, पर इसीमें पहिले पहल उपनिषद्के रहस्यवाद और अज्ञेय ब्रह्मका वर्णन मिलता है—

“न असत् था न तव सत् था, न लोक थे, न आकाशसे परे जो है वह (था)। उस समय क्या आवरण, कौन किसका स्थान, (था) ? क्या गहन गम्भीर था ॥१॥

‘तव न मृत्यु थी, न अमृत, न रात्रि, न दिनका ज्ञान था। वायु वित्त वही एक अपने धारणसे था। उसमें दूसरा और कोई नहीं था ॥२॥

“अन्धकारसे छिपा अन्धकार आगे था। यह सब अज्ञात सलिल था। छूछे (शून्य) से जो ढका था, तपस्याके प्रभावसे वह एक उत्पन्न हुआ ॥३॥

“उसके पहले काम (इच्छा) थी। मनमें पहला बीज जो था। कवियोंने बुद्धि द्वारा हृदयमें विचार करके असत् में सत्के बन्धुको प्राप्त किया ॥४॥

“तिर्छा फैला हुआ था, इसकी रश्मि मानो अब थी, मानो ऊपर थी। बीज धारण करनेवाले थे, महिमायें थी, स्वशक्ति स्वधा पूरी थी, प्रयति (प्रगति) परे थी ॥५॥

“कौन जानता, कौन कहा बोधता है, (कि) कहाने यह नृष्टि उत्पन्न हुई। उन (नृष्टि) के होनेके पीछे देव हूये, (अत) कौन जाने जहाने उत्पन्न ॥६॥

“यह नृष्टि जहाने हुई, अथवा धारण हुई या न हुई। जो इनका अर्घ्य परम आकाशमें है। नो भाई, जानता है या नहीं जानता ॥७॥”

प्रजापति-शुक्र यज्ञ भी कल्पित नाम है। उनके रचित नूतनमें भी प्रजापति-या वर्णन मिलता है, परन्तु वह उनका रहस्यमय नहीं है “ (१० १३०) —

“जो यज्ञ तन्तुओंके चारों ओर फैला हुआ एक नो देव-यज्ञोंके विस्तृत है। जो पितर आये हैं, वह बुन रहे हैं। ‘धम्मा बुनो, चोडा बुनो’ कहते विस्तृत फैले यज्ञमें हैं ॥१॥

“तत्र यज्ञी तया प्रमा-प्रतिमा (नोमा-आवृत्ति) धी, तया निदान धा, तया धी धा, तया परिधि (माप) यी। छन्द तया धा, उक्थ्य (नाम (गान) तया धा, जय कि नारे देवोंने यज्ञ किया ॥३॥

“अग्निके नाथ गायत्री छन्द हुआ। उष्णिहके नाथ नमिता हुआ। अनुष्टुप् द्वारा नोम, महान् तेजस्वी (नूयं), उययो द्वारा (हृवा), वृहस्पतिके यज्ञता आश्रय वृहती ने लिया ॥४॥

“त्रिगट् (छन्द) ने मित्र और वरुणा आश्रय लिया। इन्द्र जौन दिनता भाग कहा त्रिष्टुप् हुआ। जगतीने सभी देवोंका आश्रय लिया। उसमें ऋषियों, मनुष्योंके यज्ञ किया ॥५॥

“नाम दिव्य ऋषि स्तोमो (स्तुतियों) छन्दोंके आवृत्त ही प्रमा-नूयन नूये। पहले ऋषियोंके पद्यतो एतत्त रोगेने जैसे पाँडेको जगम वैम पयतो पाया ॥७॥”

प्रजापतिके उन पिछे नूतनमें परंपरे जैसा चमरतान नहीं। परंपरेके अनुसार जानिएस्त पूर्वमें मानना चाहिये। उनी नूतन के रूपमें नूतनिके आश्रयोंने शर्मांकित जगम भर्त्ता नूत ही जगम गये हैं। इनके नूतनमें छन्दोंके नामोंका एक जगम गये हैं वर

दिया गया, और स्तोम (स्तुति) और उक्थ (सामगान) का भी उल्लेख किया है।

१३. मन्यु—देव शब्दका व्यापक अर्थ है। उसमें प्रकृतिके भीतरकी घमत्कारिक शक्तियाँ ही सम्मिलित नहीं हैं, बल्कि मनुष्यके भीतरकी शक्तिया भी देव हैं। सप्तसिन्धुके ऋषियोको अभी शान्ति और अहिंसाका पाठ पढ़नेमें बहुत देर थी। उन्हें अपने शत्रुओपर प्रहार करनेके लिये मन्यु (क्रोध) की आवश्यकता थी। इसीलिये तपके पुत्र मन्युने उसकी प्रशंसा की^{११} (१०।८३)—

“हे वज्र-बाण-तुल्य मन्यु, जो तुम्हारा ओज सबमें पुष्ट होता है, वैसे बलवान् तुम्हारे साथ हम दास और आर्यको पराजित करें ॥१॥

“मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु (है) क्रोध होता, वरुण जातवेद (अग्नि) (है)। जो मानुषी प्रजायें हैं, वह मन्युकी प्रशंसा करती हैं। हे मन्यु, तपस्यासे युक्त हो हमारी रक्षा करो ॥२॥

“बलमें अतिवली मन्यु तपके साथ आओ, शत्रुओको मारो। अमित्रनाशक, वृत्रनाशक और दस्युनाशक, तुम हमारे पास सारे धन लाओ ॥३॥”

उसी कल्पित नामवाले ऋषिने फिर कहा है^{१२} (१०।८४)—

“तुम्हारे साथ रथपर चढ़कर हर्षित होते ढीठ, वेगवान्, तीक्ष्ण बाणो-वाले आयुधोको तेज करते अग्निरूप नर अभियान करें ॥१॥

“अग्निकी तरह प्रज्वलित यज्ञमें पुकारे जाते हे मन्यु, हमारे सेनानी (आगे) बढ़ें। शत्रुओको मार कर हमें धन दो, ओज देते दुश्मनोको भगाओ ॥२॥”

१४ मित्र—मित्र, मिथ्र, मिहिर ईरानी आर्यों और वैदिक आर्योंका सम्मिलित देवता है। उसका नाम पीछेके देवताओमें हमारे यहाँ नहीं मिलता, लेकिन मित्रकी महिमा ईरानमें पीछे बहुत बढ़ी। एक बार उसकी उपामनाकी ओर रोमके सामन्त भी बहुत झुके थे। उस समय ईसाइयत और मिथ्र-भक्तिमें होड थी। कुछ समय तक यह कहना मुश्किल था, कि वहाँ

इसाका घर्म विजयी होगा या मित्र का। मित्र की स्तुति में हम विश्वामित्रकी कुछ ऋचायें देने हैं" (३.१५९) —

"पुकारनेपर मित्र लोगोको प्रेरित करता है। मित्र पृथिवी और द्यौको धारण करता है। मित्र मनुष्योंको कृपादृष्टिसे देखता है। मित्रके लिये घृत-महित हविका हवन करो ॥१॥

"हे मित्र आदित्य, वह मनुष्य धनवान् हो, जो तुम्हारे व्रतसे प्रार्थना करता है। तुम्हारे द्वारा रक्षित वह न हत होता, न पराजित (होता)। दूर या नजदीकसे नाना पाप उसे नहीं प्राप्त होता ॥२॥

"महान् आदित्य नमस्तारसे उपासना करने योग्य है। गुन्दर कमवाद्य जन जाकर उसकी स्तुति करता है। उन अतिप्रधाननीय मित्रके लिये इन प्रिय ऋविको अग्निमें हवन करो ॥५॥

"शक्तिशाली मित्रके लिये पाच जन पूजा करते हैं। वह नारे देवोका पालन करता है ॥८॥"

१५. रुद्र—रुद्र विशेषणके रूपमें गलानेवालेको कहते हैं। वेदके रुद्र और पीछेके पारुषा कोई सम्बन्ध नहीं है, यद्यपि दोनोंको एक मानके रुद्रपरक मन्त्रोको जमा कर "रुद्राष्टाध्यायी" (रुद्री) तैत्तिरीयों में गई है। यमिष्ट अपने यजमान भक्तोको कहते हैं" (७.१६६)—

"हे भगतो, मुनो, यह हमारी वाणिया (रविनायें) म्बिर-धनुष, क्षिप्र-वाण चलानेवाले, अम्रवादे अजेय, विजेता, प्रेसा, तीक्ष्ण आयुधवाले रुद्रके लिये हैं ॥१॥

"(हे रुद्र,) देवलोको छोटी गई जो तुम्हारे विजयी पृथिवीपर विजय लानी हैं, यह हमें प्रचारो। हे मरुत पीनेवाले, तुम्हारे पाप हमारो औषध है। तुम हमारे पुत्र-सौत्रोकी हिता न करो ॥३॥

"हे रुद्र, हमें न मारना, न त्यागना। रुद्र हृष्ये तुम्हारे वन्दनमें हम न पढ़ें। नीचो प्रधाननीय हमारे लक्ष्में आरु भागी बनो। तुम रुद्रा स्वमित्तिरे मरुत हमारो ग्राह करो ॥८॥"

आगिरस कुत्सके सूक्त* (१।११४) से रुद्रके रूप-गुणका कुछ और पता लगता है—

“शक्तिशाली, जूड़ाधारी, शत्रुवीरो के नाशक रुद्रके लिये यह स्तुतिया हम लाते हैं, जिसमें कि दोपायो और चीपायोका कल्याण हो। इस ग्राममें सभी पुष्ट और अरोग रहें ॥१॥

“हम दीप्तिमान् यज्ञसाधक वकु कवि रुद्रको रक्षाके लिये आह्वान करते हैं। वह अपने दिव्य क्रोधको हमसे परे फेंके। हम उसकी सुमति (प्रसन्नता) चाहते हैं ॥४॥

“उस दीप्तिमान् सुन्दर, जटावान्, रूपधारी, धौलोकके वराहको नमस्कारसे हम आह्वान करते हैं। वह हाथमें अच्छे भेषज लिये हमारे वास्ते वर्म (रक्षा), सुख और धर प्रदान करे ॥५॥”

१६ वरुण—वरुण पुराना देवता है। विद्वानोंका कहना है, कि इसीको पारसियोने अहुरमज्द (असुरमेघ) माना। ईरानी और भारतीय आर्य शतवशकी शाखाके हैं। उसकी दूसरी शाखा वाले स्लावों (रुसियो, चेको आदि) में ईसाई होनेसे पहले पेरुन (परुन) *देवताकी बड़ी महिमा थी। पेरुन (परुन) यही वरुण है, इसमें^१ सन्देह नहीं। भारतमें इन्द्र ने वरुण के तेजको मलिन कर दिया, तो भी पुराने ऋषि वरुणकी प्रार्थना गद्गद् होकर करते हैं। वसिष्ठने कई ऋचायें वरुणकी स्तुतिमें रची हैं। यद्यपि वहा उसे विश्वे (सारे) देवोंमें सम्मिलित करके वरुणको गीण बना दिया। वह कहते हैं* (७।३४)—

“महत्त आस्रोवाले उग्र वरुण इन नदियोंके जलको देखते हैं ॥१०॥

“वह राष्ट्रोंके राजा, नदियोंके रूप हैं। वह अनुपम बल वाले और सर्वगामी हैं ॥११॥”

इन ऋचाओंसे जल और वरुणका सम्बन्ध स्पष्ट है।

वनिष्ठ वरुणकी स्त्री वरुणानीया भी उल्लेख करते हैं" (७ ३४)—
 "द्यौ-भृथिवीं हमे अभिलषित धन दे, वरुणानी हमारी स्तुति नुतें ।
 त्वष्टा उपद्रव-नाशने हमारे लिये मुन्दर गृह्वाला हो । वह मुदानो हमें
 धन दे ॥२२॥"

वनिष्ठने अपने मातृवं मण्डलों ८२-८५ सूक्तोंमें इन्द्र और वरुणकी
 नाय-नाथ और ८६-८९ सूक्तोंमें केवल वरुणकी स्तुति की है । ६०-६५
 सूक्तोंमें उन्होंने मित्र और वरुणका वर्णन किया है । इन सूक्तोंमें वरुणपर
 प्रकाश पड़ता है ' (७। ६०) —

"पुकारे गये उदय होने हे सूर्य, आज (हमें) निष्पाप करो, मित्र
 और वरुणके लिये मत्स्य होओ । हे अदिनि, अर्यमा, देवताओंके पान
 हम स्तुति करने तुम्हारे प्रिय हो ॥६॥"

केवल वरुणकी स्तुतिपरक वनिष्ठकी कुछ ऋचायें हैं "(७। ८६) —

"डग (वरुण) की महिमाने जन्म स्थिर हुये । जिनने विस्तृत
 द्यौ-भृथिवीको स्थापित किया । दर्शनीय महान् वाक्पात्र और नक्षत्रको
 उनने दोहरा फालाया ॥१॥

"हे वरुण, देवनेरा उच्छुक्र उन पापके बारे में मैं पूछना हू । जाननेकी
 उच्छाने मैं पूछने जाना हू । (नभी) कविरोने एक ना मुझे कहा—
 'यह वरुण तुमने क्रुद्ध है' ॥३॥"

"हे नैजन्वी दुर्धरं वरुणानी वरुण, क्या पाप था, कि तुम ज्येष्ठ-नगा
 (होने) अपने स्तुतिकर्ताओं मान्ना चाहने में, उमे मुझे बनाया, जिनमें मैं
 एत समन्तारके साथ जन्मो तुम्हारे पान जाऊ ॥५॥

"तुम्हारे पशु प्रोहोका छोट से श्वनं शरीरमें जो गिया, उसे भी
 (छोट से) ॥१॥ गन्तु पशु जिननेवाले शीशकी तरह, स्वामें उसे बछ्छोने
 तरह वनिष्ठको छोट से ॥५॥

"पाप-जित हो मैं शान्ती करूँ उच्छुक्र पौत्र (पुत्र) देवकी
 पापकी तब उचित कर्यं (न्यायी) देव वेतारें । वह भागो कति पापके
 लिये पेरित करे ॥३॥"

भरद्वाजने देव-समुदायमें वरुणका नाम देकर वेगार सी टाली है। विश्वामित्रने जरूर वरुणके प्रति कुछ उदारता दिखलाई है, पर उतनी नहीं, जितनी कि वसिष्ठने। क्या इसीलिये तो वसिष्ठको मैत्रावरुणि (मित्र और वरुणका पुत्र) नहीं कहा गया? अपने मण्डल के अन्तिम सूक्त^{१५} (३।६२)में विश्वामित्रने इन्द्र और मित्रके साथ वरुणकी प्रशंसा की है—

“हे इन्द्र-वरुण, यह धनका इच्छुक महान् यजमान वरावर रक्षाके लिये तुम्हारा आह्वान करता है। मरुतो, द्यौ और पृथिवीके साथ तुम मेरी स्तुति सुनो ॥२॥

“हे सुकर्मा मित्र और वरुण, तुम दोनो हमारी गोशालाओको घृतसे पूर्ण करो। हमारे आवासोको मधुसे पूरा कर दो, सींच दो ॥१६॥”

वसिष्ठकी की हुई वरुणानीकी स्तुति को हम बतला चुके हैं^{१६} (७।३४।२२)

१७ वायु—विश्वामित्रके पुत्रमधुच्छन्दा वायु देवताकी स्तुति करते हैं^{१७} (१।२)—

“हे दर्शनीय वायु, आओ, सोम सजे है। उन्हें पीयो और स्तुति सुनो ॥१॥

“हे वायु, सोम छानते समय जाननेवाले स्तुतिकर्ता उक्त्यों (साम-गान) से अच्छी तरह तुम्हारी स्तुति करते हैं।

१८ वास्तोष्पति—घरोका देवता इस नामसे पुकारा जाता था। वसिष्ठने कहा है^{१८} (७।५५)—

“हे रोगनाशक वास्तोष्पति, सभी रूपोंमें आवेश कर तुम हमारे सुख-कर सखा बनो ॥१॥

“हे अर्जुन (गोरे)सरमा-पुत्र, पिशग (सुवर्ण वर्ण), जब खाते तुम दातो को दिखाते हो, तब ओठोंके पास हथियारकी तरह वे चमकते हैं। इस समय तुम सो जाओ ॥२॥

१९ विश्वकर्मा—ऋग्वेदी विश्वकर्माका पीछेके देवशिल्पी विश्वकर्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। विश्वकर्माका वर्णन ऋग्वेदके सबसे पीछेके दसवें मण्डलमें आया है। वहाके वर्णनमें वह विश्व (ससार) का बनानेवाला

जान पड़ता है। भुवन-पुत्र विश्वकर्मा इस भूवन ^{१०}(१०।८१) के ऋषि हैं, जो कल्पित मादूम होने हैं। भुवन नामको भूवनकी पहली ऋचाने लिया गया है, और विश्वकर्माको इस भूवनमें चार बार दोहराया गया है।

“जिनने इमाग पिता हो उस मारे भुवनको हवन किया। वह आशी-वर्दिने धनकी कामना करना पहले डाँक कर दूसरेमें प्रविष्ट हुआ ॥१॥

“क्या अधिष्ठान (आधार) है, आरम्भ कौन ना और कौने (काम) हुआ था, जिनने गर्वदर्शी विश्वकर्माने भूमिको उत्पन्न किया, (अपनी) महिमाने छोको बनाया ॥२॥

“चारो ओर चक्षु और चारो ओर मुँह, चारो ओर बाहु और चारो ओर पैर वाला वह एक देव, उत्पन्न करने दोनो चादुर्बो-सरोतो छो और पृथिवीको कल्पित करता है ॥३॥

“क्या यन था, क्या वह वृक्ष था, जिनने (विश्वकर्माने) छो और पृथिवीको गढ़ा। हे मनीषियो, मनने वह पूछो जो कि भुवनोको धारण करते, (वह) जिनपर अधिष्ठित हुआ ॥४॥”

२० विष्णु—यह ऋग्वेदके गौण देवताओंमें है। पीछेके विष्णुकी उपासनामें ऋग्वेदके इन मंत्रोंका महान उग्रो तर्क किया गया है, जिन तरह विष्णुकी उपासनामें ऋग्वेदके मंत्रों गढ़ना। पर, पंडित आर्योंको पौराणिक या महाभारतके विष्णु और गढ़ने को मन्त्र नही था। उन्निष्ठने एत सूक्त ^{११}(ज। १००) में विष्णुकी महिमा गाई है—

“दान-उत्पन्न मद बहुको द्राग यमोगान विने गये विष्णुको हरि देना है। जो मनने विष्णुको मेरा करता है वह इतना (शौघ ही) पाता है ॥५॥

“उस देवने जो विष्णुको-नादि उन पृथिवीतो जवना महिमाने तीन राग विष्णुन किया। वृद्धने अविद्ध शीतनादिव्योति शीतानिगापी विष्णु शीतानान् रो, उन ब्रह्म नाम हो ॥६॥

‘मनुष्यो क्षेत्रे लिये उनेले उन्नतमें विष्णुने उन पृथिवीको विष्णु-मय विष्णु (गया)। उनकी स्तुति उन्नेताने उन निष्क है। सुन्दर विष्णुशाली विष्णु शिवातो उन्नतिष्णुने बनाया ॥७॥’

२१. सरस्वती—सरस्वती वेदकी एक प्रमुख देवी थी। कुरुक्षेत्रके पास बहनेवाली सरस्वती भी पीछेकी गंगाकी तरह ऋग्वेदिक आर्योंमें एक श्रेष्ठ देवी मानी जाती थी। सरस्वती का शब्दार्थ सर (जल) वाली है। गंगा अपनी धारासे अलग नहीं है, पर सरस्वती धारासे अलग भी देवी मानी जाती थी। इसके रूपका कुछ पता वसिष्ठ और विश्वामित्र-के मन्त्रोंसे मालूम होता है। वसिष्ठने कई सूक्तों " (७।९५-९६) में सरस्वती की स्तुति की है। वह पहले सूक्तमें " (७।९५) कहते हैं—

“यह सरस्वती पापाणमें दुर्गकी तरह पख और वेंगवाले जलके साथ दौड़ती है। अपनी महिमासे अन्य सिन्धुओ (नदियों) को बाधित करती वह रथीकी तरह जाती है ॥१॥

“नदियोंमें शुचि, गिरियोंसे समुद्र तक जाती, अकेली यह सरस्वती मनुष्योंके लिये भुवनके भूरि धनको चेताती थी और दूधको द्रुहाती जाती है ॥२॥

“हे सुभगा सरस्वती, तुम्हारे लिये यह वसिष्ठ यज्ञका द्वार खोलता है। हे शुभ्रवर्णा, बढो, स्तोताको अन्न दो। तुम नदा हमें स्वस्तिके साथ पालन करो ॥६॥”

अगले सूक्त " (७।९६) में वसिष्ठ कहते हैं—

“हे वसिष्ठ, नदियोंमें बलवती सरस्वतीके लिये बडा गान करो। धौ और पृथिवीमें सरस्वतीको ही सुन्दर स्तोमो (स्तुतियों) द्वारा पूजो ॥१॥

“हे शुभ्रवर्णा, तेरी महिमासे पुरु लोग (दिव्य और मानुष) दोनों प्रकार का अन्न प्राप्त करते हैं। वह मरुतोकी सखी रक्षिका (सरस्वती)। धनिकोंके धनको हमारे पान भेजे ॥२॥”

विश्वामित्रको सरस्वतीकी महिमा विशेष तौरसे गानी चाहिये थी, क्योंकि उनके कुलवाले कुशिक लोग सरस्वतीके तटपर रहते बतलाये जाते हैं। लेकिन, उन्होंने ऐसा पदापात नहीं दिखलाया। एक जगह " (३।४।८) इळा और भारतीके नाय सरस्वती और सारस्वतोका उल्लेख उन्होंने किया है, जिसे हम इळाके प्रकरणमें देख चुके हैं।

भरत जनके ऋषि देवत्रया, देववात एक ही जगह मरस्वतीके साथ उमकी दो महायज्ञ नदियोंका वर्णन करते हैं * (३। २३। ४)—

“हे अग्नि, हम अन्नम्यान उत्तम पृथिवीमें नदा सुदिनके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं। दृषद्वती, आपया, मरस्वतीके तटके मनुष्योंके लिये धनयुक्त हो तुम दीप्तिमान बनो ॥४॥”

इस ऋचामें आर्ष दृषद्वती, आपया, मरस्वती हरियानामें बहनेवाली घग्गर, मरकण्डा और नम्यती नदियां हैं, यह हम पहले कह चुके हैं।

भरद्वाज के ऋचानुसार * (६।६१) यह भी मालूम होता है, कि सरस्वतीने ही दिवोदामको प्रदान किया था—

“इस मरस्वतीने दानी वध्रघद्वको ऋण-रहित अपराजित दिवोदान प्रदान किया। हे मरस्वती, जिमने लोभी, कजूम पणिका भक्षण किया, उन तेरा दान बल-युक्त है ॥१॥

“यह मरस्वती भिम जोदनेवालेकी तरह अपनं बल-शक्ति-ऋहरोमि गिरियोंकी मानुको तोड़ती है। हम तटोंके तोड़नेवाली मरस्वतीकी भक्ति सुन्दर स्तुतियों द्वारा करते हैं ॥२॥

“प्रियोमें प्रिया मुमेविना मान बहनेवाली मरस्वती हमारे लिये स्तुति-योग्य हो ॥१०॥

“हे मरस्वती, हमें उनम धनमें ले जाओ, हमें हानि न पहुंचाओ। जलमें हमारा धन न कगे। हमारी मित्रता और पत्नीको स्वीकार कगे। तुम्हारे श्रेष्ठमें हम अर्घ्यमें न भटकें ॥१४॥”

२२ सविता—गायत्री छन्दमें प्रियामिन्द्र द्वारा रचिन नविताकी स्तुति मगहर है। यद्यपि गायत्री आठ अक्षरोंवाले तीन पादोंके विभीभी गीनि छन्दको कह नाते हैं, लेकिन नविताकी महिमा गानेके कारण इस ऋचाका सावित्री, वा गायत्री नाम हो गया। * (३। ६२)—

“नविता देवताके उन श्रेष्ठ तेजको हम ध्यान करने हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥१०॥

“भग सविता देवताके हम अर्घ्य मागते हैं ॥१६॥

वह सुकृती सविता देवता (अपनी) सुनहली वाहुओको सवन देनेके लिये ऊपर उठाते है। युवा सुदक्ष महान् सविता लोकके रक्षणकेलिये दोनो हाथोको घृत (जल)से प्रेरित करते है ॥११॥ १० (६७१)

“सुनहली जीभवाले हे सविता, सुखद अहिंसक तेजोसे आज हमारे घरकी रक्षा करो। नये सुखके लिये रक्षा करो। अहित करनेवाला हम पर शासन न करे ॥३॥

वह सुवर्णपाणि, लौह-हनु, मधुर-जिह्व, यशस्वी सविता देवता प्रदोष कालमें उगै। वह दाताके लिये बहुत अन्न प्रेरित करै ॥४॥

हे सविता, आज धन, कल धन हमारे लिये दिनप्रति-दिन धन प्रदान करो। हे देव, इस स्तुति द्वारा बहुत निवासके हम धनभागी होवें ॥६॥

२३ सोम—ऋग्वेदका नवम मंडल सोमका मंडल है। भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र तीनों ऋषियोने सोमकी प्रशसामें सूक्त रचे है। सोम भागकी जातिका एक नशीला पौदा था, जिसमें ऋषियोने दिव्यताकी कल्पना की। पेय सोम और उसमें वास करने वाले सोम-देवताके भी गुणोका वह वर्णन करते है। इन्द्र, अग्नि और दूसरे देवता सोमके बहुत प्रेमी थे। भरद्वाजने उन्हीके प्रकरणमें सोमकी महिमा गाई है। उनके पुत्र गर्गने एक सूक्त ही १० (६। ४७) सोमके सम्बन्धमें रचा है, जिसमें पेय सोमके गुणोका भी वर्णन मिलता है—

“यह निश्चय स्वादु है, और यह तीव्र मधुमान (मीठा) है, और यह रसवान् है। इसके पीनेवाले इन्द्रको युद्धमें कोई परास्त नहीं कर सकता ॥१॥

“यह स्वादु है, यह अति मद-दायक है, जिसे कि इन्द्र वृत्रयुद्धमें मस्त हुआ, जिसने शम्बरकी निम्नानवे पुरियोको नष्ट किया ॥२॥

“जिम्ने पृथिवीके विस्तार, द्यौके शरीरको बनाया, वह यह (सोम) है। सोम तीन चीजों (औषध, जल, गाय) में पीयूष (अमृत) देता है, विस्तृत आकाशको धारण करता है।” ॥४॥

वसिष्ठ, विश्वामित्र और वामदेवने सोमकी प्रशसा देवताओंके दिव्य पानकी तरह की है।

असित, देवल ऋषियोंके दो होनेका मन्देह वैदिक-परम्परामें मिलता है। पर, जान पडता है, ऋषिका अमली नाम देवल था, अधिक गोरा होनेके कारण उन्हें अ-मित कहा जाता था। अमित बौद्ध त्रिपिटकमें मिलते हैं। मज्झिम निकायके अस्सलायण सुत्त (२।५।३) में बुद्धने अमित-देवलको एक महान् ऋषिके तौरपर याद किया है। देवलने सात ब्राह्मण ऋषियोंका मान-भर्दन किया था। देवलमे रुष्ट होकर सातो ऋषियोने शाप दिया, पर देवलपर उसका कोई प्रभाव नही पडा। ऋषियोने पूछा—“आप कौन है ?”

जवाब मिला—“आप लोगोने असित देवल ऋषिको सुना है ?”

“हा, भो।”

“वही मे हूँ।”

वह गोत्रमे काश्यप और सोमके खाम तौरमे ऋषि थे, । उन्होने नवें मण्डलमें सोमकी स्तुतिमें १९ सूक्त (६-२४) रचे हे।

नवा मण्डल नारा हैं। सोमकी स्तुतिवाले सूक्तोका समग्र है, जिमके ऋषि हैं—१ मधुच्छन्दा (विश्वामित्र-पुत्र), २ मेघातिथि, ३ काण्व आगिरम, ४ द्युम शेष अजांगतं-पुत्र, ५ हिरण्यस्तूप आगिरम, ६. अमित-देवल, ७ दृढच्युत, ८ इध्मत्राह दृढच्युत-पुत्र, ९ नृमेघ आगिरम, १० प्रियमेघ काण्व, ११ विन्दु आगिरम, १२ रहृगण गंतम-पिता, १३ श्यावाञ्च गंतरेय, १४ तून आप्य, १५ प्रमृत्रसु आगिरम, १६ बृहन्मति आगिरम, १७ मेघ्यातिथि काण्व, १८ अयान्य आगिरम, १९ कपि भृगु-पुत्र, २० उच्यय आगिरम, २१ अवत्याग काश्यप, २२ अमहीयु आगिरम, २३ यमदग्नि भागव, २४ निध्रुवि काश्यप, २५ काश्यप मरोचि-पुत्र, २६ भृगु वरुण-पुत्र, २७ वंग्यातन, २८ भद्राज बृहस्पति-पुत्र, २९ भोम आग्नेय, ३० विश्वामित्र गाधि-पुत्र, ३१ चनिष्ठ मित्रावरुण-पुत्र (१९-२१), ३२ पत्तित्र आगिरम ३३ यत्नप्रो भलदन-पुत्र, ३४. रेणु विश्वामित्र-पुत्र, ३५ ऋषभ विश्वामित्र-पुत्र, ३६ हरि-

मन्त आगिरस, ३७ कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, ३८ वसु भरद्वाज, ३९. प्रजापति वाक्-पुत्र, ४० वेन भार्गव, ४१ आकृष्टमाप आत्रेय, ४२ सिकता आत्रेयी, ४३. अज आत्रेय, ४४ गृत्समद, ४५ उशना काव्य, ४६ नोधा गोतम-पुत्र, ४७ प्रस्कण्व कण्व-पुत्र, ४८ प्रतर्दन दिवोदास-पुत्र, ४९ इन्द्रप्रमति, ५० वृषगण, ५१ मन्यु, ५२ उपमन्यु, ५३ व्याघ्रपाद वासिष्ठ, ५४ शक्ति वसिष्ठ-पुत्र, ५५ कर्णश्रुत्, ५६ मृलीक, ५७ वसुक, ५८ पराशर शक्ति-पुत्र, ५९ वत्स आगिरस, ६० अम्बरीष वृषागिर-पुत्र, ६१ ऋजिश्वा भरद्वाज-पुत्र, ६२ रेभ काश्यप, ६३. अध्रिगु श्यावाश्व-पुत्र, ६४ ययाति नहुष-पुत्र, ६५ नहुष मनु-पुत्र, ६६ मनु सवरण-पुत्र, ६७ विश्वामित्र वाक्-पुत्र, ६८ प्रजापति वाक्-पुत्र, ६९ तृत आप्य, ७१ पर्वत काण्व, ७२ नारद काण्व, ७१ शिखडिनी काश्यपी, ७२ अग्नि चक्षु-पुत्र, ७३ चक्षु मनु-पुत्र, ७४ मनु आप-पुत्र, ७५ गौरिवीति शक्ति-पुत्र, ७६ उरु आगिरस, ७७ ऊर्ध्वसद्मा आगिरस, ७८ कृतयशा आगिरस, ७९ ऋणचय, ८० विष्ण्य ईश्वर-पुत्र, ८१ त्र्यरुण, ८२ त्रसदस्यु, ८३ अनानत परुच्छेप-पुत्र, ८४ शिशु आगिरस । इन ८४ ऋषियो द्वारा रचित सोम-स्तुतिया नवें मण्डलके रूपमें एकत्रित कर दी गई हैं । इनमें एक ओर भरद्वाजसे पहलेके भी कश्यप आदि ऋषि हैं, और दूसरी तरफ वसिष्ठके पुत्र शक्ति तथा उनके पुत्र पराशर और गौरिवीतिकी ऋचायें भी मौजूद हैं । मण्डलका आरम्भ विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दा की ऋचा से हुआ है ।

§३ पितर आदि

इन्द्र आदि देवताओंके अतिरिक्त आर्य अपने पहले के पूर्वजों, पितरोंको भी पूजते थे, और मानते थे, कि वह देवताओंके लोकमें विराजमान हैं । यम-पुत्र शत्रु, यह मदिग्य मा नाम है, उमी तरह विवस्वन्के पुत्र यम भी कल्पित हैं । इन दोनों पिता-पुत्रोंने पितरोंका काफी गुणगान किया है * (१०।१४) —

“यमने हमारे गमनको मवसे पहले जाना । उनका यह मार्ग नष्ट नहीं किया जा सकता । जहा हमारे पुराने पितर गये, उमी अपने रास्ते (सारे) जन्तु जायेंगे ॥२॥

“कव्य (पितरोंके लिये पूजा-द्रव्य) ने मातृगी, अगिरो (पुरोहितो) से यम, ऋक्वो (ऋचाओ) ने वृहस्पति बडे । जिनको देवताओंने बडाया, और जिन्होंने देवोंको, उनके लिये स्वाहा (है), दूसरे (पितर) स्वधामे प्रमन्न होते हैं ॥३॥

“हे यम, अगिरो - पितरोंके माय इम प्रस्तर (यज्ञ) में आकर बैठो । तुम्हें कवियोंके गायें मन्त्र (यज्ञ) लावे । हे राजन्, इम हविसे तुम प्रमन्न हो, यजमानको प्रमन्न करो ॥४॥

“जाओ, प्राचीन मार्गोंने (बहा) जाओ, जहा कि हमारे पुराने पितर गये हैं । यम और वरुणदेवको देवो । दोनो राजा स्वधामे प्रमन्न हैं ॥७॥”

“चार आगोवाले मरमा - पुत्र दोनो काले कुत्तोंको अच्छे मार्गने हटाओ । और यमके माय आनन्दमे रहने विज्ञ पितरोंके और यमके माय जाओ ॥१०॥

“हे यम, मनुष्योंके द्वारा प्रमगनीय पयवाञ्छ, मरदाक तुम्हारे वह जो चार आगोवाले दोनो शयान हैं, उनके द्वारा हे राजन्, उनकी रक्षा करो और इमे स्वस्तिने निरोग रक्को ॥११॥

“बजी नागोवाले प्राणभदाक अतिबन्धान् यमके दोनो दून व्यंगोंके पीछे-पीछे चरने हे । वह दोनो (हमे) मूर्खोंके देननेके लिए पुन रहा अन्त्र प्राण प्रदान करे ॥१२॥

“यमके लिये सोम छानो, यमके लिये त्रिपिता दहन करो । अग्निदूत बर्द्धत गमके पान जाना है ॥१३॥

“यम गजाके लिये मधुमत्तम (अनिमधुर) हविता दहन करो । पुगने पयकर्त्ता पूंज ऋणियोंके लिये वह (मंग) नमस्वात् है ॥१५॥”

यम नामके तन्वित अग्निने ज्यने नूतने यमती महिमा गाई है । उनके तन्वित पुत्र मगने पितरोंके वाग्नें तता है ” (१०१५) —

“उत्तम, मध्यम और साधारण मोमपायी पितर अनुग्रह करें। अमित्र होकर जो घर्मज हमारे प्राणरक्षाके लिये यज्ञमें आये हैं, वे हमारे पितर हमारी रक्षा करें ॥१॥

“जो कि पूर्वके हैं, जो कि ऊपर गये हैं। जो पार्थिव लोकमें बैठे हैं, या जो निश्चय सम्पन्न लोगोमें हैं, आज पितरोंके लिये यह नमस्कार(है) ॥२॥

“पितरों, लाल ज्वालाओंके पान बैठे दाता मनुष्यके लिये धन दो। उमको पुत्र दो, उसे यहा उत्साहित करो ॥७॥

“जो हमारे पूर्वके पितर वसिष्ठोंने मोमपानकी कामना की थी, उनके साथ हविको प्राप्त कर यम सुखी हो तृप्त हो ॥८॥

“जो अग्निमें दग्ध, जो अग्निमें अदग्ध (न जलाये गये) द्यौलोकके मध्यमें स्वघासे सतुष्ट (पितर) हैं। हे स्वराज, उनके साथ एक ही इस सुनीति शरीरको यथाशक्ति बनाओ ॥१४॥”

पितर-सम्बन्धी इन ऋचाओंसे आयोंका अपने मृत पितरोंके सवधमें क्या विश्वास था, इसका पता लगता है। वह समझते थे, कि पितर यम देवताके साथ विशेष सम्बन्ध रखते हैं, वह उनके कृपापात्र हैं। अपनी सन्तानोंके पास उनकी पूजा-भक्ति स्वीकार करनेके लिये वह आते हैं। यमके चार-चार आखवाले दो काले कुत्ते परलोकके यात्रियोंके लिये बड़े भयकर जन्तु हैं। लवी नाकोवाले दो प्राण खानेवाले यमदूत भी कम भयकर नहीं हैं। देवताओंके लिये स्वाहारूपी अन्न आधार है, और पितरोंके लिये स्वधा।

१४ सक्राम कर्म

ऋग्वेदके ऋषियों और उनके प्राचीन वंशजोंको निष्काम कर्ममें कोई वास्ता नहीं था। वह गोसाईंजीके इस वाक्यके माननेवाले थे—“सुर नर मुनिको ये ही रोती। स्वारथ लागि करहि नव प्रीती।” वह देवताओंके लिये यज्ञ, हवन या मोमपान करते-कराते उनके सामने वरावर अपनी अमितापाये रखते थे। उनका भोटो था—“देहि मे ददानि ते” (मुझे दो

फिर मैं तुम्हें दूंगा)। बृहस्पति-पुत्र भरद्वाजकी अग्निमें वह प्रार्थना उनके भावको बतलाती है" (६।१) —

"जो तुमने द्यौ और पृथिवीको विस्तृत किया, (वह तुम) प्रशनामें प्रशमनीय और प्रभामे रक्षक हो। हे अग्नि, बहुत अन्न और विशेष धन द्वारा हम लोगोंको धनवान् बनाओ, दीप्न करो ॥११॥

"हे वसु, हमें मनुष्यों-रहित धन दो, हमारे पुत्रों-पौत्रोंको बहुतपशु दो। पहले (जिनकी) कामना की गई, (वह) बड़ा धन, भद्र यश हमें प्राप्त हो ॥१२॥

"हे राजा अग्नि, तुममें हम बहुत प्रकारके धन और धान्य पायें। हे बहुत श्रेष्ठ राजा अग्नि, तुम्हारे पाम बहुतायत है तुम्हारे पाम बहुतमें धन है ॥१३॥"

भरद्वाज अग्निमें नौ वषं जीनेकी कामना करते हैं" (६।४) —

"हे अग्नि, शत्रुओंमें रहित राम्नेमें हमें शीघ्र न्वस्तिके पाम पहुँचाओ। पाप दूर करो, स्तुति करनेवाले मूरियोंको जो देते हो, उन मुखके माघ हम सुन्दर वीर सन्तानों-रहित नौ वषं जीयें ॥८॥"

उनकी अग्निमें दूमरी याचना है" (६।५) —

"हे अग्नि, तुम्हारी रक्षामें उम कामनाको हम पायें। धन-युक्त, वीर-सन्तान-रहित धन प्राप्त करें। अन्नही कामना करते अन्नको पायें। तुम्हारे अजरामर यज्ञको प्राप्त करें ॥७॥"

और भी" (६।२४) —

"हे इन्द्र, भक्तोंमें तुम रक्षाके लिये सेवन करो। यहाँके शत्रुओंमें (उमकी) रक्षा करो। धन और धर्म शत्रुओंमें शर्तों रक्षा करो, हम गौ हिम (वषं) नुर्वायं गन्तानों-रहित जानदमें रहें ॥१०॥"

वर्णिष्ठ भी आदित्य देवनामें नौ शरद (४२) जीनेकी कामना करते हैं
" (७।६६) —

"यह देवहिनेरी श्रेत-चक्षु उग रहा है।

कल्याणके लिये सात वहिनें (किरणों) सुनहले रथमें सूर्यको वहन करती है ॥१५॥

“वह देवहितैपी शुक्लनेत्र उग रहा है। हम सौ शरद (वर्ष) देखें, मौ शरद जीयें ॥१६॥”

वसिष्ठ मरुत् देवताओंसे कामना करते हैं“ (७।५९) —

“सुगन्वी पुष्टिवर्धक त्र्यम्बककी हम उपासना करते हैं। वह वधनसे वेरकी तरह मुझे मुक्त करे, अमृतसे नहीं ॥१२॥”

फिर वरुणसे वसिष्ठ कहते हैं“ (७।८८) —

“इन ध्रुव भूमियोंमें रहते अदितिके पास (हम) रक्षाकी इच्छा करते हैं, वरुण, हमें वधनसे मुक्त करे। तुम सदा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥७॥”

विश्वामित्रकी एकसे अधिक वार प्रार्थना है“ (३।३०।२२, ३।३१।२२)

“हम शीघ्रगामी, मघवा (घनवान्) श्रेष्ठ नेता, श्रोता, उग्र शत्रुओंके घातक घनवान् इन्द्रको इम आये युद्धमें रक्षाके लिये यज्ञमें पुकारते हैं ॥१०॥”

वामदेव इन्द्रसे प्रार्थना करते हैं“ (४।३०) —

“हे वृत्रहन्ता, तुमने अन्वो और पगुओ दोनोंको मुक्त किया। तुम्हारा वह सुख हटाया नहीं जा सकता ॥१९॥”

दिवोदास-पुत्र परश्वेपने पिशाचोंसे वचनेके लिए इन्द्रसे प्रार्थना की है“ (१।१३३) —

“हे इन्द्र, चिल्लानेवाले पिशाग (पीले) रगवाले पिशाचका नाश करो, सारे राक्षसोंको खतम करो ॥५॥”

सूर्यके रूपमें कोई स्त्री या पुरुष ऋषि, पत्नीकी कामना करता है“ (१०।८५) —

“तुम दोनों यही रहो, विछड़ो नहीं, पुत्रों और नातियोंके साथ खेलते अपने गृहमें मुदित रहते सारी आयुको प्राप्त करो ॥४२॥”

§५ श्रचर्चना की सामग्री

यह बतला चुके हैं, कि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये नप्तमिन्वुके आयांके पान दो क्रियामें थी—अग्निमें हवन करना और नोम तैयार करके चमूजो और कलशोमें रखकर देवताओंको अर्पित करना। हवनकी सामग्री नाना प्रकारकी होती थी, जिनमेंसे किननो हीका पता विश्वामित्रकी ऋचाओंमें मालूम होता है^१ (३।२८)—

“हे जातवेद, स्तुतिरूपी घनवाले अग्नि, प्रातः नवनमें हमारे पुरोडाश हविका मेवन करो ॥१॥

“हे अति तरुण अग्नि, तुम्हारे लिये परिष्कृत पुरोडाश पकाया गया है, उसका तुम मेवन करो ॥२॥ •

“हे अग्नि, पुकारे गये तुम दिनके अन्नमें पुरोडाशको लाओ, तुम माह्नके पुत्र और यज्ञमें अवस्थित हो ॥३॥

“हे जातवेद कवि, यहा मध्याह्नवाले नवनमें पुरोडाशका मेवन करो। हे अग्नि, यज्ञमें घोर लोग महान् तुम्हारे भाग को नष्ट नहीं करते ॥४॥

“हे माह्नके पुत्र अग्नि, तृतीय नवनमें हवन किये गये पुरोडाशकी कामना करो। और स्तुतिके साथ अमर देवताओंमें अविनाशी जागृक रत्नयान् नोम को (ले जाकर) स्थापित करो ॥५॥

“हे जातवेदा अग्नि, आहुतिको बढ़ाते दिनके अन्नमें पुरोडाश मेवन करो ॥६॥”

देवताओंके लिये हवन या नोमपानकी क्रियायें तीन नमय हुआ करती थी, जिनका तीन नवन कहते थे। नष्ट होनेवालीको प्रातः नवन, मध्याह्नमें होनेवालीको माध्यन्दिन नवन और शामवालीको तृतीयनवन या मायनवन कहते थे। विश्वामित्रने अपने इन नूवनमें तीनों नवनोका उल्लेख किया है। पुरोडाश पीछे दूधमें पके चावलवाली गीर्वाको बहा जाने लगा, त्रेक्षिन नप्तमिन्वु के आर्य चावलवा नहीं जिरु नहीं करने। उमरी जगज्जो को टालकर वह पुरोडाश बनाते थे। इसका यह अर्थ नहीं, कि नप्तमिन्वुमें चावल नहीं होता था। मोहनजोदरो और हड़प्पाके लोग चावल खाते थे, पर हनें

“जैसे श्रुवामे घी, चमूमें सोम वैसे ही हे अग्नि, हम तुम्हारे मुंहमें हवि रखते हैं। हमें तुम अन्न, घन, प्रशस्त सुवीर्य सन्तान और बड़े यशको प्रदान करो ॥१५॥”

वसुक्र ऐन्द्र ऋपि इन्द्रके लिये वृषभ (साड) और मोटे भेपके पकानेकी बात करते हैं^{१०} (१०।२७)—

इन्द्र कहते हैं—“हे भक्त, मेरा स्वभाव है, कि सोम सवन करने वाले यजमानको (घन) देता हू। जो अ-हव्यवस्तु देता है, सत्यको नष्ट करता है, पापी और चोर है, उसका मैं नष्ट करनेवाला हू ॥१॥”

ऋपि कहते हैं—“न-देवभक्तो (अपना) शरीर भरने वालीको जब मैं युद्धके लिये ले जाता हूँ। तब तुम्हारे लिये मोटे वृषभको पकाता हू, और पद्रहवी (अमावस्या) की तीव्र छाने हुए सोमका सेचन करता हू ॥२॥”

वही ऋपि फिर^{११} (१०।२७।) कहते हैं—

“मोटे भेषको वीरोने पकाया था, जूयेके स्थानमें पासे फेंके हुए थे। दो बड़े धनुषको लेकर (वह) पवित्र-युक्त शोचन करते जलके भीतर विचरण करते हैं ॥१७॥”

दीर्घतमा ऋपि सोघे घोडेको पकते वतलाते हैं^{१२} (१।१६२)—

“जो पक्व घोडेको देखते हैं। जो कहते हैं ‘सोघा है, देवताओको प्रदान करो’। जो घोडेके मास-भोजनका सवन करते हैं, उनकी कामना हमें प्राप्त हो ॥१२॥”

“जो (यह) मास पकानेकी उखा (हड्डिया) में (उसे पकाते) देखते, जो पाशोंमें जूसको डालते हैं। चरुओंके मुंहको ढाक गरम रखते, सूना (काटनेके पीढे) पर अश्वको सजाते हैं ॥१३॥”

गाय, घोडे, भेपके अतिरिक्त अजा (चकरी) मासको भी देवताओंको अर्पित किया जाता था, इसे वतलानेकी अवश्यकता नहीं।

§६. मन्त्र-तन्त्र

देवताओको हवि और मोमसे प्रसन्न करके ऋपि प्रिय वस्तुओको

मागते और अप्रियको हटाना चाहते थे। इनके अतिरिक्त मन्द-तन्त्र द्वारा भी वह अनिष्ट-निवारणकी कोशिश करने थे, यद्यपि उतना नहीं, जितना कि पीछे उन्हे देखा जाता है। आर्य-स्त्रियोंको जादू-टोनेपर ज्यादा विश्वास था, वह इसके लिये जड़ी-बूटियोंका भी इस्तेमाल करनी थी। इन्द्राणीके नामसे किन्नी कल्पित ऋषि-स्त्रीने मौतमे त्राण पानेके लिये कहा है।^{१०१}
(१०११४५) —

“इम अतिबलवान् वनस्पति औपधिको खोदती ह, जिसके द्वास्त्र मौतको वाधा दी जानी, जिमके द्वारा पतिको अच्छी तरह प्राप्त किया जाता है ॥१॥

“हे उत्तम-वर्णवाली बलवाली, देवोकोपसन्द, सुभगे (औपधि), मौतको मुझने दूर भगा और पतिको केवल मेरा बना ॥२॥

“मैं उत्तम ह, हे उत्तमे, मैं उत्तमने उत्तम वनूं, और जो मौत है, वह मुझमे नीचे मे आँर नीचे हो ॥३॥

“उम (मौत) का नाम नहीं लेती, उन जनमें मन नहीं प्रसन्न होता। मैं मौतको दूरने दूर ही भेजती हूँ ॥४॥

“मैं शक्तिमती हू, और (हे औपधि,) तुम अत्यन्त शक्तिमती हो। हम दोनों शक्ति-शुक्ल ही मेरी मौतको परास्त करें ॥५॥”

यह टोटका-टोना ऋग्वेदके दसवें मण्डलमें आया है, जो उनके बहुत पीछे रचे गये भागोमेंने हैं। टोटके-टोना और मन्त्रोका अधिक प्रयोग अथर्ववेदमे मिलता है।

६७ परलोक

ऋग्वेदमें कही ऐसा वर्णन नहीं मिलता है, जिनने मालूम हो, कि सप्तमिन्त्रुके आर्य पुनर्जन्मको मानने थे। मरने के बाद अपने कर्मोंके अनुसार दूसरे लोकोंमें जाना उन्हें मान्य था। यमलोक और न्यगं दो परलोकोका पना लगना है।

१ यमलोक—यह ग्रमका लोक था, जिसका वर्णन हम यम देवताके साथ कर चुके हैं। इसके वारेमें आर्य कहते थे^{१०२} (१०।१४।१२)—

“जहा हमारे पूर्वके पितर गये।

यमलोक तक पहुचनेके रास्तेमें चार आखोवाले भयकर काले कुत्तो-का वर्णन भी हम कर चुके हैं।

२. स्वर्ग

कक्षीवान् ऋषि देवभक्तोको देवोके पास जानेकी बात कहते हैं^{१०३} (१।१२५)—

“जो देवोंको तृप्त करता है, वह देवोके पासवाले स्थानमें जाता है, नाक (स्वर्ग) पीठपर आश्रित हो अधिष्ठित होता है। उसके लिये आप (जलदेवता) धृत प्रदान करते हैं। सिन्धु, यह दक्षिणा उसको सदा मनस्तृप्ति करती है ॥५॥”

कश्यप मारीच ऋषि स्वर्गको सदा ज्योतिमान्, सुख-युक्त अमृत-लोक^{१०४} (९।११३।७-११) कहते हैं, और वहा आनन्द, मोद, प्रमोदका होना बतलाते हैं (११)।

ऋग्वेदमें धर्म-कर्म, देवताओ, पूजा-सामग्री और स्वर्ग-परलोकके वारेमें जो बातें आई हैं, वह सक्षेपमें यही है।

देखो पृष्ठ २०३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

ऋग्वेदिक आयु ताम्र-युगके अन्तमें थे, ऋषि भी उनकी जीविकाका माधन थी, पर उगमें पशुपालनकी प्रधानता थी। उन समयके कपडा बुनना आदि शिल्पोंके बारेमें हम कह चुके हैं*। इनका ज्ञान उनको अवश्य था।

§१. ऋषि

१ हल, फाल

ऋषिके बारेमें हम पहिले कुंल कह आये हैं।

हलका उपयोग वह करते थे, और गीरा (नदी, हल) का भी उल्लेख मिलता है ' (४।१९) । वामदेव कहते हैं—

"इन्द्रने वृषको मारकर पहिलेकी उपाओ, धरदो और ग्धी गिन्युओं को मुक्त किया। चागे तरफ मौजूद बाधों गई गीराको पृथिवीके ऊपर बहनेके लिये मुक्त किया ॥८॥"

गीरा यहा नदी को कहा गया है। नदी और हर्गई दोनोंके लिये गीरा कहना उनकी आकारकी समानताके कारण था।

बृध गीम्य भी गीरा (हलकी हर्गई)के बारेमें रहते हैं (१०।१०१)—

"गीराको जोडो, जूयेको फैलाओ। यहा (इन) स्थानमें बीज बोओ। और स्तुतियों हमारे लिये भरपूर जन्न हो। पास पकी फलद्रुमें हनुये पहुँचें ॥३॥"

"रवि गीराको जोडते हैं, जूयेको पृथक् करने हैं। देवोंके लिये मुन्दर स्तोत्रके नाम धीर हैं ॥४॥

‘पशु-प्याव बनाओ, रस्सी (वरहा) जोड़ो। पानीवाले गडहेसे हम सुसेचन करते (उसे) निरन्तर सीचें ॥५॥

“पशुओका प्याव तैयार है, सुसेचन (के लिये) जलवाले अक्षय कुये (अवत)में सुवरत्र (वरहा, रस्सा) है ॥६॥

“घोड़ोको तृप्त करो, हित (वस्तु) पाओ, स्वस्तिके साथ वहन करनेवाले रथको तैयार करो। द्रोण भरके पत्थरके चक्केवाले असत्रकोश- (मान बँधे) युक्त कुण्डको मनुष्योके पीनेके लिये भरो ॥७॥”

२. कुआ

पजाव जैसी जगहमें उस समय भी खेतीके लिये और आदमियो-पशुओ के पीनेके लिये भी आजकी तरह ही कुओकी बड़ी अवश्यकता थी। पानी स्वाभाविक स्वयज और खनित्रिय (खोदकर निकाले) दो प्रकारके होते थे। यश वासिष्ठके कथनमे मालूम होता है ^१(७।४९)—

“जो जल दिव्य या खनित्रिय अथवा जो अपने उत्पन्न बहते है। जो समुद्रार्थ शुचि पवित्र जलदेविया है, वह मेरी रक्षा करें ॥२॥”

भरद्वाज भी कुए (केवट) का उल्लेख करते है ^२(६।५४)—

“हमारी गौवें नष्ट न होवें, हमारी (गौवें) मारी न जायें (वह) कुएमें न गिरें। विना हानिके (गोष्ठ में) आवें ॥७॥”

गृत्समद भी कुए (उत्स) का उल्लेख करते है ^३(२।१६)—

“तुम शत्रुनाशक हो, युद्धमें नावकी तरह हम तुम्हारे पास जाते है, सवनमें ब्रह्माके स्तोत्र-वचनके साथ जाते है। हमारे इम वचनको अच्छी तरह जानो। हम कुर्येकी तरह इन्द्रको धनसे सीचेंगे ॥७॥”

३. कुल्या

पीछे और आज भी कुल्या या (कूल) छोटी-बड़ी नहरोको कहते है, लेकिन उस समय कुल्याका अर्थ कूल या तटवाली था, जो नदी या नहर दोनो का नाम था। कृष्ण आगिरस कहते है ^४(१०।४३)—

‘जैसे जल सिन्धुकी ओर बहते हैं, कुल्या हृदकी ओर बहती है, वैसे (ही) नोम इन्द्रकी ओर (बहें) । इसके तेजको यज्ञशालामें ब्राह्मण उसी तरह बढ़ाते हैं, जैसे दिव्य दाता द्वारा (भेजी) वृष्टि जाँको बढ़ाती है ॥७॥”

भोम आग्नेय भी कुल्याका उल्लेख करते °(५।८३) है—

‘हे पर्जन्य, महान् कोश मेघ को उठाकर सींचो। रुकी हुई कुल्या पूर्वकी ओर बहें। घी (जल) में घी और पृथिवीको भिगो दो, घेनुओंके लिये सुन्दर प्याव हो (जाये) ॥८॥”

§२. वास्तु

आर्य यद्यपि नगरोंके निवासी नहीं थे, न सप्तसिन्धु के नगरोंका उल्लेख मिलता है, पर, हमें मालूम है, कि सिन्धु-उपत्यकाके निवासी मोहन जोड़रो और हड़प्पा जैसे अच्छी तरह बने-बने शहरोंमें रहा करते थे^१। यदिक आर्य केवल घुमन्तू पशुपाल नहीं थे। वह कृषक भी थे, और अपने पशुओंकी अनुकूलता देखकर गावोंमें रहते थे। उनके ग्रामोंमें दम, घाला, कुटी ही नहीं, बल्कि हजार खम्भेवाली और हर्म्य जैसी इमारतें भी थी। हर्म्य यद्यपि पीछे राजप्रामादको कहा जाता था, पर वसिष्ठके कथन^२ (७।५६) में ऐसा नहीं मालूम होता—

‘मस्त्रगण घोड़ेकी तरह सुन्दर गतिवाले, हैं, उत्सवदगीं मनुष्योंकी तरह शोभने हैं। वे हर्म्यमें स्थित शिशुओंकी तरह शुभ्र और क्रीटाप्रिय बछड़ोंकी तरह जलधारक हैं ॥१६॥”

तद्वत्स्थूप हजार खम्भेवाले हाल का उल्लेख श्रुतविध आग्नेयकी ऋचामें है ° (५।६२)—

‘हैं मित्र-वरुण मुहृत (यज्ञ) में दानशील ही यजमान के बध्नकी रक्षा करो। श्लोघ-रहित तुम दोनों राजा, हजार खम्भेवाले गृहको पारण करो ॥६॥

उद्धृत कर चुके हैं। यह दोनों ही भार-माप बड़े हैं, इनसे छोटे पसर या दूसरे माप भी रहे होंगे।

मापमें अगुलका उल्लेख नारायणने किया है ^{१०} (१०।१०) —

“वह सहस्र-शिर, सहस्र-नेत्र, सहस्र-चरण पुरुष भूमिको चारों तरफ घेर कर दस अगुलसे अधिक होकर खड़ा हुआ ॥१॥”

अगुल और योजनके बीचमें हस्त और धनुषके माप आते हैं, जो उस समय रहे होंगे, क्योंकि योजनका उल्लेख कक्षीवान् ने ^{११} (१।१२३) किया है—

उपा जैसी आज, वैसी ही कल वरुणके दीर्घ धामका सेवन करती है। निर्दोष एक-एक उपा तुरन्त तीस योजन (तक जा) कार्य करती है ॥८॥”

^{१२} (१०।८६।२०) ऋचा में भी योजन है।

§५ सख्या

ऋग्वेदमें सख्याका अन्त अयुत (दस हजार) में किया गया है। उसके चाद उसी को दस, शत या सहस्र लगा कर बढ़ाया जाता होगा। सख्याका उल्लेख ऋचाओंमें निम्न प्रकार हुआ है—

एक दो उभ (६।३०) —

पराक्रमके लिये फिरसे ^{१३} बड़े अकेले जरा-रहित इन्द्र धन देते हैं ॥१॥

“इन्द्र द्यौ और पृथिवीका अतिक्रमण करते हैं। उनका आधा ही उभे (दोनों) द्यौ और पृथिवीके बराबर है ॥१॥”

^{१४} (६।२७) —

पार्थिवोका सम्राट् अभ्यावर्ती चायमान धनवान् है। हे अग्नि, वधू-सहित रथ और बीस गायें यह दोनों मुझे प्रदान करे ॥८॥”

एक और दो—भरद्वाज ^{१५} (६।४५)

“हे वृत्रहन्ता, तुम हम जैसें कि एक और दोके रक्षक हो। ॥५॥”

प्रथम—वनिष्ठ ^{१६} (७।४४) —

“तेज घोड़ोंमें दीघिक्र (है, वह) प्रथम रथोंके आगे होता है ॥१४॥”

तीन, चार, सात, नौ, दस—गृत्समद ^{१७} (२।१८)

“तव नया प्रातः हुआ, चार जूआ (पत्थर) तीन कपा (स्वर) सात रश्मि (छन्द) वाले नवीन, रथ (यज्ञ) को जोडा । दस पात्र (वाले) मनुष्यके लिये स्वर्गप्रद वह स्त्रियो और स्तुतियो द्वारा प्रसिद्ध हुआ ॥१॥”

प्रथम, द्वितीय, तृतीय—गृत्नमद ' (२।१८)

“वह यज्ञ इस इन्द्रके लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवनमें पर्याप्त हुआ । वह मनुष्यके लिये शुभ लानेवाला है ॥२॥”

चार—प्रतिरथ " (५४७)

चार (ऋत्विज) कल्याण-कामनामे (हवि) धारण करते हैं, दस (दिशायें) गर्भस्य सूर्यको प्रेरित करती है । तीन प्रकारकी इसकी श्रेष्ठ किरणें सद्य द्यौके अन्त तक विचरण करती है ॥४॥”

पांच—वमिष्ठ " (७।१५)

“जो युवा कवि गृहपति घर-घरमें पचजनोके मामने बैठता है ॥७॥”

विश्वामित्र " (३।२७) :

“हे शतशत्रु इन्द्र, पाचो जनोमें जो तेरा इन्द्रत्व है, (इनलिए) उन्हें हम तुम्हारा ममजते हैं ॥१९॥”

साठ, हजार,—वमिष्ठ ' (७।१८)

“गो चाहनेवाले अनु और द्रुह्युके नाठ सौ छ हजार नाठ और छ बीस गो गये । वह सब इन्द्रके वीर्यके काम हैं ॥१४॥”

सात—भरद्वाज " (६।७४)

“हे सोम-ग्रह, अनुर-अम्बन्धी ब्रह्म हमे दो । वन तुम्हें प्राप्त हो । घर-घरमें ज्ञान रत्न धारण करते हमारे शोषायो और चौपायोंके कल्याणकारी होओ ॥१॥”

आठ—हिरण्यग्नूप " (१।३५)

“पृथिवीके आठो (दिशायें) नौनो (धन्वां) मज्ज निग्युओंको प्रकाशित किया । मुनहली आग्नीकोले नविना देव दजमानको श्रेष्ठ रत्न देने आये ॥८॥

नौ, नग्ये—वमिष्ठ " (७।१९)

अध्याय १७

आर्य-नारी

ऋग्वेदमे यह नही मालूम होता, कि सप्तसिन्धुकी आर्य-स्त्रियोकी स्थिति उतनी हीन थी, जितनी पीछे देखी गई। यह ठीक है, अब वह सामन्तवादी व्यवस्थाके अधीन थी, जिसमें जन (पितृसत्ताके) अवस्थाके अधिकार सुलभ नही थे। शुद्ध जन-व्यवस्थामें स्त्रिया हथियार लेकर लड़ सकती है। ईसा-पूर्व छठी शताब्दीमें मध्य-एसियाके शकोमे ऐसा ही देखा जाता था, जहाँ घुमन्तू स्त्रियोने कितनी ही बार हथियार उठाये। लेकिन, स्त्रियोका युद्ध-में जाना आर्य वुरा समझते थे। शम्बरके पहाडी लोग जन-अवस्थामें थे, उनके लिये स्वाभाविक था, कि दिवोदासके साथ उनका जो जीवन-मरणका सघर्ष चल रहा था, उसमें पुरुषोकी तरह स्त्रिया भी शामिल हो। पर आर्य ऋषियोने "अबला क्या करेगी" कह कर इसका उपहास किया था,* यह हम बतला आये है। इस प्रकार आर्य-स्त्रियो के सग्राममें खुलकर भाग लेनेकी सम्भावना सप्तसिन्धुमें नही थी। वैसे अप-वादके तौरपर स्त्रियोने कभी अपने हाथ दिखाये हो, तो दूसरी बात है।

युद्धके बाद सबसे महत्त्व था ऋचाओ (पदो)की रचनाका, जिसके कारण उन्हें ऋषि, ऋषिका कहा जाता। ऋषिकाओकी सख्या ऋग्वेदमें दो दर्जनसे कम नही है। पर, विश्लेषण करनेपर उनमेंसे अधिकाशको मानुषी नही कल्पित ही देखा जाता है। केवल घोषा और विश्ववाराको ही ऐतिहासिक ऋषि माना जा सकता है। ऋषिकाओके नामसे जो ऋचायें ऋग्वेदमें मंगृहीत हैं, उनकी रचयित्रिया स्त्रिया ही रही होंगी, यह कहना मुश्किल

है। हा, इन ऋचाओंमें ऋग्वेदिक आर्य-स्त्रियोंके जीवनके बारेमें कितनी ही बातोंका पता जरूर लगता है। इन कल्पित-अकल्पित ऋषिकाओंकी कुछ सूचितया निम्न प्रकार है;

१. अदिति—ऋग्वेदके दसवें मण्डलका ७२वा सूक्त बृहस्पति अथवा अदितिका बनाया बतलाया जाता है। इसमें अदितिका नाम^१(१०।७२) आया है, शायद इसीलिये इसे अदितिका बनाया सूक्त कह दिया गया। अदिति (धौ) दक्षकी पृथ्वी कही गई है, और दक्ष (सूर्य)को भी अदितिका पुत्र बतलाया गया है—

“उत्तानपद (वृक्ष) से भूमि उत्पन्न हुई, भूमिसे दिशायें उत्पन्न हुई। अदितिसे दक्ष, दक्षसे अदिति उत्पन्न हुई ॥४॥”

“हे दक्ष, जो तेरी दुहिता अदिति है, उसने देवोंको जन्म दिया। उसके पीछे महान् अमृतबन्धु (अमर) देव उत्पन्न हुये ॥५॥”

“शरीरसे अदितिके जो आठ पुत्र* उत्पन्न हुये। (उनमेंसे) मातके नाथ वह देवताओंके पान गई। (पर) मार्गण्डकां परे स्थापित कर दिया। ८।”

इनमें दिव्य अदिति (धौ) का वर्णन है। वह नप्नमिन्धुकी ऋषिका नहीं थी।

२ इन्द्र-मातायें—इन्द्रकी माताओंका सूक्त^२ (१०।१५३) भी इसी तरह कल्पित नामसे है। इस सूक्तमें इन्द्रके जन्म तथा धीरनामा वर्णन है। अगली ऋषिका नाम मालूम न होनेपर इन्द्रको जन्म देनेवाली इन्द्र-माताओं को इनका रक्षयिता मान दिया गया। इनकी कुछ ऋचायें हैं—

“उत्पन्न इन्द्रके पान कायं-नत्पर, सुन्दर-वीर्य-अभिलाषिणी उत्तानना गन्ती है। १।”

“हे इन्द्र, तुम नदोंके बल्ले ओजने पैदा हुये। तुम कामनापूरक (युव) हो। २।”

* मित्र, वरुण, पाता, अर्यमा, नग, भग, वियन्वान्, आशित्वा

“हे इन्द्र, ओजके साथ वज्र को तेज करते तुम (अपने) माथी अर्क (सूय) को दोनो बाहोमे धारण करते हो।४।”

३ इन्द्राणी—यह भी कल्पित नाम है। इसकी ऋचाओ (१०।१४५) में कही इन्द्राणीका नाम नहीं आया है। स्त्रीको सौतसे भय होना स्वाभाविक है। सपत्नी-वाधनके लिये यहा जडो-वृटियोंके प्रयोगका उल्लेख है, जिसे हम ‘मन्त्र-तन्त्र’के प्रकरणमें* (अध्याय १५) बतला आये हैं। इन्द्राणीका एक और सूक्त (१०।८६) मिलता है, जिसमे इन्द्राणीके तेजका पता जरूर लगता है। घरमे वृपाकपि (अग्नि) के अधिक सम्मानको इन्द्राणी सह नहीं सकी, इसलिये वह इन्द्रके सामने उसके प्रति रोप प्रकट करती है। इन्द्रने ही आगमे घी डालते हुये आरभ किया—

“सोम छाननेके लिये कहा था, पर स्तोताओने देवेन्द्रकी उस यज्ञमे स्तुति नहीं की, जहा यज्ञमें पुष्ट मेरा मखा आर्य (स्वामी) वृपाकपि (अग्नि) मत्पुष्ट हुआ। इन्द्र सबसे उत्तम है।१।”

इन्द्राणी कहती है—हे “इन्द्र, तुम विचलित होकर वृपाकपिके पास दौड़े जाते हो, अन्यत्र सोमपानके लिये नहीं जाते।०।२।”

“क्या है, जो तुम्हें इस पीले (हरे) मृग वृपाकपि ने (ऐसा) बना दिया, कि उसके लिये पुष्टिकारक घन तुम अर्य (स्वामी) देते हो।०।३।”

“हे इन्द्र, जिस इस प्रिय वृपाकपिके तुम रक्षक हो। उसके कानमें बराह (को काटने) की चाहवाला कुत्ता काटे।०।४।”

मेरे लिये साफ की हुई तैयार प्रिय वस्तुको कापने दूषित कर दिया। इसके सिरको काट लो। इस दुष्कर्माको सुख न होवे।५।”

इन्द्र—“सुधाहु, सुबगुलीवाली, बड़े बालो, मोटी जाधोवाली हे शूर-पत्नी (इन्द्राणी,) तुम क्यों हमारे वृपाकपिपर क्रुद्ध हो।८।”

इन्द्राणी—यह दुष्ट वृपाकपि मुझे अवीरपुत्रीवाली समझता है। परन्तु मैं वीरपुत्री इन्द्र-पत्नी हूँ। मेरे मखा मरुत् है।१।”

“हवन या युद्धके समय नारी वहा पहले आती है। मृत्युकी विधाता वीरपुत्रा “इन्द्र-मत्नीकी पूजा होती है० ११०।”

इन्द्र— इन नारियोंमे इन्द्राणीको मैंने मौभाग्यवती सुना है। दूसरोंकी तरह इसका पति बुढापेमे नहीं मरता ॥११॥

“हे इन्द्राणी, (अपने) मित्र (उन) वृषाकपिके बिना मैं नहीं खुश रह सकता, जिनके द्वारा प्राप्त यह प्रिय हवि देवताओंके पाम जाती है। १२।

“हे धनवती सुपुत्रा सुवधुका वृषाकपि-पत्नी, इन्द्र तेरे बँलोको खा जाये, प्रिय हविका भख जाये ० १३।”

“(भवत) मेरे लिये पन्द्रहके माथ बीस (३५) बँलोको पकाते है, और मैं खाकर मोटा हूँ। मेरी दोनो कुधियो को (भक्तजन) पूर्ण करते हैं ० १४।”

“हे वृषाकपि, मरुभूमि और काटने लायक जो वन है, वह कितने योजन हैं। आओ पागवाले उन गृहोमें ० १०।”

वृषाकपि अग्नि है। अग्निके मुग्धमे ही इन्द्र हवि ग्रहण करना है, इसलिये वृषाकपिको वह अपना परममित्र माने, तो कोई आश्चर्य नहीं। उगी कारण इन्द्राणीका वृषाकपिके ऊपर कोप था। देवताओंमें भी पारिवारिक कलह कितना था ?

४ उर्वशी—उर्वशी अप्सरा थी, जिनमे पुरुष्वाने प्रेम किया। जैसे आज गजावमे हीर-राजा, मोहनी-महीचाक्री प्रेम-कथायें प्रचलिन हैं, उगी तरह उर्वशी और पुरुष्वराकी प्रेम-कथा नप्तनिन्तुमें उन नमय प्रचलिन थी। सम्भव है, वह मानुष प्रेमी और प्रेमिका रहे हों, जिन्हें मानव-देवी बना दिया गया। ऋग्वेदके इन प्रेम कथानकवाले नूवन (१०।१५) को उर्वशी और पुरुष्वराकी रचना बतलाया गया है, जिनमे यही नाट्यम होता है, कि अनन्त रचयिता (लासकवि) का नाम विन्मृत हो गया था। उन को छोड़कर जिनो उर्वशी ने प्रेमी पुरुष्वरा ब्रह्म अनुत्तम-प्रिय कम्ना है, उर्वशी (नर्ती) बनना है। लेकिन, उर्वशी कुछ नुननेके लिये नयान नहीं होती। यह बड़ा नव नव देवी है, कि न्यियोंमे प्रेम नहीं होता उनके हृदय भँधियोंके ने हैं। (१०। १५।१५) १३वीं ऋचाके बौनाकवा नाम आया है, जिनमे नन्देह होता है,

कि शायद वसिष्ठ ही इन ऋचाओंके कर्ता रहे हों^१ (१० ९५)—

“अन्तरिक्षको भरनेवाली लोकोको नापनेवाली उर्वशीसे मैं वसिष्ठ प्रार्थना करता हूँ। सुकृत-दाता (पुरूरवा) तुम्हारे पास रहे, लीटो, मेरा हृदय तप रहा है। १७।”

यह सूक्त ऋग्वेदके उन सूक्तोंमें है, जिन्हें उत्तम काव्य कहा जा सकता है। इसे हम पहले दे आये हैं।*

५. घोषा कक्षीवान्-पुत्री दोनों अश्विनीकुमारोकी प्रशसामें घोषा-ने दो सूक्त (१०।३९।४०) रचे हैं। पहले सूक्तमें उमने भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके ऊपर अश्विनीकुमारोके किये गये उपकारोका उल्लेख किया है। ये व्यक्ति ये—तुग्र-सन्तान च्यवान^१ (१०।३९।५) विमद, शुन्ध्यु, पुरु-मित्र, वध्रीमती (७), पेदु (१०), शयु (१३), भृगु (१४)। घोषा अपनी सुन्दर रचनामें किसी भी ऋषिका मुकाविला कर सकती है। वह कहती है^२ (१०।३९)—

“हे अश्विनो, सारी पृथिवीपर जानेवाला तुम्हारा सुनिर्मित रथ है, जिसे हविवाले यजमान प्रतिदिन प्रतिरात्रि और प्रतिउपा पुकारते हैं। तुम्हारे पिताके सुन्दर पुकारे जानेवाले नामकी तरह तुम्हारे (नामका) हम मदा आह्वान करते हैं। १।”

हे अश्विनो, जैसे भृगु लोग रथको गढ़ते हैं, वैसे इम स्तोम (स्तुति) को तुम्हारे लिये मँने बनाया। पतिके लिये जैसे वधूको अलकृत करते हैं वैसे ही मैंने मानो नित्य पुत्र और पौत्रको धारण करती इमे अलकृत किया। १४।”

दूसरे^३ (१०।४०) सूक्तमें घोषा (५) कुत्स (६), भुङ्ग-वगज मिजार-उगना (७), कृश-मजु (८) का उल्लेख किया है। घोषा राजाकी दुहिता थी, यह उसकी निम्न ऋचा^४ (१०।४०) से पता लगता है—

“हे अश्विनो, राजाकी दुहिता घुमक्कटा घोषा तुमसे बात करती है,

हे नेताओं, (वह) तुममें आज्ञा मागती है। दिन हो या रात इन समय अश्व वाले रथों अर्धन्को तुम दमन करने हो। ४।”

अश्विद्वयसे अपनी कामना प्रकट करती हुई घोषा वर मागती है—

“मैं उस बातको नहीं जानती, उसे तुम बतला दो, जिसे कि युवा और युवती घरमें रहकर अनुभव करते हैं। मैं स्त्री-प्रिय मुपुष्ट वीर्यवान् तरुणके गृहमें जाऊ, हे अश्विनो, (मेरी) यह (कामना) पूरी करो। ११।”

नप्तगिन्धुकी आर्य कुमारिया क्या कामना करती थी, यह घोषाके इस वचनमें मालूम होता है। स्वस्य प्रिय पति पाना उनके जीवनका उद्देश्य था। घोषाके पुत्र कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र एक बड़े ऋषि थे, जिनकी ऋचायें ऋग्वेदके पहले मण्डल के दन सूक्तमें मिलती हैं। कक्षीवान्के राजा होनेका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। घोषाका व्याह्र जिनमें हुआ, उसका भी नाम नहीं पाया जाता। उनके पुत्र मुहस्रको माताके नामों ही गाद किया गया है। पुत्रने भी माकी तरह दोनों अश्विनोकुमारोकी प्रार्थना की है।” (१०।४१। १-३)। घोषा चिरन्तक पिताके घरमें बरांगी बैठी रही।” (१।११७।७)

६ जुहू वह भी कोई वन्धित नाम मालूम होता है। इनमें मण्डलमें जुहू का एक सूक्त (१०।१०९) मिलता है। यद्यपि पीछेके लोगोंने जुहूको ब्रह्मवादिनी बतलाया है, पर यहाँ उनमें ब्रह्मकी कोई बात नहीं कही, और सिर्फ विश्वदेवोंकी स्तुति की। हा, उनमें ब्रह्मनारीका उल्लेख जम्बर किया है। इस सूक्तके बारे में बतलाया जाता है, कि अर्धे पति वृहस्पतिने किसी कारण उसे त्याग दिया था, जिनके शिष्य गमता-नुताकर, देवोंने उनको गोधे रान्धमें लानेमें सफलता पाई। उसकी कुछ श्रुतियोंमें गमन्तिभुके दाम्पत्य-जीवनपर प्रकाश पड़ता है।” (१०।१०९)।—

“उन प्रथमोंने कृता (ऐना करनेसे) ब्रह्म-प्राप ल्या। किन् प्रथमजो (पूर्वजो)—सूय, वायु, जल, उग्र सुरात्तर नोम और आप देवितों—ने नरते साथ प्राणश्चित्त कराय्य। १।”

प्रथम सोमराजने आकृष्ट हो ब्रह्मपत्नीको फिरसे वृहस्पतिको प्रदान किया। मित्र और वरुणने उनका अनुगमन किया। होता अग्नि हाथ पकड़कर उसे ले आया।२।”

“इसका शरीर हाथसे ही पकड़ना चाहिए, यह ब्रह्मजाया हैं—(यह) उन्होंने कहा। भेजे गये दूतके साथ इमने उसी तरह सम्पर्क नहीं किया, जैसे क्षत्रिय-का रक्षित राष्ट्र।३।”

“पुराने देवो और तपस्यामें बैठे उन सात ऋषियोने कहा—भीमा पत्नीको ब्राह्मणके पास ले आये, निकृष्ट (पत्नी) भी परमस्थान पर स्थापित होती है।४।”

“विना पत्नीके ब्रह्मचारी रह विचरता, वह (वृहस्पति) देवताओका एक अंग हो गया। सोम द्वारा लाई गई पत्नी जुहूको जैसे देवोने, वैसे ही वृहस्पतिने प्राप्त किया।५।”

“देवोने फिर(उसे) प्रदान किया, और फिर मनुष्योने प्रदान किया। राजाओने(बात) सच्ची करते ब्रह्मपत्नीको फिर प्रदान किया।६।”

जहा तक ऋचाओका सम्बन्ध है, इसमें जुहू अग्नि देवताकी पत्नी मालूम होती है। सप्तसिन्धुके आर्यपुरुष अपनी पत्नीसे अनवन कर बैठते होंगे, फिर उनका पुनर्-मिलन कुछ इसी तरह होता होगा।

७ दक्षिणा—यह भी कल्पित नाम है। दक्षिणाको प्रजापतिकी पुत्री कहा जाता है। इसके सूक्त ” (१०।१०७) में दान-दक्षिणाकी महिमा गाई गई है—

“मघवा (घनवान्) सूर्यका महान् तेज आविर्भूत हुआ, (उमने) इनको और मारे जीवोको अन्वकारसे निर्मुक्त किया। पितरो द्वारा दी गई बड़ी ज्योति आई। दक्षिणाका विस्तृत पख दिखाई पडा।१।”

“दक्षिणावाले (दानी) ऊचे द्योलोकमें स्थान पाते हैं, जो अश्व-दायक (हैं) वह सूर्यके साथ होते हैं। सोना-दायक अमरताको पाते हैं, वस्त्र-दायक मोमके पास जा आयुको प्राप्त होते हैं।२।”

“देवोकी पूजावाली दक्षिणा दिव्य मूर्ति है। वे (देव) कजूमोको

तृप्त नहीं करते। और दीपसे उरनेवाले बहूतेरे जो नर दक्षिणामें तत्पर है, (वह) तृप्तिको प्राप्त होते हैं।३।”

“दक्षिणावान् (दानी) पहले बुलाया जाता है। दक्षिणावान् श्रेष्ठ ग्रामणी होता है। जो पहले दक्षिणा देता है, उनीको मैं जनोका नृपति मानता हूँ।५।”

“यज्ञकर्त्ता, मामगायक, उक्थ (स्मृति) बोलनेवाले उनीको ऋषि, उमीको ब्रह्मा कहते हैं। जिनने पहले दक्षिणामें आराधना की, वह शुक्र (अग्नि) के तीनों शरीरोंको जानता है,।६।”

“दक्षिणा अश्वको, दक्षिणा गायको देती है। दक्षिणा चन्द्र (चादी) और जो मांता है, उमे देती है। दक्षिणा अन्नको देती है, जो कि हमारा आत्मा है। आदमी जानते हुये दक्षिणाको कवच बनाता है।७।”

“भोज (भोजन-दाता) न मरते, न दरिद्र होने, न क्लेश पाने हैं, न भोज व्यथित होते हैं। वह जो नारा भुवन और यह स्वयं हैं, नक्षको दक्षिणा उन्हें प्रदान करती हैं।८।”

“भोज पहले ही मुरभि-मूल पाते हैं। भोज गुन्द्र वस्त्रवाशी वह पाते हैं। भोज आन्तरिक पेय मुराको पाने हैं। जो बिना बुलाये आने हैं, उन्हें भोज जोत देने हैं।९।”

“भोजके लिये (योग) गीघ्रगामी अश्व गजाते हैं। भोजके लिये वह मुन्दरी कन्वा है। भोजका यह घर पुत्रगिणी मा देव-विमान ना अद्भुत परिष्कृत है।१०।”

दानों महिमा आर्योंमें बहुत थी। अनियियोंको अन्न-भोजन देनेमें बर बडे उदार थे। त्रेकगम्पतिगाली आर्य अपने घरको देव-विमान और पुत्रगिणी मा देना चाहता था।

८ निवाचरो या सिरुता—उन्हें अन्न-भोजो अग्निकाये बननाना गया है, पर यह भी उल्लिख नाम है, मूल स्वयितारा नाम माहूम नहीं है। निवाचरोने अपनी पत्नियों “(१।८६) में मांको महिमा गाई है—

अतिप्राचीन कालमें वहिन भाइयोका व्याह होता था। थाई भूमिके राज-वशमें अब भी यह होता है। ईरानके सासानी राजवश में भी इसे देखा जाता था, और मिस्रके फरवा भी रक्तको शुद्ध रखनेके लिये ऐसा करते थे। यम-यमीके इस मवादसे यह जरूर मालूम होता है, कि इसे सप्तसिन्धुके आर्य ठीक नहीं मानते थे।

यमी वैवस्वतीका एक और सूक्त ^{११} (१०।१५४) मिलता है, जिसकी भाषा बहुत नवीन मालूम होती है। इसमें प्रेतके वारेमें कहा गया है—

“किन्ही (पितरो) के लिये सोम छाना जाता है, कोई घृतका सेवन करते हैं। हे देवापि (प्रेत), उनके पास तुम जाओ जिनके लिये मधु वहता है, ११।”

“तपस्याके कारण जो दुर्घर्ष हैं, तपस्यासे जो स्वर्ग गये, जिन्होंने महान् तपस्या की, हे देवापि (प्रेत), तुम उनके पास जाओ। १२।”

“जो युद्धमें लड़ते हैं, जो शूर वहा शरीर छोड़ते हैं, और जो सहस्रो दक्षिणा देते हैं, हे देवापि, तुम उनके पास जाओ। १३।”

वैदिक आर्य यमको मृत्युका देवता समझते यह मानते थे, कि पितर उनके पास जाते हैं। उसी यम और मृत्युकी वातोको यमीके इस सूक्तमें वतलाया गया है।

१० रात्रि—भारद्वाजी रात्रि भी कल्पित ऋषिका है। रात्रिका वर्णन इस सूक्त ^{१०} (१०।१२७) में आया है। दूसरी परम्पराके अनुसार सोभरि-पुत्र कुशिक (विश्वामित्रके वश-स्थापक) इसके ऋषि माने गये हैं। गायत्री छंद होनेसे यह गानेकी ऋचाये है ?

“देवी रात्रि चारो ओर आकर प्रकट हुई, उसने नक्षत्रों द्वारा सारी गोभाको धारण किया ॥१॥

“देवीने आते समय अपनी वहिन उपाको ग्रहण किया। उमने तमको हटाया ॥३॥

“ग्राम चुप हैं, बर्ताही चुप हैं, पक्षी चुप हैं, इच्छावाले वाज चुप हैं ॥५॥

“हमें (चारों ओर) काला अन्वकार दिखाई दे रहा है, वह स्पष्ट मौजूद है। हे उपा, ऋणकी तरह तुम उमे हटाओ ॥७॥

११ लोपामुद्रा—यह वसिष्ठके भाई अगस्त्यकी पत्नी थी। पति-वियोग महन करनेमें असमर्थ लोपामुद्रा का अगस्त्यके नाथ का स्वाद निम्न प्रकार “ (१।१७९) है—

(लोपामुद्रा)—पहिले (बीते) वर्षों बुढ़ापा लानेवाली उपाओको दिन-रात सहती रही। बुढ़ापा शरीर-शोभाको नष्ट करता है। फिर ऐसी, पत्नीके पाम पति क्यों जाये ? ॥१॥

‘जो पुराने मत्स्यपालक थे, देवोंके नाथ अच्छी बातें करते थे। वह अन्त न पा पडे रहे । फिर” ॥२॥

(अगस्त्य)—“हम व्ययं नहीं थके, देव लोग हमारी रक्षा करते हैं। हम नारे भोगोंको पा सकने हैं, यदि टीकमे दोनों चाहें, तो यहा नैकडो ले सकते ॥३॥

“कामको मने रोका है, पर यहा-वहा-रहीमे वह आ जाना है। अधीर कामिनी लोपामुद्रा धीर उनान लेते पतिका मगम करती है ॥४॥

१२. वसुध-पत्नी—इन्द्रके पुत्र वसुधकी पत्नीके नामने एक सूक्त “ (१०।२८) मिलता है, जिममें वसुध-पत्नी तथा इन्द्रकी बातें आती हैं। वसुध-पत्नी कहती है—

“इन्दरे नारे देवता आये, मेरे मगुर यहा नहीं आये। यदि आये, तो वह भुना दाना खाने, और मोम पीते। अच्छी तरह गानर पुत्र अपने घर जाते ॥६॥”

इस सूक्तका ऋषि वसुध भी बतलाया गया है। इन्द्र ही नहीं मन्मिन्दुके आर्य भी भुने जोग खाना और मोमरा पीना बहन पसन्द करने थे। “यदन्न पुण्यो ह्यनि तदन्न नम्य देवा” (जो भोजन आदमी खाना है, वही उनका देवता भी)।

१३. यारु—अम्भुज ऋषितो पुत्री यारु भी कल्पित नाम है। यारु यारु (गण्डी) देवी की मतिमा यारु की गरी है “ (१०।१२५) —

“सौभाग्यके लिये तेरे हाथको मैं ग्रहण करता हूँ। तू मुझ पतिके साथ जरा अवस्था तक बनी रह। भग, अर्यमा, सविता, पुरन्वि देवोंने तुझे गृहपति धर्मके लिये मुझे प्रदान किया ॥३६॥”

“दोनो (पति-पत्नी) यही रहे, न विछुड, सारी आयुको प्राप्त करे। पुत्र और नातियोंके साथ खेलते अपने घरमें प्रमुदित रहें ॥४२॥’

“हे इन्द्र, सिंचन समर्थ हो इस (वधू)को सुपुत्रा सुभगा बनाओ। हममें दस पुत्रोको धारण कगे, (और) पतिको ग्यारहवा बनाओ ॥४५॥

“हे वधू, तू ससुरपर सम्राज्ञी हो, सासपर सम्राज्ञी हो। ननदपर सम्राज्ञी हो, देवरोपर सम्राज्ञी हो ॥४६॥”

यह बतला चुके हैं, कि ऋग्वेदकी ऋषिकाओकी सख्या चाहे दो दर्जन हो, पर उनमें ऐतिहासिक घोषा और विश्ववारा ही हैं। स्त्रीका स्थान उस कालमें काफी ऊँचा था, पर पुरुषके समान नहीं था, यह इन ऋचाओंसे मालूम होता है। सास-ससुर, ननद-देवरपर शासन करनेकी कामना नारीको होती थी, और सौत उसके सिरदर्दका सबसे बड़ा कारण थी।

अध्याय १८

भाषा और काव्य

§१. भाषा

श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणीके अनुसार ऋग्वेदमें १०४१४ मन्त्र, १,५३,८२६ अक्षर, ८,३२,००० अक्षर हैं। ऋचाओंकी गिनती गिननेपर उन्हें १०४६७ पाया गया। ऋग्वेदका दो प्रारम्भे विभाजन है, एकमें मण्डल, सूक्त और ऋचाके क्रमको रखा गया है। ऋग्वेदमें १० मण्डल, १०१७ सूक्त और १०४१४ मन्त्र हैं। अष्टक, अष्टादश और नूस्तरे अनुसार द्वादश गणना होती है, जिनके अनुसार ऋग्वेदमें ८ अष्टक, ६४ अध्याय और १०१७ सूक्त हैं। मण्डल, अनुवाक और वर्गके अनुसार गणना करनेपर ऋग्वेदमें १० मण्डल, ८५ अनुवाक और २००८ वर्ग (बाल्गणितके १६ सूक्तोंको छोड़कर) पाये जाते हैं। आजकल नवों अथवा प्रचलित गणना मण्डल, सूक्त और ऋचाके क्रममें है।

भिन्न-भिन्न मण्डलोंकी भाषा देखनेसे पता चलता है, कि सभीकी भाषा एक समान नहीं है। यह समझ चुके हैं, कि ऋग्वेदकी भाषा हिन्दू-यूरोपीय वंशकी उन भाषाके अन्तर्गत है, जिनमें ईरानी और दक्षिण-पश्चिम आने वाले हैं, और जिसे दक्षिण-पश्चिम भाषा कहा जाता है। दक्षिण-पश्चिम भाषाकी कोई जाति दक्षिण नहीं बोल सकती। इनमेंसे मन्त्रालिखने आनेवाले आर्य-दक्षिण (गुप्त-पञ्च) नहीं बोल सकते थे, यह निश्चित है। ऋग्वेद में यद्यपि आर्योंके दक्षिण अक्षर गणनेवाला कोई शब्द नहीं मिला, पर गुप्त-पञ्चोंका प्रयोग जरूर मिला है। यह दर्शन करने जायेंगे प्रचलित

हुआ? निश्चय ही मप्तसिन्धुकी प्राचीन जातिके घनिष्ट सम्पर्कमें ही उच्चारणमें यह परिवर्तन आया। आज भी द्रविड भाषाओंमें टवर्गकी प्रचुरता उत्तरी भारतके कानोको खटकती है। मप्तसिन्धुमें आनेके तीन सौ वर्षोंवादी ऋग्वेदके महान् ऋषि हुये। वह टवर्ग बोलते थे, यह कहना आसान नहीं है, क्योंकि गताद्वियो तक ऋचाये लिपिवद्ध नहीं हो कठस्थ रक्खी गई थी। मूल पालि त्रिपिटक (बुद्धके सूक्त) मागधी-कोसली भाषामें रहे, जिसमें ल और श अक्षरो का प्राचुर्य एव र तथा स अक्षरोका बहुत कुछ अभाव सा था। पर वर्तमान पालि त्रिपिटकमें मागधीके इन विशेष अक्षरोका वायकाट सा देखा जाता है—श का तो विल्कुल ही प्रयोग नहीं होता। इस परिवर्तनका कारण यही था, कि गताद्वियो तक बुद्धके सूक्त मागधीभाषियों के नहीं, बल्कि पश्चिमी भाषाभाषियों—विशेषकर लाट-गुजरातमें गये उपनिवेशिकों—के मुखमें रहे, जिनके कारण यह परिवर्तन हुआ। इसे देख हम नहीं कह सकते, कि ऋचाओंके रचने और उनके लिपिवद्ध होनेके समय के बीचमें अक्षरोका परिवर्तन नहीं हुआ होगा। वैदिक भाषाके प्रकाण्ड विद्वान् डा० वटेकृष्ण घोषने ऋग्वेदके अक्षरो और उनके उच्चारणपर सूक्ष्म विवेचन किया है। मूर्धन्य वर्णोंका प्रचार आर्योंकी भाषा में भारतमें आनेपर हुआ। डा० घोष र की अपेक्षा ल की प्रचुरताको आर्योंके भारतमें पूर्वकी ओर बढ़नेका प्रभाव बतलाते हैं। पर, र की जगह ल के प्रयोग स्लाव भाषाओंमें भी बहुत आते हैं। इसलिये हमें मानना पड़ेगा, कि जहां तक र और ल के प्राचुर्यका मवाल है, वह शतम्-युगकी दूसरी शाखाओंमें भी देखा जाता है।

डा० घोष इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं,* कि जहां तक भाषाका मवाल है, ऋग्वेदके पहले ती मण्डलोंकी भाषा एक ही है। दसवें मण्डलकी भाषामें जरूर परिवर्तन है। दसवें मण्डलमें भी कितनी ही ऋचाओं और सूक्तोंकी भाषा पुरानी दीख पड़ती है, माय ही चाकी मण्डलोंमें कितनी

हीकी भाषामें नवीनता पाई जाती है। तो भी यह माननेमें बाधित नहीं होनी चाहिये, कि पहले नौ मण्डलोंकी भाषा प्रायः पुरानी है। इन नौ मण्डलोंमें भी यदि ऋषियोंके पाठ-क्रमको देखें, तो पहले भरद्वाजका मण्डल (छठा), फिर वसिष्ठका (गातवा), फिर विश्वामित्रका (तीनरा), फिर वामदेवका (चीवा) आता है। यह भाषा-भेद भरद्वाज^१ (६।१।१,२) और रक्षोहाको ऋचाओं^१ (१०।१६२।१-२) की तुलनासे मान्य हो सकता है।

वैदिकी भाषा अपेक्षाकृत बहुत पुरानी, ताम्र-युगके समाजकी भाषा है, विकासमें वह बड़ा नहीं पहुँची थी, जहाँ कि पालि, प्राकृत, बृहन्नदा और हमारी भाषायें आधुनिक कालमें पहुँची। इन प्रकार उने अपरिचित और दुर्बल गवर्शवाली भाषा कहा जा सकता है, लेकिन जहाँ तक भाषाकी प्रकृति का सम्बन्ध है, उने मजबूत होना चाहिये। सिन्धी-सिन्धी बातोंमें यह मरल है भी। उने हम पाणिनीय मन्त्रकी पृष्ठभूमिमें रखकर पढ़ना चाहते हैं, उनलिये हरेक पाणिनीय नियमके अपवादोंकी गन्ना देसकर हम समझते हैं, कि वैदिक भाषाकी प्रकृति जयिक विरुद्ध है। यदि वैदिक भाषाको वैदिक उदाहरणों जयान् वैदिक पाठमालाओंके सहारे पठा जाये, तो वह जरूर मरल मान्य होगी। भाषाके ज्यादा मरल होनेका मतलब मरिन्ध होना भी है। चीनी भाषा दुनियाको अत्यन्त मरल भाषा है—यहाँ उगवी लिपिमें हमें कोई मतलब नहीं, जो निम्न ही बहूत गठित है। चीनी भाषा के पूर्ण व्याकरणके लिखनेके लिये शायद पाच-छ पृष्ठोंकी भी आवश्यकता नहीं होगी, पर उाके कारण मन्देह होनेकी भी गुजाश है। लिखातोंमें यत्न और फल, पुस्तक कोई पता नहीं। बोने जस मरुतोंके आगेवहारोने मरिन्धतों अमरिन्ध बनानेकी कोशिश की जाती है। वैदिक भाषामें एक ही विषय के पाठों न लिखित करने पाठक को मजबूर किया जाता है, कि वह प्रकरणमें उगत जयें लिखे। मरिन्धता जयें है और होये जानों हो सकता है। वैदिक भाषामें ऐसे अनिश्चित और अचरमपूर्ण विषयपदोंके सेट नकारके जता रन दिया गया है। उन प्रकार वैदिक भाषामें लिखितमें

इन्कार नहीं किया जा सकता। पर, यदि सस्कृतके द्वारा नहीं, बल्कि ऋचाओमें आये व्याकरण और उसके प्रयोगोद्वारा सिखलाया जाये, तो यह भाषा उतनी कठिन नहीं मालूम होगी।

जहा तक शब्दोका सम्बन्ध है, ऋग्वेदमें कितने ही शब्द दूसरे अर्थोंमें प्रयुक्त होते हैं। कारु काम करनेवालेको कहना चाहिये, लेकिन ऋग्वेदमें कारु कविको कहते हैं, जो ऋचार्यें बनाता है। इसी तरहके दूसरे भी शब्द वहा मिलते हैं।

सन्वियोंके नियमोको भी वेदमें उतना पालन नहीं किया गया, स्वरके वाद स्वर आनेपर भी उसे ज्यो का त्यो रहने दिया जाता है।

§२. छन्द

ऋक्का अर्थ ही है पद्य। सारा ऋग्वेद पद्य-बद्ध है। सात छन्द प्रसिद्ध माने जाते हैं, पर छन्दोकी सख्या और अधिक है। यज्ञ ऋषिकी ऋचाओ' (१०।१३०।३-५)में गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, वृहती, विराट्, त्रिष्टुप्, जगती इन सात छन्दोका उल्लेख है। यही मूल छन्द भी है। यह हम बतला चुके हैं, कि गानेके लिये गायत्री छन्द सबसे अधिक प्रचलित था। सोमपानके समय हरेक पीनेवालेका कण्ठ खुल जाता था, जैसे आज भी मद्य पीते समय देखा जाता है। ऋग्वेदका नवा मण्डल सोम मण्डल है, जिसमें सोसे ऊपर ऋषियोने सोमके गुणोका गान किया है। इस मण्डलकी बहुत अधिक ऋचार्यें गायत्री छन्दमें हैं। गायत्री छन्दके गानेको गायत्र साम कहा जाता है।

ऋग्वेदके १०४१४ मन्त्रोंमें छन्द हैं—

१. गायत्री	२४६७
२ उष्णिक्	३४१
३ अनुष्टुप्	८५५
४ वृहती	१८१
५. त्रिष्टुप्	४२५३

६. पक्ति	३१२
७ जगती	१३४८
८. अतिजगती	१७
९ गायत्री	१९
१०. अतिगायत्री	९
११. अष्टि	६
१२ अत्यष्टि	८४
१३ घृति	२
१४ अतिघृति	१
१५ एकपादवाले	६
१६. दोपादवाले	६७
१७ प्रगाय वाहंत	१९४
१८. कजुम	५५
१९ महावाहंत	२५७

इनके देखनेमें मान्य होना है, कि २००में अधिक बार आनेवाले छन्द गायत्री, उष्णिह, अनुष्टुप्, पत्ति, त्रिष्टुप् और जगती है। इनमें भी सबसे अधिक उपयुक्त होनेवाला छन्द त्रिष्टुप् है, जिसके बार दूसरा नम्बर गायत्रीका तीसरा जगतीका और चौथा अनुष्टुप् का। पीछे अनुष्टुप् मन्त्र-में बहुत प्रयुक्त हुआ है। गायत्रीमें गानके लिये अन्तिम पादको दोहराना आवश्यक था, इस प्रकार वह भी अनुष्टुप् बन जाता था। दोनोंको एक कर देने पर अनुष्टुपोंकी संख्या २३२३ हो जाती है।

६३. रचना

१ वागी—पञ्चदश रचना को पहले से, जैसा कि बनिष्ठ (७१-३१) ने कहा है—

“नवके राजा निष्पन्न इन्द्रकी वाग्विद्या शयुज्रांती निरन्तर करनेके लिये है ॥१२॥”

२. सूक्त—यसिष्ठने सूक्तान भी उल्लेख किया है '(७।२९)—

"हे मपवन् इन्द्र, जो सूक्तों द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, सो तुम्हारा अलंकार है ॥३॥"

'(७।५८।६)—"मयत् इम सूक्ताना रोचन करे।"

३ इतो ऋ—इतो ऋण भी उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है, लेकिन इसका अर्थ यही है, जो पुण्यदत्तोंमें आता है, अर्थात् इतो ऋणका अर्थ पशुसा या फीति है। फण्यने कहा है '(१।३८।१४)—

"मुममं इलोक वनाओ, मेपनी तरह फीलाओ, उनथ्य गायत्रणो गाओ।"

४ साम—साम गीतियों कहते थे। ऋग्वेदकी ही बहुत सी ऋचाओंका गान के साथ जो समूह है, उसीको सामवेद कहते हैं। गाने सामवेदमें गीतों कम ही ऐसे गन्य हैं, जो ऋग्वेदमें नहीं आये हैं। कुत्सा ऋषि सामवेदके निस्वैदेवोंकी स्तुतिको उल्लेख करते कहते हैं '(१।१०७)—

"सामो द्वारा स्तुति किये जाते देव (अपनी) रक्षाके साथ हमारे पास आये ॥२॥"

गृत्सामद ऋषि पिष्टुम् और गायत्रीके सामकी बात करते हैं '(२।४३)—

"और पिष्टुम् जैसे सामगायक, जैसे ही दोनों चाणियोंको बोलते वह अनुरजन करता है ॥१॥"

फण्य-गोपी कुसीदि ऋषि कहते हैं '(८।७०)

"इन्द्र, गीतगान सामको सुन, उसका स्तुतिगान करे, वह अन्तसे हमारे ऊपर गुण करे ॥५॥"

५. स्तोम—स्तुति या स्तोमको उस समय स्तोम कहते थे। कुत्सा आगिरसा इन्द्र-अग्निके किये कहते हैं '(१।१०९)—

"हे इन्द्रअग्नि, सुना है, तुम दामाद और सात्मे भी ज्यादा देनेवाले हो। इसकिये सोमके प्रदानके समय तुम्हारे किये में नवीन स्तोम बनाता है ॥२॥"

१५ काव्य

नदी-सूक्त—^१(२।३३।१-१३) पुरुरवा-उवशी सूक्त^२ (१०।९५) को देखनेमें मालूम होता है, कि कविताकी मनोहारिनी शैली ऋग्वेदिक आर्योंमें मौजूद थी। लेकिन ऋषियोंकी ऋचाओंको कविताकी दृष्टिसे नहीं सुरक्षित किया गया। उनका प्रयोजन देवताओंको प्रसन्न करना था। त्रिन्कुण्ड मन्त्र है, उस समय मयुर लोकगीत और पवाड़े प्रचलित थे, जिनको उस समय काफी कदर थी।

उपमा—कविताको नजानेमें अलंकारोंका उपयोग भी ऋषि करते हैं। अलंकारोंमें सबसे अधिक उपमाका इस्तेमाल देखा जाता है, जिसके लिये इव या उनीके अर्थमें न वा प्रयोग बहुत हुआ है। गूलमदने एक सूक्त^३ (२।३६।१,८) की हरेके पक्तिमें इनका प्रयोग और एक ने अत्रिक वाट किया है—

“अश्विद्वय पत्यरकी तरह. शत्रुको बाधा दो, गिद्धकी तरह निययुक्त वृक्षको प्राप्त करो। ब्रह्माकी तरह यज्ञमें उष्य (गीत) गानेवाले हो, दूतकी तरह बहनोंके लिये पुकारने लयक हो ॥१॥”

उस सूक्तमें और उपमाये दी गई हैं—रयी, अजा (बकरी), स्त्री, दम्पती, मीग, शफ (रुर), चत्रजाक, नाव, युग (घुग), नाभि, उपधि, प्रदि, स्वान, गत्र, वर्म, वात, नदी, हाय, पाद, ओष्ठ, स्तन, नागा, गर्ण, हैं पृथिवी, धान, तञ्जार। नात त्रिष्टुप् ऋचाओंके भीतर इनकी उपमाये दी गई हैं, और नवके नाय श्वता प्रयोग हैं। अन्तमें ऋषि कहते (२।३९।८)—

“हे अश्विद्वय. गूलमदने तुम्हारे बंधने में मन्त्र और मन्त्रों का बाधे। हे गरी, उनका भेवन करने (तुम्हारे) धान आओ। यज्ञमें मुन्दर दीर्घवाले हो तुम बहुत रहें ॥८॥”

१ देवी, अध्याय (७।७) पृष्ठ ६९-८

२ देवी अध्याय (५।२८) पृष्ठ ८९-९०

वाजम्भर-पुत्र सप्तने क्रियाकी उपमा इवके साथ दी है”
(१०।७९) —

“हे सुनहले अग्नि, क्या देवोंके ऊपर तुमने क्रोध किया, अनजान होनेसे मैं तुमसे पूछता हूँ। खेलते न खेलते तुम वैसे ही छिन्न-भिन्न कर डालते हो, जैसे गायको तलवार पोर-पोर करके काटती है ॥६॥”

विश्वामित्रने अपने सुन्दर काव्य नदी-सूक्त^१ (३।३५) में व्यास और सतुलजकी उपमायें इवके साथ निम्न वस्तुओंसे दी हैं—अश्व, गौ, रथी, वत्स, योषा (मा), मर्य (पति),

न के साथ उपमा भी ऋग्वेदमें आती है, जिसका प्रयोग पीछे नहीं होता। न नहीके अर्यमें भी आता है, इसीलिये सदिग्ध होनेके कारण उपमायें न के प्रयोगको छोड़ दिया गया। भरद्वाज कहते हैं^२ (६।२) —

“हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् हो, तुम्हारा उज्वल घूम विस्तृत द्योलोकमें फैला है। हे पावक, कृपालु हो अपनी द्युतिसे सूर्यकी तरह (सूरो न) प्रकाशमान होते हो ॥६॥

“प्रजाओंमें तुम पूज्य हमारे प्रिय अतिथि हो, पुरमें हितकी तरह आश्रय लेने लायक, सूनुकी तरह (सूनर्न) पालनीय हो ॥७॥

“हे अग्नि, तुम घर्षण करके द्रोणमें प्रकाशित होते हो, अश्वकी तरह वाजी न कार्यकारी हो। सर्वत्रगामी वायुकी तरह स्वयं जानेवाले हो, घोड़ेकी तरह (अत्यो न) कुटिलगामी विशु हो ॥८॥

अगले सूक्त^३ (६।३।४-८) में भरद्वाजने न-वाली उपमा अश्व, द्रवि (दर्वी), परशु, अयस्, पक्षी, रेम (शब्दकारक), द्यौ, घृणा, विद्युत् और ऋमुसे दी है।

§ ५. कवि

१ वशिष्ठ के ऋग्वेदके कुछ काव्यमय सूक्तोंका परिचय हम दे चुके हैं। वसिष्ठने एक सूक्त^४ (७।७५) में उपाका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

“दिविजा उपाने प्रकाश किया। (वह) सत्यसे अपनी महिर्माका

आविष्कार करती आई। उसने तमको दूर किया, प्राणियोंके श्रेष्ठतम पयको आलोकित किया ॥१॥

“उषाकी यह दर्शनीय विचित्र अमृत किरणें आईं। (वह) दिव्य प्रतीकों उत्पन्न करती अन्तरिक्षको भरती अवस्थित हुई ॥३॥

“वह वह उषा द्यौकी दुहिता, भुवनकी रक्षिका, जनोंके ज्ञानको अलोकन करती तुरन्त पाचों जनोंके चारों ओर पहुंचती है ॥४॥

“अन्नवाली विचित्र धन-युक्त सूर्यकी पत्नी (उषा) धनके लिये वसुओं के धनपर ध्यान करती है। जीर्ण करती ऋषियोंसे प्रगमित धनिक यजमानों द्वारा स्तुति को जाती उषा प्रकाशित होती है ॥५॥

“प्रकाशमान उषाको वहन करने विचित्र अश्व दिग्दर्श दे रहे हैं। शुभ्र नाना रूपवाली वह खने जाती है, नेवक जनोंको रत्न देती है ॥६॥

“वह गत्या मत्स्योंके नाय, महती महान् देवोंके राय, यजनीया यजन-यत्तिके नाय दृढ अन्वहारको भेदन करती, गौओंको चरा देती है। गायें उषाकी कामना करती हैं ॥७॥

“हे उषा, हमे तुम गो-युक्त, वीरों-युक्त रत्न-अश्व-युक्त बहुत भोज दो। पुरोंके मामने हमारे वज्रों निन्दा न करो। तुम सदा स्वस्तिके नाय हमारी रक्षा करो ॥८॥”

२. विश्वामित्र—विश्वामित्रने भी कई कृपा उषाकी प्रशंसामें रचे हैं, जिनमें एक” (३।६१)की कुछ ऋचायें निम्न प्रकार हैं—

“अन्नने अन्नराशि, शानराशि मजोती है उषा, स्तुति-कर्मोंके स्तोत्र (स्तुति) कोग्रहण करो। यह स्तोत्रराशि नरोंके लिये परणीय है प्राचीन युवनी देवि, प्रतीके लिये अनुगमन करो ॥१॥

“हे उषा देवि, मुनिके रथ-युक्त मित्रोंसे मयूर भाषण करती प्रकाशित हो, मुनयंत्रणा तुम्हें वे बहुत बलवान्नी मुनिहित जन्म ने जाये ॥२॥

“हे उषा, तूने अगामी घञा ही, भयोंके ज्ञान गन्तु मार्ग अज्ञानिया

हो। हे नवीना, एकसे रथपर विचरण करती चक्रकी तरह तुम पुन-पुन धूमो ॥३॥”

३ वामदेव—सभी प्रधान ऋषियोंने उपाकी महिमा गाई है। फिर वामदेव कैसे पीछे रह सकते हैं? वह कहते हैं^{१८} (४।५१)—

“अन्धकारके बीचसे यह वह अतिविशाल ज्योति सामने उठी। जनोके लिये निश्चय गमन क्रिया करती द्योकी दुहितायें उपायें प्रकाशित हो रही हैं ॥१॥

“यज्ञोमें यूषोकी तरह पूर्वमें विचित्र उपायें उठकर अवस्थित हुईं। बाधक अन्धकारके द्वारको खोलती वह दीप्त पवित्र प्रकाशित होती है ॥२॥

“मघोनी (घनवती), तमनाशिका उपायें भोजनदानके लिये अन्नदानके लिये भोजोको चेताती है। पणि लोग अन्धकारके मध्यमें न जाग बेहोश हो सोयें ॥३॥

“हे देवियो, सत्यमें जुड़े अश्वोके साथ तुम तुरन्त भुवनोमें चारो ओर जाती हो। उपायें जीवन विचरणके लिये सोयें दोषायो-चौपायोको जगाती तुरन्त भुवनोके चारो ओर जाती है ॥५॥

“जिसके लिये ऋभुओने विधान बनाये, वह उपा कहा, कितनी पुरानी है? जब शुभ्र उपायें शुभ विचरण करती है, तो (वह कभी) न पुरानी होनेवाली एकसी पहचानी नहीं जाती ॥६॥”

फिर दूसरे सूक्त^{१९} (४।५२) में वामदेव सर्वप्रिय गायत्री छन्दमें उपाका गान करते हैं—

“अन्धकारनाशिनी वहिन (रात्रि)को हटानेवाली वह प्रशसित सुनायिका रमणी, द्योकी दुहिता दिखाई पडी ॥१॥

“अश्वकी तरह विचित्र चमकीली, गायोकी माता, यज्ञवाली उपा अश्वि-द्वयकी सखी हुई ॥२॥

“चाहे अश्विद्वयकी तू सखी है, चाहे गायो (किरणों) की माता है उपा तुम घनकी ईश्वरी हो ॥३॥

“मयुरभाषिणी (तुम) प्रनुओको हटाओ, ज्ञान दो। हम स्तोमो (स्तुतियो) द्वारा तुम्हें प्रबोधित करते हैं ॥४॥

“वर्षाकी धाराकी तरह उमकी भद्र किरणें दिखाई पडी। उपाने अपने विन्तृत तेजमे (विश्वको) भर दिया ॥५॥

“हे पूरयित्री विभावरि प्रकाशवती, अपनी ज्योतिसे तमको दूर करो। हे उपा, अन्नकी रक्षा करो ॥६॥

“हे उपा, (तुम) अपनी किरणोंसे द्यौको, विद्याल प्रिय अन्तरिक्षको व्याप्त करती हो, अपनी शुक्र (उज्ज्वल) किरणोंसे व्याप्त करती हो ॥७॥”

उवंशी-पुस्तकवाका लघु सुन्दर सण्डकाव्य ऋग्वेद “(१०।१५)का एक सूक्त है। उमाको हम पीछे उद्धृत कर चुके हैं।

ऋषि अपनी कृतियोंको काव्य कहते थे, वह वामदेव के एक सूक्त “(१०।१५) ने मालूम होता है। सूक्तका ऋषि यद्यपि वामदेव-पुत्र वृहदुह्यवतत्याया गया है, पर नमनव है वह बृहद् उम्य (महान् गान) वामदेवकी मानन गन्तान हो। वह इन्द्रकी प्रशना करते कहते हैं—

“बहुतोंके युद्धमें धनु युवा होनेपर भी जिनके भयने भागने है, वह स्वेतकेन हो गया। देवके महत्त्वपूर्ण शक्यको देवों, जो बल जीवन था, वह आज मर गया ॥५॥

४ भीम—अप्रिकी गन्तान भीम पञ्चन्य (मेघ) की स्तुति “(५।८३) भी बहुत सुन्दर है—

“हे इन वाणियोंके पञ्चन्यके बन्धी प्रशना करो, नमस्कार करने पञ्चन्यकी स्तुति करो। जन्मके दानगील गरजना पञ्चन्य जीवजियोंके शीर्ष धारण करता है ॥१॥

“यह वृषोंको नष्ट करता है, राक्षसोंको नष्ट करता है, महावज्रके मारे भुक्तानों उरगा है। उम वृष्टिवाले ने निम्नगध भी भागते हैं, वरोंके पञ्चन्य मद करते दुष्टोंके भागते हैं ॥२॥

परिशिष्ट १

अध्याय १

सप्तसिन्धु

१. अष्टौ व्यस्यत् ककुभ पृथिव्यास्त्री घन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्ष सविता देव आगाद्घद्रत्ना दाशुपे वार्याणि ॥८॥
१।३५ (त्रिष्टुब्)
२. ऋग्वेद मण्डल ६, ७, ३ और ४ क्रमशः भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र
और वामदेवके मण्डल कहे जाते हैं ।
३. अग्निमीळे पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विज । होतार रत्नघातम ॥१॥
—१।१ (गायत्री)
४. वृषा वृषन्वि चतुरश्रिमस्यन्नग्नो वाहुभ्या नृतम शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥
४।२२ (त्रिष्टुब्)
५. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् ब्रह्मृष्वनुषु पूरुषु स्य ।
अतः परि वृषणा वा हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य ॥८॥
१।१०८ (त्रिष्टुब्)
६. वृषा वृषन्वि चतुरश्रिमस्यन्नग्नो वाहुभ्या नृतम शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥
—४।२२
७. अतारिपुर्भरता गव्यव समभक्त विप्र सुमति नदीना ।
प्र पिन्वच्चमिपयन्ती सुरावा आ वक्षणा पृणध्व यात शीभि ॥१२॥
—३।३३ (त्रिष्टुब्)

परिशिष्ट १

अध्याय १

सप्तसिन्धु

१. उसने पृथिवीकी आठो दिशाएँ, तीनो मत्स्यल और सातो नदिया प्रकाशित कीं। सुनहली आखोवाला नविता देव (यजमान) दानियोंके लिये उत्तम रत्न श्रिये आवे ॥८॥

—हिरण्यस्तूप आगिरस, १।३५

२. ऋग्वेदके ६, ७, ३ और ४ मडल भरद्वाज, वनिष्ठ, विश्वामित्र और वामदेवके हैं।

३. यज्ञके देव, होता, ऋत्विज, पुरोहित अति रत्नधारक अग्निकी मं न्युति करता हू ॥१॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, १।१

४. वृष्टि-धारक, कामवर्षों, दोनो वाहेनि चार कोरवाले यज्ञ को फेरनेवाले, उग्र, महानतम नेता शची-न्युत वृषभ (इन्द्र) ने ऊनकी तरह पराणो (रावी) को, श्री के लिये नेवन करने उनके पोरोंको मंत्रीके लिये टारु दिया ॥२॥

—वामदेव गौतम-पुत्र, ४।२२

५. हे इन्द्र-अग्नि, जब तुम यदुओं, तुवंशोंमें, जब द्रह्यजों, अनुजों, पुत्रोंमें न्हो, तो भी हे कामनावर्षको, तुम आजो, और मुन (छाने) नोगको पियों ॥८॥

—कुल आगिरस, १।१०८

६. रेणो १।४

७. गो-नामी भरत पाण हो गये, विप्रने नदियोंकी न्युति प्राप्त की। (हे व्यास-नतदुज,) अन्नकारिणी, मुन्दर घनपूज, फणी तदोतो पून कर्णी, तुम शीघ्र जाओ ॥१३॥

—विश्वामित्र कौशिक, ३।३३

८. उत न प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा । सरस्वतीस्तोम्या भूत् ॥१०॥
—६।६१ (गायत्री)
- ९ नि त्वा दधे वर आपृथिव्या इच्छायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना ।
दृषद्वत्या मानुष आपयाया सरस्वत्या रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥
—४।२३
- १० इम मे गगे यमुने सरस्वति शूतुद्रि स्तोम सचता परुष्या ।
असिक्न्या मरुदृधे वितस्तयार्जाकीये शृणुह्या सुषोमया ॥५॥
तृष्टामया प्रथम यातवे सजू सुसर्वा रसया श्वत्या त्या ।
त्व सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमु मेहत्वा सरथ याभिरीयसे ॥६॥
—१०।७५
- ११ सप्तापो देवी सुरणा अमृक्ता याभि सिन्धुमतर इन्द्र पूर्मित् ।
नवर्ति स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवैम्यो गातु मनुषे च विन्द ॥८॥
—१०।१०४
- १२ सरस्वती सरयू सिन्धुरूमिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणी ।
देवीरापो मातर सूदयित्त्वो घृतवत् पयो मधुमन्नो अर्चत ॥९॥
—१०।६४
१३. मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्माव सिन्धुनि रीरमत् ।
मा व परिष्ठात् सरयू. पुरीपिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तु व ॥९॥
—५।५३

८. और प्रियाजोमें प्रिया नात वहिनोवाली नुप्रनत्रा सरस्वती हमारी स्तुति योग्य हो ॥१०॥

—भरद्वाज, ६।६१

९. हे अग्नि, दिनोंके सुदिनके लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-म्यानमें मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ। तुम दूषद्धती (घग्घर) आपसा (भरकण्ठा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ ॥१५॥

—देवध्रवा, देववात, भारत, ३।२३

१०. हे गगा, यमुना, सरस्वती, परण्गी (गवी) नहिन शुतुद्रि, मेरे इन स्तोमको स्वीकार करो। हे अक्षिपती (शेल्म)-नहिन मरुशुभा, पितस्ता सुयोमा-नहिन वार्जोकीया, सुनो ॥५॥

त्रिष्टामा, नुमर्तु, रना, उग श्वेत्याके नाय पहले जाती, हे निन्धु, कुभा (काबुल नदी)-नहिन गोमती, मेहलू को लिये द्रुमु, तुम वहती हो ॥६॥

—निन्धुक्षिन् प्रियमेघ-मुत्र १०।७५

११. सुरम्य अमिन गनियाली दिव्य सातो नदियाँ (हैं), जिनके साथ, हे गद्योतो तोडनेवाले इन्द्र, तुम निन्धु पार हुए। देवों और मनुष्योंके उपकारके लिए तुमने निम्नानवे बहती नदियों को प्राञ्ज किया ॥८॥

—ऋष्यक विश्वामित्र-मुत्र, १०।१०४

१२. सरस्वती, सरयू, निन्धु (अपने) तरगोने बहती, महान् ग्वाके लिए बहती आवें। प्रेरिका दिव्य जलभाताएँ धृत्, कुग्ध, मयु-नहिन हमें तृप्त करें ॥९॥

—गप्यगत, १०।६४

१३. (हे मग्गो,) तुम्हें रना, अनितना, कुभा (काबुल), द्रुमु (गुरंग) न (रोके), न तुम्हें मिष्ण रोके। जग्गती, सरयू तुम्हें न क्षापा डारे, और तुम्हारा जिया मुन हमारे लिए हो ॥९॥

—श्यावतस्य आश्रय, ५।५३

- १४ यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहु ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य वाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥
—१०।१२१
- १५ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळव ।
यद्वित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥३॥
—८।७७
- १६ त्व शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्त्या प्रतीनि दस्यो ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे,
भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥
—६।३१
- १७ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो वासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपच सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
—२।२०
- १८ इन्द्र समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विष्वेषु
शतमूतिराजिषु स्वर्मीहळेष्वाजिषु ।
मनवे शासदधतान् त्वच कृष्णामरन्वयत् ।
दक्षन्नविश्व तत्प्राणमोपति न्यशंसानमोपति ॥८॥
—१।१३०
- १९ प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्र वातेजा इरिणे वर्वताना ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागविर्मह्यमच्छान् ॥१॥
—१०।३४

१४. जिसकी महिमा ने यह हिमवन्त (है) और रमा-सहित समुद्र (जिसका) कहा गया, जिसकी (भुजाएँ) यह दिखाएँ हैं, उन क देव के लिए हम हविसे पूजा करें ॥४॥

—हिरण्यगर्भ प्राजापत्य, १०।१२१

१५. हे इन्द्र, बृहत् और दृढ पर्वत भी तुम्हें नहीं रोक सकते । मेरे जैसे स्तुतिकर्ताओं जब तुम धन देना चाहते हो, तो तुम्हें कोई नहीं रोक सकता ॥३॥

—नोवा गौतम-मुद्र, ८।७७

१६. (हे इन्द्र,) तुमने दस्यु शम्बरके नौ अजेय पुरोको नष्ट किया । हे पाचीवान् (प्राज्ञ), तुमने नोम-भेवन-कर्ता, नोमश्रेता दिवोदासको प्रजा-सहित धन दिया, स्तुति करनेवाले भरद्वाजको वसु प्रदान किया ॥४॥

—गुह्योत्र भारद्वाज, ६।३१

१७. उस पुरनामक वृषहन्ता इन्द्रने जन्मसे फाले दामोँवो नष्ट किया । उसने मनुष्यके लिए पृथिवी और जलको बनाया । वह यजमानकी आकाशा पूरी करता है ॥७॥

—गृत्तमद धनुहोत्र-मुद्र, २।२०

१८. इन्द्रने सारे युद्धोंमें आर्य यजमानकी रक्षा की । वह सारे युद्धोंमें गैकटो रक्षावाला मुख्यकारी है । उनने मनुके लिए अघनिषाँको दण्ड दिया, गाले चमडे (वालों) को नष्ट किया । (दत्त) नवको जगता, हिमकोत्ते, निष्ठुरोको जन्ता है ॥८॥

—परच्छेय दिवोदान-मुद्र, १।१३०

१९. पट्ट पर घूमते, चलते, गपने पाने मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं । जैसे मौजियान् पर्वतके गोमता भग, मैंने चहरेरे पाठ्याले पाने मेरे लिए उम्माह देते हैं ॥१॥

—उपम गेन्द्र, १०३८

२०. दिवस्पृथिव्योरव आवृणीमहे मातृन्त्सिन्धून् पर्यतान्छर्यणावत ।
अनागास्त्वं सूर्यमुपासमीमहे भद्र सोम सुवानो अद्या कृणोतु न ॥२॥
—१०३५
२१. अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुनिधि पणीना परम गुहाहित ।
ते विद्वास. प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यंत उ आयन्तदुदीयुराविशन् ॥६॥
—२१२४
२२. यास्ते पूषन्नावो अन्त समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्या सूर्यस्य कामेन कृतश्रव इच्छमान ॥३॥
—६१५८

अध्याय २

आर्यजन

१. प्रप्रायमग्निर्भरतस्य ऋण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भ ।
अभि य. पूर पृतनासु तस्थी द्युतानो दैव्यो अतियिः दशुोच ॥४॥
—७१८
- पुरुः सरस्वतीके तटपर भी थे । १५।७।१२
२. वि सद्यो विश्वा दृहितान्येषामिन्द्र पुर सहसा सप्त ददं ।
व्यानघस्य तूत्सवे गयं भाग्जेष्म पूर विदथे मृध्रवच ॥१३॥
—७११८
३. भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरथे विवोवासाय महि दाशुपे
नृतो वजेण दाशुपे नृत ।
अतियिग्याय शम्बरं गिरेरप्रो अवाभरत् ।
महो घनानि दयमान ओजगा विश्वा घनान्योजसा ॥७॥

- २० हम द्यौ और पृथिवीमें, नदी माताओंमें, शयणावान् पर्वतो से रक्षाकी प्रार्थना करते हैं, मूर्धं और उषाने निष्पाप होनेकी कामना करते हैं। मेवन किया जाता (यह) नोम आज हमारा मंगल करे ॥२॥
—ऋग्वेद घानाक, १०।३५
- २१ चारों ओर योजते (जिन्होंने) गुहामें छिपाई पणियोंकी परमनिधि को प्राप्त कर लिया, वे विद्वान् नूठको देकर जहांमें आये थे, वही चले गये ॥६॥
—गृत्समद शुनहोत्र-मुद्र, २।२४
- २२ हे पूषन्, जो तुम्हारी सुनहली नावे नमुद्रके भीतर और जावागमें चलती है, उनके द्वारा तुम मूर्धंके दूत-कायंके लिए, कामनामें चाहते हुये जाते हो ॥३॥
—भरद्वाज, ६।५८

अध्याय २

आर्यजन

- १ जब मूर्धंका वृहद्-ज्योति यह जग्नि प्रकाशित होता है, तो भरतकी सुनता है। जिनने मुद्धोंमें पुष्टता दमन किया, वह दिव्य अतिपि घोषित हो प्रज्वलित हुआ ॥४॥
—अनिष्ठ, ८।८
- २ इन्द्रने इन वस्युओंकी गारी सात दृष्ट पुणियों (गदियों)को तुरन्त बलपूर्वक विरोध कर दिया। आनघ (अनुओं)के ग्यानको तन्मुके लिए दिया। दृष्टे पुष्टो हम मुद्धमें जीते ॥१३॥
—अनिष्ठ ७।१८
- ३ हे इन्द्र, मे गार्क तुमने महान् भयन पूर (बगों) दिव्योदागके लिए पशुने मध्ये गदियोंको छिद्र-भिन्न किया, । अतिपिण्य (दियागत) के लिए शवन्वा उर (इन्द्रने) जिग्ने नाने गिराया, (अपने) भों रने महान् पन दिन, मारे शन जोड़ने (दिने) ॥३॥
—अनिष्ठ दिव्योदाग-मुद्र, १।१३०

४. त्व घुनिरिन्द्र घुनिमतीर्ऋणोरप सीरा न स्रवन्ती ।
प्रयत् समुद्रमतिशूर पर्पि पारया तुर्वशं यदु स्वस्ति ॥९॥
—११७४
५. त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्व तुर्वीति वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रयमेतशं कृत्व्ये घने त्व पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥६॥
—११५४
६. येनाव तुर्वशं यदु येन कण्व घनस्पृतत । राये सु तस्य घीमहि ॥१८॥
८७—
७. सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुपे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजं ॥६॥
मा ते अस्या सहसावन् परिष्टावधाय भूम हरिव परादै ।
त्रायस्य नो वृकेभिर्वरुयैस्तव प्रियास सूरिषु स्याम ॥७॥
प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखाय ।
नि तुर्वश नि याद्व शिशीह्यतियिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥८॥
—७११९
८. त्वमपो यद्वे तुर्वशायारमय सुद्रुघा पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं स ह यद्वामुशना रन्तदेवा ॥८॥
—५१३१

गावावरपा सूयवस्य अन्तरूपु चरतो रेरिहाणा ।

तुर्वशं परादाद्वृषीकृतो वैववाताय शिसन् ॥७॥

४. हे इन्द्र, धुननेवाले तुमने नदियोंकी तरह धुननेवाले जलोको बहाया। हे धूर, जब तुम नमुद्रमें बाट करते हो, तब तुवंश और यदुको कल्याण सहित पार करो ॥१॥

—अगस्त्य, १।१७४

५. हे घतशत्रु (इन्द्र), तुमने नयं, तुवंश, यदुकी रक्षा की, तुमने वय्य, तुर्वीतिकी रक्षा की। तुमने घनके लिए मग्राममें एतशके रयकी रक्षा की, तुमने निम्नानवे गदियोंको नष्ट किया ॥६॥

—गव्य आगिरम, १।५४

६ जिसमें तुवंश-यदुकी रक्षा की, जिममें तुमने घनाभिलाषी कण्वकी (रक्षा की), उन (रक्षा) को घनके लिए हम चाहते हैं ॥१८॥

—वल्ग कण्व-भुज, ७।८

७ हे इन्द्र, भगत रातहृष्य (हविदाना) मुवास्तके के लिए यह तुम्हारे भोजन रानातन है। हे कामवर्षक, तुम्हारे लिए दोनों घोड़ोंको मैं जोतता हूँ। हे महाशक्ति, हमारे स्तोत्र (बीर) अन्न तुम्हारे पास पहुँचें ॥६॥ हे बलवान् और अद्ववान्, तुम्हारे इन यज्ञमें हम अर्घके भागी न हों। हमें निरावाध अपनी रक्षाओं द्वारा बचाओ, ताकि हम सूरियों (राजकुमारों) में तुम्हारे प्रिय हों ॥७॥

हे मपवा (घनवान्), तुम्हारी दृष्टि (यज्ञ) में हम नर (लोग) प्रिय सगा हों घरमें मौज करें। अतिपिण्य (दिवोंशय) की भयार्ज की इच्छासे (तुम) तुवंश यदुको मारो ॥८॥

—वसिष्ठ, ७।१९

८. हे इन्द्र, तुमने यदु और तुवंशके लिए परले पार उर्वर नदियाँ रोकी, पुस्तके ऊपर आये उग्र (दन्वु) को तुमने मारा, जबकि तुम दोनों उजाना बीर देवाँके साथ आये ॥८॥

बवत्यु वाग्नेय, ५।३१

९ जिसकी मुत्तन-इच्छक छेलिहान लाल गोयें (श्री पूषियीके) भीतर विनरण करती हैं। उम (इन्द्र) ने सृजयके लिए दूरने आर तुवंशको शिवा, देवयानके लिए घृचीयान्को प्रदान किया ॥७॥

—मन्त्राज, ६।२७

१०. य आनयत्परावत सुनीती तुर्वश यदु ।
इन्द्र स नो युवा सखा ॥१॥
—६१४५
११. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्यप्स्वनुषु पूरुषु स्थ ।
अत परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य ॥८॥
—१११०८
- १२ यदा तृक्षी मघवन्द्रुह्या वा जने यत्पुरौ कच्च वृष्ण्य ।
अस्मभ्य तद्विरीहि स नृपाह्ये मित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८॥
—६१४६
१३. पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टि चक्रुर्भुगवो द्रुह्यवश्व सखा सखायमतरद्विपूची ॥६॥
अथ श्रुत कवप वृद्धमप्स्वनु द्रुह्य् नि वृणक् वज्रवाहु ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्य त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥१२॥
नि गव्यवो नवो द्रुह्यवश्च पष्टि शता सुपुपु पद् सहस्रा ।
पष्टिर्वीरासो अधि पद् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥
—७११८
- १४ अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्र पुरूहूत द्युमन्त ।
ब्रह्माण इन्द्र मह्यन्तो अर्करवर्धयश्नह्ये हन्तवा उ ॥४॥
—५॥३१
- १५ यदिन्द्र प्रागपागुदङ्ग न्यग्वा ह्यसे नृभि ।
मिमा पुरू नृपूतो अस्यानवेसि प्रशर्धं तुर्वशै ॥१॥
—८१४
१६. य ई राजानावृतुया विदधेद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥९॥
—६१६२

- १० सुन्दर आनयनमे जो तुर्वश, यदुयो पश्चिममे ले आया, वह युवा इन्द्र हमारा नया है ॥१॥
—शायु बार्हस्पत्य, ६।४५
११. हे इन्द्र-जग्नि, यदि तुम यदुओ, तुर्वशोमें, यदि द्रुह्यओ, अनुओं, पुरुओंमें हो, तो भी हे प्रभुओ, आओ, और सुत (छाने) मोमको पियो ॥८॥
—कुल आगिरन्, १।१०८
- १२ हे मघवन्, तूष् या द्रुह्य जनमें, पुरुमें जो बल है, उमे हमें दो, ताकि मनुष्य-पराजयके युद्धमें हम अमित्रोंको पराजित करें ॥८॥
—शायु बृहस्पति-पुत्र, ६।४६
- १३ हव्यदाता यज्ञकर्ता, तुर्वदा धनके उच्छुक्र पानीमें मछलियोंकी तरह बधे थे। भृगुओ और द्रुह्यओने सुना, इनरो (तुर्वग-यदु) के बीच नया (इन्द्र) ने नया (मुदान) को रखा की, ॥६॥
यज्यवह (इन्द्र) ने प्रसिद्ध वृद्ध कवचको पानीमें डुबाया, द्रुह्यको नष्ट किया। मित्रताको स्वीकार करते यहां जो तुम नयाके पास आवें, वे तुम्हारे पीछे आनन्दित हूयें ॥१२॥
छूट-इच्छुक्र अनु और द्रुह्य नाठ नौ छ हजार और छियानठ वीर नौ गये (भान्तोंके लिए) यह नव पगवम इन्द्रने लिये ॥१४॥
—वसिष्ठ, ७।१८
- १४ हे पुनरुत (इन्द्र), अनुओंने तुम्हारे घोड़ोंके लिए रथ तैयार किया, अहि (राक्षस) को मारनेके लिए त्वष्टाने प्रसाधमान वसको, प्राह्यजने स्तुतियोंने तुम्हें बढ़ाया ॥४॥
—अथर्व आश्रय, ५।३१
- १५ हे इन्द्र, यद्यपि तुम पूर्वं, उत्तर या पश्चिममें आसक्तियों द्वारा बुलाये जाने हो, तो भी वीर अनुके और तुर्वशके साथ होने हो ॥१॥
—शैबानिधि राम्य, ८।८
- १६ जो अनुके अनुगत अश्विद्वय राजाजोरी पूजा करने हैं, उमे मित्र और वसन्त जानने हैं। यह गुल नक्षत्रों, इन्द्र योन्तोराके अनुचने लिए जन्म पाने हैं ॥१॥

१७. याभिः पक्वमवथो यामिरघ्नगुं याभिर्वभ्रुं विजोषस ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गत भिषज्यत यदातुरं ॥१०॥
—८१२२
१८. आ पक्व्यासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ यो नयत्सघमा आर्यस्य गव्या तृत्सुम्यो अजगन्युघा नृन् ॥१॥
दुराध्यो अदितिं स्रवयन्तो चेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीं ।
महूना विव्यक् पृथिवी पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥८॥
इयुरथं न न्यथं परुष्णीमाशुश्चनेदमिपित्व जगाम ।
सुदास इन्द्र सुतुका अमित्रानरन्धयन्मानुषे घघ्निवाचः ॥९॥
—७११८
१९. इमा रुद्राय स्थिरघन्वने गिर क्षिप्रेषवे देवाय स्वघान्वे ।
अपाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुघाय भरता शृणोतु न ॥१॥
—७१४६
२०. उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्वसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री भरुत्सखा चोद रावो मघोना ॥२॥
—७१५६

अध्याय ३

वर्ण, वर्ग

१. स हि ण्मा घन्वाक्षित दाता न दात्या पशु ।
हरिदमश्रुः शुचिदन्नमुरनिभृष्टतविपि ॥७॥

१७. हे अश्विद्वय, जिन चिकित्साओंसे तुमने पपयकी रक्षा की, जिनसे अध्रिगुकी, जिनसे असहाय वध्रुकी रक्षा की, उनके साथ जल्दी आकर आतुर (बीमार) की चिकित्सा करो ॥१०॥
—सोमरि कण्व-मुत्र, ८।२२

१८. पव्य, भलान, अलिन, विषाणी, शिव आये। जो (इन्द्र) आर्यकी गायें तृत्सुओंके लिए लाया, युद्धमें लोगोंको जीता ॥७॥
दुविचार, अविचारी (शत्रु) के अदिति (पृथिवी) को मोदते परुष्णी (रावी) पर अधिकार कर लिया। (इन्द्रकी) महिमाने चायमान कवि पशुकी तरह पृथिवीपर गिरते मान गया ॥८॥
अर्यकी तरह अनर्यके लिए परुष्णीके पाम वह पहुँचे। ठीक हो वह (जल) अपने स्थानपर चला गया। सुदासके लिए इन्द्रने मनुष्योंमें वकवादी, बहु-सन्तानी पशुओंको मारा ॥९॥

—यनिष्ठ, ७।१८

१९. भरतो, स्थिर घनुषवाले, क्षिप्र वाण फेंकनेवाले, अन्नवान्, अपरा-जित, विजेता, विघाता, तीक्ष्णायुध रथ के लिये यह मेरी स्तुति सुनो ॥१॥
—७।६६

२०. हे शुभे, तेरी महिमा है, जो कि पूर्य लोग दोनों तटों पर बगने हैं। तो तुम रक्षिका हमें बीच दो, मरुतों की नगी होकर घनवानों के घन को भेजो ॥२॥

—यनिष्ठ, ७।५६

अध्याय ३

वर्ण, वर्ग

१. मुनहरे मूत्र-दात्री वाटे, नषेद दावाले अन्नविहा-शक्ति यह महान् अग्नि दरानी मे अँमे पनु, (नाटने हैं), धँमे उजाट मरुके प्रगाता हैं ॥७॥

- २ हरिश्मशाहर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्वरी ॥८॥
—१०१९६
३. ऋतावान यज्ञिय विप्रमुक्थ्यमाय दधे मातरिश्वा दिविसय ।
त चित्रयाम हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्नि सुविताय नव्यसे ॥१३॥
—३२
- ४ हिरण्यकेशो रजसो विसारे' हिर्घुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उपसो न वेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्या ॥१॥
—१७९
- ५ एवेदिन्द्र सुहव ऋष्वो अस्तूतो अनूतो हरिशिप्रः स त्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजा पुरु च वृत्रा हनति नि दस्पून् ॥६॥
—६१२९
- ६ दिवत्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धिय जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि वहिपो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठा ॥१॥
—७१३३
- ७ इहेह व स्वतवस फवय. सूर्यत्वच ।
यज्ञ मरुत आ वृणे ॥११॥
—७१५९
- ८ खे रयस्य खे नम खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणो सूर्यत्वचं ॥७॥
—८१८०

- २ मुनहठे (पीले) मूछ-दाडीवाले-पीठे केसवाले पत्थर ने दृढ, नोमपायी अथवा जो पेय में तुग्न्त बढते हैं। जो द्रुतगामी घोडो द्वारा यज्ञ में आते हैं। दोनों घोडो पर चढे मारी बायाओ को पार करते हैं ॥८॥
—चर आगिरस्त, १०।९६
- ३ शक्तिमान् यज्ञ-योग्य विप्र, स्तुति-योग्य, धी निवान्नी जिने वायु ने स्थापित किया। उम विचित्र गतिवाले मुनहठे केस-युक्त मुदोप्ल अग्नि की स्तुति नई नपत्ति के क्रिये हम करते हैं ॥१३॥
—धिष्णामित्र, ३।२
- ४ लोको के पैलाव में मुनहले केस-युक्त, कपमान नर्पना द्रुतगामी वायु ना शुद्ध प्रवाग द्वारा मची यशोवती उपाओ की तरह, कर्मियो ना जानता है ॥१॥
—गोतम न्हूगण-पुत्र, १।७९
- ५ मुनहले मुट्ट वाले, गुआहत, महायाग-विना महायक उन्द्र घन देते हैं। उम प्रार प्रकट अत्यन्त ओजन्वी इन्द्र बहुत ने मयु दन्पुओ-को मान्ते हैं ॥६॥
—भरद्वाज, ६।२९
- ६ गोरे, दाहिनी ओर जूज खनेवाले मुयुद्धि वे घामिष्ठ मुझे बहुत प्रनत्र करते हैं। यग्ने उठने में आदमियो को कहता है, "घमिष्ठ-नताने मुग्ने रूग् न जायें" ॥११॥
—यजुष्ठ, ७।३३
- ७ मय घमिष्ठमान् सूर्य के जैसे वर्णवाले है कवि मन्तो, यज्ञ यज्ञ में मैं तुम्हें चरण कन्ता हूँ ॥११॥
—यजुष्ठ, ७।५०
- ८ हे शतपतु (इन्द्र), नर ने छिद्र, माष्ट के छिद्र, जूये के छिद्र में तौत घा पत्रिन्त कन्ते तुनने खपाना को नृत्त ने यज्ञ पने नर्मवाली यज्ञ दिता ॥७॥
—अथान्ना लायेयी, १।८०

९. तुविग्रीवो वपोदर सुवाहुरन्वसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥८॥
—८१७

१०. क्व स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानत । ब्रह्मा कस्त सपर्यन्ति ॥७॥
—८१३

११. पिशंगरूपः सुभरो वयोवा श्रुष्टी वीरो जायते देवकाम ।
प्रजा त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथ ॥९॥
—२१३

१२ अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्त कृष्णां अरुपैद्धमिभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमाननृतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वा ॥२१॥
—३१३१

१३ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
—२१२०

१४ शत मे गर्दभाना शतमूर्णवतीना । शत दासा अतिसृज ॥३॥
—(वालखिल्य) ८१८

१५ शुभ्र नु ते शुष्म वर्धयन्त शुभ्र वज्र बाह्वोर्दधाना ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीविश सूर्येण सहा ॥४॥
—२१११

९ विस्तृत-श्रीव स्थूल-उदर सुन्दर-ब्राह्म वागे इन्द्र सोम के मद में दायुओ को मारते हैं ॥८॥

—इरिन्विठ काण्व, ८।१७

१० वह वृषभ (पहलवान), युवा, विशाल-श्रीव न झुकनेवाला (इन्द्र) कहा है? कौन ब्राह्मण उनको स्तुति करता है ॥८॥

—प्रगाय काण्व, ८।५३

११ हमारे पिशाच-रूप (सुवर्ण-वर्ण), सुघर, आयुष्मान, क्षिप्रकारी देवभक्त वीर (पुत्र) जन्में। त्वष्टा (हमें) नाभि-नन्तान देवे, वह देवों के म्यान को जायें ॥९॥

—गृत्तमद शुनहोत्र-शुत्र २।३

१२ धातुनाशक गोस्वामी (इन्द्र), गायें प्रशान करें। अरुण तेज द्वारा कालों के भीतर पहुँचा। उसने अनृत सुन्दर वचन निगलाने वाले अपने मारे दरवाजों को तोल दिया ॥२१॥

—विश्वामित्र, ३।३१

आयों की नाक अमिक लम्बी रुची होती थी, जब कि उनके विरोधी छोटी नारुवागे एनोलिये उन्हें वह अ-नाश कहने थे। ऋक् ५।२९।१०।

१३ उन वृत्रहा पुरन्दर (पुरनाशक) इन्द्र ने जन्मसे काले दासों को नष्ट किया। उसने मनुष्य के लिये पृथिवी और जल को जन्माया। वह यजमानको आकाश को पूरा करता है ॥७॥

—गृत्तमद शुनहोत्र-शुत्र, २।२०

१४. मुझे सौ गदहें, सौ भैंसें, सौ दान उन (पूतशुत्र-शुत्र) ने दिये ॥३॥

—गृषध, चान्दगित्थ, ८।८

१५ हे इन्द्र, (हम) तुम्हारे शुभ वज्र को बरसो तुम्हारी शंभो बाहों में शुभ वज्र से घासण कराओ है। तुम शूयं के नाय शुभ वज्रों हुये दायीय प्रजाओं को तमारे लिये पराजित करो ॥४॥

—गृत्तमद शुनहोत्र-शुत्र २।११

- १६ येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दास वर्णमधर गुहाक ।
 श्वघ्नीव यो जिगीवालक्षमाददर्यं पुष्टानि, स जनास इन्द्र ॥४॥
 —२।१२
- १७ विश्वस्मात् सीमधमा इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ता ।
 अवाघेयाममृणत नि शत्रून्विन्देथामपर्चिति वधत्रै ॥४॥
 —४।२८
- १८ क अदान्मे पौरुकुत्स्यः पचाशत नाम असदस्युर्वधूना ।
 महिष्टो अर्यं सत्पति ॥३६॥
 उत मे प्रयियोर्वयियो सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
 तिसृणा सप्ततीना श्याव प्रणेता भुवद्वसुदियाना पति ॥३७॥
 —८।१९
- १८ ख. दास (उपमा १५।६३)
१९. शर्यणावति सोममिन्द्र पिवतु वृत्रहा ।
 वल दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महद् इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥
 आ पवस्व दिशा पत आर्जोकात् सोम मीद्व ।
 ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत ॥२॥
 पर्जन्यवृद्ध महिप त सूर्यस्य दुहिता भरत् ।
 त गन्धर्वाः प्रत्यगृष्णन्त सोमे रसमादधु ॥३॥
 ऋत वदन्नृतद्युम्न सत्य वदन्त्यसत्यकर्मन् ।
 श्रद्धा वदन्तसोम राजन्वात्रा सोम परिष्कृत ॥४॥
 —९।११३
- २० ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य. कृत ।
 ऊरू तदस्य यद् वैश्यं पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥
 —१०।९०

१६ जिमने इम मारे नदवर (विश्व) को बनाया, जिम गुह्य (इन्द्र) ने दास वर्ण को नीच गुहा-निवासी बनाया । जिम स्वामी ने शिकारी की तरह लक्ष्य को जीत कर धन को ग्रहण किया । हे लोगों, वह इन्द्र है ॥४॥

—गृत्तमद धुनहोत्र-श्रुत, २।१२

१७ हे इन्द्र, तुमने दस्युओं को सभी ने अधम बनाया, दासीय प्रजाओं को अप्रशान्त किया । (इन्द्र और सोम ने) धयुजों को बाधा दी, वध के हथियारों से बदला लिया ॥४॥

—वामदेव गोतम-श्रुत, ४।२८

१८ पुरुगुल-श्रुत प्रसदस्यु ने जो कि अतिमहान् अयं (स्वामी) मत्पति है, मुझे पचाम दासियों दी, ॥३६॥

दान-पति धनी सुनेता श्यावने भी मुझे सुवास्तु के तट पर मजबूत भोग और तीन-नत्तर गायें दी ॥३७॥

—गोमनि कण्व-श्रुत, ८।१९

१९ वृष-हन्ता इन्द्र ने शर्यणावर्त में सोम पिया । अपने में बल धारण करने महान् विजय करने को तैयार हो हे इन्द्र (गोम), इन्द्र के लिये बहो ॥१॥

दिशाओं के पति, मित्र है सोम, आजोंक में बहो । श्रुत वचन, सत्य, श्रद्धा और तप द्वारा चुवाये, हे सोम इन्द्र के लिये बहो ॥२॥

उम पर्वण्य से बड़े महिष (महान्) गोमतो मूर्ख को दुहिता ले जाई । उमे मधुर्वो ने ग्रहण किया, सोममें रत्न स्थापित किया ॥३॥

ऋतवादी ऋत-प्रकाशक सत्यवादी सत्यवर्मा, श्रद्धावादी हे गोम-राजा पिधाना द्वारा परिप्लव ०॥४॥

—नश्यप मन्त्रि-श्रुत, ९।११३

२०. एम (पुरण) का मुन आह्वय हुआ, दोनों बाहु ने राजन्य (धर्मिक) बना । गो इमरी दोनों जाये हुई, जो मि धंस्य (जीव) दोनों पंक्तों ने शत्रु जनमा ॥१२॥

—नश्यप, १।१५०

३. आदिद्धनेम इन्द्रियं यजन्त आदित्यवित पुरोळाश रिरिच्यात् ।
आदित् सोमो विपपृच्यादसुप्वीनादिज्जुजोष वृषभ यजर्घ्यै ॥५॥

—४१२४

वृषभ पकाना १५।३९, ९७-१००

इन्द्र का ३५ वैल खाना १६।३।(१४)

४. त्व नो वायवेपामपूर्व्यं सोमाना प्रथम पीतिमर्हसि सुताना पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीना विशा ववर्जुषीणा ।

विश्वा इत्ते घेनवो दुह आशिर घृत दुहत आशिर ॥६॥

—११३४

५. किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिर दुहे न तपन्ति घर्मं ।

आ नो भर प्र मगन्दस्य वेदो नैचाशाख मघवग्रन्धया न ॥१४॥

—३।५३

इमे त इन्द्रसोमास्तीव्रा अस्मे सुतास । शुक्रा आशिरं याचन्ते ।१९।

ता आशिर पुरोळाशमिन्द्रेम सोम श्रीणीहि ।

रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥११॥

—८।२

परि सोम प्र घन्वा स्वस्तये नृभि पुनानो अभि वासयाशिर ।

ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेमिरिन्द्र चोदय दातवे मघ ॥५॥

—९।७५

अय पुनान उपसो विरोचयदय सिन्धुम्यो अमवदु लोककृत् ।

अयं त्रि सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सर ॥२१॥

—९।८६

३. तब कोई इन्द्र के पराश्रम की पूजा करते, कोई पकाते, पुरोडाशको तैयार करके देने, अदानियों को मोम सत्तावे, हम यजन के लिये वृषभ प्रस्तुत करते हैं ॥५॥

—वामदेव, ४।२४

४ हे गवंपुरातन वायु, (तुम) इन मोमों के प्रथम पान करने योग्य हो, छाने हुआ के प्रथम पान के योग्य हो। हवन करनेवाली निर्दोष प्रजाओं की आहुतियों को (तुम स्वीकार करते हो)। सारी धेनुयें तुम्हारे लिये दूध-धी दुहाती, दूध दुहाती हैं ॥६॥

—परुन्टेप दिवोदान-भृश १।१३४

५ हे मधवन् (इन्द्र), कीकटों (बनायों के देश) में तुम्हारी गाँवें क्या करती हैं? न आगिर (दूध) दुहाती हैं, न धर्म (दूध) तपाती हैं। नैवाशाण (नगर) को नष्ट करो, प्रमगंध के धन को हमारे लिये लाजो ॥१४॥

—विश्वामित्र, ३।५३

हे इन्द्र, तुम्हारे लिये यह हमारे छाने श्वेत तीव्र मोम है, यह आगिर (दूध) चाहते हैं ॥१०॥

हे इन्द्र, उन (नामों) को आगिर, पुनोदान मे मिलाओ। मैं तुम्हें पानवान् मुनता हूँ ॥११॥

—प्रियमेष आगिरम, ८।२

हे गोम, न्यन्ति के लिये तुम चारों ओर बहो। मनुष्यों द्वारा पून हृषे तुम दूध मे मिलो। जो तुमारे पंक्ति तीव्र नद हैं, उनके द्वारा इन्द्रको धन देने के लिये प्रेरित करो ॥५॥

—रवि भाष्य, ९।७५

यह पुना (गोम) जाता उगझाओ प्रगममात रग्ना है। यह त्रिन्दुओं (नशियों) के लिये ग्मान बनाता है। यह २१ बार दुहाता, मन्त्रयत गोम ह्यस में सुभन्ति होता है ॥२१॥

—शुक्ति, अ३, २।=६

अह तदासु धारय यदासु न देवश्च न त्वष्टा धारयद्रुशत् ।
 स्पार्हं गवामूध सु वक्षणास्वा मघोर्मघु श्वाश्र्य सोममाशिरं ॥१०॥
 —१०१४९

इन्द्रो बल रक्षितार दुघाना करेणेव विचकर्त्ता रवेण ।
 स्वेदाजिभिराशिरमिच्छमानो रोदयत् पणिमाग अमुष्णात् ॥६॥
 —१०१६७

६ उप न सुतमागहि सोममिन्द्र गवाशिर । हरिम्या यस्ते अस्मयु ॥१॥
 इममिन्द्र गवाशिर यवाशिर च न पिव । आगत्या वृपभि सुत ॥७॥
 —३१४२

७ सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिर ।
 निम्न नयन्ति सिन्धवोभि प्रय ॥७॥
 —५१५१

८ विश्वेत्ता विष्णुरामरदुरुक्रमस्त्वेपित ।
 शत महिपान् क्षीरपाकमोदन वराहमिन्द्र एमुप ॥१०॥
 —८१६६

१ अश्वमेघ—

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुत परिस्थ्यन् ।
 यद्वाजिनो देवजातस्य सप्ते प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥

यन्निणिजा रेक्णसा प्रावृत स्य राति गृभीता मुखतो नयन्ति ।
 सुप्राडजो मेम्यद्विद्वरुप इन्द्रापूष्ण प्रियमप्येति पाय ॥२॥

मैंने इन (गायो) में उन्ने स्थापित किया, जिन्ने इनमें न विनी देवता ने न त्वष्टा ने स्थापित किया। गायो के होनेवाले मन्त्रों में मधुक्त भी मधु स्पृहणीय नषेदे गोम आशिर (दूध) है ॥१०॥

—इन्द्र, १०।४०.

धेनुओं के रक्षक बल को इन्द्र ने हुकार के नाथ हाथ में ही चीर जाला। मन्त्रों के नाथ आशिर (दूध) को चाहते गायोंको छीन लिया, पणि को रक्षाय ॥६॥

—अयान्य आगिरम १०।६३

६ हे इन्द्र, हम पर कृपा कर अपने दोनों घोटों (के रथ) द्वारा हमारे गोकुण्डवाले छाने गोम के पान आओ ॥१॥

हे वाहन-युक्त इन्द्र, आकर हमारे छाने इन गवाशिर और यवाशिर को पियो ॥७॥

—विश्वामित्र, ३।४२

७. इन्द्र के लिये वायु के लिये, वष्याशिर (दधि-मिश्रित) गोम छाने है। जैसे मन्त्रु (नदियाँ) निम्न (उपत्यकाओं) की ओर जाती हैं, वैसे (तुम) आओ ॥७॥

—व्यग्नि, ५।५.१

८. हे इन्द्र, तुमने प्रेरित यदुगामी जन्तु उन गवतों लाया—गौ गहिरों, धौरपात, जंदन, वराह, चीर ॥१०॥

—तुंगुनि, ८।६६

१ अश्वमेध

जब देव-उत्पन्न शीघ्रगामी घोटों के पनाक्रम को विद्वय (रत्न-मन्त्र) में हम बजाते, तो अग्नि, मित्र, अर्षमा, आसु, इन्द्र, अश्विनी नामक हमारे मित्र न करें ॥६॥

जब स्नात जल में उके उके मृत पशु काटते बजाते हैं, तो अग्नि-अश्व इन्द्र-असु के मित्र स्नात को निमित्तवात्त रत्न लाया है ॥२॥

एपच्छाग पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्य ।
अभिप्रिय यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेन सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥

यद्वविष्यमृतुशो देवयान त्रिमनिपा पर्यश्व नयन्ति ।
अत्रा पूष्ण प्रथमो भाग एति यज्ञ देवेभ्य प्रतिवेदयन्नज ॥४॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राम उत शस्ता सुविप्र ।
तेन यज्ञेन स्वरकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपुणध्व ॥५॥

यूपन्नस्का उत ये यूपवाहाश्चपाल ये अस्य यूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचन स भरन्त्युतो तेषामभिगूतिर्न इन्वतु ॥६॥

यद्वाजिनो दामसन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वाघास्य प्रभृतमास्ये तृण सवाताते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥

यदश्वस्य ऋविपा मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्वस्तयो शमितुर्यन्नखेपु सर्वा ताते अपि देवेष्वस्तु ॥९॥

यद्ववध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य ऋविपो गन्धो अस्ति ।
सुकृतातच्छमितार कृण्वतूत मेघ शृतपाक पचन्तु ॥१०॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभिशूल निहतस्याव धावति ।
मातद्भूम्यामाश्रिपन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तु दशद्भ्यो रातमस्तु ॥११॥

ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिनिहंरेति ।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूतिर्न इन्वतु ॥१२॥

बलशाली अथ्व द्वारा बागे बागे यह बकरा ले जाया जाता है, जो सारे देवों वाला तथा पूषन् का भाग है। जब त्वष्टा सुयज्ञ के लिये घोड़े के माथ इमे बलिप्रिय पुरोडाश के तीर पर भेजता है ॥३॥

जब श्रमानुसार देवताओं की ओर जानेवाले हविष् या घोड़े को मनुष्य तीन बार ले जाते हैं। तो पूषन् का प्रथम भाग बकरा देवताओं को भूचना देने वहाँ यज्ञ में प्राप्त होता है ॥४॥

होना, अथ्वर्यु, वावय (शोधक), अग्नीध्र, निलवट्टा पकटनेवाला, प्रगस्ति गानेवाला, मुदीप्र—ये नारे ऋत्विक् अच्छी प्रकार किये गये उम यज्ञ द्वारा वाहिकाओं नदियों को पूर्ण करें ॥५॥

जो यज्ञस्तम्भ (यूप) काटनेवाले, और जो यूप ठोनेवाले जो इन यूप के लिये खपाल गाठ का तक्षण करते हैं, और जो घोड़े के लिये पचनपात्र गो काते हैं। उनकी सहायता हमारे काम को ऐसे पूरा करे ॥६॥

षीध्रगामी घोड़े के बाधने की जो रस्सी है, जो गिरपर बाधने की और इसके अगामकी रस्सी है, जो उनके मुह में रखना तृण है, यह सब सभी देवों के विषय में होये ॥८॥

मस्त्रियों द्वारा गाय गवा अथवा जो गाय में और गदा में निपटा हुआ घोड़े का भाग है। काटने वाले के दोनों हाथों में या नगों में जो रखा है। गो सभी देवों के विषय में होये ॥९॥

जो पेट का न पचा भोजन बाहर जाता है, जो कच्चे भाग का गध है। जो काटनेवाला मुन्दर बनाये और बलि को मुन्दर पार में पकायें ॥१०॥

हे अन्न, आगने पायाे जाते काम के दृष्ट पर चको तेरे शरीर में चला है। यह न भूमि पर पड़े, न नृगों पर, बल्कि वह उल्लूक देवताओं के लिये दान होये ॥११॥

जो घोड़े को पग देगते हैं, जो रहते हैं "उत्तारो, नोपा है"। जो पगों की मान भिन्ना (मान-भोजन) के लिये बँटे हैं, उनका गायला हमारे कामको पूरा करे ॥१२॥

यन्नीक्षण मास्पचन्या उखाया या पाञ्चणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मप्यापिधाना चरूणामका सूना परिभूपयन्त्यश्व ॥१३॥

निक्रमण निपदन विवतंन यच्च पङ्वीशमवंत ।
यच्च पपी यच्च घासि जघास सर्वा ताते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥

मा तवाग्निध्वंनयीद्ध मा गन्धिर्मोखा भ्राजत्यभिविक्त जघ्नि ।
इष्ट वीतमभिगूर्तं वपट्कृत त देवास प्रतिगृम्णन्त्यश्व ॥१५॥

यदश्वाय वास उपस्तृणत्यधीवास या हिरण्यान्यस्मै ।
सदानमवंत पङ्वीश प्रिया यामयन्ति ॥१६॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पाण्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ताते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देववन्धोर्वङ्गक्रीरश्वस्य स्वधिति समेति ।
अच्छिद्रा गावा वयुना कृणीत परुष्परुनुघुष्या विशस्त ॥१८॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतु ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डाना प्रजुहोम्यग्नौ ॥१९॥

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापि यन्त मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रागात्राण्यसिना भियूक ॥२०॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिप्यसि देवा इदेपि पथिभि सुगेभि ।
हरी ते युजा पृपती अभूतामुपास्याद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥

भाग पकाने की हडिया का जो परगना है, जो पात्रों में जूमका जालना है, चक्रों का उष्मणि (ढक्कन), अकुग, काटने का पीठा अथवा को परिभूपित करते हैं ॥१३॥

जाने का न्यान, पटने का स्थान, घूमने का न्यान और जो घोंटे की पैर की रस्नी है, एव जो उनमें पिया, जो उनमें खाया नौ मनी देवां के विषय में होवे ॥१४॥

धूम की गजवान्ना अग्नि तुझे शब्दायमान न करे, न पत्ती हडिया गध दे जा टूटे । प्रिय, अपेक्षित, बगड्कार द्वारा बलि दिये उम अथवा को देवता ग्रहण करने हैं ॥१५॥

जो अथवा के लिये बन्ध फैलाते हैं, जो ऊर्गे बन्ध और मोना उनके लिये फैलाते हैं, घोंटे को बाधने की रस्नी, पैर की रस्नी मो प्रिय बन्धुओं देवों के पाग प्रदान करने हैं ॥१६॥

हे अथवा, अथिक उतावलेपन ने जो तुझे एटी ने या चाबुत ने मारा गया है, उने हवि-यज्ञों में नुचा की तरह मन्त्र के नाथ में फैकना है ॥१७॥

देव-प्रिय बलमान्नी अथवा को नांतीन पनगियों में गज्ज नमाना है । चतुराई में गात्रों को छिद्र-रहित काटो, पोर-योग को कटने काटो ॥१८॥

त्वष्टा के घोंटे का एक भाग काटनेवाटे का, दो मभागने वाटे का होता है, कृत वैसा (विधान) है । प्रज के अनुसार तेरे गात्रों की जो म वाटगा है, उन-उनके पिण्डों को जग्नि में हसन करना है ॥१९॥

बाहर निराल्ने तेरे प्रिय गरीर को जाग न तापे, गज्ज तेरे शरीर में न पडा रहे । लाल्ची अविशन्ना (काटनेवाला) नद्वारा द्वारा छिद्र गात्र जोर तो छोड का न बनाये ॥२०॥

परा नृ मग्ना नहीं है, न पापल होता है । नृ शुभम नागों ने देवों के पाग जागा है । रुद्र के देवों पांटे (रुद्र) मग्ना के नृमाने (य में) नृमाने । (अग्निवों के जाह्न) रातम (मग्ने) के नृने में दो पांटे निराल्ने जग्नि (नृनें) ॥२१॥

सुगव्य नो वाजी स्वश्व्य पुस पुत्रा उत विश्वापुष रयि ।
 अनागास्त्व नो अदिति कृणोतु क्षत्र नो अश्वो वनता हविष्मान् ॥२२॥
 —१।१६२

९ यन्नोक्षण मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
 उष्मण्यापिघाना चरूणामका सूना. परिभूपन्त्यश्व ॥१३॥
 —१।१६२

२. अन्न

१० आजनगर्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवला ।
 प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिप ॥६॥
 —१०।१४६

११. असौ य एषि वीरको गृह गृह विचाकशत् ।
 इम जमसुत पिव घानावन्त करम्मिणमपूपवन्तमुक्थिन ॥२॥
 —८।८०

१२ घानावन्त करभिणमपूपवन्तमुक्थिन । इन्द्र प्रातर्जुपस्व न ॥१॥
 पूपवते ते चकृमा करम्भ हरिवते हर्यश्वाय घानाः ।
 अपूपमदिघ सगणो मरद्भि सोम पिव वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥
 —३।५२

१३ य एनमादिदेशति करम्मादिति पूपण । न तेन देव आदिशे ॥१॥
 —६।५६

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्बो सुत । करम्भमन्य इच्छति ॥२॥
 —६।५७

यह अग्नि हमें सुन्दर गायोवाला, सुन्दर अग्निवाला, पुरषो, पुरो
और सारी स्त्रियो वाला धनप्राप्ता करे। जदिति, तुम हमें निष्पाप करो,
दिवान्ता अद्य हमें धन (राजगति) प्रदान करे ॥२२॥

—शेषतमा उच्यते-शुभ, १।१६२

९ जो कि माम पकाने की उष्ण (हृदय) का देवता है, जो जूम डालने
के पात्र है। चरत्रो (वर्तनो) को गन्म राने वाले ढक्कान है, सूना
(काटने के पीडे) और चिन्ह-करना (ये) अद्य को तैयार करते
है ॥१३॥

—शेषतमा उच्यते-शुभ, १।१६२

१० गुग्गुलुवात्री (गोधी) बिना विनासो ये ब्रह्म अन्नोवाली, मृगो को
माना अरण्यानी (वन) की मने स्तुति की ॥६॥

—शेषतमा उच्यते-शुभ, १०।१४६

११ यह जो तुम प्रकाशमान वोर घर-घर में जाते हो। (नो) इन
धानायुक्त नत्-नहित अपूपवान् स्तुति-नहित गोम को पियो ॥२॥

—प्रपाला आश्रयो, ८।८०

१२ हे इन्द्र, धानायुक्त नत्-युक्त अपूपवान् स्तुति-नमित्तन हमारे गोम
को प्राण न्योत्तर करो ॥१॥

पूषन्मति, हरे घोडेवाले नुनहरे इन्द्र के शिष्य हमने नत् और धाना
बनाया है। हे इन्द्र, विद्वान्, वृत्रहन्ता, गण-नहित मरुतो के नाथ अपूप
(रोटी) गाओ, गोम पियो ॥३॥

—विश्वामित्र ३।५२

१३ जो इन मत्सूभशी पूषन् या स्मरण करना है, उते (दूमरे) देव को
स्मरण करना नहीं पता ॥१॥

—नरदाज, ६।५६

पीने के लिये दो समुद्रो (पात्रो) में छाने गोमके पात्र एक घंटता है,
एक अग्नि (नत्) चाहता है ॥२॥

—नरदाज, ६।५७

१४. सवतुमिव तितउना पुनन्तो यत्र घीरा मनसा वाचमन्नत ।
अत्रा सखाय सख्यानि जानते भद्रैषा लक्ष्मीर्निहिताधि वाच ॥२॥

—१०७१

१५ यत्र घ्रावा पृयुवुघ्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जलूल ॥१॥

—११२८

१६ यूपन्नस्त्रा उत ये यूपवाहाश्चषाल ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचन स भरन्त्युतो तेषामभिगूतिर्न इन्वतु ॥६॥

—११६२

आजनगधि सुरीभि बृहवभ्रामकृषीषलां ।

प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिप ॥६॥

—१०१४६

वेर का फल भी खाया जाता था (१५।८५)

१४. जैसे लोग छलनी द्वारा मत्तको छानते, वैसे जब धीरो ने मन द्वारा छानी वाणी बनाई। वहा (उन समय) नया मिदना को जानते हैं, उनकी वाणी में भद्रा रश्मी निहित होती है ॥२॥

—बृहस्पति, १०।७१

१५. जहा मोटे आकारवाले पत्थर गोम चुजाने के लिये उठाये जाते हैं, वहा हे इन्द्र, आत्मा के नाथ ओम्कार में निचोटे (गोम) को पिओ ॥१॥

—गुन शेष विश्वामित्र-मुद्र, १।२८

१६. जो दूध (स्तम्भ-नाष्ठ) काटने और जो दूध डोने, जो जस्य दूध के लिये चासा (कुटी) गजने हैं, और जो घोंटे के पताने का पात्र तैयार करने हैं, उनकी अनुमति हमें प्राप्त हो ॥६॥

—दीपंतना उच्युन-गुत्र, १।१६०

हे इन्द्र, जब तुमने तीन गी भैरों का मान गाया गोम के तीन सगर-परो को पिया। मारे देवों ने निल्याते हुये इन्द्र के लिये पुताग, जस उगने अहि (वृत्र) को मारा ॥८॥

—गौरीतीति वल्लि-मुद्र, ५।२९

हे इन्द्र, तुम्हारे लिये ऋत्विक् गोत्र मन्त्र करने घांटे गोमों तो पत्थर में तैयार करते हैं, तुम उन्हें पति हो। वह तुम्हारे लिये साक्षों (दूधभों) को पताने हैं, भोजनार्थ पकाये गये उन्हें हे मधवन्, तुम गाने हो ॥३॥

—यनुत्र, १०।२९

अपने पानेकी ही चीजें आर्य अपने देवताओंको अर्पित करते थे। अथ, गी, भोग ये वलिपशु थे। इनके उन्नेगये घाने देगो—

अथ—१।१६२।१-२१, १।१६३।१२

गी—२।७।५, १०९।१४, १०।२८।३, १०।८६।१३, १०।९१।१४

भोग (भेडा)—१०।९१।१४

आर्य दूध देनेवाली गायों 'पिनु'को अर्पणा (न मारने नायक) मानते थे. खेचिन, महिला गायों (देहद्) वलिपशु थीं २।७।५, १०।९१।१४

मन्त्रके कुछ पात्र थे १।१६२।६, १४

३ खेती

१७ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरी पयसा मा न आ घक् ।
जुपस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥

—६।६१

१८ हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गा ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरात् ॥१०॥

—१०।६८

१९. उत्तोस मह्यमिन्दुभि षड्युक्ता अनुसेपिघत् ।
गोभिर्यव न चकृषत् ॥१५॥

—१।२३

२० महान्त कोशमुदचा नि पिच स्यन्दन्ता कुल्या विपिता पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याम्य ॥८॥

—५।८३

२१ शुन वाहा शुन नर शुन कृपतु लागल ।
शुन वरत्रा वध्यन्ता शुनमष्ट्रामुदिगय ॥४॥

—४।५७

२२. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा न सुमगाससि यथा न सुफलाससि ॥६॥
इन्द्र सीता नि गृह्णानु ता पूपानु यच्छतु ।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा ॥७॥

—४।५७

गविता ने जिसे प्रदान किया, वह सूर्या को वगत के आगे-आगे गई।
मघा नक्षत्रों में बँल मारे गये, दोनों फाल्गुनी (पूर्वा उत्तरा) में
वह व्याही गई ॥१३॥

—सूर्या, १०।८५

१७. हे सरस्वती, हमें धन के लिये ले जाओ, हमें न अपने जल ने वचित
करो, न हमें दूर करो, हमारी मित्रता और भक्ति नवीकार करो।
हम तुम से दूर के क्षेत्र-अरण्य में न जावें ॥१४॥

—भरद्वाज, ६।६१

१८. जैसे हिम द्वारा अपहृत पत्तेवाले वन, बँने ही बृहस्पति द्वारा अपहृत
गायों के लिये घल रोया। यह न अनुकरणीय, न दोहराया जाने-
वाला काम किया, जिनने सूर्य और चंद्रमा पण्ड्यर (वारी-वारी में)
उगने लगे ॥१०॥

—अथास्य आगिरण, १०।६८

१९. जैसे बँलो से जो फी सेती होती है, धँगे मेरे लिये नोमों के नाय छ
जुष्टी (ऋतुओं) को न्याये ॥१५॥

—गुण शेष विद्वामिन्द्र-मुत्र, १।२३

२०. हे पजंन्य, बटे फोसाफो उठाओं, नीचों, वेग-युक्त पुत्थायें नामने की
ओर वहें। जल में छी और पृथिवी को गीला कर दो, गोओं के
(पानेके) लिये मुन्दर पान होवे ॥८॥

—भीम आश्रय, ५।८३

२१. बँल सुगी हो, नर सुगी हो, हल सुग-सूवंक वृषि करे। रन्नी सुगम्य
चायी जायें, पैता सुग से उठाये ॥४॥

—वामदेव, ४।५७

२२. हे मुभगे मीने (हगरे), पान होओ, हन मुन्हागे वरना करने हँ,
जिनमें कि तुम हमारे लिये मुभगा हो, जिनमें कि तुम हगारे लिये
मुपन्ना हो ॥६॥

इन्द्र मीता को पकड़े, प्रसन्न उसे प्रदान करे। यह (मीता) इन्द्र के
सकल-अर्गों माओ एक हगारे लिये कुम्भराजे हा ॥३॥

—वामदेव, ४।५७

२३ शुन न फाला वि कृपन्तु भूमिं शुन कीनाशा अभि यन्तु वाहै ।
शुन पर्जन्यो मवुना पयोभि शुनासीरा शुनमस्मासु घत्त ॥८॥
—४१५७

२४ न वा अरण्यानिहन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते ॥५॥
—१०१४६

२५. देखो १४१२६

२६ आरगरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनवारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा स्यवसात् सचेथे ॥१०॥
—१०१०६

४. सोम

२७ स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्यो । सोमश्चमूपु सीदति ॥६॥
—९१२०

२८ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुत ॥१॥
—९११

२९ अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनस्मान् कृणवदराति किमु घूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३॥
—८१४८॥

३० सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मरिरे विवक्षणं ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुम ॥५॥
—८१२१

३१ तुविप्रीवो वपोदर सुवाहुरन्वसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥८॥
—८११७

२३. हमारे लिये फाल मुत्र मे भूमि को जोतें, हलवाहे सुखपूर्वक बैलो के साथ गमन करें। पजन्य मधु और जल के साथ मुखमय होवे। शुना-शीर (इन्द्र-वायु देवता) हमें सुप्त प्रदान करें ॥८॥

—वामदेव, ५।५७

२४. अरण्यानी (वन) हत्या नहीं करती, यदि दूसरा हत्या के लिये न आ जाये। (वहा आदमी) स्वादु फल खाता, यथेच्छ पट रहता है ॥५॥

—देवमुनि इरम्मद-पुत्र, १०।१४६

२५. देवो १४।२६

२६. हे अश्विद्वय, जैसे भनभनानेवाली दो मक्खिया मधु जमा करती है, वैसे तुम गाय में मधुर (दूध नचागित करते हो)। जैसे मजूरे पगीने-भगीने हो जाता है, वैसे ही तुम पगीने-भगीने हो जाते हो, जैसे मुन्द्र घास से दुबल (पशु) शक्ति-सम्पन्न होता है, (वैसे तुम होते हो) ॥१०॥

—भूताश काश्यप, १०।१०६

२७. पानी में दुन्तर चाहक वह मोम दोनों हाथों में मीजा जाता चमुओं में अब स्थित होता है ॥६॥

—अमितदेवल, ९।२०

२८. छन्द्र के पीने के लिये छाने गये हे मोम, तुम स्वादिष्ट और मदिष्ट (अत्यन्त नशा-नुपन) घास में क्षरित होओ ॥११॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, ९।१

२९. हमने मोम पिया, अगर हो गये, ज्योतिको प्राप्त हूयें, देवों को जाना। निश्चय ही शत्रु हमारा क्या कर नवना है। हे अमृत, हिनर मय्यं मेरा क्या कर नाना है ॥३॥

—प्रगाथ षण्य-पुत्र, ८।४८

३०. दुग्ध-मिश्रित मधुर विचक्षण मंदिर सोमपान में पधियों की तरह बंटे तुम्हें हम हे छन्द्र, नमनार करो है ॥५॥

—गानरि षण्य-पुत्र ८।१२

३१. देवो अष्याय ३।९

अध्याय ५ प्रधान ऋषि

१. भरद्वाज—

१. नृवद्वसो सदमिद्वेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्व ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥
—६११

२. अभि प्रयासि सुधितानि हि ह्यो नि त्वादधीत रोदसी यजष्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम,
ता तरेम तवावसा तरेम ॥१५॥
—६१५

३. नू नो अग्ने वृकेभि स्वस्ति वेपि राय पथिभि पर्ष्यह ।
ता सूरिम्यो गणते रासि सुम्न मदेम शतहिमा. सुवीरा ॥८॥
—६१४

सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिप ।
अमा चैनमरष्ये पाहि रिपो मदेम शतहिमा सुवीरा ॥१०॥
—६१२४

४. ह्रुवे व सूनु सहसो युवानमद्रोधवाच मतिभिर्यविष्ठ ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुस्वारो अधुक् ॥१॥
—६१५

अध्याय ५

प्रधान ऋषि

१. भरद्वाज बार्हस्पत्य—

१. हे धनवान् (अग्नि), मनुष्यवत् हमें यदा धन दो, पुत्र-पौत्रों के लिये बहुत पशु दो । निष्पाप, बड़े उत्तम अन्न हमें दो, हमारे भद्र यम होवें ॥१२॥

—६११

२. हे अग्नि, सुन्दर प्रकार में रक्ती हवि को देगो, धी और पृथिवी के यजन करने के लिये तुम्हें स्थापित किया है । हे मघवन (धनवान्), सग्राम में हमारी रक्षा करो, सारी बाधाओं से हम तरे, तुम्हारी रक्षा से हम उन्हें तरे, तरे ॥१५॥

—६१५

३. हे अग्नि, धनके निरावाय मार्गों द्वारा स्वस्ति ने हमारे समीप आओ, हमारे दुर्गों को हटाओ । स्तुति-कर्ता (हम) सूरियों को गुप्त दो, हम सुन्दर वीर (गन्तानों) सहित लौ जाते (वर्ष) आनन्द करें ॥८॥

—६१८

हे इन्द्र, सग्राम में (भारत की) रक्षा के लिये सहायक हो, उन वीर यहा शत्रुओं से रक्षा करो । घर में और अरण्य में पशु ने इनको रक्षा करो । हम सुवीर (गन्तानों) सहित लौ जाते आनन्द करें ॥१०॥

—६१८

४. अग्निप्यानापी, सप्त के पुत्र (अग्नि), युवातन तुम्हें हम मनुषि में आह्वान करते हैं, जो बहु-मनुषि द्रोह-रहित प्रगावान् सर्वश्रेष्ठ धनो को देता है ॥१॥

—६१५

५ ऋजीते परि वृद्धग्धि नो ष्मा भवतु नस्तनू ।
सोमो अधि ब्रवीतु नो' दिति शर्म यच्छतु ॥१२॥

—६।७५

६ सरस्वत्यमि नो नेपि वस्यो मा पस्फरी पयसा मा न आ धक् ।
जुपस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राप्यरणानि गन्म ॥१४॥

—६।६१

७. त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।
भरद्वाजाय दाशुपे ॥५॥

—६।१६

८ उत न प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या मूत् ॥१०॥

—६।६१

९ इय शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत्सानु गिरीणा तविषेभिरूमिभि ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिमि सरस्वती मा विवासेम वीतिभि ॥२॥

—६।६१

१० सनेम ते वसा नव्य इद्र प्र पूरव स्तवन्त एना यज्ञै ।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्द्वेन्दासी पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥

—६।२०

२ वसिष्ठ—

११. यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परोळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यै ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभि शत पूर्भिरायसीभिर्निपाहि ॥७॥

—७।३

१२ दण्डा ह्वेद् गो अजनाम आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकास ।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदितृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥६॥

—७।३३

५. हे मीचे जा वालने (वाण), हमें वचाओ, हमारा तन पत्यर ना होवे, मोम हमने वात करे, अदिति हमें शरण प्रदान करे ॥१२॥

—६१७५

६. देगो ४१७

७. हे अग्नि, मोम सवन करनेवाले दिवोदाम के लिये उन श्रेष्ठ बहून धनो को दो, मेवक भरद्वाज के लिये (भी दो) ॥५॥

—६११६

८. और प्रियाओ में प्रिया मान वहिनोवाली नुप्रनम्रा सरस्वती हमारे लिये स्तुतियोग्य हो ॥१०॥

९. यह सरस्वती भिम सोदनेवाली कां तरुह अपने धनो, वेगवती तरुगो द्वारा गिरियो के पादभागको भग्न करती है। तटां को ध्वस्त करनेवाली नरस्वती को रक्षा के लिये हम स्तुतियो और गीतो द्वारा बुन्नायें ॥२॥

—६१६१

१०. हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा मे नये धन पाये, इमलिये वज्र द्वारा पूर लोय तुम्हारी स्तुति करते हैं। क्योंकि पुरुकुत्सको नहायना करने तुमने दासो को दरदयाओ मान गदियो को नष्ट किया ॥१०॥

—६१२०

२. वगिष्ठ मंत्रावरण—

११. हे अग्नि, जो कि तुम्हारे मे लिए तम पृत-बुक्त्र परिपूजित म्याहा (मुन्दर हव्य) दान करने है, नुम भी (बैने हो अपने) अग्नि तेजां मे ती पत्यर को पुरियो की तरफ हमारे रक्षा करो ॥७॥

—७१३

१२. एजमे जेमे गोपे, वैसे ही भग्न जननीत निगुजेको तरुह छिद्र-भिद्र धे। वगिष्ठ एनता अगुजा (पुरोहित) तुभा, तो मनुभोको प्रजायें यदने गयी ॥६॥

—७१२३

१३. प्रप्रायमग्निभरतस्य शृष्ट्वे वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्भा ।
अभि य पूरु पृतजासु तस्थी द्युतानो दैव्यो अतिथि शुशोच ॥४॥
—७।८
१४. घेनु न त्वा मुयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठ ।
त्वामिन्मे गोपति विश्व आहा न इन्द्र सुमति गन्त्वच्छ ॥४॥
—७।१८
१५. आवदिन्द्र यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेद सर्वताता मुधा यत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च वर्लि शीर्पाणि जभ्रुरद्व्यानि ॥१९॥
—७।१८
१६. न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्यामि ।
स शर्धंदर्यो विपुणस्य जन्तोर्मा शिशनदेवा अपिगुर्दंत न ॥५॥
—७।२१
१७. एवेन्नु क सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु क भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु क वाशराज्ञे सुदास प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठा ॥३॥
—७।३३
१८. उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वंश्या ब्रह्मन्मनसो'धिजात ।
द्रप्स स्कन्न ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवा पुष्करे त्वाददन्त ॥११॥
—७।३३
१९. स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्महस्रदान उत वा सदा न ।
यमेन तत परिधि वयिप्यन्नप्सरम परि जज्ञे वसिष्ठ ॥१२॥

१३. जब यह भरतकी अग्नि अति प्रसिद्ध, सूर्यकी तरह अति प्रकाशवान् हो चमका, जिनने युद्धमें पुरुओंको जीता, वह दीप्तिमान् दिव्य अतियि प्रज्वलित हुआ ॥६॥

—७।८

१४. दूहनेकी इच्छामे जैसे धेनुको मुन्दर घान (देवे), वैसे ही वसिष्ठने तुम्हारे लिए मन्त्र रचे। नभी मुझने तुमको ही गोपति बनगते है, हे इन्द्र, मुमतिके नाथ हमारे पाम आवो ॥४॥

— ७।१८

१५. यमुनाने और तृत्नुओने उन्द्रकी नहायता की, जो कि (जने) भेदका सर्वस्य छीन लिया। अज, शिषु और यक्षु घोडोने निरकी बलि लाये ॥१९॥

—७।१८

१६. हे इन्द्र, जादूगर हमें न मतायें। न गदस हे बलिष्ठ, (अपनी) चालोमे। स्वामी (इन्द्र), दुष्ट जन्तुओंको मारे। शिशु-यूजक हमारे ऋतमें न दगल दें ॥५॥

—७।२१

१७. इन प्रकार ही उनके साथ वह मिन्युको पार हुआ, इन प्रकार ही इनके साथ भेदको मारा। इन प्रकार ही हे वसिष्ठो, तुम्हारे ब्रह्म (गुचा) द्वारा इन्द्रने दाशराजमें सुदामकी रक्षा की ॥२॥

वसिष्ठ ७।३३

१८. हे ग्राह्य वसिष्ठ, तुम मित्रावरण-भुव हो, और उर्वशीके मन से उत्सन्न हो। गिरे बूदकी तरह दिव्य मन्त्र द्वारा सारे देवोंने तुम्हें कमलमें धारण किया ॥११॥

—७।३३

१९. दोनों (लोको) के प्रकृष्ट विद्वान्, महत्कामनशाले और काममहिा, उनके बुने यन्त्रोपहितनेपाके वसिष्ठ अणुराने पैदा हुए ॥१२॥

—७।३३



२०. अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुपस्थ ।
अघा स वीरैर्दशभिर्वियूया यो मा मोघ यातुधानेत्याह ॥१५॥
—७।१०४
२१. यदि वाहमनृतदेव आस मोघ वा देवा अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्य जातवेदो हृणीपे द्रोघवाचस्ते निऋथ सचन्ता ॥१४॥
—७।१०४
२२. विद्युतो ज्योति परि सजिहान मित्रावरुणा यदपश्यता त्वा ।
तत्ते जन्मोतैक वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥
—७।३३
२३. वश राजान समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिपु ॥७॥
दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वत इन्द्रावरुणावशिक्षत ।
शिवत्यचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सव ॥८॥
—७।८३
- ३—विश्वामित्र—
- २४ एभिरग्ने सरथ याह् यर्वाङ्ग नाना रथ वा विभवो ह्यश्वा ।
पत्नीवतस्त्रिशत श्रीश्च देवाननुष्वधमावह मादयस्व ॥९॥
—३।६
- विश्वामित्र-जमदग्नि एक माथ—
२५. प्रसूतो भक्षमकर चरावपि स्तोम चेम प्रथम सूरिरुन्मृजे ।
सुते सातेन यद्यागम वा प्रति विश्वामित्रममदग्नी दमे ॥४॥
—१०-१६७

२० यदि मैं जादूगर हू, या यदि मैंने पुरुषकी आयु नष्ट की, तो आज ही मैं मर जाऊँ। नहीं तो जिमने मुझे व्यर्थ ही यातुधान कहा, वह अपने दम वीर (पुत्रों) में वञ्चित हो ॥१५॥

—७।१०४

२१. हे अग्नि, यदि मैं झूठे देवतावाला हू, या व्यर्थ देवोंको आह्वान करता हू, (तो भले ही, अन्यथा) हे जातवेद, क्यों हमसे क्रुद्ध हो। तुम्हारे श्रोत्रोंको मिथ्याभाषी पावें ॥१४॥

—७।१०४

२२ जब कि मित्र-वरुणने विद्युत्की ज्योतिमें उठने तुम्हें देखा था, वह तुम्हारा एक जन्म था, और हे वमिष्ठ, (दूसरा जन्म वह) जब कि तुम्हें अगस्त्य प्रजाओंके पान लाये ॥१०॥

—७।३३

२३ हे इन्द्र-वरुण, युद्धमें यज्ञ-विमुख दम राजा सुदाससे नहीं लड़ सके। भोजमें बैठे इन आदमियोंकी स्तुति मत्स्य हुई, इनके देव-निमन्त्रणमें देवगण उपस्थित हुए ॥७॥

हे इन्द्र और वरुण, दाशराज युद्धमें घिरे हुए सुदामकी (तुमने) नहायता की। जिम दागराज (युद्ध) में स्तुति करने श्वेत (गौर) जज्ञपारी तृप्सु लोग स्तोत्रने तुम्हारी पूजा करते थे ॥८॥

—७।८३

३ विद्यामित्र षोडशक—

२४. हे अग्नि, जन (देवों) के साथ एक रथपर अथवा नाना रथोंपर (चढ़) पान लाओं, तुम्हारे अथवा नमः हैं। पत्नियों-महित नैनीम देवताओंको न्यायों अनुगार लाओं, और (नोम पीकर) मन्त्र होजो ॥९॥

—३।६

२५ प्रेम्नि हो मैंने चर्मों भोजन किया, और प्रथम भूरि मैंने इन स्तुतिको कहा। हे विद्यामित्र, योग तैयार होने पर यमदग्नि पाते नार पर मैं तुम दोनोंके पान लाये ॥४॥

—विद्यामित्र-यमदग्नि, १०।१६३

२६ वैश्वानर मनसाग्नि निचाय्या हविष्मन्तो अनुपत्य स्वविद ।
 सुदानु देव रथिर वसूयवो गीर्भरिण्व कुशिकासो हवामहे ॥१॥
 अश्वो न क्रन्द जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे ।
 स नो अग्नि सुवीर्यं स्व्यश्व्य दधातु रत्नममृतेषु जागृवि ॥३॥

—३।२६

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रया प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदु ।
 द्युम्नवद ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्नि समीधरे ॥१५॥

—३।२९

इम काम मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राघसा पप्रथश्च ।
 स्वर्यवो मतिभिस्तुम्य विप्रा इन्द्राय वाह कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥

—३।३०

रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवै ।
 प्र सिन्धुमच्छा वृहती मनीपावस्युरह्वे कुशिकस्य सनु ॥५॥

—३।३३

त्वा सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यव ॥९॥

—३।४२

महा ऋपिर्देवजा देवजूतो स्तम्नात् सिन्धुमर्णव नृचक्षा ।
 विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥
 उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्व राये प्रमुचता सुदास ।
 राजा वृथ जघनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्या ॥११॥

—३।५३

२६ मनने आदर करते हवि-युक्त हम कुशिक लोग सत्य-अनुमारी स्वर्ग-
ज्ञाता मुदानी, दिव्य-रथी, फलदाता वैश्वानर (अग्निका) धनकी
कामनासे स्तुतियोंसे आह्वान करते हैं ॥१॥

घोड़ोंकी तरह हिनहिनाता वैश्वानर (अग्नि) कुशिकों द्वारा
युग-युगमें (हर नमय) प्रज्वलित किया जाता रहा। वह अमृतोंमें जागस्क
अग्नि हमें सुन्दर अदव-युक्त, सुन्दर वीर्य-युक्त रत्न दे ॥३॥

—३१२६

मस्तकोंकी तरह अमित्रोंसे लड़नेवाले अग्रगामी प्रथम उत्पन्न वह मशोका
सब कुछ जानते हैं। कुशिक तेजस्वी ब्रह्म (स्तुति) प्रस्तुत करने हैं, (उनमें)
एक-एक (अपने) घरमें अग्निका नमिधान करने हैं ॥१५॥

—३१२९

(हमारी) इन कामनाको गाँवों, अश्वों (और) चमत्कारिक धन
द्वारा पूरा, और प्रमिद्ध करो। (हे इन्द्र), स्वर्ग कामनावाले नवानन विप्रोंसे
स्तुतियों द्वारा तुम्हारा सम्मान किया है।

—३१३०।२०।३।५।०।८

हे पवित्राओं, मेरे नौम्य वचन (सुनने) के लिये मूर्धन भर अपनी
यात्राने रुक जाओ। वृषाकाधी मैं कुशिक-सुनु वडी लालमाने नदीकी प्रार्थना
करता हूँ ॥५॥

—३१३३

हे पुरातन इन्द्र, तुम को न्धा-प्रार्थी कुशिक लोग छाने मोमकी पीनेके
लिए हम बुलाते हैं ॥९॥

—३१४२

देवज, देव-प्रेम्ति मनुष्य-उपदेशर महान् अपि त्रिद्वामित्रने
मिग्नपुनदको न्तम्भित किया, ज्य मुदामयो (नदी) पा वगाया तो इन्द्रने
कुशिकों द्वारा (मुदामते गाँव) प्रिय वर्नाव किया ॥९॥

हे कुशिकों, पातज्जों, नेत्रों, धन (जीनने) के लिए मुदामते पोलेंगों
छोड़ो। राजा (मुदान)ने पूरे, पत्नित और उत्तर्ने शशु माने, मिग् प्रियवोले
परन्तानमे दज रने ॥१६॥

—३१५३

२७ अर्णासि चित् पप्रथाना सुदास इन्द्रो गावान्यकृणोत्सुपारा ।
शर्द्धन्त शिन्धुमुचयस्य नव्य शाप सिन्धूनामकृणोदशस्ती ॥५॥

—७।१८

२८. प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विपिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाद्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१॥

“इन्द्रेपिते प्रमव भिक्षमाणे अच्छा समुद्र रथ्येव याथ ।
समाराणे उर्मिभि पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२॥

रमध्व मे वचमे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवै ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीपावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनु ” ॥५॥

“इन्द्रो अस्मा अरददृज्रवाहुरपाहन् वृथ परिधि नदीना ।
देवो नयत सविता मुपाणिस्तस्य वय प्रमवे याम उर्वी ” ॥६॥

“ओषु स्वसार कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
निपू नमध्व भवता सुपारा अवो अक्षा सिन्धव स्रोत्याभि ” ॥९॥

“आ ते कारो शृणवामा वचासि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नमै पीप्यानेव योपा मय येव कन्या शश्वचै ते ” ॥१०॥

“यदग त्वा भरता सतरेयुगंव्यन् ग्राम इपित इन्द्रजूत ।
अर्पादह प्रमव मर्गतक्त आ वो वृणे सुमर्ति यजियाना ” ॥११॥

अतारिपुर्भरता गव्यव समभक्त विप्र मुमर्ति नदीना ।
प्र पिन्ध्वमिपयन्ती. सुरावा आ वक्षणा पृणध्व यात शीभ ॥१२॥

—३।३३

२७ स्तुत्य इन्द्रने सुदासके लिए फूली नदियोंको गाघ और गुपारा बनाया (उम) भयानक नमस्करणीयने स्तुति-शत्रु शिष्युमे निन्धुओं शापको अ-प्रशस्त किया ॥५॥

—त्रनिष्ठ, ७।१

२८ पर्वतोंकी गोदमे दो मुक्त घोड़ियोंकी तरह अभिलापवती हनर्त चाटती गाय-माताओंकी तरह, शुभ्र विषाद् और शुतुद्रि जलके साथ वह रही है ॥१॥

(विश्वामित्र—) “इन्द्र द्वारा प्रेरित आज्ञा सुनती दो गधियोंकी तरह तुम समुद्रको जानी हो। हे शुभ्रे, एक साथ प्रवाहित, लहंगेमें फूरी, एक दूसरेको (साथ) लिये तुम जाती हो ॥२॥

“हे पवित्राओ, मेरा गोम्य वचन (सुननेके) लिये महानं भर जपन यात्रामे एक जाओ। कृपाकाशी मैं कुशिक-सूनु बटी लालनाने नशीं प्रायंता कर रहा हूँ” ॥५॥

(नदिया—) “वज्रबाहु इन्द्रने नदियोंके गोलनेवाले वृषको मार हमें मांदा। गुपाणि गवितादेव हमें लाया, उनकी आज्ञामें हम फँसी हुई ज रही है” ॥६॥

(विश्वामित्र—) “हे बहिनो, ठहरो, कविकी सुनो। वह दूने तुम्हारा पाग धावट-रथ दान आया है। थोटा नीची हो गुपारा हो जाओ। हे निन्धुओ अपनी धाराओंमें हमारे धुरेमें नीची हो जाओ” ॥९॥

(नदिया—) “हे कवि, तेरे वचनोंको हम सुनती हैं, वृ जो धावट-रथ द्वारा दूरमें आया है। हम पिलानेवाली माताकी तरह, पनिको आलिंगन करनेवाली तर्णीकी तरह तेरे लिये नीची हो जाती हैं” ॥१०॥

—३।३

हे प्रियाओ, इन्द्र-प्रेरित योगा-नमूह भरत तुम्हें जब पाग हो जायें, तो (तुम्हारी) पाग बेगने बहे। मैं यज्ञ-योग्य तुम्हारे मुक्ति चाहता हूँ” ॥११॥

इन्द्रनेवाले भक्त पाग हो गये, विप्रने नदियोंकी मुक्ति प्राप्त की। पन-गुवा लहंगेमें पणिपूनां होओ, दूसरी धाराओ भरती घोष आओ ॥१२॥

—विश्वामित्र, ३।३

२९. महा ऋषिर्देवजा देवजृतोस्तम्नात् सिन्धुमर्णव नृचक्षा ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥

—३५३

३०. इळामग्ने पुरुदस सर्णि गो शश्वत्तम ह्वमानाय साध ।
स्यान्न सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥

—३११२३, ३१७११, ३१५१७, ३१२२५, ३१२३५

३१. शुन ह्रुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतम वाजसाती ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृथाणि सजित घनाना ॥२२॥

—३१३०१२२, ३१३१२२, ३१३२१७, ३१३४११, ३१३६११,
३१३८११ ३१४८१५, ३१४९१५ ३१५०१५

३२. य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मोद भारत जन ॥१२॥

—३५३

४ वामदेव—

३३. महो रजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्व नो अस्य वसश्चिकिद्धि होतर्यंविष्णु सुकृतो दमूना ॥११॥

—४१४

३४. ये पायवो मामतेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्ध दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देमु ॥१३॥

—४१४

३५. अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकभ्रवती शम्बरस्य ।
शततम वैश्य सर्वताता दिवोदासमतिगिग्व यदाव ॥३॥

—४१२६

२९. देवज देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेवत महान् ऋषि विश्वामित्रने
मिन्धुनदको स्तनित किया, जब इन्द्रने कुशिकोंके द्वारा सुदासने
प्रिय बर्ताव किया ॥१॥

—३१५३

३०. हे अग्नि, नदाके स्तुतिकर्ता, मुझे अन्य प्रदान करो। हमारे पुत्र-पौत्र
नन्तानपाले हों। हमारे लिये वह तुम्हारी नुमति हो ॥२३॥

—३११

३१. इन युद्धमें श्रेष्ठतम नेता मघवान् उग्र इन्द्रको रक्षाके लिए हम
पूजारते हैं, जो कि युद्धमें वृत्रो (शत्रुओं) को मारता, धनोको
जीतता, स्तुतियोंको सुनता है ॥२२॥

—३१५३

३२ जो यह दोनों स्त्री-भूषिणी हैं, (उनके धारक) इन्द्रको मैंने स्तुति की।
विश्वामित्रका यह ब्रह्म (ऋचा) भक्त जनकी रक्षा करता है ॥१७॥

—३१५३

४. दामदेय गीतम—

३३. हे अनितरण, मुत्तियावान् गृहमित्र होता, वागियों और वस्तुमाने,
जो मेरे पान पिता गोतमने आर्ज, तुम हमारे इन वचनको जानो
मैं महान् (शत्रुओं)को नष्ट करता हूँ ॥११॥

—४१४

३४ हे अग्नि, तुम्हारी जिन रक्षिता किण्णोंने आपदाओंमें मामतेव अनेकी
रक्षा की, नारे धनोरागे गुरुमां तुमने उन्हें रक्षित किया, नाम
करनेकी इच्छावाले रिषु उगे हानि नहीं पहुँचा सके ॥१३॥

—४१८

३५ मैंने सोमने मरुत हो शम्बरको नौ-नाहित नखे पुणियों (गर्भियों)को
प्वन्ना किया। जब यज्ञ (युद्ध) में अतिमिपूजक दिव्योदामकी मैंने
रक्षा की, तो गौरोंको उगके प्रवेग-शोष्य बनाया ॥३॥

—४१६

३६. गर्भे, नु सन्नन्वेपामवेदमह देवाना जनिमानि विश्वा ।
शत मा पुर आयसीररक्षन्नघश्येनो जवसा निरदीय ॥१॥

—४।२७

३७. शतमश्मन्मयीना पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोवासाय दाशुपे ॥२॥

—४।३०

३८. वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यस्रुग्नो वाहुम्या नृतम. शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुपमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

—४।२२

३९. वोघद्यन्मा हरिम्या कुमारः साहवेव्यः । अच्छा न हूत उदर ॥७॥
उत त्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आदवे ॥८॥
एष वा देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमक ॥९॥

—४।१५

४०. त्व पिप्रू मृगय शूशुवासमूजिश्वनं वंदयिनाय रन्धी ।
पचाशत् कृष्णा निवप सहस्रात्क न पुरो जरिमा विदर्द ॥१३॥

—४।१६

४१. अय चक्रमिपणात् सूर्यस्य न्येतश रीरमत् ससृमाण ।
आकृष्ण ई जुहुराणो जिघति त्वचो वुघ्ने रजसो अस्य योनी ॥१४॥
असिषन्ध्यां यजमानो न होता ॥१५॥

—४।१७

३६. मैंने इन सारे देवोंकी सतानोंकी गर्भमें रहते जाना । जो आबसी (दृढ़) पुरियोने मुझे बन्द रक्खा । तब वाजकी तरह वेगसे मैं निकल गया ॥१॥

—४१२७

३७ इन्द्रने अश्वन्मयी (पत्थरवाली) नी पुरियोंको यजमान दिवोदासके लिये नष्ट किया ॥२०॥

—४१३०

३८. श्रेष्ठतम नेता शचीवान् युद्धिमान् उग्र पराक्रमी इन्द्रने दोनों बाहुओंसे वृष्टिकारी चार धारोंवाले वज्रको फेंकते छापनेवाली परष्णी (रावी) का नेवन करने जिसके भागोंको मिश्रताके लिये टाका ॥२॥

—४१२२

३९ सहदेव-पुत्र कुमारने मुझे दो घोटोंको देना चाहा । पुकारने पर मैं पीछे नहीं हटा ॥७॥

सहदेव-पुत्र कुमारसे दो बढ़िया तेज घोटोंको तुरन्त मैंने पाया ॥८॥

हे अश्विनो, तुम्हारी (शुभासे) यह सहदेव-पुत्र कुमार सोमक दीर्घायु हो ॥९॥

—४११५

४०. हे इन्द्र, तुमने पिपु, मोटे मृगयको विदयी-पुत्र ऋजिश्वाके लिए मारा, पचास हजार पानोंको मारा, जीपं नोंगोंकी तरह पुरोंको नष्ट किया ॥१३॥

—४११६

४१. इस इन्द्रने सूर्यके चक्रको प्रेरित किया, (बुद्धके लिये) जात्रे एतगको रोग । वृष्टिलगति वाले (मेष) ने अकालगते गर्भमें इन्को आशान्ममें चमटने सिखा दिया ॥१४॥

उंमे अश्विनो (पनाच) मैं यजमान होना ॥१५॥

—४११७

४२ एतदस्या अन शये सुसम्पिष्ट विपाश्या । ससार सी परावत ॥११॥

उत दास कौलितर वृहत पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बर ॥१४॥

उत दासस्य वर्चिन सहस्राणि शता वधी । अधि पच प्रधीरिव ॥१५॥

—१३०

४३. शुन वाहाः शन नर शुन कृपतु लागलं ।

शुन वरत्रा वध्यन्ता शुनमष्ट्रामुदिगय ॥४॥

—४१५७

४४. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।

यथा न सुभगाससि यथा न सुफलाससि ॥६॥

इन्द्र सीता नि गृह्णातु ता पूषानुयच्छतु ।

सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा ॥७॥

—४१५७

४५ शुन न फाला वि कृपन्तु भूमि शुन कीनाशा अभि यन्तु वाहै ।

शुन पर्जन्या मधुना पयोभि शुनासीरा शुनमस्मासु घत्त ॥८॥

—४१५७

४६ अभि प्रवन्त समनेव घोषा. कल्याण्य स्मयमानासो अग्नि ।

धृतस्य धारा समिधो नसन्त ता जुपाणो हर्यति जातवेदा ॥८॥

—४१५८

५ गूत्समद—

४७. असाजि स्कम्भो दिव उद्यतो मद परि त्रिधातुर्भुवनान्यपंति ।

अशु रिहन्ति मतय. पनिपन्त गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययु ॥४६॥

४२. (इन्द्र द्वारा) अतिर्घृणित उषाका दकट चिपाश् (व्यान) के किनारे गिरा। वह (उषा) पश्चिम देशको चली गई ॥१६॥

हे इन्द्र, तुमने कुलितर-पुत्र शम्बर दासको बृहन् पर्वत (हिमालय) के ऊपर मारा ॥१४॥

और चक्रोषी अरोकी तन्त्र दान बर्चीसे १५०० (भट) मारे ॥१५॥

—४१३०

४३. ईल गुप्तो हो, नर गुप्तो हो, हल सुगपूर्वक कृषि करें, रन्ती नुगमय बाधी जाये, पैना सुग्ने उठाये ॥४॥

—४१५७

४४ हे सुभगे, पाग होओ, हम तुम्हारी वन्दना करते हैं, जिनमें कि तुम हमारे लिए सुफला हो ॥६॥

इन्द्र नीताको पकटे, पूषन् उसे प्रदान करें, वह नीता दूहनेके अगले-अगले साल हमारे लिये दुग्धवाली हो ॥७॥

—४१५७

४५. हमारे लिये फालने भूमिको जोतें, हलवाहे गुगपूर्वक बैलोंके साथ गमन करें। पजन्य भधु और जलके साथ नुगमय होवें, शुनाशीर (इन्द्र-त्रायु देवता) हमें सुग्ध प्रदान करें ॥८॥

—४१५७

४६ जैसे गुगुराती बन्वाषी न्त्रिया मेलें, (जाती) वैसे ही पृतकी घाग अग्निका अभिगमन करती है। पृतकी घाग रूषन बनती, उन्हें अग्नि प्रमय हो मेघन करना है ॥८॥

—४१५८

५. मूत्सानव शीनहोथ—

४७ शीता गम्भा उदक-मर तैराग छाता गया भुजनोंमें सिचरन् करता है। जब न्त्रिया प्रगामीय गोमरुने जाती है तो शब्द करने ऋचिद सोमके सोमके पान करे है ॥८६॥

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्य. पुनानस्य सयतो यन्ति रह्य ।
 यद् गोभिरिन्दो चम्बोःसमज्यस आ सुवान सोम कलशेषुसीदसि । ४७।
 पवस्व सोम ऋतुविन्न उक्थ्यो' व्यो वारे परि धाव मधु प्रिय ।
 जहि विश्वान्नक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥४८॥
 —९।८६

४८ अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधु । विश्वा अधिश्रियो दधे ।
 ॥५॥
 —२।८

४९. स रन्वयत् सदिव सारथये शुष्णमशुष कुयव कुत्साय ।
 दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्र पुरो व्यैरच्छवरस्य ॥६॥
 —२।१९

५० अध्वर्यवो य शत शवरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वी ।
 यो वर्चिन. शतमिन्द्र सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै ॥६॥
 अध्वर्यवो य शतमासहस्र भूम्या उपस्ये वपज्जघन्वान् ।
 कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्यावृणग्भरत, सोममस्मै ॥७॥
 —२।१४

५१ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो दासीरैर्यद्वि ।
 अजनयन्मनवे क्षामपञ्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
 —२।२०

५२ अध्वर्यवो य स्वश्न जघान य शुष्णमशुष यो व्यस ।
 य पिश्रु नमुचि यो रुधिकां तस्मा इन्द्रायान्वमो जुहोत ॥५॥
 —२।१४

छाने जाने (नमय) तुम्हारी धारायें भेटके ऊनका सूक्ष्म वेगने पार
हंती है। हे सोम, जब तुम दोनों चमुओमें गीओने मिलाये जाते, तो हे सोम,
तुम कलशोंमें बैठने हो ॥४७॥

शत्रुके जानकार, हमारी प्रसन्नाके योग्य हे नाम, भेटके लोभों
(वाले छननों) में प्रिय और मधुर रत्नके नाच तुम दीठो, सारे राक्षसोंको
मारो। हे सोम, सुवीर सन्तानोवाले हम अग्नि लोग यज्ञमें तुम्हारी महिमा
गायेंगे ॥४८॥

—१।८६

४८ स्वयंप्रकाश्य भक्षक अग्निके लिये उष्य (मन्त्र) बडे। (ऊनने) सारी
गोभा धारण की ॥५॥

—२।८

८९. उन दिव्य इन्द्रने सारथी कुत्तके लिये शुष्ण, अशुष, फुपयको मारा।
और दिव्योदानके लिये शम्बरकी निम्नानवे पुरिया घ्यन्त की ॥६॥

—२।१९

५० हे अप्सर्षुओ, जिनने शम्बरकी पत्थर नी नी प्राचीन पुरियांको
नष्ट किया। जिनने यज्ञके सौ-द्वारों (भटों) को मारा, उत्तरे
लिये सोम के आओ ॥६॥

—२।१८

५१ उन वृद्धनामक, पुर-द्वंदरक इन्द्रने वाले दानोंवा विनाश किया।
मनुके लिये पृथिवी और जलको पैदा किया। यह यज्ञमानको
अभिलाषा पूरी करता है ॥७॥

—२।२०

५२ हे अप्सर्षुओ, जिनने स्वधनां मारा, जिनने शुष्ण, अशुषको, जिनने
घ्यमां मारा। जिनने लिम्बू, ननुच्छितां जिनने गग्निचारी नाग, उन
इन्द्रके लिए धन पठाओ ॥५॥

—२।१८

५३ स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं घुनि च जघन्थ दस्यु प्र दभीतिमाव ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्य सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥
—२।१५

५४ देखो इसी अध्यायमें ४९ ।

५५. य शम्बर पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमान यो अर्हि जघान दानु शयान स जनास इन्द्र ॥११॥
—२।१२

५६ देखो यही ४७ ।

६ कक्षीवान्—

५७. परावत नासत्यानुदेथामुच्चावुघ्न चक्रथुजिह्ववार ।
क्षरन्नापो न पानाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥१॥
—१।११६

५८ चरित्र हि वेरिवाच्छेदि पणंभाजा खेलस्य परितक्म्याया ।
सद्यो जघामायसी विश्पलायै घने हिते सर्तवे प्रत्यघत्त ॥१५॥

शत मेपान् वृक्ये चक्षदानमृज्जाश्व त पितान्घ चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आघत्त दस्रा भिपजावनर्वन् ॥१६॥

यदयात दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना ह्यन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रयो वा वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता ॥१८॥

५३ जिनने स्वप्न द्वारा निद्रा-अभिभूत कर चुमुरि और घुनि दस्युको मारा, तथा दनीतिकी तुमने रदा की। यहा अनुचरने भी हिरण्य प्राप्त किया। यह नव इन्द्रने नोमके मदमें मग्न हो किया ॥९॥

—२।१५

५४ देखो यही ४९

५५ जिनने पर्वतमें रहते शम्बरको चाशेमवी घरदमें जा घरा। जिनने ओजायमान हो मोते हुए दानव अहि'को मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥११॥

—२।१२

५६ देखो ४७

६. काशीयान् वंषंतमम—

५७ नासत्य (बसिद्वय), तुमने ऊपर पेंदी तिरछी बारीवाले पश्चिमके कुएँको उठाया। उमने प्याने गोतमके गह्वर (गुण) धन और पानके लिये जल निकला ॥९॥

—१।११६

५८. ऐतको स्त्रीका एक पैर युद्धमें पदीके पराधी तरह कट गया। तुमने तुग्न्त उमे चलने तथा धनके लिये आयसी (तावेकी) जघा प्रदान की ॥१५॥

सूक्तोंके लिये काट कर नौ बेटे देनेवाले इन ऋज्याश्वानों पिताने अग्या कर दिया। उने दोनों श्रेष्ठ निपज नागन्योने जन्तू देनेवाली निचक्षण जागें प्रदान की ॥१६॥

जब पुरारें गने दोनों अग्नि हरिरे लिये दिवोदानके पान, भरद्वाज (अग्नि-प्रशयक या छृषि) के पान गये, तो वृषभ जीन नोन युवा तुन्द्रारा ग्य अग्नि-यज्ञको दोतर के गया ॥१८॥

—१।११६

५९. अनारम्भणे तदवीरयेयामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।

यदश्विना ऋह्युर्भुज्युमस्त शतारिषां नावमातस्थिवासं ॥५॥

—१।११६

६०. युव नरा स्तुवते कृष्णिषाय विष्णाप्व ददयुविश्वकाय ।

घोषार्यं चित् पितृपदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ॥७॥

सूनोमनिनाश्विना गृणाना वाज विप्राय भुरणा रदन्ता ।

अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना स विशपला नासत्यारिणीत ॥११॥

—१।११७

६१. अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य ।

यो मे सहस्रममिमोत मवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमान. ॥१॥

गत राज्ञो नायमानस्य निष्काच्छतमश्वान् प्रयतान्त सद्य आद ।

शतं कक्षीवा असुरस्य गोना दिवि श्रवो' जरमाततान ॥२॥

उष मा श्यावा स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रयासो अस्यु ।

पष्टि सहस्रमनुगव्यमागात् सनत् कक्षीवा अभिपित्वे अह्ना ॥३॥

चत्वारिंशद्दशरयस्य शोणा सहस्रन्याग्रे श्रेणि नयन्ति ।

मदच्युत कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पञ्चा ॥४॥

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यया ।

गर्वाह्मस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७॥

—१।१२६

५९ हे अश्विद्वय, तुमने आश्रय-रहित, धरणस्थान-रहित पकड़नेकी यन्त्रुमे रहित समुद्रमें वह पराक्रम किया, जब कि सौ पतवारोंवाली नावमें बैठा भुज्युको उठा लाये ॥५॥

—१।११६

६० हे दोनों नेताओं, तुमने स्तुतिकर्ता कृष्ण-पुत्र विश्वपके लिये (उनके पुत्र) विष्णापुको दिया। तुमने पिताये घर बँठी भुरानी घोषाको पति प्रदान किया ॥७॥

हे शीघ्रगामी अश्विनो, तुमने पुत्रके मानने मृत सतुष्ट हो विप्रके लिये अन्न प्रदान किया। मन्त्रोंके बढ़ाये जाते हे नामत्यो, तुमने विशपलाको अगस्त्यके लिये पुन प्रदान किया ॥११॥

—१।११७

६१ सिन्धु तटवासी भाव्य (स्वनय) के वास्ते मैं बुद्धि-युवन अ-मद स्तोत्र लाता हूँ। जिन अजेय राजाने यशकी कामनाने मेरे लिये हजार नवन किये ॥१॥

मैं पक्षीयान्ने याचना करनेपर राजाने गौ निष्क (मुवपं-भाला), दानके गौ छोटे तुरन्त पाये, और अनुरकी सौ गायें (भी)। उनका ज-जर यश ही मैं फँला ॥२॥

और स्वनय द्वारा दान काले छोटे काले चघुओं (शमियों) चड़े दान रूप मेरे पास रहे। पीछे एक हजार ताठ गायें भी आईं। पक्षीयान्ने दिनोंकी समाप्तिके समय उन्हें पाया ॥३॥

बशरथके पालीन लाल छोटे हजार (गायों) की पानी बह्न करते थे। पक्षीयान् (योगो) और पद्योने मुस्तावाले ये नमन छोटे पाये ॥४॥

गमीप-नामीप मेरा हासं करो। मुझे छोटा न मानो। गन्धारकी भेड़ोकी तगा मैं (गन्धारकी) रोमजा गन्धुपं (जगपाली) हूँ ॥७॥

—१।१२६

७ अगस्त्य —

६२ नेदस्य मा रघत काम आगन्तित आजातो अमुत कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषण नीरिणाति धीरमधीरा धयति स्वसन्त ॥४॥

—११७९

६३ अभूविद वयुनमोषु भूपता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिण ।
धिय जिन्वा धिष्ण्या विशपला वसू दिवो नपाता सुकृते शुचिप्रता ॥१॥

—११८२

६४ त्व धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरप सीरा न स्रवन्ती ।
प्रयत् समुद्रमतिशूर पपि पारया तुवंश यदु स्वस्ति ॥९॥

—११७४

६५. करम्भ ओपधे भव पीवो वृक्क उदारथि ।
वातापे पीव इद् भव ॥१०॥

—११८७

शरास कुशरासो दर्भास सैर्या उत ।
मौजा अदृष्टा वैरिण सर्वे साक न्यलिप्सत ॥३॥

—११९१

६६ यस्य विश्वानि हस्तयो पचक्षितीना वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मघ्नुगिद्व्येवाशनिर्जहि ॥३॥

—११७६

७. अगस्त्य मंत्रावरण—

६२ रोकते हुए भी मुझे यहा-वहा या कहींनि काम-भाव आ गया। अधीर लोपामुद्रा पतिको चाहती है। वह अधीरा स्वाम लेती धीर (पति) को चुम्बन करती है ॥४॥

—१।१७९

६३ हे मनीषियो, यह या, कि (अश्विनोकुमारोंका) दूठ (घोड़ों) का रथ मौजूद है। आगे होजो, प्रसन्न रहो। स्तुति करो, स्तुति-योग्य है। चौके नाती शुचिप्रत, घिष्ण्य विशपला-नहायक अश्विन गुकर्मा (लोगों) का भला करे ॥

—१।१८२

६४. हे इन्द्र, धुननेवाले तुमने नदियोंको तरह धुननेवाले जत्रोंको बहाया, फफनेवाली मीरा की तरह नदियोंको गिराया। हे शूर, जब तुम नमुद्रमें बाढ़ करो, तब तुवंग और महुको नन्पाण-नग्नि पाए करो ॥९॥

६५. हे औषधि (रूप) सत्तू, तुम स्थूल, दूठ पोषक बनो। और हे वायुमिण (वातापि), तुम भी स्थूल बनो ॥१०॥

—१।१८३

गर. पुगर (गुम), रस, मँयें, मृज, योग्य (रस) (मैं रहने) सभी अदृष्ट वंसी (त्रनु) मुझे लगते हैं ॥३॥

—१।१९१

६६ जिनके दोनो हाथोंमें पाचो रनोंके मारे धन है। (जें) मोंदों, जो रसों को रगता है, निर बिन्दों को तरह उसे बह करे ॥३॥

—१।१९६

८. दीर्घतमा—

६७. को वा दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्वेये नमसा पदे गो ।
जिगृतमस्मे रैवती पुरन्वी कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२॥

उपस्तुतिरौचय्यमुरुष्येन्मामामिमे पतत्रिणी विदुग्धा ।
मामा मेवो दशतयश्चितो धाक प्रयद्वा वद्वस्मनि खादति क्षा ॥४॥

—११५८

६८ वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यत नो वृपणावभिष्टौ ।
दत्ता ह यद्रेक्ण औचय्यो वा प्रयत्सन्नाथे अकवाभिस्ती ॥१॥

—११५८

६९. न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदी सुसमुच्चमवाधु ।
शिरो यदस्य श्रैतनो वितक्षत स्वय दास उरो असावपिग्ध ॥५॥

—११५८

७०. रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रा पद्वती रास्यग्ने ।
अस्माक वीरा उप नो मघोनो जनाश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२॥

—११४०

७१. ये वाजिन परिपश्यन्ति पवव य ईमाहु सुरभिर्निहरेति ।
ये चार्धतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

—११६२

८. दीर्घतमा मामतेय—

६७. हे दोनो वस्तु (अश्विनीकुमारों), (तुम्हारी) भुमतिके लिये तुम दोनोंको हव्य प्रदान कौन करे, जिसे कि तुम नमस्कार (सुन कर) गीके स्थानमें देते हो। हमारे लिये जागो, धनवाली, इच्छापूरक, कामना प्रेरक (गायें) मनके साथ (लिये मानो) तुम विचरण करते हो ॥२॥ (यह) स्तुति उच्चम्य-भुत्रको रक्षा करे। यह उठनेवाले (दोनों) हमारी हानि न करें। दस गुनी चिनी हुई जलनी आग मुझे न जलाये, जब कि (वह) तुम्हारे लिये शरीरमें बद्ध पृथिवीको खाता है, लेटता है ॥४॥

—१११५८

६८. रक्षानेवाले, बहुत ज्ञानी, वर्धनशील, कामनावर्षी हे दोनो वस्तु, हमें अभीष्ट प्रदान करो, जिसे कि उच्चम्य-भुत्र (दीर्घतमा) तुममें चाहता है। तुम अ-कृपण (हो) रक्षा प्रदान करते हो ॥१॥

—१११५८

६९. (तुम) अत्यन्त माता (रूपी) नदिया मुझे नहीं निगल गई, जब कि दासोंने नीचे मुह करके फेंक दिया। जब प्रतनने इनका गिर पाटा, दानने स्वय (अपने) डर और कन्धेपर चोट खा लिया ॥५॥

—१११५८

७०. हे अग्नि, स्वके लिये, गृहके लिये सदा हमें पतवारवाद्ये पदवाद्ये नाय प्रदान करो। जो कि हमारे वीरों और धनवाले जनोंकी पार करे, और जो शरण हो ॥१२॥

—१११४०

७१. जो पके घोड़ेको देते, जो बोलने "उनारो नांसा हूँ" और जो घोड़ेके नाग-भोजनको नैन परो हूँ, उनाता मन्त्र्य हमारे नागको पूग करे ॥१२॥

—१११६२

७२ न वा उ एतन्म्रयसे न रिष्यसि देवा इदेपि पथिभि सुगेभि ।
हरी ते युजा पृपती अभूतामुपास्थाद्वाजी घुरि रासभस्य ॥२१॥

—११६२

६ गीतम र्हगण-पुत्र—

७३. अवोचाम र्हगणा अग्नये मधुमद्वच । द्युम्नैरभि प्रणोनुम ॥५॥

—११७८

७४ यामथर्वा मनुष्पिता दध्यह्य धियमतन्वत ।

तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्त्वा समग्मतार्चघ्नन् स्वराज्य ॥१६॥

—११८०

७५ आदगिरा प्रथम दधिरे वय इद्वाग्नय शम्या ये सुकृत्यया ।

सर्वं पणे समविन्दन्त भोजनमश्वावन्त गोमन्तमा पशु नर ॥४॥

यज्ञैरथर्वा प्रथम पथस्तते तत सूर्यो अतपा वेन आजनि ।

आगा आजदुशना काव्य सचा यमस्य जातममृत यजामहे ॥५॥

—११८३

७२. हे अग्न्य, यहाँ न तुम मरता है न आहूत होना है, (वल्कि) सुगम मार्गों में देवोंके पान जाता है। इन्द्रके दोनो घाँटे मरुतोंके चित्तकवरे हरित तुम्हारे (रथमें) जुँगे, (अग्नि-वाहन) रामभके घुरेमें दो घाँटे (जुँगे) ॥२१॥

—११६२

९ गोनम रहुगण-मुत्र—

७३ हम रहुगण (लोग) अग्निके लिये मुत्र वाणी बोलते हैं। उज्वल (स्तुतियों) ने बहुत नमस्कार करते हैं ॥५॥

—११७८

७४ हे इन्द्र, अयर्वा, (हमारे) पिता मनु, द्योचिने जिग यज्ञको किया। उनमें अपना स्वराज्य प्रकट करते पूर्व जैसे मन्त्र, उक्त्य तुम्हें प्राप्त हुए ॥१६॥

—११८०

७५ ऋतुने महान् स्वयाके पीछे बलमे भयकर बड़े, सुन्दर निप्रवाले हरित अज्योयुक्त इन्द्रने लक्ष्मीके लिये अपने बलिष्ठ दोनो हाथोंमें आयन (कठोर) वज्र (गदा) धारण किया ॥४॥

(तुमने) पृथिवी-श्रेष्ठको परिपूर्ण किया, शीमें तारोंको न्यापित किया। हे इन्द्र, तुम्हारे जैसा न कोई जन्मा, न जन्मेगा। तुम विश्वको अत्यन्त ठीरने धारण करने हो ॥५॥

पत्थे अगिराअंने अन्न प्राप्त किया, फिर जनता अग्नि मुद्वन्व (यज्ञ) द्वारा प्रज्वलित हुआ। नरोने पणिके अश्व-युक्त, गो-युक्त सभी पशु, भोजन (छीन) लिये ॥६॥

अपवाते पत्थे यज्ञों द्वारा पय विस्तृत किया, नद यज्ञात्क प्रदात-मान मूर्ग (रुद्र) प्रकट हुआ। (जो) शक्ति-मुत्र उगानार्थे माय मायें न्याय। यमके बलन पुत्र (इन्द्र) का हम यजन (पूजा) करने हैं ॥५॥

—११८३

७६ इन्द्रो दधीचो अस्थमिर्वृत्राप्यप्रतिष्कृत । जघान नवतीर्नव ॥१३॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपरिचत । तद्विदच्छर्यणावति ॥१४॥
—१८४

७७. गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धन । सुमित्र सोम नो भव ॥१२
—१९१

७८ अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वा यदमुष्णीतमवस पर्णि गा ।
अवातिरत वृसयस्य शेषो विन्दत ज्योतिरेक बहुम्य ॥४॥
—१९३

१० मेघातिथि कण्व-पुत्र—

७९. आ त्वा कण्वा अहूपत गृणन्ति विप्र ते धिय । देवेभिरग्न आ गहि ॥२॥
ईळते त्वामवस्यव कण्वामो वृक्तवहिप । हविष्मन्तो अरकृत ॥५॥
—११४

८० कण्वा इव भृगव सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशु ।
इन्द्र स्तोमेभिर्मह्यन्त आयवः प्रियमेघासो अस्वरन् ॥१६॥
—८३

८१ प्रास्मै गायत्रमचंत वावातुर्यं पुरन्दर ।
याभि काण्वस्योपवहिरासद यासद्वज्री भिनत् पुर ॥८॥
यत्तुदत् सूर एतश वद्व कू वातस्य पर्णिना ।
वहत् कुत्समार्जुनेय शतश्रुत्सरद्गन्वर्वमस्तृत ॥११॥

७६. दुधंपं छन्दने दधीचिकी हृदिज्योनि वृद्धको नौ नव्वे बार मारा ॥१३॥
पर्वतमें छिपे अदरके सिरको बूढ़ने, उमे शयंपावत्ने प्राप्त
किया ॥१४॥

—१८४

७७. हे सोम, तुम हमारे गृहवर्षन, रोगहन्ता, धनदाता, पुष्टिवर्धन और
सुमित्र बनो ॥१२॥

—१९१

७८ हे अग्नि और सोम, वह तुम्हाग पराक्रम प्रगिद्ध है, जिनने कि तुमने
पणिमें भोजन और गायें छोनी, जिनमें वृषयवे पुत्रको मार गिराया,
और बहुनोंके लिये एक ज्योनिको प्राप्त किया ॥४॥

—१९२

१०. मेघातिथि कण्व-पुत्र—

७९ कण्व (लोग) तुम्हें पुकारते हैं, हे विप्र, तुम्हारी प्रशंसा गाने हैं।
हे अग्नि, देवोंके नाथ तुम आओ ॥२॥

रक्षा-अभिधापी पुत्र-विधाये हवि-युक्त अलङ्कृत कण्व (लोग)
तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५॥

—११४

८० भृगु कण्वोंकी तरह नयोंकी तरह हैं, (अपनी) नारी कामनायुक्त
आयुवाले उन प्रियमेघोंने स्तुतियाँ गाने पूजा की ॥१६॥

—८३

८१. इन (छन्द) ने लिये अच्छी तरह गायत्र (गाय) द्वारा चरन करां,
जो पुरोस नामक हैं, पूजनाय (हैं)। दिन जन्माओ दाग यह कण्व-
पुत्रके यज्ञमें बैठा, (जिनके द्वारा) वयधारीने पुरोसो गष्ट
किया ॥८॥

जब सूनेने एतदसरो जाहत किया, (यव) शत्रुने घातके लड़ने यह क्षम
उर्ध्वन-भुष कुम्भको यज्ञ किया, और अनेक गन्धं (नयं)क शक्ति
(जातमान) किया ॥११॥

त्व पुर चरिष्व वधै शुष्णस्य सम्पिणक् ।
त्व मा अनुचरो अघ द्विता यदिन्द्र हव्यो भुव ॥२८॥

स्तुहि स्तुहीदेते घाते महिष्ठासो मघोना ।
निन्विताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेघ्यातिये ॥३०॥

आ यदद्वान्वनन्वत श्रद्धयाह रथे रुह ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्व पशु ॥३१॥

य ऋज्जा मह्य मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यम्यस्तु सौभगासगस्य स्वनद्रथ ॥३२॥

अघ प्लायोगिरति दासदन्यानासगो अग्ने दशमि सहस्रै ।
अधोक्षणो दश मह्य रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥३३॥

—८१

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिम्यो भृगवे घने हिते येन प्रस्कण्वमाविय ॥९॥

शग्धी नो अस्य यद्व पौरमाविय धिय इन्द्र सिपासत ।
शग्धि यथा रुशम श्यावक कृपमिन्द्र प्राव स्वर्णर ॥१२॥

कण्वा इव भृगव. सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशु ।
इन्द्र स्तोमेभिर्महयन्त आयव प्रियमेघासो अस्वरन् ॥१६॥

य मे' दुरिन्द्रो मरुत पाकस्थामा कौरयाण ।
विश्वेया त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमान ॥२१॥

रोहित मे पाकस्थामा सुधुर कश्यप्रा ।
अदाद्रायो विवोघन ॥२२॥

तुमने वज्रमे शुष्णके गमनशील दुर्ग (पुर) को ध्वस्त किया। हे इन्द्र, तुम पुकारने योग्य हो, क्योंकि तुम प्रभावा अनुमरण करने हो ॥२८॥

स्तुति करो, स्तुति करो, धनवानोमें (वह) अतिमहान् है। हे मेघा-
तियि, मेरा अश्व बहुत चलनेवाला धन (छीनने) के लिये मेरा परमआयुध
है ॥३०॥

जब कि श्रद्धाके नाथ मैं अश्वोंको जोड़ रखकर चटना हू। (यदु-पुत्र)
गुन्दर धनको जानता है, और (उने) जो कि यदुओंका पनु है ॥३१॥

जिम (आनग) ने मुनहले जोहानके नाथ मुझे भूरे (घोटे) दिये,
यह यह जासग स्वनद्रय नारे (धन) सौभाग्यतो पाये ॥३२॥

हे अग्नि, प्लषोग-पुत्र आसग दन हजार गावोंके (दान) द्वारा
दूगरोंके (आगे) चढ गया। फिर मरोवरने निकले नाले की तरह दीप्तिमान्
दम बैल मेरे लिये आये ॥३३॥

—८१

(हे इन्द्र), प्रायनापर प्रथम ध्यान देनेके लिये तुमने उन नुमोंगताको
मागता हू, जिन्हे द्वारा तुमने धनके लिये धनियां, भृगुभ्राती, जिन्हे
द्वारा प्रकण्वकी रक्षा की ॥९॥

हे इन्द्र, हमें (यह रक्षा) दो, जिन्हे तुमने स्तुति द्वारा चाहने
पुत्र-पुत्रकी रक्षा की। जैसे हे इन्द्र, दशम, श्यायक स्वर्ण और वृषकी
रक्षा की ॥१२॥

भृगु श्रेष्ठोंकी तरह मूर्ख-निन्द्याकी तरह है। उन्होंने (उन्नी) मारी
पानना पा थे। आरु पाये प्रियमेषोंने स्तुति युक्त दत्त ता यजन
सिया ॥१६॥

जो मुझे इन्द्र और मरुतोंने दिया, उन नारे की, मय अतिमानन
धीलानमे (मानों) श्रेष्ठोंकी बुद्ध्यान्-पुत्र पाररपामाने दिया ॥२१॥

पाररपामाने मुझे धन-दायक नाले गुन्दर पुत्रोंवाला ममरव-द-पुत्र
पौत्र प्रदान सिया ॥२२॥

यस्मा अन्ये दश प्रति धुर वहन्ति वह्नय ।
 अस्त वयो न तुभ्य ॥२३॥
 आत्मा पितुस्तनुवसि ओजोदा अम्यजन ।'
 तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामान भोज दातारमन्नव ॥२४॥

—८१३

११ श्यावाश्व अत्रि-पुत्र—

८२ अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामि शवस ।
 प्र यज्ञ यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्म्य ॥५॥

—५१५२

८३. सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददु ।
 यमुनायामधि श्रुतमुद्राघो गव्य मृजे नि राघो अश्व्य मृजे ॥१७॥

—५१५२

८४ एतान् रथेषु तस्थुष क शुश्राव कथा ययु ।
 कस्मै सस्रु सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टय सह ॥२॥

—५१५३

१२ कुत्स आगिरस—

८५. इन्द्र कुत्सो वृत्रहण शचीपति काटेनिवाहृळ ऋषिरह्वदूतये ।
 रथ न दुर्गाद्विसव सुदानवो विश्वस्मान्नो अहसो निष्पिपतन ॥६॥

—१११०६

याभि सिन्धु मधुमन्तमसश्चत वसिष्ठ याभिरजरावजिन्वत ।
 याभि कुत्स श्रुतयं नयंमावत ताभिरूपु ऊतिभिरश्विना गत ॥९॥

—११११२

८६. शुष्ण पिप्रु फुयव वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुर शवरस्य ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति मिन्धु पृथिवी उप द्यौ ॥८॥

—१११०३

जिमके (जैने) दूसरे दम घोड़े धुरेको वहन करते हैं, वह पक्षियोंकी तरह तुम्र-पुत्रको (उड़ा ले गये) ॥२३॥

वह पिताका शरीर आत्मा, वस्त्र, और बलप्रद भोजन है। एव चौथे लाल घोड़ेके दाता भोजकर्ता पाकस्थामाको मैं कहता हू ॥२४॥

—८१३

११. श्यावाशय अत्रि-पुत्र—

८२ जो अहंन्त (पूजनीय), मुदाना बलिष्ट नेता हैं, उन चौके पूजनीय मरुतों का (हम) यज्ञमें यजन करेंगे ॥५॥

—५१५२

८३. उन्चाम पवित्रमान् मरुतोने एक-एक (करके) हमें नौ दिये। यमुना तीर पर प्रगिद्ध गो-धन हमने पाया, अश्व-धन हमने पाया ॥१७॥

—५१५२

८४ रथपर बैठे इन (मरुतों) को किमने मुना, कहा गये ? किम मुदाता के लिये (यज्ञके) अश्वोंके साथ अनुरूप वृष्टिया पजो ॥२॥

—५१५३

१२. कुल आंगिरस—

८५ कृष्णों गिरे कुल अत्रिने अत्रिपनि धृप्रहन्तातो ग्धाके लिये पुत्राग। जैने दुगंम पयने ग्य, वैने (शौ) मुदानी वनु म्नांग नारे गष्टोने हमारो उदार करें ॥६॥

—१११०६

हे अत्रिनो, जिन (उषासो) के ज्ञान मपूतान् नि-पुको तुमने प्रवाहित किया, जिनके ज्ञान तुम अत्रोने परिष्टतो ग्धा की दिनेके ज्ञान कुल, धुनयं, नयंरो ग्धा सो, ज्ञा ग्धा गेके साथ तुम आये ॥९॥

—११११२

८६. हे अत्र, जैने तुमने शृणु, पित्र, पुत्र, धृप्रजो (अत्र) शम्भरके पुत्रोने नष्ट किया। उर (नरक ही) हमार (अमोष्ट) मित्र, पान अर्जित, निपु, तृणित और शौ प्रजात करें ॥८॥

—१११०३

- ८७ अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नात कुयवस्य योषे हते ते स्याता प्रवणे शिफाया ॥३॥
—११०४
- १३ मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र—
- ८८ नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणवामहे । त्वोतासोन्यर्वता ॥२॥
—११८
- ८९ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुत ॥१॥
—९११
- १४ प्रष्कण्व कण्व-पुत्र—
- ९० अरित्र वा दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूना रथ । धिया युयुञ्ज इन्दव ॥८॥
—११४६
- ९१ सुदासे दस्त्रा वसु विभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रथि समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे घत्त पुरुस्पृह ॥६॥
—११४७
- ९२ कुविच्छकत् कुवित् करत् कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित् पतिद्विपो यतीरिन्द्रेण सगमामहे ॥१४॥
—८१८०
- ९३ सप्तापो देवी सुरणा अमृक्ता याभि सिन्धुमतर इन्द्र पूभित् ।
नर्वति स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातु मनुपे च विन्द ॥८॥
—१०११०४

८७ वह केवल कामनाका धन फेंकता है, केवल जन्ममें फेंक फेंकता है।
फुयचकी दोनों म्रियया क्षीर में नहाई है। वह शिफाकी धारमें मर
जायें ॥३॥

—१११०४

१३ मघुच्छन्दा विद्वामित्र-पुत्र—

८८ (हे इन्द्र), तुम्हारी रक्षाने युक्त हम घोड़े द्वारा, मुष्टि-युद्ध द्वारा
शत्रुओंको रोक देंगे ॥२॥

—११८

८९. इन्द्रके पीनेके लिये छाने गये हे गोम, स्वादिष्ठ, मदिष्ठ धाराके नाय
(तुम) धरित होओ ॥१॥

—९११

१४. प्रस्कण्यः कण्य-पुत्र—

९० हे अश्विनोकुमारो, घोरो नात्र तुम्हारो है, गिन्धुओंके पाटपर रय
(तैयार) है। मृतिके नाय गोम तैयार है ॥८॥

—११८६

९१ हे अश्विनीकुमारो, तुमने सुदासांके बहुत अन्न दिया, (उन्हेलिये)
रयपर धन भरकर लाये। नमुद्रने जोर घांने बहुत गा पाछनीय धन
हमें प्रदान करो ॥६॥

—११८७

९२ क्या वह हमें पालि नहीं देगा, क्या बहुत धनमान् नहीं कहेगा ? क्या
हम स्वामीके द्वेषवात्र (बने) जातर इन्द्रने नहीं मिलेंगे ॥८॥

—८१८०

९३ हे पुरुरवा इन्द्र, देवो-मनुष्योंके गुण के लिये तुमने अश्विन नात्र
सुख्य दिव्य नरियोंको बनाया, जिनने गिन्धुकी रस गले और
निदासांके नगीं नरियोंको पार कृइ ॥८॥

—१०११८४

अध्याय ६

दस्यु (अनार्य)

१. पणि—

१ हे गत्यति अग्नि, तुम (अपने) बलने वृत्रको मारने हो। विप्र (तुम) पणिके धनको (छीन) लेने हो। जानकार ऋन-उत्पन्न हे बलके नानी, जिसे तुम धनके लिये प्रेरित करने हो (बह पाता है) ॥३॥

—६।१३

२ हे छन्द, यहा युद्धमें कवि दशोणि मे अपने नैकटो (नैनिवो) के साथ पणि भाग गये। शुष्ण-अशुषकी भाषाके नामके कुछ भी अन्न बन न रहा ॥४॥

—६।२०

३ हे पूषन्, (तुम) न देनेकी इच्छामानेको दानके लिये प्रेरित करो, पणिके मनको कोमल बनाओ। ॥३॥

४ हे अग्नि पूषन्, पणियोंके हृदयको आगमें बंध दो, और उन्हें हमारे बगमें कर दो ॥५॥

—६।५३

५ वह मुक्तार्थ है, जो पणियोंके आगमें गंत हमारे लिये बहू भोज्य रोषाके मूर्खको लाया। वह प्रगत होता प्रजाश्रोता मित्र, परमे, नारी अग्निमें निर्यात देता है ॥६॥

—३।१

६ तमोतीन वसुधामो, षट्भामो, उपद्रव, पूषकोत्त, वसुतीन पणियों-दस्यु मे जो अग्निने पूरे में भगता, यज्ञेनोमं मरुं पणिक के भगता ॥३॥

—३।६

- ७ रेवद्वयो दघाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरित ऊतिमाहित ।
न वा द्यावोहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वम्पणयो नानशुर्मघ ॥९॥
—११५१
- ८ अग्नीपोमा चेति तद्वीर्यं वा यदमुष्णीतमवस पणि गा ।
अवातिरत वृसयस्य शोपो विन्दत ज्योतिरेक बहुम्य ॥४॥
—११९३
- ९ अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुनिधि पणीना परम गुहाहित ।
ते विद्वासा प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यंत उ आयन्तदुदीयुराविश ॥६॥
—२१२४
- १० नि सर्वसेन इपुधी रसक्त समयो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वाम मा पणिभूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥३॥
—११३३
- ११ प्रवोद्योप घृणातो मघोन्यवुध्यमाना पणय ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघयो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१०॥
—११२४
- १२ समीम्पणेरजति भोजन मुपे वि दागुपे भजति सूनर वसु ।
दुर्गे चन घ्नयते विश्व आ पुर जनो यो अस्य तविपीमचुक्रधत् ॥७॥
—५१३४

- ७ हे मित्रावरुण, तুম धन-युक्त आयु-युक्त हो, धन-युक्त (करना) चाहते हो। हे नरो, (तुम्हारे द्वाग), मायाओंमें भारी रक्षा पाई है। तुम्हारे देवत्वको न दिन और रातने पाया, और न मिन्युओंने। न पणियोंने (तुम्हारे) धनको प्राप्त किया ॥१॥
—११५१
- ८ हे अग्नि और सोम, वह तुम्हारा पराक्रम प्रनिद्ध है, जिनमें तुमने पणियों गायें और भोजन छीने, जिनमें वृष्यके पुत्रको मार गिराया, और बहुतांके लिये एक ज्योतिको प्राप्त किया ॥४॥
—११९३
- ९ गोजते हुए चारों ओर जिन अगिराओंने पद्म गुहानहित पणियों की निधिको प्राप्त किया। वे विद्वान् भूठाने प्रत्याग्यात करने जहामें आये थे, फिर उही चले गये ॥६॥
—२१२४
- १० नारी गेनामें तबंय लगाता (वह) नम्यत् स्वामो इन्द्र जिगसी चाहता, उगकी गायें (छीन) ले जाना। बहुत सा धन जमा करने हे प्रवृद्ध इन्द्र, हमारे लिये तुम बनिया (पड़न) न बनना ॥३॥
—११३३
- ११ हे धनवाती उषा, दानाओंको जगाओ, (पर) पणि बिना जगें गोये रहें। हे नम्यस्तिमनी, धनवाओंको तुम धनवाया बनाओ। हे मृगो (मपुरभाषिणी), नवागे धीन कर्गो म्नात्तयेगे नम्यनि प्रदात रगे ॥१०॥
—११२४
- १२ (वह) वणियों (पणि) का भोजन छीननेके लिये गन्त करने, गोमा पड़ानेमें पणों जगाओंमें बटने । न तुम इन्द्रके पणों पृथक् पणता । न माग उग मता दिग्में पणता । ॥३॥
—११३४

१९. “किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानट् दूरे ह्यध्वा जगुरि पराचै ।
कास्मे हिति का परितक्म्यासीत् कथ रसाया अतर पयासि” ॥१॥

“इन्द्रस्य दूतीरिपिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन् व ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतर पयासि” ॥२॥

“कीदृह्य द्विन्द्र सरमे का दृशीका यस्येद दूतीरसर पराकात् ।
आ च गच्छान्मिभ्रमेना दधामाथा गवा गोपतिर्नो भवाति” ॥३॥

“नाह त वेद दम्य दभत् स यस्येद दूतीरसर पराकात् ।
न त गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे” ॥४॥

“इमा गाव सरमे या ऐच्छ परि दिवो अन्तान्तसुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अवसृजादयुच्च्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा” ॥५॥

“असेन्या व पणयो वचास्यनिपव्यास्तन्व सन्तु पापी ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्या बृहस्पतिर्व उभया न मृळात्” ॥६॥

“अय निधि सरमे अद्रिवुघ्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्ट ।
रक्षन्ति त पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्य” ॥७॥

“एह गमध्रुपय सोमदिता अयास्यो अगिरसो नवग्वा ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामयैतद्वच पणयो वमन्नित्” ॥८॥

१९ (पणियों) — सरमा, क्या उच्छ्रा करके तुम आई ? नाना स्वानोत्तो जानेवान्ना बहुत दूरका गम्ना है। हमने क्या चाहती हो ? क्यों घूमी ? कैसे तुमने रसा (नदी) के जलको पार किया ॥१॥

(सरमा—) हे पणियो, मैं इन्द्रकी दूती होकर तुम्हारी भारी निधियोंको लूटने आई हू। उनके भारी भयने मुझे बचाया, ऐसे मैं रसाके जलको पार हुई ॥२॥

(पणि—) सरमा, कैसा इन्द्र है, तैंगी (उमकी) आहति (हे), जिनकी दूती होकर तुम दूरने आई ? वह इन्द्र आवे, हम उसे मित्र मानेंगे। वह हमारी गायाँका चरवाहा बनेगा ॥३॥

(सरमा—) मैं उमको (तिनोने) हारने योग्य नहीं जानती, यह हंग नाकता है, जिम (इन्द्र) की दूती बन कर मैं आई हू। गहरी नदिया भी उनको नहीं छिपा सक्ती। हे पणियो, उम इन्द्र द्वारा निहत तुम गो जाओगे ॥४॥

(पणि—) हे नुगने सरमा, बागानके अन्तिम भाग तक उठनी यह गायेँ हैं, जिनको उच्छ्रा करो आई हो। उन (गायों) को युद्धके बिना लौन छीन सकता है ? हमारे आधुष तीव्र है ॥५॥

(सरमा—) पणियो, तुम्हारे वचन पावारात नहीं है, तुम्हारे पाती शरीर वापसे अशेष नहीं है। जानेका मार्ग यदि अप्रचलित हो, तो भी गृह-म्यनि तुम्हें नाकटापन्न सिने बिना नहीं रहेगा ॥६॥

(पणि—) सरमा, पर्यंत फोँटरियोमें, (इमाने) नर विरि पोटों, अस्वों, गायों और वनुओं (पत्तों) में पूर्ण है। मृत्वाड पणि उमकी रक्षा करने हैं। हमारे एमान म्यानमें तुम व्यय ही आई ॥७॥

(सरमा—) यह सोचने मन्त्र अथान्य आगिग्न मरुत् (ः) करि आयेँगे। यह इन गायोंके मज्जों बाट में आयेँगे, सिन् पणियों नर तुम्हारा वान बरमा भर है ॥८॥

“एवा च त्व सरम आजगन्थ प्रवाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसार त्वा कृण्वै मा पुनर्गा अप ते गवा सुभगे भजाम” ॥९॥

“नाह वेद भ्रातृत्व नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरगिरसश्च घोरा ।
गोकामा मे अच्छदयन् यदायमपात इत पणयो वरीय ” ॥१०॥

“दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनती ऋतेन ।
वृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूहळा सोमो भ्रावाण ऋपयश्च विप्रा ” ॥११॥

—१०१०८

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

१ मनु—

१ एता धिय कृण्वाम सखायो'प यामातां ऋणुत व्रज गो ।
यया मनुर्विशिशिप्र जिगाय यया वणिग्वकुरापा पुरीप ॥६॥

—५१४५

२. आ त्वा कृण्वा अहूपत गृणन्ति विप्र ते धिय । देवेभिरग्न आ गहि ॥२॥

—१११४

(पणिगण—) हे, सरमे, ऐसे ही देवताओंमें बाधित हो कर तुम बहा आई। हम तुम्हें (अपनी) बहिन बनाने हैं, तुम लौटके मत जाओ। हे सुभागी, हम तुम्हें गायें देंगे ॥९॥

(सरमा—) न मैं भ्रातृत्व जानती, न स्वसृत्व। इन्द्र और घोर अनिगदशी (उगै) जानते हैं, जो गायके इच्छुक हैं। अब मैं चली। पणियो, यहा से दूर भाग जाओ ॥१०॥

पणियो, यहासे बहुत दूर भाग जाओ। (वह) गायें ऋतही खानाने बाँ फरती जायें, जिन निगूड़ (गौओ) को बृहस्पति, गोम, (गोम पीननेके) पत्यरो और, चिप्रो (ऋषियोंने) प्राप्त किया।

—१०।१०।८

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

१. मनु—

१ हे मन्ते, जाओ, इन ऋचाओं बनायें, जिन खानाने गारोता ब्रह्म गोत्र दिया था, जिनके द्वारा मनुने विश्विद्विप्रको जीता, जिनके द्वारा बहुत भटाने यजिद्वने जन्म प्राप्त किया था ॥६॥

—महाभारत अथर्व, ५।८५

२. हे अग्नि, तुमने कश्य पुराणों हैं, विप्र (गायक) तुम्हारे ऋचाओंको प्रदाना क्यो हैं, देवताओंके माद पुन खाने ॥७॥

—मैत्रायणीय ब्राह्मण-सूत्र, १।१४

३. या वो भेषजा मस्तु शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयायोमु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता श च योश्च रुद्रस्य वक्षि ॥१३॥
—२।३३

४ नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभि सूनो सहसो यजत्रं ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनु चक्रुरपरं दसाय ॥११॥

५. तन्नु सत्य पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारव सन्नसन्त ।
ज्योतिर्यदहूने अकृणोदु लोक प्रावन्मनु दस्यवे करमीक ॥५॥
—१।९२

प्रश्येनो न मदिरमशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रवन्नमी साप्य सत पणग् रायासमिपास स्वस्ति ॥६॥

—भरद्वाज, ६।२०

२. पुरुरवा—

६. त्वमग्ने मनवे धामवाशयः पुरुरवसे सुकृते सुकृतरः ।
द्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापर पुनः ॥४॥
—१।३१

७ “ह्ये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचासि मिथ्या कृणवावहै नु ।
न नौ मन्था अनुदितास एते मयस्करन् परतरे चनाहन्” ॥१॥

३. हे ममयं मस्तो, जो तुम्हारी पुत्रि औपधिया हैं, सो तुम्हारी अति-
ल्याणकारी सुन्दरायक (औपधिया) हैं। तुम्हारी जिन औपधिको
हमारे पिता मनुने चुना था। मैं (उन्के द्वारा) एदने मंगल और
हित चाहता हूँ ॥१३॥

—गृत्तमद, २।३३

४. हे विद्वान् गहन्-गन् (अग्नि), मेरी वचनमे नारे यजन-योग्य
देवताओंके नाथ मेरे पान आओ। जो (देवता कि) अग्निन्पी
जोभवाले, जो यजके जाननेवाले हैं। जिन्होंने मनुको दामोंके लिये
(विजयो) किया ॥११॥

—मरुदाज, ६।२१

५. यह पवमानका नृत्य हो, जहा नारे कवि एकत्रित होते हैं। जिनने
दिनमें ज्योति और शोक बनाया, जिनने वस्त्राण हराया, मनुकी
रक्षा की ॥४॥

—मन्वप मरोचि-शुभ, ९।९२

इन्द्रने उत्पीटक दाम नमुचिते निरगते तांदा, जैसे बाज नदिरनाल
सोभते। उाने मोते मप्य-शुभ नमोकी रक्षा की, अत्र, मरुदाज,
मपत्तिते नाथ न्यग्नि प्रदान किया ॥६॥

—मरुदाज, ६।२०

२. पुरखा ऐत—

६. हे अग्नि, तुमने मुझतर मनुसे लिये, मुझ (मुत्तमां) पुरखाके
लिये छोरी बनाया। दोना (वर्णोन्नी) नागा-पित्ताने यह मुन
सोषनना मुक्त होते हो, तो दुम्हें (अग्निम्) पूर्णकी ओर फिर
परिनिवरी ओर से जाते हैं ॥४॥

—हिरण्यवृत्त अतिरा-मुत्त, १।३१

७. (पुरखा—) हे अग्नि, हे सोरे (अग्निम्), जन इत मया कर इतर।
एन आत्म मे मात तो करे। एगाते न करो मे मन्वजायें हमारे लिये
परिने मुत्त मरी हूँ ॥१॥

“किमेता वाचा कृणवा तवाह प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्त परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि” ॥२॥

इषुर्न श्रिय इषुघेरसना गोषा शतसा न रहि ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायु चितयन्त घुनय ॥३॥

सा वसु दधती श्वशुराय वय उपो यदि वष्ट्यन्ति गृहात् ।
अस्त ननक्षे यस्मिन् चाकन्दिवा नक्त श्नथिता वैतसेन ॥४॥

“त्रि. स्म माहू. न. श्नथयो वैतसेनोत स्म मे व्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवो नु ते केतमाय राजा मे वीर तन्वस्तदासी ॥५॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वा ॥८॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक् स क्षोणीभि क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता अन्तयो न तन्व शुम्भत स्वा अश्वासो न श्रीळयो दन्दशाना ॥९॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद् भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्य सुजात प्रोर्वंशो तिरत् दीर्घमायु ॥१०॥

जज्ञिष इत्या गोपीय्याय हि दघाय तत् पुरूरवो म ओज ।
अशास त्वा विदुषो सस्मिन्नहन्न म आशृणो किमभुग्वदासि” ॥११॥

“कदा सूनु पितर जात इच्छाच्चक्र नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।
को दम्पती समनसा वि यूयोदघ यदग्नि श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

(उर्वशी—)तेरी इन बातों को मैं क्या कहूँ? प्रथम उपा सी मैं तेरे पान चली जाई। हे पुरुष्या, अपने घर लौट जा, मैं वायुकी तरह दुर्लभ हूँ ॥२॥

(पुरुष्या—)श्रीके लिए जैसे तूषीरसे फेंका वाग, जैसे सँकड़ो गायोंको, जीतनेवाला तेज घोड़ा, अश्वीरवाले कायें में जैसे बिजली चमके, जैसे आपत्तमें गाय मेमनेकी तरह चिल्लाये, वैसे मैं विलाप करता हूँ ॥३॥

(उर्वशी—)हे उपा, जब (पति ने) चाहा, वह (उर्वशी) पारकें घरने, स्वसुरको जीवन-धन देती। उनने घर चाहा, जिनमें दिन-रात पतिने आलिंगिता हो मुग पाया ॥४॥

दिनमें तीन वार अपनी प्रियात्ने आलिंगित करता, यद्यपि वह मुझे पमन्द नहीं था। हे पुरुष्या, (तौ भी) तेरी इच्छा पूरा करती, तब हे वीर, तुम मेरे शरीरके राजा थे ॥५॥

(पुरुष्या—)जब मानुष (पुरुष्या) मैं पचुषाहीना अमानुषियोंको भेवन करने चला, तो भयभीत होकर हरिनीकी तरह या राके अश्वोषी तरह भागी ॥६॥

जब मरणपर्यायि अनुताओंके अनुमति पा उनने दान की, तौ श्मोषी तरह उन्होंने शरीर-शोभा सिगारै, दगते अश्वोषी तरह वह गयी ॥७॥

जो गिरती बिजलीकी तरह चमपी, वह (उर्वशी) मेरे लिए जन्ती नमनीच भेंट लाई, जिनने मेरे लिए मुजात, नेता, पुत्र जना, वह उर्वशी दीर्घायु हो ॥१०॥

(उर्वशी—)हे पुरुष्या, ऐसे पाण्डित रूष पीनेके लिए पुत्र पैदा किया, मेनेमें यह भोज रखा। मैं जानती थी, मैंने तुझे पता था। उन मनप मेरी बात सुने नहीं सुनी, (अर) क्यों व्यर्थ बोयता है ॥१॥

(पुरुष्या—)जब पुत्र पैदा हो पितारके (जन्मेकी) इच्छा फरेगा, तौ तनेकर कानकी तग कला आयु गिनयेगा? (पुरुष्या) श्रेमी (पति-की) तौ तौन शिस्तत श्रेयत, यद्यपि शत्रुने पन्ने (मेमनेकी) मनीज उन स्त्री है ॥१२॥

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्र नक्र ददाष्ये शिवायै ।
प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे अपरेह्यस्त नहि मूर माप ॥१३॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत् परावत परमा गन्तवा उ ।
अघा शयीत निऋतेरुपस्थेघैन वृका रभसासो अद्य ॥१४॥

“पुहूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणा हृदयान्येता ॥१५॥

यद्विरूपाचर मर्त्येष्ववस रात्रि शरदश्चतस्र ।
घृतस्य स्तोक सकृदह्ण आशना ता देवेदन्तातृपाणा चरामि ॥१६॥

“अन्तरिक्षप्रा रजसो विमानीमुपशिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठ ।
उप त्वा राति सुकृतस्य तिष्ठान्निवर्तस्व हृदय तम्यते मे ॥१७॥

“इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद् भवसि मृत्युवन्धु ।
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥१८॥

—१०१९५॥

३. नहुष—

८ यो देह्यो अनमयद्वघश्नेनैर्यो अर्यपत्नीरुपसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निविशश्चक्रे बलिहृत सहोमि ॥५॥

—७१६

(उर्वशी—) आपुचक्र गिराने नमय उगने मैं नात्यना वचन कहूंगी, (वह) स्नेहके लिए नहीं रोयेगा। हमारे बीच जो नेत्र (पुत्र) है, उसे मैं तेरे पान भेज दूंगी। तू घर लौट जा, मूर्ख, तू मुझे नहीं पा सकता ॥१३॥

(पुंस्रवा—) सुदेव (पुंस्रवा) आज गिरेगा, अव्यन्न दूर जाके फिर नहीं लौटेगा। (फिर) तो वह आपदाओंकी गोदमें नोपे, उसे गृन्गार भेड़िये खा जायें ॥१४॥

(उर्वशी—) नहीं, हे पुरन्वा, तू मन मग, मत गिर, न अग्निव भेड़िये तुझे चायें। मित्रियोंकी मित्रता (स्वायी) नहीं होनी, उनके ये हृदय मालावृको (तकउवग्धों) के (हृदय) हैं ॥१५॥

नाना रूपमें धूमती मैंने मनुष्योंमें चार घरसो (नालो) को रातें बिताईं। षोडश गा धी मैंने एक चार चना, उगने तृप्त (हो) अब भी विचरण करती रही ॥१६॥

(पुंस्रवा—) मैं उनका महानतम प्रेमी (हूँ), आसानी पूरनेवागी लोकोगी नापनेवागी उर्वशी ने मैं प्रारंभ कान्ता हूँ। तेरे पाउ मैंने मुझका घाल पहूँने। लौट ला, मेरा हृदय नापन हो रहा है ॥१७॥

(उर्वशी—) हे ऐस (उग्र-मुन), यह देवता तुझमें पन रहे हैं, कि तू मरुता बंधुला होगा, तेरी सन्तान हविने देवोंकी पूजा करेगी और तू भी स्वर्गमें मुगों होगा ॥१८॥

—१०१५

२. नहुष—

८. जिनो भगार धातुपोंमें (धतुगोंकी) भीतोंगे तोट जिन, जिनका उगनासो रुद्र-गणी बलाग। उन गगन धविने गदुपरी प्रकाशोंको बनी जिन दया वर उरें धिनी (कन्द) बाला ॥५॥

—परिशिष्ट, ३५६

- ९ त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्वपति ।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनी पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥११॥
—१।३१

४ ययाति नहुष-पुत्र—

१०. परावतो ये दिधिषन्त आप्य मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वत ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधिब्रुवन्तु न ॥१॥
११. मनुष्वदग्ने अगिरष्वदगिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या बहा दैव्य जनमासादय बर्हिषि यक्षि च प्रिय ॥१७॥
—१।३१

५. मन्घाता—

- १२ यो अग्नि सप्त मानुष श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्य मन्घातुर्दस्युहन्तममग्नि यज्ञेषु पूर्व्यं,
नमन्तामन्यके समे ॥८॥
—८।३९

ऋष्याय ८

शंघर

§१ दस्यु

१. स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपदच सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
—२।२०

हे अग्नि, देवोंने नहुषको प्रजापति, प्रथम आयुवाले तुमको आयु
 वाले (मनुष्य) के लिए इच्छा (अन्न) को मनुष्यकी उपदेशिया बनाया।
 (कैमा था समय) जब मेरे पिताके (यज्ञ) पुत्र जनमा ॥११॥

—हिरण्यस्नूप आगिरस, १।३१

०. यपाति नहुष-पुत्र—

०. मनुने प्रसन्न विवस्वान्की नन्नाने जो पश्चिममें आ चन्दु वनता है,
 जो देवता नहुष-पुत्र यपातिके यज्ञमें बैठने हैं, वे हमने मगज्ज्याप
 करें ॥१॥

—गय प्प्रति-भुज, १।६३

१. पृथि अग्नि, हे अगिरा, अगिराकी तरह, यपातिकी तरह (हमारे)
 पूर्वजोंकी तरह (हमारे) नदनमें आओ। यज्ञमें आओ, दिव्य जनोंकी
 आओं, (उन्हें) यज्ञमें बैठओ, और प्रिय (वस्तु) प्रदान करें ॥१७॥

—हिरण्यस्नूप आगिरस, १।३१

०. मन्धाता—

१२. नारी नात मन्धुओ (नर्मियों) में वनने जागिरे मानुषोंके मन्धाता
 त्रिधातु (श्री-भृषिनी-अन्तर्निधि)-निवासी मन्धानाके लिए अन्धधिता
 दन्धुओंके ज्ञाना, यज्ञोंमें प्रथम अग्निकी हम चाहते हैं। अन्ध माने मन्
 जायें ॥८॥

—नानाव गाय, ८।३९

अध्याय ८

शंकर

११. अन्ध

१. उम भुवनात्ता पुनर (पुनरात्ता) (इन्द्र) के नारी भोग्य इन्द्र
 नारीका अन्धक निता। उमने अन्धने लिए पुनरत्ता ही अन्धक
 सिने। उमने अन्धककी कामना नम पुनरत्ता ॥७॥

—कृष्णवद पुनरत्ता-भुज, १।२०

२ इन्द्र समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु
स्वर्मीहृल्लेष्वाजिषु ।

मनवे शासदव्रतान् त्वच कृष्णामरन्वयत्
दक्षन्नविश्व ततृपाणमोपति न्यशंसानमोपति ॥८॥

—१।१३०

३ न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभि ।
स शर्घदर्यो विपुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपिगुर्ऋत न ॥५॥

—७।२१

४. स वाज यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्पाता परिषदत् सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो धनच्छिश्नदेवा अभि वर्षसा भूत् ॥३॥

—१०।९९

५ प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठ ।
न ते भोजस्य सख्य मृपन्तावा सूरिम्य सुदिना व्युच्छान् ॥२१॥

—७।१८

६ अरोरवीद्धृष्णो अस्य वज्रो मानुप यन्मानुपो निजूवर्त्ति ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पिवान्तसुतस्य ॥१०॥

सनेम येत ऊतिभिस्तरन्तो विश्वा स्पृघ आर्येण दस्पून् ।
अस्मम्य तत्त्वाप्द्र विश्वरूपमरन्वय साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥

—२।११

७ अकर्मा दस्पुरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुप ।
त्व तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥८॥

—१०।२२

२ युद्धमें इन्द्रने आयं यजमानकी रक्षा की, युद्धमें जिनकी नारी सैकड़ों रक्षायें स्वर्गदायक (हैं) । उसने मनुके लिए प्रतहोन काली चमड़ीवालोको दण्ड दिया, नाग किया । जलाते हुए तारे हिमकोको जला डाला, निष्ठुरोको जला जला ॥८॥

—परुन्त्येय दिवोदान-मुत्र, १।१३

३ हे इन्द्र, जादू (पिशाच) हमें न मारें, हे बलिष्ठ, न दुष्ट अपनी चालोने (मारें) । वह स्वामी विषम जन्तुको मारे, शिष्णपूजक हमारे ऋतके पाम न आयें ॥५॥

—यनिष्ठ, ७।२१

४ वह अच्छे राम्ने युद्धमें गये, वह स्वर्ग रक्षुकर ध्रम करने, वह नौ दरवाजोवाले नगरकी निधिको लाये, अविचरित्त हों उन्होंने शिष्ण-पूजकोको (अपने) तेजने अभिभूत किया ॥३॥

—बभ्रु वैगाना, १०।९९

५ हे इन्द्र, जितने तुम्हें प्रमन्न किया, (वे हैं) पापार हीन नौ जादू-वाले बनिष्ठ । तुम (जैने) भोजकी मित्रताते जो नही भूरेगा, उन मृगियोंके' लिए मुन्दर दिन होगे ॥२१॥

—यनिष्ठ, ७।१८

६ मनुज-हितकारी (इन्द्र) ने जब दायी उरवाया, नौ पापको (इन्द्र) ता यद्य वाग्-वान गरजने लगा । छाने (गोम) तो पीपल इन्द्रने मारी दानवाती नाराती गिरा दित ॥१०॥

गुप्तारी रक्षाकोने युता हों, आते प्राण त्त दायु-रक्षुकोका मारें । त्तारे लिये नौ ति स्वष्टा-मुत्र विस्वगतको तुमने प्रित्तं लिये मारा ॥११॥

—गुप्तारो रक्षुकोका मुत्र, २।११

- ७ हमारे चारो ओर कर्महीन, मन्त्रहीन, व्रतहीन, अमानुष दस्यु हैं।
हे अमित्रहन्ता (इन्द्र), उस दस्यु दासका वध करते नाश करो ॥८॥
—विमद, १०।२२
- ८ येनेमा विस्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमघर गुहाक ।
श्वघ्नीव यो जिगीवालक्षमाददर्यं पुष्टानि, स जनास इन्द्र ॥४॥
—२।१२
- ९ वधीहि दस्यु घनिन घनेनै एकश्चरन्नपशाकेभिरिन्द्र ।
घनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वान सनका प्रेतिमीयु ॥४॥
—१।३३
- १० त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्व मित्रो भवसि दस्म ईळ्य ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुज त्वमशो विदये देवमाजयु ॥४॥
—२।१
- ११ अग्ना तुर्वश यदुं परावत उग्नादेव हवामहे ।
अग्निर्नय नववास्त्व बृहद्रथ तुर्वीति दस्यवे सह ॥१८॥
—१।३६
- १२ त्व पिप्रु मृगयं शूशुवासमृजिश्वने वेदयिनाय रन्धी ।
पचाशत् कृष्णा निवप सहस्रा' त्क न पुरो जरिमा विददं ॥१३॥
—४।१६
- १३ तस्मै तवस्यमनुदायि सत्रेन्द्राय देवेभिरणंसातौ ।
प्रति यदस्य वज्र वाह्वोर्घुर्हन्त्वी दस्यून् पुर आयसीनितारीत् ॥८॥
—२।२०
- १४ स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नवला अस्य सेना ।
अन्तर्ह्यस्यदुभे अस्य घेने अयोप प्रैद्युघये दस्युमिन्द्र ॥९॥
—५।३०

८ जिसने इस सारे नद्वर (मसार) का निर्माण किया, जिम गुह्य (देवता) ने दास वर्णको नीच बनाया, जो शिकारीकी तरह लक्ष्य जीतकर पुष्ट घन लेता है। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥४॥

—गृत्तमद, २।१२

९ हे इन्द्र शक्तिशाली (मस्तो) के साथ जा अकेले तुमने घनी दस्युको घन (वज्र) से मारा। पुरातन यज्ञहीन चारो ओरसे आये (दस्यु) चीके नीचे मृत्यु प्राप्त हुए ॥४॥

—हिरण्यस्तूप, १।३३

१०. हे अग्नि, तुम व्रतधारी राजा वरुण हो, तुम स्तुति-योग्य अद्भुत मित्र हो। तुम अर्यमा सच्चे स्वामी, जिमका सम्यक् भोज है। हे देव, तुम अश (सूर्य) यज्ञमें भोजदायक हो ॥४॥

—गृत्तमद, २।१

११ अग्निके द्वारा पश्चिम (देव) से उप्र-भूजक (उग्रादेव) तुवंश-यदुको हम बुलाते हैं। अग्नि (देवता) नवधास्त्व बृहद्रथ और तुर्वीतिफो दस्युओंको हरानेके लिए लावे ॥१८॥

—ऋष्य घोर-पुत्र, १।२६

१२. हे इन्द्र, तुमने विदधि-पुत्र ऋजिष्याके लिए पिप्रु, (और) फृत्रे मृगयफो मारा। तुमने पचास हजार कालोको नष्ट किया, जिम तरह जरा कचुकको उगी तरह तुमने पुरोको घ्वन्त किया ॥१३॥

१३ उम इन्द्रकी देवताओंने रणमें नदा प्रनुता मानी। जब उनके शोनों बाहोमें वज्र रत्ना, तो उनने दस्युओंको मारा, लापसी पुरियोंको नष्ट किया ॥८॥

—गृत्तमद, २।२०

१४ दान (गवर) ने शिष्योंको व्यापुष (नैवित्र) बनाया, इनकी दयना मेना मेरा क्या करेगी? उाके दो स्वर प्रमिद्ध हुए। तब दस्युने नदनेके लिए आगे गग ॥९॥

१५. त्व जघन्थ नमुचि मखस्यु दास कृण्वान ऋपये विमाय ।
त्व चकथं मनवे स्योनान् पथो देवत्राजसेव यानान् ॥७॥

—१०।७३

१६. प्र इयेनो न मदिरमशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमी साय्य ससन्त पृणग्राया समिषा स स्वस्ति ॥६॥

—६।२०

१७. विषूमृधो ननुषा दानमिन्वन्नहन् गर्वा मधवन्त्सचकान ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मान चित्स्वर्यं वर्तमान प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्य ॥८॥

—५।३०

१८ अस्वापयद्भीतये सहस्रात्रिशत ह्ये । दासानामिन्द्रो मायया ॥२१॥

—४।३०

१९. स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तु नामा चुमुरि घृति च ।
वृणविपप्रु शम्बर शुष्णमिन्द्र पुरा च्यौलाय शयथाय नू चित् ॥८॥

—६।१८

२० उरु यज्ञाय चक्रयुरु लोक जनयन्ता सूर्यमुपासमग्नि ।
दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥४॥

—७।९९

१५. हे इन्द्र, तुमने लडाकू नमुचिको मारा, ऋषिके लिए दामको माया-रहित बनाया। तुमने मनुके लिए सुखमय पय बनाया, जो कि देवोके पास शीघ्र ले जाता है ॥७॥

—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, १०।७३

१६. इन्द्रने उत्पीडक दाम नमुचिके सिरको तोडा, जैमे वाज मंदिर नाल (सोम) को। उसने सोते सय-पुत्र नमीकी रक्षा की, अन्न, सफलता, सम्पत्तिके साथ स्वस्ति प्रदान किया ॥६॥

—भरद्वाज, ६।२०

१७. हे मघवा, जन्मसे ही तुमने शत्रुओका नाश किया। मनुकेलिए सुगयी इच्छासे यहा तुमने दास-नमुचिके सिरको काटा॥७॥

हे इन्द्र, शब्द करते धूमते बादलकी तरह दान नमुचिके सिरको चूर्ण करते मुझे सहायक बनाया। तब स्वर्गीय पत्यरको पृथिवी और द्यौ चक्रकी तरह धूमती मस्तोके पास लाये ॥८॥

—वभ्रु, ५।३०

१८. इन्द्रने दभीतिके लिए अपनी माया (शक्ति) और हचियारोने तीस हजार दासोको मार कर सुला दिया ॥२१॥

—यामदेव, ४।३०

१९. जो इन्द्र, मग्नममें कभी नही विमूढ हुआ, जिनने वृषा काम नही किया, जो प्रनिद्ध नामवाला है, उस तुम इन्द्रने, चुमुरि, धुनि, पित्रु, शम्बर, शुष्ण को मारा, पुरोको नष्ट होनेको छोट दिया ॥८॥

—भरद्वाज, ६।१८

२०. इन्द्र और विष्णुने विम्नृत यज्ञोके लिए सूर्य, उषा, अग्निओ उत्पन्न करने विनाश लोकाओ बनाया। हे नेताओ, तुमने षपशित्र शनोको मायाको मग्नममें नष्ट कर दिया ॥४॥

—दक्षिण, ७।१९

- २७ मायाभिरिन्द्र मायिन त्व शुष्णमवातिर ।
विदुष्टे तस्य मेघिरास्तेषा श्रवास्युत्तिर ॥७॥
—११११
- २८ स तुर्व्वणिर्महा अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिनं भ्राजते तुजा शव ।
येन शुष्ण मायिनमायसो मदे दुघ्न आमूषु रामयन्नि दामनि ॥३॥
—११५६
- २९ मा कस्य यक्ष सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापे ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोऋण वेर्मा सख्युर्दक्ष रिपोर्भुजेम ॥१३॥
—४१३
३०. त्व ह त्यदिन्द्र कुत्समाव. शुश्रूपमाणस्तन्वा समये ।
दास यच्छुष्णं कुयव न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥
—७११९
३१. वृषा जजान वृषण तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरघ नृम्यो अस्तीन सत्त्वा गवेपण स घृष्णु ॥५॥
—७१२०
- ३२ मा कस्य यक्ष सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापे ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोऋण वेर्मा सख्युर्दक्ष रिपोर्भुजेम ॥१३॥
—४१३
३३. त्व कवि चोदयोऽकंसातौ त्व फुत्साय शुष्ण दाशुपे वक् ।
त्व शिरो अमर्मण पराहन्नतियिग्वाय शस्य करिप्यन् ॥३॥
—६१२६

२७. हे इन्द्र, तुमने मायावी शुष्णको मायावी द्वारा पछाडा। वैसे (ही) तुम्हें मेधावी जानते हैं, उन्हें यश (गान) में उतारो ॥७॥

—जेता मधुच्छन्दा-पुत्र, १।११

२८ वह (इन्द्र) विजयी और महान् है। (वह) निर्मल, निर्दोष, पौरुष-मय, सप्रामर्श पर्वतके शिखरकी तरह दमकता है। जिसने मस्त हो बलपूर्वक मायावी शुष्णको आयस (तावेकी) शृङ्खला से पकड़कर बन्द किया ॥३॥

—मव्य आगिरस, १।५६

२९ हे अग्नि, हमारे कित्ती प्रतिहिंसकके भोजमें तुम मत जाना, मत मत दुष्ट विचारवाले पटोमीके पान, मत बन्धुके पान। मत अयोग्य भाईका ऋण भोगना। मित्र और शत्रुके विषमको हम भोगें ॥१३॥

—वामदेव, ४।३

३० हे इन्द्र, जब तुमने अर्जुन-पुत्रका भला चाहते उनके लिए शुष्ण, कुयव दासको मारा, तब तुमने शरीरमें शुश्रूपा करते युद्धमें कुत्तकी रक्षा की ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।१९

३१. रणके लिए वृष (पराश्रमी) ने वृष (इन्द्र) को पँदा किया। नाराने उस नय (महानर) को जना, जो मनुष्योंके लिए नेनानी, दृड, वीर, (घन) ठूठनेवाले और (शत्रु-) पगजेता है ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।२०

३२. हे अग्नि, हमारे कित्ती प्रतिहिंसकके भोजमें तुम मन जाना, मत मत दुष्ट विचारवाले पटोमीके पान, मन बन्धुके पान। मत अयोग्य भाईका ऋण भोगना। मित्र और शत्रुके विषमको हम भोगें ॥१३॥

—वामदेव, ४।३

३३ (हे इन्द्र), तुमने सूर्य-प्राप्तिके लिए कविको प्रेरित किया, भक्त कुत्सके लिए तुमने शुष्णको मारा। तुमने अंतिथिग्वकी भलाई करनेकी इच्छासे मर्महीन (शम्बर) का सिरका काटा ॥३॥

—भरद्वाज, ६।२६

३४. त्व सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नयूर्यस्त्व षाट् ।
त्व शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥३॥

—१।६३

३५ त्व कुत्स शुष्णहत्येज्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शबर ।
महान्त चिदर्वुवं नि क्रमी पदा सनादेव दस्युहत्याय यज्ञिषे ॥६॥

—१।५१

३६. मुपाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वध कुत्स वातस्याश्वै ॥४॥

—१।१७५

३७. कुत्साय शुष्णमशुष निवर्ही प्रपित्वे अह्न कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून प्रमृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्र वृहतादमीके ॥१२॥

—४।१६

३८ देखो ३५

३९ अव त्मना भरते केतवेदा अवत्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नात कुयवस्य योषे हते ते स्याता प्रवणे शिफायाः ॥३॥

—१।१०४

४०. सो अप्रतीनि मनवे पुरुणीन्द्रो दाशहाशुषे हन्ति वृत्र ।
सद्यो यो नृम्यो अतसाय्योभूत् पस्पृधानेम्य सूर्यस्य साती ॥४॥

—२।१९

३४ हे इन्द्र, तुम इनके सन्धे घर्षणकर्ता हो। तुम ऋभुजा (ऋभुओंके स्वामी), श्रेष्ठ नर, तुम विजेता हो। तुमने युद्धमें युतिमान् तरुण कुत्सके लिए शुष्णको घोड़े (चठकर) के रथ पर मारा ॥३॥

—नोधा गोतम-पुत्र, १।६३

३५ शुष्णके युद्धमें तुमने कुत्सकी रक्षा की, अतियुग्व (दिवोदान) के लिए शम्बरको मारा। बडे अर्घुव (विघ्न) को भी पादाग्रान्त किया, मदासे ही तुम दस्युओंकी हत्याके लिए जनमे हो ॥६॥

—नव्य आगिरस, १।५१

३६ हे कवि, ईशान (इन्द्र), तुमने अपने ओजमे सूर्यके एक चक्केको छीन लिया। शुष्णके वधके रूपमें कुत्सको वायुवेगवाले घोड़े द्वारा लाओ ॥४॥

अगन्त्य, १।१७५

३७ (हे इन्द्र,) कुत्सके लिए तुमने शुष्ण, अशुषको मारा, प्रात फुषव और सहस्रोंको मारा। कुत्सीयोंके साथ हो तुरन्त दन्वुओंको तुमने नाष्ट किया। सूर्यके चक्केको (हमारे) पान लाओ ॥१२॥

—वामदेव, ४।१६

३८ देखो ३५।

३९ वह केवल कामनाका धन फेंकता है, जलमें फेंक फेंकता है, फुषवको दोनों स्त्रियाँ धीरसे नहार्ने हैं। वह शिफाती घरमें मर जायें ॥३॥

—१।१०४

४० उस (इन्द्र) ने भवन मनुके लिए अमित बहूत (धन) दिया, वृष (शत्रु) का नाश किया। जो (इन्द्र) सूर्य जी (प्रज्ञान) प्राणिमें मनुज्योंका स्पर्धा करते तुरन्त महापथ हुआ ॥४॥

—गुणन्द, २।१९

४१ उशना यत्सहस्यैरयात गृहमिन्द्र जूजुवानेमिरश्वै ।
वन्वानो अत्र सरथ ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्हं शुष्ण ॥९॥

—५।२९

२. पिप्रु—

४२ त्व पिप्रुं मृगयं शूशुवासमृजिश्वने वैदयिनाय रन्वी ।
पचाशत् कृष्णा निवप सहस्रात्क न पुरो जरिमा विददं ॥१३॥

—४।१६

४३. अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रज दरयद्वृपभेण पिप्रो ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद् गा पुर इयानो अभि वर्षसा भूत् ॥१०॥

—१०।९९

४४ स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरघयो वैदयिनाय पिप्रु ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीरपिव सोममस्य ॥११॥

—५।२९

४५ त्व मायाभिरप मायिनो घम स्वघाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्व पिप्रोर्नृमण प्रारुज पुर प्र ऋजिश्वान दस्युहृत्येज्वाविथा ॥१॥

—१।५१

३. वंगूद, ४. करज, ५. पर्णय—

४६ त्व करजमुत पर्णय वधीस्तेजिष्ठयातियिग्वस्य वर्तनी ।
त्व शता वंगूदस्या भिनत् पुरो नानुद परिपूता ऋजिश्वना ॥८॥^१

—१।५३

४१ हे इन्द्र, हे उशन, तुम जब शक्तिशाली शीघ्रगामी अश्वों द्वारा (कुल्म) के गृहमें आये, तो रथ द्वारा यहाँ से (शत्रुओंको) नाश करने गये, कुल्म और देवताओंके माय (जा) शृष्णको मारा ॥९॥

—गौरिवीति शक्ति-भुव, ५।२९

२. पिश्रु—

४२ देखो १२

४३ उगिज-भुव ऋजिश्वा ने इस इन्द्र की स्तुतियों द्वारा, वृषभ (परा-श्रमी इन्द्र) द्वारा पिश्रुके गोष्ठ को विदीर्ण किया। जब याजको ने मोम सवन करके स्तुति की, तो (इन्द्र ने) आकर शत्रुकी पुरियोंको बलात् ध्वस्त किया ॥११॥

—बभ्रु वैजानन, १०।९९

४४ हे इन्द्र, गौरिवीति के स्तोम तुम्हें बढ़ायें। तुमने विद्वि-भुव (ऋजिश्वा) के लिये पिश्रु को मारा। ऋजिश्वा ने तुम्हारी मित्रता के लिये पुरोडाश पत्रा कर तैयार किया। तुमने उनके मोमको पिया ॥११॥

—गौरिवीति गन्ति-भुव, ५।२९

४५ (हे इन्द्र) तुमने मायाओं द्वारा मायावियोंको उडा दिया, जो कि अन्नो द्वारा भूत में हवन करते हैं। मनुष्यों के लिये तुमने पिश्रुके पुरो को नष्ट किया, दस्यु-युद्धों में ऋजिश्वा की नुरक्षा की ॥५॥

—मव्य वागिरन, १।५१

३. वगृद, ४. फरज, ५. पर्णय—

४६ हे इन्द्र, तुमने फरज और पर्णय को मारा, अतिचिन्व (दिवोदान) को भलायें लिये अत्यन्त तीक्ष्ण (हृषियारो) में मारा। निग-बाय तुमने ऋजिश्वा द्वारा पेरों गई वगृद को भी पुरियोंमें ध्वस्त किया ॥८॥

—मव्य वागिरन, १।५३

४७. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो य कृष्णगर्भा निरहन्नृजिञ्जना ।
अवस्यवो वृषण वज्रदक्षिण मरुत्वन्त सख्याय हवामहे ॥१॥

—१।१०१

४८ वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथ दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यं ।
दृहळानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवां ऋजिञ्जना ॥३॥

—१०।१३८

६. वर्चो—

४९ इन्द्राविष्णू दृहिता शम्बरस्य नव पुरो नवर्ति च स्नथिष्ट ।
शत वर्चिनः सहस्र च साक ह्यो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥

—७।९९

५०. अर्ध्वयवो य शत शंबरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वी ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्र सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै ॥६॥

अर्ध्वयवो य शतमासहस्र भूम्या उपस्थे वपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायो रतिधिग्वस्य वीराभ्यावृणग्भरता सोममस्मै ॥७॥

—२।१४

५१ उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शता वधी । अघि पच प्रधीरिव ॥१५॥

—४।३०

५२ य सुन्वन्तमवति य पचन्त य शसन्त य शसमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धन यस्य सोमो यस्येद राघ , स जनास इन्द्र ॥१४॥

—२।१२

४७ जिम (इन्द्र) ने ऋजिश्वा के माय हो कृष्णगर्भों (कालों) को मारा। उम आनदी (इन्द्र) की हवि-युक्त वाणीसे अर्चना करो। रक्षाकी कामनासे मस्तोवाले दाहिने हाथमें वज्र धारे पराक्रमी इन्द्रको हम मित्रताके लिये पुकारते हैं ॥१॥

—कुत्त अगिरा-पुत्र, १।१०१

४८ द्यौके मध्यमें सूर्य ने अपने रथ को छोड़ दिया। दानके लिये आर्यने प्रतिद्वंद्वी पाया। इन्द्रने ऋजिश्वासे मित्रता करके मायावी पित्रु, असुरके दृढ (दुर्गों) को नष्ट किया ॥३॥

—अग उरु-पुत्र, १०।१३८

६. वर्चो—

४९ हे इन्द्र और विष्णु, तुमने शम्बरकी निन्नानवे दृढ पुरियोको ध्वस्त किया। नाथ ही तुमने वर्चो असुरके नौ हजार अप्रतिम वीरोंको नष्ट किया।

—वमिष्ठ, ७।९९

५० हे अध्वर्युओ (पुरोहितों), जिम इन्द्र ने शम्बरकी पत्नर भी सौ प्राचीन पुरियोको छिन्न-भिन्न किया, जिम उन्द्रने वर्चोके नौ हजार (वीर) मारे, उसके लिये नोम प्रदान करो ॥६॥

हे अध्वर्युओ, जिस (इन्द्र) ने नौ हजार अमृरो को मार भूमिकी गोद में फेंक दिया, जिसने कुत्त, आयु, अतिथिग्वके शत्रुवीरोको वध किया, उनके लिये नोम प्रदान करो ॥७॥

—गृत्नमद शुनहोत्रपुत्र, २।६४

५१ और दान वर्चोके नौहजार पाच (भटों) को चर्चोके जगोपी तरह मारा ॥१५॥

—वामदेव, ४।३०

५२ जो (इन्द्र) मोम-गवनकर्ताकी जो पतानेवालेकी ग्धा चरना है, जो ग्धा की स्तुति वर्ता की, जो प्रशाना करने की ग्धा चरना है,। मन्त्र जिगता चर्चक है, जिगता नोम है, जिगता यह अग है हे ज्योओ, यह इन्द्र है ॥१४॥

—गृत्नमद, २।१२

७. गुंगु, द. वृत्रतुर—देखो (६।३६) भी

५३ अह गुगुम्यो अत्तिथिग्वमिष्करमिष न वृत्रतुर विष्णु धारय ।
यत् पर्णयध्न उत वा करजहे प्राह महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥

—१०।४८

§ शंवर

५४ न त इन्द्र सुमतयो न राय सचक्षे पूर्वा उपसो न नूला ।
देवकं चिन्मान्यमान जघन्याव त्मना वृहत शम्बर भेत् ॥२०॥

—७।१८

५५ यस्य त्यच्छम्बर मदे दिवोदासाय रन्धय ।
अय स सोम इन्द्र ते सुत पिव ॥१॥

—६।४३

५६. उत दास कौलितर वृहत पर्वतादधि । अवाहन्तिन्द्र शम्बरं ॥१४॥

—४।३०

५७. यो नन्त्वान्यमद्भोजसो ता दर्दमन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरात्राविशद्वसुमन्त वि पर्वत ॥२॥

—२।२४

५८ य शम्बर पर्वतेषु क्षियन्त घत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमान यो अहिं जघान दानु गयान, स जनास इन्द्र । ११॥

—२।१२

५९. त्व तद्वयमिन्द्र वर्हणा क प्र यच्छता सहस्रा शूर दपि ।
अव गिरेर्दामि शम्बर हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिस्ती ॥५॥

—६।२६

७. गुगु, ८. वृत्रतुर—

५३. मैंने गुंगोओके विरुद्ध अतिथिग्व (दिवोदाम) को बलवान् किया। लोगोमें वृत्र-नाशक की तरह मैंने स्थापित किया। जब मैं पर्ण्य-हत्या अथवा फरज-हत्या, महान् वृत्र-हत्यामें बहुत प्रसिद्ध हुआ ॥८॥
—१०।४८

५३ शंवर

- ५४ हे इन्द्र पुरानी और नूतन उपाकी तरह तुम्हारी सुमतिया और न घन, कहनेके हैं। तुमने मन्यमान-पुत्र देवकको मार, स्वय वडे (पर्वत) से शम्बर को छिन्न-भिन्न किया ॥२०॥
—वमिष्ठ, ७।१८
- ५५ जिसके मद में तुमने दिवोदासके लिये शम्बरको मारा। हे इन्द्र, वह सोम तुम्हारे लिये छना हुआ है, पियो ॥१॥
—भरद्वाज, ६।४३
- ५६ और हे इन्द्र, तुमने कुलितर-पुत्र शम्बर दामको वृहन् पर्वतके ऊपर मारा ॥४॥
—वामदेव, ४।३०
५७. हे ब्रह्मणस्पति, ओजमे तुमने झुकाने योग्योंको झुकाया, प्रोथमें शबरके पुरोको नाट किया। न च्युत होनेवालो को च्युत किया। घनवाले पर्वतमें प्रवेश किया ॥२॥
—गुत्तमद, २।२४
५८. जिनने पर्वतमें रहते शम्बरको चालीमवें शरदमें जा घरा। जिनने ओजायमान हो माने हुये दानव अहिणो माग। हे लंगो, यह इन्द्र हैं ॥११॥
—गुन्मद, २।१२
- ५९ हे इन्द्र तुम धयुहन्ता हो। उन स्तुतियो अच्छा किया, हे शूर, जब तुमने धा महन्तोओ शरदराग। तुमने पहाटो दान शम्बरको माग, विचित्र महायता से दिवोदान की रथा की ॥५॥
—भरद्वाज, ६।२६

६०. इन्द्राविष्णु दृहिता शम्बरस्य नवपुरो नवति च इतिथिष्ट ।
शत वर्चिनः सहस्र च साक हयो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥

—७।९९

६१. अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती शम्बरस्य ।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४।२६

६२. भिन्त् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो,
वज्रेण दाशुषे नृतो ।

अतिथिग्वाय शम्बर गिरेरुप्रो अवाभरत् ।

महो घनानि दयमान ओजसा विश्वा घनान्योजसा ॥७॥

—१।१३०

६३. त्व शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्या प्रतीनि दस्यो ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय ।
सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥

—६।३१

६४. दिवे दिवे सदृशीरन्यमद्वं कृष्णा असेघदप सद्मनो जा ।
अहन्दासा वृषभोव वस्नयन्तोद्वज्जे वर्चिना शम्बर च ॥२१॥

प्रस्तोक इन्नु रावसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनो दात् ।

दिवोदासादतिथिग्वस्य राघ शम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥

—६।४७

६० हे इन्द्र और विष्णु, तुमने शबरकी निन्नानवे दृढ पुरियोको घ्वस्त किया। साथ ही तुमने वर्चो अमुरके नौ हजार अप्रतिम वीरोको नष्ट किया ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।९९

६१. मैंने सोम मे मस्त हो शबरकी नौ-महित नव्ये गडियोको घ्वस्त किया। जब युद्धमें अतिधिग्व दिवोदासकी रक्षा की तो सौवीको (उमके) प्रवेश योग्य बनाया।

—वामदेव, ४।२६

६२. हे नृत्य करनेवाले (इन्द्र) तुमने मग्राम में भक्त पुर दिवोदासके लिये वज्रसे निन्नानवे पुरिया नष्ट की। अतिधिग्वके लिये तुम उग्रने शबरको गिरि से नीचे पटका। बड़ी निधिको वाटते, अपने पराश्रममे सारी निधि वाटते ॥७॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३०

६३ (हे इन्द्र) जहा शचिमान् (बुद्धिमान्), तुमने शक्ति के माय सोमश्रेता, सवनकर्ता विवोदासके लिये शबर दन्वुके नौ पुरोको नष्ट किया। स्तुति करनेवाले भरद्वाज को धन दिये ॥४॥

—गृहोद, ६।३१

६४ दिन-प्रतिदिन ममान प्रकारसे (उगते) उसने दूनरे आधेमें कानेको दूर करते सद्मने उत्पन्न कृष्णा (रात्रि) को दूर किया। वृषभ (पराश्रमी) इन्द्रने धन-लोगी घर्चो और शबर को उदप्रजमें माग ॥२६॥

हे इन्द्र, प्रस्तोतने दन और दन घोडे दिये। दिवोदास अनिधिग्वते शम्बरयान्ना धन हमने पाया ॥२२॥

—गर्ग नरदाज-पुत्र, ६।४७

अध्याय ६

दिवोदास

§१. पूर्वकाल के श्रार्य नेता

१. दध्यद्—

१. दध्यद् ह मे जनुष पूर्वो अगिरा प्रियमेघ. कण्वो
अत्रिमनुविदुस्ते मे पुर्वे, मनुविदु ।

तेषा देवेष्वायतिरस्माक तेषु नाभय ।

तेषा पदेन मह्यानमे गिरेन्द्राग्नी, आनमे गिरा ॥१॥

—११३९

२. सम, ३. रुशम, ४. श्यावक, ५. कृप—

२. शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविय धिय इन्द्र सिपासत ।
शग्धि यथा रुशम श्यावक कृपमिन्द्र प्राव स्वर्णरं ॥१२॥

—८१३

३. यद्धा रुमे रुशमे श्यावके कृत इन्द्र मादयसे सचा ।

कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्यागहि ॥२॥

—८१४

६. बध्न्यश्व—

४. भद्रा अग्नेर्बध्न्यश्वस्य सदृशो वामी प्रणीति सुरणा उपेतय ।
यदी सुमित्रा विशो अग्र इन्वते घृतेनाहृतो जरते दविद्युतत् ॥१॥

अध्याय ६

दिवोदास

५१ आर्य नेता

१. दधीचि—

१. वे पूर्वज दधीचि, अंगिरा, प्रियमेघ, कण्व, अत्रि, मनु मेरे जन्मको जानते हैं, वे मेरे पूर्वज (और) मनु जानते हैं। उनका देवोंमें विस्तार है, उनमें हमारे नम्रन्धी है। हे इन्द्राग्नि, उनकी गीत द्वारा पूजता हूँ, वाणीसे नमस्कार करता हूँ, वाणीसे नमस्कार करता हूँ ॥९॥

—पुरुच्छेप दिवोदास-श्रुत, १।१३९

२. रुम, ३. रुशम, ४. श्यावाक, ५. कृप—

२. हे इन्द्र, हमारी स्तुतितो इन यजमान को वही (नहायता) दो। जैसे तुमने पुरु-श्रुत को रक्षा की, जैसे रुशम, श्यावाक, कृपही तुमने रक्षा की, वैसे (ही) हविवाले यजमान की रक्षा करो ॥१२॥

—मेघ्यातिथि कण्व-श्रुत, ८।३

३. हे इन्द्र, जब कि तुम रुम, रुशम, श्यावाक, कृपको नाथ होते हो। स्तोम बहन करनेवाले कण्व लोग मन्त्रों द्वारा तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, आजो ॥२॥

—देवानिधि कण्व-श्रुत, ८।४

६. यध्र्यश्व—

४. यध्र्यश्व-ना अग्नि दशनीय है। उनका नेतृत्व भद्र है, उनका आगमन रमणीय है। जब सुमित्र प्रजापति उसे पहिले प्रज्वलित करनी है, तो पूतने हवन किया दीजिमान् होता है, जलना है ॥१॥

१३. प्रस्तोक—

९ प्रस्तोक इन्नु राघसन्त इन्द्र दशकोशयीर्दश वाजिनो दात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राघ शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥

—६।४७

भरद्वाज

१० अग्निरत्रि भरद्वाज गविष्ठिर प्रावन्न कण्वं त्रसवस्युमाहवे ।
अग्नि वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहित ॥५॥

—१०।१५०

१४. कुत्स आर्जुनेय—

११ महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्ण ।
उरु ष सरथ सारथ्ये करिन्द्र कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥५॥

—६।२०

१२ प्र ते अस्या उषस प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृदणा ।
अनु त्रिशोक शतमावहनृन्दन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥२॥

—१०।२९

१५. श्रुतर्यं, १६. तुर्वीति, १७. वभीति, १८. ध्वसति १९. पुरुषन्ति

१३ याभि सिन्धु मधुमन्तमसश्चत वसिष्ठ याभिरजरावजिन्वत ।
याभि कुत्स श्रुतर्यं नयमावत ताभिरू पु ऊतिभिरिश्वना गत ॥९॥

याभि कुत्समार्जुनेय शतक्रतु प्र तुर्वीति प्र च दभीतिमावत ।

याभिर्ध्वंसन्ति पुरुषन्तिमावत ताभिरू पु ऊतिभिरिश्वना गत ॥२३॥

—१।११२

१३. प्रस्तोक—

९. हे इन्द्र, प्रस्तोक ने तुम्हारे स्तोताओको युद्धघनमेंसे दस कोश और दस घोड़े दिये । अतिविग्व दिवोदाससे हमने शबरवाला घन पाया ॥२२॥
—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

भरद्वाज—

१०. यद्धमें अग्निने हमारे अग्नि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व, प्रसदत्स्युकी रक्षा की । वसिष्ठ पुरोहित अग्निको पुकारता है, सुखके लिये पुरोहित (पुकारता है) ॥५॥
—मूळीक विनिष्ठ-पुत्र १०।१५०

१४. कुत्स अर्जुन-पुत्र—

११. जब वज्रके गिरने पर शुष्ण गिर गया, तो महान् द्रोहीकी सारी आयु (प्राण) विनिष्ठ हो गई । सूर्यके (प्रकाश के) पानेपर सारवि कुत्सके लिये इन्द्रने रथको विस्तृत किया ॥५॥
—भरद्वाज, ६।२०
१२. (हे इन्द्र) इस उपाकाल में नेताओ में महानतम नेताके दूमरे नृत्यमें हम अच्छे सेवक बनें । त्रिशोक सौ आदमियोंको लायें, जो कुत्सके साथ एक रथपर बैठे थे ॥२॥
—वसुक्र, १०।२९

१५. श्रुतयं, १६ तुर्वीति, १७ दधीति, १८ ध्वन्ति, १९ पुरुषन्ति—

१३. हे अजर अश्विद्वय, जिन उपायोंने तुमने मधुमयी गिन्धुको बहाया । जिन उपायोंने तुमने वसिष्ठको सुग्री किया, जिनने तुमने कुत्स, श्रुतयं, नयंकी महायता की, उन महायता के साथ जाओ ॥९॥
जिनसे हे गतप्रनु (इन्द्र) तुमने कुत्स अर्जुनेय, तुर्वीति और दधीति की सुरक्षा की, जिनने ध्वन्ति, पुरुषन्तिकी रक्षा की, उन रक्षाजनोंके साथ हे अश्विद्वय, जाओ ॥२३॥

—दुन्धु आतिरिण, १।११८

१४. प्रतत्ते अद्या करण कृत भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरु सहस्रा नि शिशा अभि क्षमुत्तुर्वयाणं धृपता निनेय ॥१३॥

—६।१८

२०. देवक मान्यमान—

१५. न त इन्द्र सुमतयो न राय सचक्षे पूर्वा उपसो न नूला ।
देवक चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना वृहत. शम्बर भेत् ॥२०॥

—७।१८

२१. सुश्रवा—

१६. त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दशावन्वुना सुश्रवसोपजग्मुष ।
पष्टि सहस्रा नवर्ति नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥१॥

—१।५३

२२. तुर्वयाण—

१७ त्वमावितथ सुश्रवस तवोतिमिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाण ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनाय ॥१०॥

—१।५३

२३. ऋणचय—

१८. भद्रमिद रुशमा अग्ने अत्रन् गवा चत्वारि ददत्त सहस्रा ।
ऋणंचयस्य प्रमता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृदणाम् ॥१२॥
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या या ऋणचये राजनि रुशमाना ।
अत्यो न वाजीरघुरज्यमानो वभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥

—५।३०

१४ (हे इन्द्र) वह तुम्हारा काम आज भी प्रसिद्ध है। तुमने जो फुल्ल आयु, अतिविषय और बहुत हजार (दूसरे) दवाये। तुमने पिटते, तुर्वयाणको बचाया ॥१३॥

—भरद्वाज, ६।१८

२०. देवक मान्यमान—

१५ हे इन्द्र पुरानी और नूतन उपाकी तरह न तुम्हारी नुमतिया और न धन, कहनेके हैं। तुमने मन्यमान-पुत्र देवकको मारा, स्वयं वडे (पर्वत पर) शबरको नष्ट किया ॥२०॥ (८।५४)

—वनिष्ठ ७।१८

२१. सुश्रवा—

१६ हे प्रसिद्ध इन्द्र, वधु-हीन सुश्रवा पर चड आये वीर राजाओ और (उनके) साठ हजार निम्नानवे अनुचरोको दुर्लभ्य रथचक्र द्वारा तुमने पराजित किया ॥१९॥

—नव्य आगिरस, १।५३

२२. तुर्वयाण—

१७ हे इन्द्र, तुमने अपनी रक्षाओंके सुश्रवाकी रक्षा की, तुम्हारी प्राणियोंके तुर्वयाण की रक्षा की। तुमने पुत्र, अनियोग्य, आयुकी इन तरुण महान् राजा (तुर्वयाण) के निचे अहानिकार किया ॥१०॥

—नव्य आगिरस, १।५३

२३. ऋणचय—

१८. हे जग्नि स्नाने चार हजार गाँवें मुझे देते भन्दा दिया। नेताओंके महानतम नेता ऋणचयके धनको हनने तरुणाने प्रहृत किया ॥१०॥ दशमोके राजा ऋणचयके पान यह नयंगामिनी गत द्यौत गर्द। शक्तिमान्नी पोटैनी तर्ह आगे दत्त यभुने चार हजार (गाँवें) पार्द ॥१४॥

—यभु, ५।३०

२४. पाकस्थामा कौरयाण—

१९ य मे दुरिन्द्रो मरुत पाकस्थामा कौरयाण ।

विश्वेषा त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमान ॥२१॥

रोहित मे पाकस्थामा सुधुर कक्ष्यप्रा ।

अदाद्रायो विवोघन ॥२२॥

आत्मा पितुस्तनुर्वास ओजोदा अम्यजन ।

तुरीयमिन्द्रोहितस्य पाकस्थात्मान भोज दातारमन्नव ॥२४॥

—८

२५. देवश्रवा, २६. देववात—

२० अमन्थिष्ठा भारता रेवदग्नि देवश्रवा देववात. सुदक्ष ।

अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषा नो नेता भवतादनुद्यून् ॥२॥

दशक्षिप पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजात मातृषु प्रिय ।

अग्नि स्तुहि देववात देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३॥

—३।२

२७. सृजय देववात, २८. वृचीवान्—

२१ यस्य गावावरुपा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।

स सृजयाय तुर्वश परादाद् वृचीवतो देववाताय शिक्षन् ॥७॥

—६।२

२२ अय य सृ जये पुरो देववाते समिध्यते । द्युमा अमित्रदम्भन ॥४॥

—४।१

२४. पाकस्यामा कौरयाण—

१९ घोके पाम दौडनेवाला मा स्वयं सवमें अत्यन्त गोमनीय (घोडा) है जिसे मुझे इन्द्र और मरुतो ने कुरयाण-पुत्र पाकस्यामाने दिया।
॥२१॥

पाकास्यामा ने मुझे धनप्राप्त करानेवाला रस्नी-सहित सुधुर^१ लाल (घोडा) दिया ॥२२॥

वह पिता का शरीर है, आत्मा वस्त्र और बलप्रद भोजन। चौया लाल घोटेके दाता भोजनकर्ता पाकस्यामाको मैं कहता हूँ ॥२४॥ (५।८१)
—मेघ्यातियि ऋष्व-पुत्र ८।३

२५. देवश्रवा, २६. देववात—

२० भरत-मन्तान देवश्रवा और देववातने सुददा, धनवान् अग्निको मयित किया। हे अग्नि, तুম बड़े धनके साथ हमारी ओर देखो। प्रतिदिन हमारे नेता बनो ॥२॥

(अरणी) माताओ में प्रिय पूर्वतन सुजात अग्निको दन अगुलियो ने उत्पन्न किया। हे देवश्रवा देववात-कृत अग्निकी स्तुति करो, जो कि जनोको बसमें करनेवाला है ॥३॥

—देवश्रवा, देववात, ३।३

२७. सृजय देववात-पुत्र, २८. वृचीवान्—

२१ जिसके दो सुन्दर धान घरनेवाले लालना भरे लाल (घोटे) (ची-पृथिवी के) मध्यमें विचरने हैं। उम (इन्द्र) ने सृजयको पाम तुयंदाको मर्मपित किया, देववात-पुत्रके लिये वृचीवान् को ॥७॥

—नख्वाज, ६।२७

२२ यह अमिन्ननाशक पुतिमान अग्नि है, जो कि देववात-पुत्र सृजय के महा प्रज्वलित होना है ॥४॥

—वामदेव, ४।१५

^१ रयनें जूतने मायक ।

२६. साञ्जंय महिराध —

२३ महिराधो विश्वजन्य दधानान्भरद्वाजान्त्साञ्जयो अस्ययष्ट ॥२५॥

—६१४७

३०. पुरुकुत्स —

२४. सनेम ते वसा नव्य इन्द्र प्र पूरयः स्तवन्त एना यज्ञे ।

सप्त यत्पुर शर्म शारदीदंद्वासीः पुरुकुत्साय शिक्षान् ॥१०॥

—६१२०

२५. दनो विश इन्द्र मृधवाच सप्त यत् पुर शर्म शारदीदंत् ।

ऋणोरपो अनवद्यार्ण यूने पुरुकुत्साय रन्धी ॥२॥

—११७४

२६ त्व ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्जिन् पुरुकुत्साय ददं ।

वहिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गहो राजन् वरिव पूरवे क ॥७॥

—११६३

२७ याभि शुचन्ति धनसा सुपसद तप्त धर्ममोम्यावन्तमत्रये ।

याभि पृश्निगुं पुरुकुत्समावत ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गत ॥७॥

—१११२

३१. असवस्यु पौरकुत्स —

२८ त्व घृष्णो घृपता वीतहव्य प्रावो विश्वाभिरुत्तिभि सुदास ।

प्र पौरकुत्सि असवस्युमाव क्षेत्रसाता वृप्रहृत्येपु पूर ॥३॥

—७११९

२९. सृजय-मुद्र—

२३. सभी जनोके हितार्थं महान् धनको तपानेवाले भरद्वाजोंका सम्मान सृजय-मुद्रने किया ॥२५॥

३०. पुरुकुत्स—

२४ हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा द्वारा हम नवीन धन चाहते हैं। (अपने) यज्ञों द्वारा पुरु लोग ये स्तुतिया करते हैं। जब पुरुकुत्सकी महायत्ना करते तुमने दामोद्री मात शरद-कालीन शरणस्थानीय गदियोंको नष्ट किया ॥१०॥

—भरद्वाज, ६।२०

२५ हे दनु इन्द्र, जब तुमने वक्राग्री दानव प्रजाओंको शरणस्थानीय मात शरदकालीन पुरियोंको नष्ट किया। हे निदोष, तुमने बाढ़के जलको चलाया। तुमने तरण पुरुकुत्सके लिये शत्रु को मारा ॥२॥

—अग्न्य, १।१७४

२६ हे वज्रधारी इन्द्र, तुमने लड़ते हुये पुरुकुत्सके लिये जो मात पुरियोंको ध्वस्त किया। हे राजन्, मुदानके लिये जो कुमारी तरुह तुमने व्यसंके पापी (शत्रु) को मारा, पुत्रको धन और मंगल दिया ॥७॥

—तोसा गोम-मुद्र, १।६३

२७ जिन रक्षाओं द्वारा तुमने शुचन्तिको धन और सुन्दर नरन दिया, अत्रिके लिये रक्षावाला तपने धामको बनाया। जिन (रक्षाओं) ने पृथिवी, पुरुकुत्स की तुमने रक्षा की। हे अग्निद्वय, उन रक्षाओंके माय आओ ॥७॥

—गुल आगिन्ग, १।११२

३१. पसदन्वु पुरुकुत्स-मुद्र—

२८ हे (इन्द्र) शत्रुओं का दमन करने जानी मार्गे रक्षण शान धीन-हृष्य मुदास को रक्षा करो। शत्रु पाने के लिये वृक्ष-पुत्रने पुरियों पुरुकुत्स-भूत पसदन्वुरी रक्षा करो ॥३॥

—अग्निद्व, १।११९

२९ अस्माकमग्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋपयो दौर्गहे वध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्र न वृत्रतुरमर्घवेव ॥८॥

३० . पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्व्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभि ।
अथा राजान त्रसदस्युमस्या वृत्रहण ददथुरर्घवेव ॥९॥

—४।४२

३१ उप त्वे मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योहिरणिनो रराणा
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य ऋतुभिर्नु सरुचे ॥८॥

—५।३३

३२ उतो हि वा दात्रा सन्ति पूर्वा या पुरुम्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासा ददथुरुर्वरासा घन दस्युम्यो अभिभूतिमुग्र ॥१॥

—४।३८

३३ अदान्मे पौरुकुत्स्य पचाशत त्रसदस्युर्ववूना ।
महिष्ठो अर्यं सत्पति ॥३६॥

उत मे प्रयियोर्वयियो सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।

तिसृणा सप्ततीना श्याव. प्रणेता भुवद्वसुर्दियाना पति ॥३७॥

—८।१९

३२ . कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र—

३४ तमागन्म सोभरय सहस्रमुष्क स्वभिष्टिमवसे ।
सम्राज त्रासदस्यव ॥३२॥

—८।१९

३५ एतानि भद्रा कलय त्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवा न स अस्त्वय च सोमो हृदि य विभर्मि ॥९॥

—१०।३२

२९. यहा हमारे वे सात पितर ऋषि थे, दुर्गाह-पुत्रके वदो होने के समय उन्होंने इन्द्र जैसे अर्धदेव शत्रुनाशक श्रमदस्युको पाया ॥८॥

३०. हे इन्द्र-वरण, नमस्कारो के साथ पुरुकुत्सानीने तुम्हें हवि प्रदान किया। फिर तुमने उमे शत्रु-नाशक राजा श्रमदस्युको प्रदान किया ॥९॥
—वामदेव, ४।४२

३१. सुवर्णवाले नूरि पुरुकुत्स-पुत्र श्रमदस्युके वे दस श्वेत रमणीय घोडे मुझे वहन करते हैं। उम गिरिक्षित-पुत्रके यज्ञोत्ते हम शीघ्र आये ॥८॥

—श्वर्णं प्रजापति-पुत्र, ५।३३

३२. (हे धी-भृयिबी) तुम्हारे पास से पहले घन पाकर दाता श्रमदस्युने पुरुओको प्रदान किया। तुमने उमे उर्वर क्षेत्र दिया, दस्युओको पराजित करनेके लिये कठोर अस्र दिया ॥१॥

—वामदेव ४।३८

३३. अतिमहान् स्वामी मत्पति पुरुकुत्स-पुत्र श्रमदस्युने मुझे पचास वधुयें (दागिया) दी ॥३६॥

और प्रणेता दानपति श्यावने सुवास्तुके तट पर शीघ्र जानेवाला मुझे मजबूत घोडा, दो मो दम ब्रैल दिये ॥३७॥

—मोमरि वाण, ८।१९

३२. कुरुश्रवण श्रमदस्यु-पुत्र—

३४. रक्षाके लिये हन मोमरि मन्नाट् श्रमदस्युके उन बहू तेजन्वीं मुस्र (अग्नि) के पान आये ॥३२॥

—मोमरि वाण, ८।१९

३५. हे यत्न, हम ये मंगल करने हैं, हे धनोत्ते दाता कुरुश्रवण तुम्हें शपथा (इन्द्र) पत्र दे और मोम भी, जिने कि मैं हृदयमें धारण करता हूँ ॥९॥

—श्वर्ण ऐलुप, १०।३२

फुरुश्रवणमावृणि राजान त्रासदस्यव । महिष्ठ वाघतामृषि ॥४॥

—१०।३३

३३. अम्यावर्तो चायमान—

द्वया अग्ने रथिनो विशति गा वधूमतो मधवा मद्य सम्राट् ।

अम्यावर्तो चायमानो ददाति दूणाशेय दक्षिणा पार्यवानाम् ॥८॥

—६।२७

३४. (चित्र) सरस्वती-तट—देखो १६।४३ ।

३५. फशु चैद्य

ता मे अश्विना सनीना विद्यात नवाना ।

यथा चिच्चैद्य. फशु शतमुष्ट्राणा ददत्सहस्रा दश गोना ॥३॥

यो मे हिरण्यसन्दृशो दश राज्ञो अमहत ।

अघस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मन्मा अभितो जना ॥३८॥

माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदय. ।

अन्यो नेत् सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जन ॥३९॥

—८।५

§२ दिवोदास के कार्य

१. दिवोदास—

३६ प्रियास इत्ते मधवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखाय ।

नि तुर्वश नि याद्व शिशीह्यतिथिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥८॥

—७।१९

३७ पुर सद्य इत्या धिये दिवोदासाय शम्बर । अघ त्य तुर्वश यदु ॥२॥

—९।६१

मैं (कवच) ऋषि दानाओं में महान्तम प्रमदस्यु-पुत्र राजा कुश्रवण को पसंद करता हूँ ॥४॥

—कवच, १०।३३

३३. अन्यावर्ती चायमान—

३५ हे अग्नि, धनवान् पार्यवोके सम्राट् चायमान-पुत्र अन्यावर्तीने मुझे वयुओं (दानियों) सहित दो रथके घोड़े और तीन गायें प्रदान की ॥८॥

—भरद्वाज, ६।२७

३४. चित्र (सरस्वती तट)—

देवो १६।४३

दिवोदाग-मुदानके समय आयोके भिन्न-भिन्न जनोमें अनेक प्रतापी राजा थे, जिनका उल्लेख ऋषियों ने अपनी ऋचाओमें किया है—एक अश्व्य (८।४६।३३) जिनके लिये सुवर्ण आभूषित अच्छी सुन्दरी लाई गई थी।

३५ कशु चंद्र—चेरी जन सप्तमिन्धु के गुमनाम ने जनों में एक था, जिनका राजा कशु अपने दानके लिये बहुत मशहूर था। श्रद्धातिथि काष्णने इनकी प्रशंसा में किया है ८।३।३७।३९—

३५ हे अश्विनो, मुझे मिले नये दानोको जानो। पशु चंद्रने सो ऋट और दन हजार गायें दी ॥३७॥

जिनने मुझे सुवर्ण समान दन राजाओं को प्रदान किया। तालों लिये आदमी जन घेरार चंद्र (कशुके) पैरोंमें गड़े हुये ॥३८॥

जिन रान्ते ने यह चेदि लोग जाने हैं, दूनरा नहीं जाना। उनमे अधिक देने वाला राजा नूरि नहीं है ॥३९॥

१२. दिवोदासके कार्य

१. दिवोदाग—

३६ हे मधुपन्, तुम्हारी गरुण में हम दिनरा नर पात्रमें नोजंगे हैं। अतिथिग्य (शिवोरान्) की भन्दार रान्ते तुपंग और पादरों परा-जित रंगे ॥८॥

- ३८ त्व करंजमुत पर्णय वधीस्तेजिष्ठयातियिग्वस्य वर्तनी ।
त्व शता वंगूदस्याभिनत् पुरो नानुद परिपूता ऋजिश्विना ॥८॥
—११५
- ३९ अभीदमेकमेको अस्मि निष्पाळभी द्वा किमु त्रय करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्रा ॥७
अह गुगुम्यो अतियिग्वमिष्करमिष न वृत्रतुर विक्षु धारय ।
यत् पर्णयघ्न उत वा करंजहे प्राह महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥
—१०१४
४०. यदयात दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना ह्यन्ता ।
रेवदुवाह स चनो रथो वा वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता ॥१८॥
—११११
- ४१ याभिर्महामतियग्व कशोजुव दिवोदासं शम्बरहत्य आवत ।
याभि पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावत ताभिरूपु ऋतिभिरश्विना गत ॥१४॥
—११११
- ४२ युव भुज्यु भुरमाण विभिर्गत स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृम्य आ ।
यासिष्ट वर्तिर्वृषणा विजेन्य दिवोदासाय महि चेति वामव ॥४॥
—११११

३७ (सौमने) इस प्रकार तुरन्त ही शबरकी पुरियोंको और उस तुवंश यदुको दिवोदास लिये नष्ट किया ॥२॥

—अमहीयु आगिरस, १।६१

३८. हे इन्द्र, तुमने फरज और पर्णयको मारा, अतियिग्व दिवोदासकी मलाई के लिये अत्यन्त तीक्ष्ण हवियारोमें मारा। तुमने निरावाय ऋजिद्वा द्वारा घेरी गई वगूदको सौ पुरियोंको ध्वस्त किया ॥८॥ (८।४६)

—सव्य आगिरस १।५३

३९. बाये, एक (शत्रु) को मैं अकेला पराजित करनेवाला हू। दो या तीन मेरी क्या कर सकते हैं। रालिहानमें धान्यकी तरह मैं खूब मासगा। इन्द्रहीन शत्रु मेरी क्या निन्दा करेंगे ॥७॥

मैंने गुगुओंके विरुद्ध अतियिग्व (दिवोदास) को दृढ़ किया, और प्रजाओंमें अन्नकी तरह शत्रुनाशक हो धारण किया। पर्णय-हत्या अथवा फरज-हत्या या महान् वृष-हत्यामें मैं बहुत प्रसिद्ध हुआ ॥८॥

—इन्द्र, १०।४८

४०. हे अश्विद्वय, पुकारे जाने पर जब तुम दिवोदानके पान, भरद्वाज के पान आये। तो उन नमय तुम्हारे उपयोगका ग्य धन लेकर आया था, (उममें) वृषभ और विशुमार जुने हुये थे ॥१८॥

—कधीयान् दीपंतमा-मुद्र, १।११६

४१. हे अश्विद्वय, तुमने जिन रक्षाओंने शबरयुद्धमें कदाधारी अतियिग्व दिवोदासकी रक्षा की। जिनमें पुरोंके तोड़ने के समय तुमने अन्नस्यु की रक्षा की, उन (रक्षाओं) के नाय आओ ॥१४॥

—गुल आगिरस, १।११२

४२. हे अश्विद्वय, तुम पक्षियोंके नाय जन्ममें उड़ने भुङ्गुषो अपनी पुत्रियोंके निकाल पितारोंके पान ले गये। पराक्रमियों, तुम दूर गये। शिवोशानरो तुम्हारी रक्षाता महत्त्व है। ४॥

—कधीयान् दीपंतमा-मुद्र, १।११९

२. शम्बर-हत्या—

४३. त्व कवि चोदयोर्जसातो त्व कुत्साय शूष्णं दाशुपे वर्क ।
त्व शिरो अमर्मण पराहृतिथिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥३॥

—६।२६

४४. भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुपे नृतो,
वज्रेण दाशुपे नृतो ।

अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।

महो धनानि दयमान ओजसा, विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

—१।१३०

४५. त्वमिभा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।
भरद्वाजाय दाशुपे ॥५॥

—६।१६

४६ आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतन ।
दिवोदासस्य सत्पति ॥१९॥

—६।१६

४७ यस्य त्यच्छम्बर मदे दिवोदासाय रन्वय ।
अय स सोम इन्द्र ते सुत पिव ॥१॥

—६।४३

४८ अह पुरो मन्दसाना व्यैर नव साकन्नवती. शम्बरस्य ।
घाततम वेद्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४।२६

§३. हथियार

१. इषु, २ निषंग—

४९ सक्रम्दनेनानिमिपेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन वृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्व युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

२. शबर-युद्ध—

४३. (हे इन्द्र) तुमने प्रकाश-प्राप्तिके लिये कविको प्रेरित किया, भक्त कुलके लिये तुमने शुष्णको मारा। तुमने अतिथिग्वकी भलाई करनेकी इच्छासे ममंहीन (शबर) के सिरको काटा ॥३॥

—भरद्वाज ६।२६

४४. हे नृत्य करनेवाले इन्द्र, तुमने सप्रामर्ष भक्त पुरु दिवोदासके लिये वज्रसे निम्नानवे पुरिया नष्ट की। अतिथिग्वके लिये तुम उगते शबरको गिरिमे नीचे पटक्या। बड़ी निधिको अपने पराक्रमसे बाटते, अपने पराक्रमसे सारी निधिको बाटते ॥७॥ (८।६२)

—परुच्छेप दिवोदास-युद्ध, १।१३०

४५. हे अग्नि, तुमने गोम सवन करनेवाले पुरु दिवोदासके लिये इन्द्र श्रेष्ठ (धनो) को दिया, और भक्त भरद्वाज के लिये (भो) ॥५॥

—भरद्वाज, ६।१६

४६. बहुत चेतनावाला शत्रुनाशक भरतोवाला दिवोदासका सत्पति अग्नि आया ॥१९॥

—भरद्वाज, ६।१६

४७. जिनके मदमें मस्त हो हे इन्द्र, तुमने दिवोदासके लिये शबरको मारा। सो यह सोम तुम्हारे लिये छना हुआ है, पियो ॥१॥

—भरद्वाज, ६।४३

४८. मैंने मस्त हो शन्वरही निम्नानवे पुरियोंको ध्वस्त किया, सबीको प्रवेश करनेके लिये (रक्षा), जब (युद्धमें) दिवोदास अतिथिग्व की मैंने रक्षा की थी ॥३॥

—यामदेव, ४।२६

५३. हथियार

१. बाण, २. तरुंडा—

४९. कोलाहल करनेवाले बराबर देखने, जब करनेवाले, जेठनेवाले, चित्त न होनेवाले, उपदेशवाले, बाणहून, पराक्रमी इन्द्रके साथ ही युद्धमें हे नरो, (शत्रुको) पगाजित प्रिताटित, करो ॥३॥

स इषुहस्तैः स निषगिभिर्वशी सस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
ससृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ष्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

—१०।१०३

३. धनुष, ४. ज्या, ५. वर्म—

५० जीमूतस्येव भवति प्रतीक यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्व स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥
धन्वना गा धन्वनाजि जयेम धन्वना तीव्रा समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकाम कृणोति धन्वना सर्वा प्रदिशो जयेम ॥२॥
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रिय सखाय परिषस्वजाना ।
योषेव शिः क्ते वितताधि धन्वन् ज्या इय समने पारयन्ती ॥३॥
ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्र विभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यता सविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥

—६।७५

५१. प्रोष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहास्माक बोधि चोदिता ।
नभन्तामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

—१०।१३३

६. कुलिश—

५२ वैश्वानराय धिपणामृतावृधे घृत न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतार मनुपश्च वाघतो धिया रथ न कुलिशः समृष्वति ॥१॥

—३।२

वह वाण-हस्तो, तुणोर वालो, के भाव, गुणसे युक्त युद्धमें भिडन्त करनेवाले, भीट जीतनेवाले मोम-पायी, बाहुबल-युक्त उग्र धनुर्धर उन इन्द्रने फँके वाणोंसे दायुओंको गिराया ॥३॥

—अप्रतिरय इन्द्र-युग १०।१०३

३. धनुष, ४. प्रत्यचा, ५. कवच—

५०. कवचधारी (वीर) जब युद्धके बीच जाता है, तो मानो मेषका प्रतीक होता है। तुम धावरहित शरीर वाले होओ, कवचकी वह महिमा तुम्हारी रक्षा करे ॥११॥

हम धनुषसे गायाँको जीतें, धनुषमे युद्धको जीतें, धनुषमे तीव्र सेनाओंको जीतें। धनुष दायुमें भगदड़ मचाता है, धनुषमे हम सारी दिशाओंको जीतें ॥२॥

कानतक सिन्धी युद्धमें पार कराती धनुषके ऊपर फँगी यह प्रत्यचा प्रिय रागा को आलिंगन करती स्त्री की तरह बोलती है ॥३॥

वे (दोनों धनुषके कोर) प्रेमीमें स्त्रीकी तरह लड़ाईके उपस्थित होनेपर पुत्रमें माताकी तरह आचरण करती गोदमें लेती है। यह कोर मिलकर हिलते दायुओं अमित्रोंको बेधें ॥४॥

—पायु भरद्वाज-युग, ६।७५

५१. जो रथके समान रागेगा उग्र इन्द्रके लिये बलको पूजो। युद्धमें समीप आ जानेपर लोषकर्ता प्रेरक दायुनाशक (इन्द्र) हमे जतलायें। दूगरोकी प्रत्यचायें धनुषोंमें टूट जायें ॥१॥

—गुदान पित्रयन-युग, १०।१२३

६. कुल्हाड़ा—

५२. हम मृतवापक वैश्वानर अग्निके लिये घृतकी तरह पवित्र मृत्ति करते हैं। जैसे रथको कुल्हाड़ा (बगुला) ठोक गइया है, वैसे ही दो प्राणने रोग (अग्नि) की मनुष्योंके मृत्तिके गदों है ॥१॥

—विश्वानि, ३।२

७. परशु—

५३. परशु चिद्वितपति शिम्बल चिद्विवृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येपन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥

—३।५३

देखो १८।१५ (५) भी।

८. बाशी, ९. ऋष्टि (छुरा) —

- ५४ वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिण सुधन्वान इषुमन्तो निषगिण ।
स्वस्वा स्य सुरथा पृश्निमातर स्वायुधा मरुतो याथमाशुभ ॥२॥

—५।५७

- ५५ वाशीमेको विभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुवि ॥३॥

—८।२९

१०. वज्र—

५६. वज्रमेको विभर्ति हस्त आहित तेन वृशाणि जिघ्नते ॥४॥

—८।२९

११. अत्क—

- ५७ त्व त इन्द्रोभया अमित्रान्वासा वृशाण्यार्या च शूर ।
वर्धीवनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दपि नृणां नृत ॥३॥

—६।३१

७. फरसा—

५३ हे इन्द्र, फरसा जैसे तपाता, सेमल जैसे काटता, (जैसे) पकाई जाती हडिया खोलती फेन छोडती है ॥२२॥

—विश्वामित्र, ३।५३

८. बसूला, ९. छुरा—

५४ बसूलेवाले, छुरेवाले, मनीषी सुधनुष-युक्त वाणवान्, तूणीरधारी, सुन्दर घोडेवाले, सुन्दर रथवाले, सुन्दर आयुषवाले हो पृथ्वि-माता के पुत्र हे मस्ती, हमारे विजयके लिये आओ ॥२॥

—श्यावाश्व, ५।५७

५५ देवोंके बीच निरचल स्थानमें स्थित एक पुरुष हाथमें आयसी (ताबेके) बसूलेको धारण करता है ॥३॥

—यदुष्य मरीचि-पुत्र, ८।२९

१०. वज्र—

५६ एक हाथमें वज्र धारे, उससे शत्रुओंको मारता है ॥४॥

—यदुष्य मरीचि-पुत्र, ८।२९

११. अरु—

५७ हे शूर इन्द्र, तूम शम और आयं डा दोनों अग्निदो (शत्रुओं) को, हे नेताओंमें श्रेष्ठतम नेता, तीरग धारवाले जत्कों (शुन्हाओं) डगग जैसे यन्त्रों, वीणे युद्धमें मारने हो ॥३॥

—शुक्लो ६।३३

१२. नाव—

१८. अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।

यदश्विना ऊह्युर्भुज्युमस्त शतारित्रा नावमातस्थिवास ॥५॥

—१११६

१३ अष्ट्रा (आरा)—

देखो १५।५२

१४. स्वधिति (छुरा), १५. क्षणोत्र (ज्ञान)

देखो १८।१२ (७) ।

अध्याय १०

सुदास

§१ सुदास वीतहव्य

१. वसिष्ठ पुरोहित—

१ दण्डा इवेद्गो भजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकास ।

अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित्तूत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥६॥

—७।३३

२ इद्रेणैते तूत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवत नीचीः ।

दुर्मित्रास प्रकलविन् विमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥१५॥

—७।३३

१२. नाव^१—

५८. हे अश्विद्वय, तुमने निरालम्ब, ठहरनेके स्थानसे रहित ममुद्रमें वीरता दिखलाई, जब कि भुज्युको सौ पतवारोवाली नावमें बैठा कर घर ले गये ॥५॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

अध्याय १०

सुदास

§१ सुदास वीतदृव्य

१. यमिष्ठ पुरोहित—

१. दण्डने जैसे गोवें, वैसे ही भरत जनहीन गिगुओंकी तरह छिन्न-भिन्न थे। यमिष्ठ इनका अगुआ (पुरोहित) हुआ, तो तूतुओंकी प्रजायें बढ़ने लगी ॥६॥ (५।१२)

—यमिष्ठ, ७।३३

२. इन्द्र द्वारा प्रताडित ये तूतु छोटे हुए जलकी तरह नीचेकी ओर भागे। दुष्ट मित्रोवादे विकृ-वृद्धि उन्होंने बाधित हो नारे भोजन सुदासके लिये फेंक दिये ॥१५॥

—यमिष्ठ, ७।१८

^१ घरके उपयोगके हृषिपारोका जल्लेस निम्न प्रकार हैं—

आरा—६।५३।५

धुर (अस्तुरा)—८।४।१६, १०।२९।८

परशु, कुठार, स्वधिति—१।६६२।९, १८, २०; १०।२८।८ (पशु)

पाशी (बभ्रूता)—२८।२९।३

मूर्त्तौ (मूर्त्त)—१।१९१।७, २।३२।४

पर मृष्मय (मिष्टीरे) होने से ७।८९।१

३ शिवत्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धिय जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१॥

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमतिपान्तमुग्र ।
पाशाद्युस्तस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रो वृणीता वसिष्ठान् ॥२॥
एवेभु क सिन्धुमेभिस्ततारेवेभु क भेदमेभिर्जघान ।
एवेभु क दाशराज्ञे सुवास प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥

—७।३३

२. सुवास—

४ द्वे नप्तुर्वेषवतः शते गोर्वा रथा वधूमन्ता सुवासः ।
अहंभग्ने पैजवनस्य दान होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥२२॥

५ चत्वारो मा पैजवनस्य दाना स्मद्दिष्टय कृशनिनो निरेके ।
अज्रासो मा पृथिविष्ठा सुवासस्तोक तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥२३॥

—७।१८

६ इम नरो मरुत' सश्चतानु दिवोदासं न पितर सुवासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केत दूणाश क्षत्रमजर दुवोयु ॥२५॥

—७।१८

७ त्व घृष्णो घृपता वीतहृव्य प्रावो विश्वाभिरुतिभि सुवास ।
प्र प्रौरुकुत्सि अस्तदस्युमाव क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरं ॥३॥

—७।१९

३. गोरे दाहिनी ओर जूड़ा रखनेवाले सुबुद्धि वे (वसिष्ठ) मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। यज्ञसे उठने मैं आदमियोंको कहता हूँ "वसिष्ठ-सतान मुझमें दूर न जायें" ॥१॥ (३।६)

वयत-पुत्र पाशद्युम्नके छाने सोमसे इन्द्रने वसिष्ठके (सोमको) पमन्द किया। छाने हुए सोमके साथ पात्रमें न्यित सोमको बहुत पीनेमें उग्र इन्द्रको वसिष्ठ वैशन्तमे लाये ॥२॥

ऐसे ही इनके द्वारा (वह) सिन्धुको पार हुआ, ऐसे ही इनके द्वारा (उसने) भेदको मारा। ऐसे ही हे वसिष्ठो, तुम्हारे ब्रह्म (ऋचा) द्वारा इन्द्रने दाशराजमें सुदासकी रक्षा की ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।३३

२. सुदास पंजवन—

४. हे अग्नि, अहंत्, देववान्के नाती पंजवन सुदामकी दो नौ गायें और वधुओं-महित दो रयोंको दानके तौरपर पा हांताकी तरह गान करते मैं घर जाता हूँ ॥२२॥

५. पंजवनके दिये मोनेके अलकारोवाले हमारे निश्चित गरलगायी, मोती-मज्जित पृथिवीपर न्यित चार घोड़े मूत्रे और पुत्र-भोगोंको यज्ञपूर्वकं घहन करते हैं। ॥२३॥

—वसिष्ठ, ७।१८

६. हे नेता मस्तो, पिता दियोदासकी तरह सुदामकी महामना करो, पंजवनकी इच्छाकी पूर्ति करो, उमके म्यिन, अजर राजपकी रक्षा करो ॥२५॥

—वसिष्ठ, ७।१८

७. हे पर्यंक इन्द्र, तुमने शत्रुओंका घण्टा करने वीरताय सुदामकी मार्ग रक्षाओंमें रक्षा की। धृ-युद्धमें शत्रु न्यभते लिए पुत्रयज्ञी पुत्र-पुत्र-पुत्र प्रसदस्युकी रक्षा की ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।१९

८. सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाज ॥६॥
—७११९
९. हन्ता वृत्रमिन्द्र. शूशुवान प्रावीन्तु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोक दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२॥
—७१२०
१०. शत ते शिप्रिभूतय सुदासे सहस्र शसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्न च घेहि ॥३॥
—७१२५
११. नकि सुदासो रथ पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स गोमति वज्रे ॥१०॥
—७१३२
१२. युवा नरा पश्यमानास आप्य प्राचा गव्यन्त पृथुपर्शवो ययु ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावत ॥११॥
—७३१८

§२. दाशुराज्ञ युद्ध

१. शत्रु—
१३. युवा हवन्त उभयास आजिष्विन्द्र च वस्वो वरुण च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निवाधित प्र सुदासमावत तृत्सुभिः सह ॥६॥
दस राजानः समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु ।
नत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहृतिषु ॥७॥

८. हे इन्द्र, रातहव्य (हविदाता) मुदासके लिये तुम्हारे भोजन (सम्पत्ति) सदासे है। हे पराक्रमी, तुम्हारे दोनो मजबूत घोड़े रथमें जोड़ता हू। तुम बटे शक्तिशाली हो, तुम्हारे पास हमारे पद (ग्रह्य) शक्ति के लिये जायें ॥६॥

—वसिष्ठ, ७।१९

९. मुपुष्ट दायुको भारता वह वीर इन्द्र स्तोताकी शीघ्र रक्षा करता है। मुदासके लिये उगने लोकको बनाया, भक्तको उत्तने बार-बार धन दिया ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।२०

१०. हे उष्णीषयारी इन्द्र, मुदासके लिये तुम्हारे सहस्रो उपकार और होयें, घातक मर्त्यको नष्ट करो। हमें तेज और रथ प्रदान करो ॥३॥

—वसिष्ठ ७।२५

११. मुदासके रथको कोई नहीं दूर फेंक सका, न रोक सका, जिनका रथक इन्द्र, जिसके (रथक) मरु है, वह गौवोवाले गोष्ठमें जाता है ॥१०॥

—वसिष्ठ, ७।३०

१२. हे इन्द्र-वरुण नेताओ, तुम्हें और तुम्हारी मित्रनाको देग्ने हुए गौ लूटनेवाले पशु और पर्शु पूर्वकी ओर गये। तुमने (उसके) आवें और दाम दायुओको भाग, और मुदासको (अपनी) रक्षासे बचाया ॥१॥

—वसिष्ठ, ७।८३

१२. दशरुज युद्ध

१. शत्रु—

१३. दोनो नश्रामोमें मनके इच्छा करते दोनो (पशु) ने तुम इन्द्र और वरुणको महापताने लिये बुलाया। जहा दश राजाओने तनुओने नाम सारद्वन्द मुदासकी तुमने रक्षा की ॥६॥

हे इन्द्र-वरुण, यज्ञ-मित्रनुय दश राजा युद्धमें मुदासके नश्रु करे। यज्ञमें बैठे हुए इन नश्रुओ की स्मृति नश्रु दृष्टि, देव योग इन्ने देव-मित्रनुय नामें उपस्थित हुए ॥७॥

—वसिष्ठ, ७।८३

नि गव्यवोऽनवो ब्रुह्यव च षष्टि शता सुपुपु षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड्दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

—७।१८

१८ शश्वन्तो हि शत्रवो रारघुष्टे भेदस्य चिच्छद्धंतो विन्द रन्वि ।
मर्ता एनः स्तुवतो य कृणोति तिग्म तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र ॥१८॥

—७।१८

१९ यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णे शीर्ष्णे विवभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्र न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीकै ॥२४॥

इम नरो मरुत सश्चतानु दिवोदास न पितर सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केत दूणाश क्षत्रमजर दुवोयु ॥२५॥

—७।१८

२. धुद्ध—

२० यवा नरो पश्यमानास आप्य प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययु ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावत ॥१॥

यत्रा नर समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किंचन प्रिय ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दुशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचत ॥२॥

सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्युर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागिवसा ह्वनश्रुता गत ॥३॥

गौ लूट के इच्छुक साठ सौ, छ हजार, और छियानठ अनु और द्रुहृषु (वीर) (मरकर) मो गये। (भक्तोंके लिये) यह नव इन्द्रके परायमके काम हैं ॥१४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१८ हे इन्द्र, तुम्हारे प्राय सभी शत्रु पराजित होवें, सूनखार भेदको भी पराजित किया। स्तुतिकर्ता मनुष्योंकी जो हानि करता है, उसके ऊपर तीक्ष्ण वज्र भारो ॥१८॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१९ जिन (सुदास) की कीर्ति छौ और पृथिवीके बीचमें फैली मौजूद है, जो प्रति गिन्पर बाट कर धन देता है, इन्द्रकी तरह नात नदिया जिसकी प्रशंसा करती है। युद्धमें युधामधि का जिम्मे विनाश किया था ॥२४॥

हे नेता मरतो, पिता दिवोदासकी तरह सुदासकी नहायता करो। पंजवन (सुदान) के घरकी रक्षा करो, उसके क्षत्र (राज्य) को दुर्घपं और अजर बनाओ ॥२५॥

—वसिष्ठ, ७।१८

२. युद्ध—

२० हे इन्द्र-वरुण नेताओ, तुम्हें और तुम्हारी मित्रताको देगने हुए गौ लूटने वाले पृथु और पशु पूर्व की ओर गये। तुमने आर्य और क्षत्र पाशुजोंको मारा, और सुदानको (अपनी) रक्षाये बचाया ॥११॥
(यही १२)

जिन (युद्ध) में प्यजा पहंगते बादनी लटते हैं, जिसमें कृष् नी प्रिय नहीं होता। जहा सुग दिग्नेवान्त्रो (जीजें) नय देती है, वहा हे इन्द्र और वरुण, तुम हमारी बात करना ॥२॥

भूमिकी सीमायें नय प्यन्ना एती दिग्गां ही, हे इन्द्र और वरुण, शोलाहल ही तक फटुचा। हमारे जनके शत्रु पात आ गये। हे पुकार सुाने-वाले इन्द्र-वरुण, रक्षाके साथ हमारे पास आओ ॥३॥

इन्द्रावरुणा यधनाभिरप्रति भेवं यन्वन्ता प्र सुवासमायतं ।
महाप्येषा शृणुत हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहित ॥४॥

इन्द्रावरुणाभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि यस्व उभयस्य राजयो य स्मा नोवत पार्ये दिवि ॥५॥

युवा ह्यन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च यस्यो वरुण च सातये ।
यग राजभिर्वंशभिर्निबाधितं प्र सुवासमायत तृत्सुभिः सह ॥६॥

वश राजानं समिता अयज्ययः सुवासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभयन्देवहृतिषु ॥७॥

वाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुवास इन्द्रावरुणावशिषात ।
द्वित्यन्तो यग नमसा कर्षविनो धिया धीवन्तो असापन्त तृत्सयः ॥८॥

यूत्राण्यन्यं समिथेषु जिघ्रते घ्नतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वा यूपणा सुवृन्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्मं यच्छतं ॥९॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा पुमन् यच्छन्तु गहि शर्मं सप्रयः ।
अयध ज्योतिरदितेऽर्घृतावृधो देवस्य श्लोक सवितुर्मंनामहे ॥१०॥

—७।८३

२१. आयदिन्द्र यमुना तृत्सयश्च प्रात्र भेवं सर्वताता मुपायत् ।
गजासश्च शिघ्रवो यथावश्च बलिं शीर्षाणि जभुरश्व्यानि ॥११॥

—७।१८

हे इन्द्र-वरुण, तुमने आयुधों द्वारा अप्रतिम भेदको मारते हुए सुवासकी रक्षा की। इनकी स्तुतियोंको सुनो, तृत्सुओंकी पुरोहिताई युद्धमें सत्य सिद्ध हो ॥४॥

हे इन्द्र-वरुण, चारों ओरसे शत्रुके हथियार मुझे सतप्त कर रहे हैं। वह वाधा दे रहे हैं। तुम दोनों दिव्य और पार्विव उभय प्रकारके धनोंके राजा हो, इसलिए धीके पार हमारी रक्षा करो ॥५॥

दोनों मग्नमोमें धनकी इच्छा करते दोनों (पक्षों) ने तुम इन्द्र और वरुणको सहायताके लिये बुलाया जहा दश राजाओंसे तृत्सुओंके साथ तुमने सकटग्रस्त सुवासकी रक्षा की ॥१६॥ (१३।६)

हे इन्द्र वरुण, यज्ञ-विमुख दस राजा युद्धमें सुवाससे नहीं लड़ सके। यज्ञमें बैठे हुए इन नरोंकी स्तुति सत्य हुई, देव लोग इनके देव-निमन्त्रणमें उपस्थित हुए ॥७॥ (१३।७)

दाशराज (युद्ध) में घिरे हुए सुवासकी इन्द्र व औरणने सहायता की। जिस (दाशराज युद्ध) में श्वेत (गौर) जूटाधारी स्तुति पाठी तृत्सु लोग नमस्कार और स्तोत्रसे तुम्हारी पूजा करते थे ॥८॥ (१३।१५)

एक (इन्द्र) युद्धमें शत्रुओंको मारता है, दूसरा (वरुण) सदा प्रतोंकी रक्षा करता है हम कामनावर्षक तुम दोनों पराक्रमियोंको सुन्दर स्तुतियोंसे पुकारते हैं। हे इन्द्र-वरुण, हमें गरुण प्रदान करो ॥९॥ इन्द्र, वरुण, मित्र, अयंमा एमें यदा देवें, विस्तृत महान् पर देवें। अदितिकी ऋतवर्षक ज्योति छहानिकर हो, हम उषिता देवके दलोकको गाते हैं ॥१०॥

—वसिष्ठ, ७।८३

१. यमुनाने और तृत्सुओंने इन्द्रकी सहायता की। युद्धमें यदा भेदको बिलुप्त सूट लिया। अज, मित्र और यज्ञ पाँदोंके निरकी बलि लेबर आवे ॥११॥

—वसिष्ठ, ७।१८

२२. प्रप्रायमग्निर्भरतस्य ऋण्वे वियत्सूर्यो न रोचते वृहद्भा ।
 - - अग्नि य पूरु पृतनासु तस्यौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥

—७।८

३. सुदेवी रानी—

२३. याभि पत्नीविमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षत ।
 याभिः सुवास ऊहथु सुदेव्य ताभिरु पु ऋतिभिरश्विना गत ॥१९॥

—१।११२

१३. अश्वमेध

१. विश्वामित्र पुरोहित—

२४. य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव ।
 विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारतं जन ॥१२॥

—३।५३

२५. महा ऋषिर्देवजा देवजूतो स्तम्नात् सिन्धुमणवं नृचक्षा ।
 विश्वामित्रो यदवहत् सुवासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥

—३।५३

२६. अश्वो न क्रन्दन् जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे ।
 स नो अग्नि सुवीर्यं स्वश्व्य दधातु रत्नममृतेषु जागृवि ॥३॥

—३।२६

२२. यह भरतका अग्नि अति प्रमिद्ध है, जो सूर्यकी तरह बड़े प्रकाशमें चमकता है, जिनमें युद्धमें पुरुओंको हराया, दीप्तिमान् वह दिव्य अतिथि प्रज्वलित हुआ ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।८

३. रानी सुदेवी—

२३ हे अश्विद्वय, जिन सहायताओं द्वारा तुम विमदके लिये पत्निया (विवाहार्थ) लाये, जिनके द्वारा लाल गावें दी, जिनके द्वारा सुवासके लिये तुम सुदेवीको लाये, उन रक्षाओंके माय आओ ॥१९॥

—कुल आगिरम, १।११२

५३. अश्वमेध

१. विश्वामित्र पुरोहित—

२४. यह जो दोनों घो-भूचिवी हैं, उनके (रक्षक) इन्द्रकी मने स्तुति की। विश्वामित्रका यह ग्रह्य (ऋचा) भारतजनकी रक्षा करना है ॥१२॥

—विश्वामित्र, ३।५३

२५ देवज, देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेशक महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धुनदको स्तनित किया, जब मुदानवों (नदी) पार कराया, तो इन्द्रने कुशिकोंके द्वारा (सुवासके माय) प्रिय बर्तान किया ॥९॥ (५।२६।९)

—विश्वामित्र, ३।५३

२६ घोड़ोंकी तरह हिनहिनाता यश्वानर (अग्नि) माताओं कुशिकों द्वारा युग-युगमें (एक समय) प्रज्वलित किया जाता रहा। वह बन्धुनोंमें जागृत अग्नि हमें मुन्दर अरव-युद्ध, मुन्दर यौधेयुक्त रत्न दे ॥३॥५।२६।६

—विश्वामित्र, ३।२६

२७. अमित्रायुधो मरुतामिव प्रया प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदु ।
द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्नि समीधिरे ॥१५॥
—३।२९
२. अश्वमेघ—
२८. ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहुः सुरमिनिर्हरेति ।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥
—१।१६२
२९. उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्व राये प्रमुचता सुवासः ।
राजा वृत्र जघनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्या ॥११॥
—३।५३
३०. इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्व चिकितुर्न प्रपित्व ।
हिन्वन्त्यश्वमरण न नित्य ज्यावाज परिणयन्त्याजौ ॥२४॥
—३।५३

२७. मस्तुकी तरह अमित्रोंसे लड़नेवाले अन्नगामी प्रथम उत्पन्न वह सब कुछ जानते हैं। कुशिक तेजस्वी ब्रह्म (स्तुति) प्रेरित करते हैं, (उनमें) एक-एक (अपने) घरमें अग्निका समिधान करते हैं ॥१५॥ (५।२६।१५)

—विश्वामित्र, ३।२९

२. अश्वमेध—

२८. जो पके घोड़ेको देखते, जो बोलते "सोधा है उतारो" और जो घोड़ेके मांस-भोजनका सेवन करते हैं, उनका सकल्प हमारा सहायक हो ॥१२॥ (४।२)

दीर्घतमा उच्यते-पुत्र, १।१६२

२९. हे कुशिको, पास आओ, चेतो, धन (जीतने) के लिए सुदासके अश्वको छोड़ो। राजा (सुदास) पूर्व, पश्चिम और उत्तरके धनु मारें, फिर पृथिवीके वरस्थानमें यज्ञ करे ॥११॥ (५।२६।११)

—विश्वामित्र, ३।५३

३०. हे इन्द्र, भरतके ये पुत्र (मन्तानें) न अमिलन जानते, न मिलन, वह परकी तरह नित्य युद्धमें (अपना) घोड़ा गेजते हैं, धनुष भुक्तते हैं ॥२४॥

—विश्वामित्र, ३।५३

अध्याय ११

राजव्यवस्था

१ ग्रामणी

- १ सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेदेवा प्रतियुर्यरन्त्वास्मिन्नश्रान्ता असनाम वाज ॥११॥

—१०१६२

२. राष्ट्र

- २ आचष्ट आसा पाथो नदीना वरुण उग्र. सहस्रचक्षा ॥१०॥
राजा राष्ट्राणा पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्र विश्वायु ॥११॥

—७१३४

- ३ हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्य एषा यथा राष्ट्र गुपित क्षत्रियस्य ॥३॥

—१०११०९

३. विश

- ४ अपामुपस्थे महिषा अगम्णत विशो राजानमुपतस्युर्ऋग्मिय ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानर मातरिश्वा परावत ॥४॥

—६१८

अध्याय ११

राज-व्यवस्था

१. ग्रामणी

१. सहस्र (गौवोंके) दाता ग्रामणी मनु मत अनिष्ट करे, इसकी दक्षिणा सूर्यके समान होवे। सावर्णी (मनु) को देवता आयु प्रदान करें, जिसके पास हम अश्रान्त हों अन्न पाते हैं ॥११॥

—नाभानेदिष्ट, १०।६२

२. राष्ट्र

२. सहस्र-चक्षु उग्र वरुण इन नदियोंके जलको देगते हैं ॥१०॥ वह (वरुण) राष्ट्रोंके राजा, नदियोंके यज्ञ हैं। उनका क्षत्र (राज्य) अनुपम और मंत्र है ॥११॥

—वसिष्ठ, ७।३४

३. "इसकी देहको हाथमे ही ग्रहण करना चाहिये, यह ब्रह्म-जाया है।" यह सबने कहा। भेजे दूतकी वह नहीं बनी जिन सहस्र क्षत्रियता राष्ट्र रक्षित ॥३॥

—शुक्ल, १०।१०९

३. प्रजा

४. महान् (मरुतो) ने अन्तर्निहितें ग्रहण किया, पृथ्वीके राजा मान प्रजाओंने उनका उपगमान (मन्नाता) किया। विजयानुदा द्वा यादु इरने पैश्यान्त अग्निषो कहा लाया ॥४॥

—महाज, ६।८

४. राजा

- ५ विद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मास्र ।
स त्वं न ऊर्जं सन ऊर्जं धा राजेव जेर वृके क्षेप्यन्त ॥४॥
—६।४
- ६ आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन् त्सर्वंतातेव नु द्यौ ।
त्रिषघस्थस्ततरुषो न जहो हव्या मघानि मानुषा यजर्घ्यै ॥२॥
—६।१२
- ७ त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्ह मरुज पर्वतस्य ।
राजा भवो जगतश्चर्षणीना साक सूर्यं जनयन्धामुपास ॥५॥
—६।३०
- ८ स रायस्खामुप सृजा गृणान पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्व ।
पतिर्वभूथासमो जानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४॥
—६।३६
९. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विपुरुष यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राघ उपस्तुतश्चिदवाक् ॥३॥
—७।२७
- १० आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमवर्क् ।
इळ नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वत जीरदानू ॥२॥
—७।६४
११. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुताना । त्व राजा जनाना ॥३॥
—८।५३

४. राजा

५. हे मनु (अग्नि), तुम गायक, सहनोजी है। जन्मते अपना पय घर और अन्न तैयार करता तू हमें पुष्टि दे, पुष्टि हममें रग निरुपद्रव गृहमें राज-वाग तरह शत्रुओंको जीतो ॥४॥

—भरद्वाज, ६।४

६. हे पूज्य राजन्, जिस तुम शानी में छो पूर्णताके लिये हैं। तीनों स्थानोंमें रह गले हो, सूर्यकी तरह मनुष्योंके हृदय और धनको यजनके लिये जाते हो ॥२॥

—भरद्वाज, ६।१२

७. (हे इन्द्र), तुमने जलको चारों ओर बहनेके लिये पर्वतको जोरने ध्वस्त किया। तुम छो, उषा और सूर्यको एक साथ उत्पन्न करने जगत्के लोगोंके राजा हो ॥५॥

—भरद्वाज ६।२०

८. हे इन्द्र, स्तुति किये जाते तुम बहुत बढ़िया चमकते धन-सम्पत्तिको धारा बहाओ। तुम जनोके अद्वितीय पति, अकेले नारे भुवनके राजा हो ॥४॥

—भरद्वाज, ६।३६

९. जगत्के मनुष्योंका राजा इन्द्र है, जो कुछ पृथिवीपर नाना प्रकारकी (वस्तु) है, (उमता भी)। तिमने भयनको वह धन देता है। स्तुति किया गया वह हमारे पास धन भेजे ॥३॥

—यजुषिष्ठ, ७।२७

१०. महान् श्रुतके रसात, सिन्धु-सिन्धु, शत्रिय, मित्र-वरण दोनो राजा, हमारे पास आवें। दोष देनेवाले मित्र और वरज हमें अन्न दें, सोने पुष्टि भेजें ॥२॥

—यजुषिष्ठ, ७।६४

११. हे इन्द्र, तुम छाने न छाने (नोनो) के म्यानी हो। तुम जनोके राजा हो ॥३॥

—ऋगाय, ८।५३

(१) राजाभिषेक—

१२. आ त्वा हार्पमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलि ।
 विशस्त्वा सर्वा वाछन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत ॥१॥
 इहैवैधि माप च्योष्ठा पवंत इवा विचाचलि ।
 इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥
 इममिन्द्रो अदीघरद् ध्रुव ध्रुवेण हविषा ।
 तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पति ॥३॥
 ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवास पर्वता इमे ।
 ध्रुव विश्वमिद जगद् ध्रुवो राजा विशामय ॥४॥
 ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुव देवो बृहस्पति ।
 ध्रुव त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्र धारयता ध्रुव ॥५॥
 ध्रुव ध्रुवेण हविषामि सोम मृशामसि ।
 अथो त इन्द्र केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥

—१०।१७३

(२) सम्राट्—

- १३ मूर्ध्नि दिवो अरति पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्नि ।
 कवि सम्राजमतिथि जानामासन्ना पात्र जनयन्त देवा ॥१॥
 १४ अभि य देव्यदितिर्गुणाति सव देवस्य सवितुर्जुपाणा ।
 अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोपा ॥४॥

—७।३८

(३) शास—

- १५ मरुत्वन्त वृषभ वावृधानमकवारि दिव्य शासमिन्द्र ।
 विश्वासाहमवमे नूतनायोग्र सहोदामिह त हुवेम ॥५॥

—३।४७

(१) राजामियेक—

१२. मैं तुम्हें लाया, (देशके) भीतर बढो, अचल ध्रुव बने रहो। सारी प्रजायें तुम्हें चाहें, तुम्हारा राष्ट्र (राज्य) भ्रष्ट न हो ॥१॥

यही रहो, अचल रहो, पर्वतकी तरह च्युत मत होओ। इन्द्रकी तरह यहा ध्रुव रहो, यहा राष्ट्रको धारण करो ॥२॥

ध्रुव हवि द्वारा इन्द्रने इम ध्रुव (अचल) को स्थापित किया। उनमे सोम बोले और उसमे ब्रह्मणस्पति भी ॥३॥

धो ध्रुवा (अचल) है, पृथिवी ध्रुवा, यह पर्वत भी ध्रुव है। यह सारा जगत् ध्रुव है। प्रजाओका यह राजा ध्रुव है ॥४॥

राजा वरुण तुम्हारे ध्रुव है, देव बृहस्पति ध्रुव, वह इन्द्र और अग्नि ध्रुव। (वे) राष्ट्रको ध्रुव धारण करें ॥५॥

ध्रुव हवि द्वारा, ध्रुव सोमको हम मिलाते हैं। फिर इन्द्र, तेरो प्रजाको एक-परायण और कर-प्रदाता बनाये ॥६॥

—ध्रुव आगिरस, १०।१७२

(२) सम्राट्—

१३. देवाने बँधवानर अग्निको धोका मस्तक, पृथिवीका दूत, यज्ञके लिये उत्पन्न, कवि, सम्राट्, जनोका अतिथि, मुग्ध और रक्षक उत्पन्न किया ॥१॥

—भगद्वाज, ६७

१४. मयिता देवके मयन (उत्पत्ति) का मेवन करती देवी अदिति जिम्मी स्तुति करनी है, वरुण सम्राट् पत्नियों-महिन अयना और मित्र भी स्तुति करता है ॥४॥

—यमिष्ठ, ७।२८

(३) शास—

१५. नस्तोपाले, कृषम (पुन्यस्त्री), सप्त बरुने पौण्ड गाल, दिव्य शास (राजा), नवजेता, उग्र, बलशाली उन इन्द्रको हम नई रक्षण लिये यहा पुवागते हैं ॥५॥

विश्वामित्र, ३।४३

(४) ईशान—

१६. अभि त्वा शूर नोनुमो दुग्धा इव घनव .

ईशानमस्य जगत. स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुष. ॥२२॥

—७।३२

(५) स्वराट्—

१७ अस्येदेव प्र रिरिचे महित्व दिवस्पृथिव्या पर्यन्तरिक्षात् ।

स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूतं स्वरिरमथो ववक्षे रणाय ॥१॥

—१।६१

(६) नृपति—

१८. त्रिविष्टि घातु प्रतिमानमोजसस्तिस्त्रो भूमीर्नृपते श्रीणि रोचना ।

अतीद विश्वं भुवन ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुपा सनादसि ॥८॥

—१।१०२

(७) पती राजा—

१९ पिवा सोम मदाय कमिन्द्र श्येनाभृत सुत ।

त्व हि शश्वतीना पती राजा विशामसि ॥३॥

—८।८४

(८) राजपुत्र, राजबुहिता—

२०. प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृह ।

कस्य ध्वस्त्रा भवथ कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथ ।३॥

युवां ह घोषा पर्यदिवना यती राज्ञ ऊचे बुहिता पृच्छे वा नरा ।

भूत मे अह्न उत भूतमक्तवे' श्यावते रथिने शक्तमवतै ॥५॥

—१०।४०

परिशिष्ट १. ऋचायें

४) ईशान—

१६. हे शूर, न दुही धेनुओंकी तरह हम तुम्हें जोरसे पुकारते हैं। जो कि इस जगत्का स्वर्गदशक है इन्द्र, स्वायंके ईशान हो ॥२२॥
—बमिष्ठ, ७।३२

(५) स्वराट्—

१७. धी, पृथिवी से परे अन्तरिक्षने भी इन्द्रकी महिमा बढ कर है। अपने गूहमें मयंकारी निपुण इन्द्र स्वराट् (स्वयं राजा) गभीर-घोष, रणके लिये बलिष्ठ है ॥९॥
—तोवा गीतम-मुद्र, १।६१

(६) नृपति—

१८. हे नृपति इन्द्र, तुम तेहरी रस्सी के नमान बोजकी माप हो। तीनों भूमि (धी, पृथिवी, आकाश), तीन प्रकाश (सूर्य, बिजली, अग्नि) हो। तुम इस सारे भुवनको बहन करते हो। तुम सदा जन्मसे (ही) धनु-रहित हो ॥८॥
—मूल आगिरन, १।१०२

(७) राजा—

१९. हे इन्द्र, स्वर्ग (पक्षी) द्वारा लाये गये सुरामय मोमको मरके लिये पियो। तुम्हो धारवत प्रजाओंके पतिराजा हो ॥३॥
—तिरदची आगिरन, ८।८८

(८) राजपुत्र, राजदुहिता—

२०. हे अरिषड्वय, वृद्ध (राजाओं) की तरह मबने तुम स्तुति गाते हो। पूजनीयो, दिन-दिन घर जाते हो। जिसके प्यनक होते हो। हे दोनों नेताओं, जिसके (सोम)-नयनमें राजपुत्रकी तरह तुम जाने हो ॥३॥ हे अरिषड्वय, मैं पमती राजदुहिता घोषा तुम दोनों नेताओंके पान जाई, तुमसे पूछती हूँ। मेरे पात दिनमें र्हो, रातमें र्हो, अरिषड्वयके रक्षी प्रभु (पुत्र्य) मुझे प्रदान करो ॥५॥
—तोवा, १०।४०

२७. समानो मन्त्र समितिः समानी समान मन सहचित्तमेषा ।
समान मन्त्रमभिमन्त्रये व समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

—१०।१९१

(३) कुलप, (४) ब्राजपति

२८ श्रात हविरोष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरु अध्वनो विमघ्य ।
परि त्वासते निधिभिः सखाय कुलपा न ब्राजपति चरन्त ॥२॥

—१०।१७९

(५) पुरोहित (प्रधान-मन्त्री)

२९ यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
त प्रत्नास ऋषयो दीघ्याना पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्व ॥१॥

—४।५०

३०. इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेवं वन्वन्ता प्र सुवासमावतं ।
ब्रह्मणाप्येषा शृणुत हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहिति ॥४॥

—७।८३

२७. (इनका) मन्त्र समान हो, समिति समान हो, चित्त-महित मन नमान हो। तुम्हें एकसे मन्त्र अभिमन्त्रण करता हूँ, एक सी हविमें तुम्हारे लिये हवन करता हूँ ॥३॥

—सवनन, १०।१९१

(३) कुलप, (४) घ्राजपति

२८. हे इन्द्र, हवि पक गई, आओ, मूर्ध्न्य मध्यकाल (दोपहर) में पहुँच गया। जैसे विचरते घ्राजपतिको कुलप, वैसे निधियोंके माप मन्त्र तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥२॥

—प्रतदन काशिराज, १०।१७

(५) पुरोहित (प्रधान-मन्त्री)

२९. जिस वृहस्पतिने एकाएक (अपनी) शक्तिमें पृथिवीके अन्तों तक को घाम्हा। जो गडगड़ाहटसे तीनों स्थानोंमें है। उस मधुर जिह्वावाले (वृहस्पति) को प्राचीन ध्यानी विप्र ऋषियोंने (अपने) सम्भुर रक्ता ॥१॥

—यानदेव, ४।५०

३०. हे इन्द्र-वरुण, तुमने दुर्धर्ष आयुषो द्वारा अप्रतिम भेदको मारने हुए मुदामकी रक्षा की। इनके मन्त्रोंको युद्धमें गुनो, तन्गुजोंकी पुनोहिताई गत्य निद हई ॥४॥

—यज्ञिष्ठ, ७।८३

अध्याय १२

शिक्षा आदि

५१ शिक्षा

१. य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिम्य' पुरुहूत नृम्य ।
त्व हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृत न राघ ॥२॥

—७।२७

२. यदेषामन्यो अन्यस्य वाच शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेपा समृधेव पर्वं यत् सुवासो वदथ नाध्यप्सु ॥५॥

—७।१०३

३. य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेव भारत जन ॥१२॥

—३।५३

५२ स्वास्थ्य

४. नि येन मुष्टिहृत्या नि वृत्रा रुणधामहे । त्वोतासोन्यर्वता ॥२॥

—१।८

५. ससेन चिद्धिमदायावहो वस्वाजावद्रि वावसानस्य नर्तयन् ॥३॥

—१।५१

५३ रोग

६. यदिमा वाजयन्नहमोषधीहंस्त आदधे ।
आत्मा यस्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥

अध्याय १२

शिक्षा, स्वास्थ्य

११. शिक्षा

१. हे मधवन् पुरुहूत (बहुनिमप्रित) इन्द्र, जो तुम्हारा बल है, उसे (हमारे) गंगा नरोको प्रदान करो। हे मधवन्, तुमने दृढ़ (पुरियो) को नष्ट किया, विज्ञ तुम (अपनी) छिपी निधियों हमारे लिए प्रकट कर दो ॥२॥

—यनिष्ठ, ७।२७

२. एन (मेढको) में ने एक दूमरे का वचन निष्यको निगाने ना बोलता है। जब जलमें तुम गुवाच बोलते हो, तो इनका साग अग बट ना जाता है ॥५॥

—यनिष्ठ, ७।१०३

१२. स्वास्थ्य

४. (हे इन्द्र), जिन तुम्हारी रसाने न्यो द्वारा एन शत्रुओंको मुष्टि-युद्ध द्वारा रोक दें ॥२॥

—मधुच्छन्दा विद्यामित्र-पुत्र, १।८

५. हे इन्द्र, तुमने युद्धमें पापाण (बज्र) नगाने न्युनिर्ना निमन्को अन्न प्रदान किया ॥३॥

—गन्ध वागिन्य, १।५१

१३. रोग

६. जब शक्ति लगी एन शीपियोंको भी हाथमें रंजा न, तो यदमा रोगको कारण मानो जो पनयनें पूरे (ही) नष्ट हो जाती है ॥१॥

यस्यौषधीः प्रसर्पयागमग परुष्यरु ।

ततो यक्ष्मं विवाघध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥२१॥

—१०।१७

७. मुचामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत्त राजयक्ष्मात् ।

ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेन तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेन ॥१॥

—१०।१६१

८. उद्यन्नद्य मियमह आरोहद्युत्तरा दिव ।

हृद्रोग मम सूर्य हरिमाण च नाशय ॥११॥

—१।५०

९. अक्षीम्या ते नासिकाम्या कर्णाम्या छुबुकादधि ।

यक्ष्मं शीर्षण्य मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

श्रीवाम्यस्त उष्णिहाम्य कीकसाम्यो अनूक्यात् ।

यक्ष्म दोषण्यमसाम्या वाहुम्या वि वृहामि ते ॥२॥

आन्त्रेम्यस्ते गुदाम्यो वनिष्टो हृदयादधि ।

यक्ष्म मतस्नाम्यां यवद प्लाशिम्यो वि वृहामि ते ॥३॥

ऊरुम्या ते अष्टीवद्म्या पाणिम्या^१ प्रपदाम्या ।

यक्ष्मं श्रोणिम्या भासदाद् भससो वि वृहामि ते ॥४॥

मेहनाद्वनकरणाल्लोमम्यस्ते नखेम्य । •

यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिद वि वृहामि ते ॥५॥

अगादगाल्लोम्नो लोम्नो जात पर्वणि पर्वणि ।

यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिद वि वृहामि ते ॥६॥

—१०।१६३

^१ पाणिम्या—निर्णय सागर प्रेस को पुस्तक में

जैने उग्र (पुरष) सघर्षमें, वैसे ही जोपधियो, तुम जित्तके अग-अग पोर-भोरमें प्रविष्ट होती हो, तो (उमके) यक्ष्मा (रोग) को वाधित करती हो ॥१२॥

—भिषग् अथर्वानुश्रु, १०।१७

७ जीनेके लिए हवि द्वारा मैं तुम्हें अज्ञात यक्ष्मा (रोग) या राजयक्ष्माने मुक्त करता हू। यदि भूतग्रहने इसे पकड़ा, तो उमने इसे छन्द और अग्नि मुक्त करें ॥१॥

—यक्ष्मनागन, १०।१६१

८ मित्र-प्रकाशवाले नूर्यं, आज उगते उच्चतम छीपर आरोहण करने मेरे हृद्गोग, पीलियाको नष्ट करो ॥११॥

—प्रस्नाप्य काण्व-पुत्र, १।५०

९ तेरी दोनो जाखोंमें, दोनो नाकोंमें, दो कर्णोंमें, हृद्डीके ळपग्ने, मस्तिष्कमें, जिह्वामें, शीपंस्वानमें तेरे यक्ष्म (रोग) को मैं दूर करता हू ॥१॥

तेरी श्रोत्राने, धमनियोंमें, हृद्डीके जोड़ोंमें, दोनो कर्णोंमें, दोनो बाहूओंमें, हाथमें तेरे यक्ष्मको मैं दूर करता हू ॥२॥

तेरी आंतोंमें, गुदाओंमें, हृदयोंमें, मूत्रागवने, यकृतमें, प्लीहाने तेरे यक्ष्मको दूर करता हू ॥३॥

तेरे दोनो उग्रोंमें, दोनो जाधोंमें, दोनो गुन्धोंमें, दोनो पैरोंके पङ्गुमें, दोनो नितबोंमें तेरी कटि और मण्ड्याग्ने यक्ष्मको दूर करता हू ॥४॥

तेरे मूत्रज काम-तरुज (लिंग) में, तेरे रोगोंमें, नाओंमें, तेरी शरीर आत्मा (शरीर) में उम यक्ष्मको दूर करता हू ॥५॥

अग-अगने, रोग-रोगोंमें, पाण-रोगोंमें पैदा हुए नागों अज्ञात(अज्ञान) में तेरे उग्र यक्ष्म तो दूर करता हू ॥६॥

—विश्वहा काण्व, १०।१६३

- १० युव नरा स्तुवते कृष्णिषाय विष्णाप्व ददथुचिश्वाकाय ।
घोपायै चित् पितृषदे दुरोणे पति जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ॥७॥

—१११७

९४ चिकित्सा

११. यत्रोषधीः समग्मत राजान समिताविव ।
विप्र स उच्यते भिषप्रक्षोहामीवचातन ॥६॥
१२. उत त्या दैव्या भिषजा श न करतो अश्विना ।
युयुयातामितो रपो अप स्निव ॥८॥

—८१८

१३. त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रि पार्थिवानि त्रिरुदत्तमद्म्य ।
ओमान शयोर्ममकाय सूनवे त्रिघातु शर्म वहत शुभस्पती ॥६॥
- क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीळा ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञ नासत्योपयाथ ॥९॥

—११३४

- १४ सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे । तदानुरस्य भेषज ॥१७॥

—८१६१

- १५ यामि पक्वमवथो यामिरघ्नगु यामिर्वन्त्रु विजोपस ।
तामिर्नो मक्षू तूयमश्विना गत भिषज्यत यदातुर ॥१०॥

—८१२२

१०. हे दोनो नेतावो, तुमने लुतिकर्ता वृष्ण-पुत्र विश्वकके लिये (उसके पुत्र) विष्णापुको दिया। तुमने पिताके घर बैठो भुरातो घोषाको पति प्रदान किया ॥७॥ (५।६०।७)

—ऋधीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११७

१४. चिकित्सा

११ ममितिमें राजाओकी तरह जहा औषधिया एकत्रित होती है, वह विप्र राधमनाशक रोग-निवारक भिषग् कहा जाता है ॥६॥

—भिषग् लयर्वा-पुत्र, १०।९७

१२ और वे दिव्य भिषग् अश्विद्वय हमारा मंगल करें, यहाँमे पाप हटावें, शत्रुओंको दूर भगावें ॥८॥

—शरिन्विटि, ८।१८

१३ हे अश्विद्वय, हमें चीने तीन बार पृथिवीमे, तीन बार आकाशमे भेषज (दवा) दो। हे शुभके स्वामियो, मेरे पुत्रके लिये गुप्त स्वान्ध्व दो, तीन प्रकारका शरण लाओ ॥६॥

हे नामन्वो, तुम्हारे तेहरे रथके तीन चक्र कहा है ? नाभि-युक्त जो घुमे तुम्हारे वह तीनों पहलें हैं ? यत्नवान् गगननका जोटना कब होगा, जिसके द्वारा तुम यज्ञमें आने हो ॥९॥

—हिरण्यस्त्रप, १।३४

१४ हे मित्र और वरुण, नृयं उगने मैं गोम ग्रहण करना हूँ। वह जानुर (रोगी) का भेषज है ॥१७॥

—श्यां प्रगाप-पुत्र, ८।६१

१५ जिन (औषधियों) के द्वारा मुझने पश्यन्ती गया सी, जिनमे अग्नि, जिनमे अन्नहाय यन्त्रुगी सा सी, उनमें माप है इजिनो, तुम्हारे तेजोमे क्षात्रा, जानुन्नी निजिना करे ॥१००॥

—शोन्दि कण्ड-पुत्र, ८।६३

अध्याय १३

वेष-भूषा

५१ वस्त्र

१. युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमान ।
त धीरास कवय उन्नयन्ति स्वाध्वो मनसा देवयन्त ॥४॥
—३।८
२. अभ्रातेव पुस एति प्रतीची गर्तरुगिव सनये धनाना ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उपा हस्त्रेव निरिणीते अप्स ॥७॥
—१।१२४
३. उत त्व पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व शृण्वन्न शृणोत्येना ।
उतो त्वस्मै तन्व वि सन्ने जायेव पत्य उशती सुवासा ॥४॥
—१०।७१
४. एपा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवति क्षुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उपो अद्येह सुभगे व्युच्छे ॥७॥
—१।११३
५. दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राप्यर्जुना वमाना सेयमस्मे सनजा पित्र्याधी ॥२॥
—३।३९

अध्याय १३

वेप-भूषा

§१ वस्त्र

१ सुन्दर वस्त्र पहने ढका युवा (यूप) आया, उत्पन्न हो वह श्रेयान होता है। ज्ञानी धीर कवि मनमें देवोंकी कामना करते उग (यूप) को उछाते है ॥४॥

—विश्वामित्र, ३।८

२ भ्राता-विहीना जैसे पुग्गोंको, रूपर चडी मानो धनोको प्राणिके लिए जानी है। जैसे पतिको चाहती नुवस्त्रा जाया, जैसे ही उपा हंसती हुई अपने मोक्षको मोलती है ॥७॥

—नशीयान् दीर्घतमा-मुद्र, १।१०४

३ किनीने देगने हुए (भी) बाणोको नहीं देगा, किनीने गुनने हुए भी देने नहीं सुना, और जैसे नुवस्त्रा म्निग्ध जाया पतिके लिये, वैसे किनीके लिये अपने शरीरको मोलती है ॥४॥

—बृहस्पति, १।०।७१

४ यह (अन्वहार) दूर गन्ती, सुन्दरस्त्रा युवती औ-भुक्तिता ग्वगी न्यामिनी शिगाई पडी। है नुभगे उपा, आज यहा पार्यिब पन तमें प्रसा कर ॥७॥

—कुल्ल जगिग्न, १।११३

५ (हे इन्द्र), मारे पीने उत्पन्न हो जागन्न, विन्द (पूजा-नना) में मारे जागी, मो यह सुन्दर-स्त्रा तमारं विदगंरं ननात्त (गुना) है ॥२॥

—विश्वामित्र, ३।३१

६. अग्नीपमाणाया पति. शुचायाश्च शुचस्य च ।
वासो वायो' वीनामा वासासि मर्मजत् ॥६॥

—१०।२६

७. मा नो अग्ने वीरते परा दा. दुर्वाससे मतये मा नो अस्यै ।
मा न क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा धन आ जुह्वथा ॥१९॥

—७।१

१. द्रापी—

८ यो वा यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वध्रिव ।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३॥

—८।२६

९ दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापति पिशाग द्रापि प्रति मुचते कवि ।
विचक्षण प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्य ॥२॥

—४।५३

१० जुजुरुपो नासत्योत धर्मि प्रामुचत द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरत जहितस्यायुर्दंसादित् पतिमकृणुत कनीना ॥१०॥

—१।११६

११. विभ्रद् द्रापि हिरण्यय वरुणो वस्त निर्णिज । परिस्पशो निपेदिरे ॥१३॥

—१।२५

२. अत्क—

१२ श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्घृष्णुर्वजी शवसा दक्षिणावान् ।
वमानो अत्क सुरभि दृशे क स्वर्णनृतविपिरो वभूथ ॥३॥

—६।२९

६. इच्छा करती शुचा (बकागी) और शुच (बकरे) के पति (पूपन्) भेटके (लोमके) वस्त्र बुनते वस्त्रोको चमकाते हैं ॥६॥

—विमद, १०।२६

७. हे अग्नि, हमारे वीर (मन्तान)-पनको न दूर करना, बुरे वस्त्र न देना, न कुबुद्धि, न हमें भ्रष्ट देना । हे ऋत (नन्व)-वान्, हमें राक्षसको मत देना, हमें न धर्में दुवाना, न वनमें ॥१९॥

—वनिष्ठ, ७।१

८ वस्त्र पहनी बधूकी तरह, हे अश्विद्वय, जो यज्ञमें परिपूत हो तुम्हारी पूजा करता है, उमको तुम यगमगल देते हो ॥१३॥

—विश्वमना आगिरन, ८।२६

१. द्रापि (फच्छुक, तोगा)—

९ धीरा धान्क, भुवनका प्रजापति, कवि, पीली द्रापि पहनता है । विचक्षण नविता प्रख्यात होने, परिपूर्ण करते मृत्यु गुण उत्पन्न करता है ॥२॥

—यामदेव, ४।५२

१० हे अश्विद्वय, जैसे जीणं द्रापिको, वैसे ही चपानके बुझापेको तुमने निवाल फेंका । हे दर्शनीय-द्वय, तुमने अमहाय चमकते आयु बजाए, उसे कन्याओका पति बनाया ॥१०॥

—कधीवान् दीपतमा-भुव, १।११६

११. वरुण मुनहरी द्रापिको पहने चमकीली पोशाकवाले हैं चागे अंग (उनके) चद गुप्तकर घंटे हैं ॥१३॥

—धुन शप अर्जगिन-भुव, १।२५

२. अत्र—

१२ हे धजाधारी, वस्त्रमें शम्भु पहनाना, दानी (रुद्र) मन्त्रोंके सिद्धे तुम्हारे पैरोंकी (गोण) सेवा करते हैं । हे मेता, मुर्गा-का मुर्गा अत्र पहने तुम शम्भु नांको सिद्ध देते हो ॥३॥

—वरुणा, ६।२१

१३. ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा विभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्क सुरभि दशे क स्वर्णं नाम जनत प्रियाणि ॥७॥

—१०१२३

३. शिप्र—

१४ शत ते शिप्रिन्नूतय सुदासे सहस्र शसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्न च घेहि ॥३॥

—७१२५

१५ पीवो अश्वा शुचद्रथा हि भृताय शिप्रा वाजिन सुनिष्का ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो न पातो नु वश्चेत्यग्रिय मदाय ॥४॥

—४१३७

१२ भूषण

१. कर्णभिररण—

१६ उत न कर्णशोभना पुरुणि धृष्णवा भर । त्व हि शृण्विपे वसो ॥३॥

—८१६७

१७ हिरण्यकर्णं मणिप्रोवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवा ।
अर्यो गिर सद्य आ जग्मपीरोस्त्राश्चाकन्तूमयेष्वस्मे ॥१४॥

—११२२

१३. वह गधर्व ऊपर स्वर्गमें अवस्थित है, वह (हमारे) नामने विचित्र आयुध धारण करते, मुगन्धित सुवर्ण अत्क पहने, देरनेमें सुन्दर प्रिय (वस्तुओं) को उत्पन्न करता है ॥७॥

—वैन भागव, १०।१२३

३. शिप्र (मुफुट, पगढी)—

१४. हे उष्णीषधारी (इन्द्र), मुदामकी अपनी सैकड़ों सहायतायें (रखायें) हैं। तुम्हारे महलों उपकार और दान (उमें प्राप्त) होवें। (हमारे) हिमक मर्द को मारो। हमें यण और रत्न प्रदान करो ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।२५

१५. हे ऋभुओं, तुम्हारे अस्व पीन हैं, रथ चमकीले हैं। (तुम) सोने के शिप्रवाले निष्कधारी^१ अन्नवाले हो। इन्द्रके पुत्रों, बलके नातियों, तुम्हारी प्रसन्नता (नगा) के लिये (यह) श्रेष्ठ (गानपान) है ॥४॥

—वामदेव, ४।३७

१२. भूपण

१. कर्णभूपण—

१६. हे सान्वर्षक, धन-सम्पन्न वसु (इन्द्र), तुम्हीं (नयंत्र) मुने जाने हो, हमारे लिए बहुत नारे कर्णसोभन (मृच्छक) नात्रो ॥३॥

—सुगुति ८।७६

१७. नारे देव और नमुद्र हमें सुवर्ण-वर्ण, मजिर्वाण, (पुत्र) प्रदान करें। यह अयं (उगा) तुस्ल स्तुति को चाहती जाती, हन शोण पर प्रसन्न हो ॥१४॥

—तशीरात् दीर्घना-सुत्र, १।१२२

^१ सोने का बड़ा पहिनेवाना।

२. सोने का कण्ठा (निष्कग्रीव) —

१८. आ इवत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टय ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्ष्य एनामध्वा न वाजयु ॥३॥

—५११९

१९. स्वायुधास इष्मिण सुनिष्का उत स्वय तन्व शुम्भमाना ॥११॥

—७१५६

२०. देखो १७

३. रुक्मवक्ष—

२१. असेष्वा मरुत खादयो वो वक्ष सु रुक्मा उपशिश्रियाणा ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वघामायुर्घैर्यच्छमान ॥१३॥

—७१५६

४. खादि, ५. ऋष्टि, ६. शिप्र—

२२. असेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्ष सु रुक्मा मरुतो रथे शुभ ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्यो शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययी ॥

—५१५४

२३. त्वेष गण तवस खादिहस्त घुनिप्रत मायिन दातिवार ।
मयोभुवो ये अभिता महित्वा बदस्व विप्र तु विराघसो नृन् ॥२॥

—५१५८

२४. आ य हस्ते न खादिनं शिशु जात न विभ्रति ।
विशामग्नि स्वध्वर ॥४०॥

—६११६

२. सोनेका कंठा—

१८ श्वेप्रेयके नारे जन्तु, मनुष्य यणके नाय बडे । निष्कप्रोव घट्टुफ्य
मानी दस (सोम) द्वारा (लूट-) धन चाहता ॥३॥

—वयु आश्रय, ५।१९

१९ सुन्दर आयुधवाले, फुर्तिले, सुन्दर निष्क पहने वह मरुत्गण स्वय
(हमारे) शरीरको मजाते है ॥११॥

—वनिष्ठ, ७।५६

२० देगो ऊपर १७

३. सुनहली माला—

२१ हे मस्तो, तुम्हारे कन्धोंपर गादियां, तुम्हारी छातियोंपर न्यर्णा-
भूषण पडे हुए है । पानी देती वृष्टिमें विजयीकी तन्त्र चमकने आयुध
तुम चलाते हो ॥१३॥

—वनिष्ठ, ७।५६

४. गादि (ककण), ५. ऋष्टि (भाला), ६. मित्र (शिरस्त्राण)—

२२ हे मस्तो, तुम कन्धोंपर ऋष्टि (भाले), पैरोंमें गादि (कडे),
छातियोंपर मोना आभूषण, धारे रथपर अग्निरी तन्त्र चमकने वाले
विजली तुम्हारे हाथोंमें, बोर निरुपर फँसी नुनहरी मित्रा(पगढी)
है ॥११॥

—श्यावाश्व, ५।५४

२३ हे मित्र, दोष्णिमान्, शक्तिशाली, हाथमें गादि (कडा) धारे,
गुणदायक, आराधी, दाता, गुणदायक, अमित महिमाशाली, विगत
ऐश्वर्य-सुख, नेता (मस्त्री) की तुम बन्ना करो ॥२॥

—श्यावाश्व, ५।५८

२४. जिन सुन्दर जपमाला अग्निकी (वृष्टिस् सोम) हाथमें गादिकी
धारे नयला मिशुकी तन्त्र पहन करते है ॥४०॥

—भृश्रय, ६।१६

७. ओपश—

२५. स्तोमा आसन् प्रतिघय. कुरीर छन्द ओपश. ।
सूर्याया अश्विना वरा'ग्निरासीत् पुरोगव ॥८॥

—१०१८५

§३ सज्जा

१. कपर्द

- २६ रथीतम कर्पदिनमीशान राघसो मह । राय सखायमीमहे ॥२॥

—६१५५

२७. श्वित्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा घिय जिन्वासो अमि हि प्रमन्दु ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि वहिपो नृध्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१॥

—७१३३

- २८ चतुष्कपर्दा युवति सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्या सुपर्णा वृषणा निपेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेय ॥३॥

—१०११४

२. क्षौर

- २९ यदुद्धतो निवतो यासि वप्सत् पृथगेपि प्रगधिनीव सेना ।
यदा ते वातो अनवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्रभूम ॥४॥

—१०१४२

७. ओपरा—

२५. सूर्याके लिए स्तोम (स्तोत्र) ब्रह्मके थे, कुन्तीर छन्द ओपरा' था, अग्नि-द्वय वर थे, अग्नि अगुवा था ॥८॥

—सूर्या, १०।८५

६३. सज्जा

१ कपर्व (घेणो)—

२६. नवंध्रेष्ठ रयी, कपर्वधारी, महान् ऐश्वर्यके ईशान, (जपने) गया पूषन्मे हम घन मागते हैं ॥२॥

—भरद्वाज, ६।५५

२७ गोरे, दाहिनी ओर जूटा रखनेवाले मुद्गुद्धि वे (बनिष्ठ) मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। यज्ञमे उठने में आदमियोंको बहता हूँ, “बनिष्ठ-सन्तान मुझने दूर न जायें” ॥१॥ (३।६)

—बनिष्ठ, ७।३३

२८ चार वेणियोंवाली, मुम्पा, मुम्प्रा । उन (यज्ञम्पा) सुवर्णों में पराक्रमी दो पक्षी बैठते हैं। जहाँ देवता लोग अपना-जपना भाग पाते हैं ॥३॥

—त्रिभिर्घेम्प, १०।११४

२. क्षीर—

२९ (हे अग्नि), जब तुम ऊने (पहाड़ी) निचली (उत्पन्नकाओं) में माते, तबसे तूनी नैनाली तब उत्पन्न-राग जाते हैं। जब तब तुम्हारा अनुगमन करता हूँ। नृश-दाशीले जैसे नारें घेने तुम बहू-नी भूमितो मूदते हो ॥५॥

—अग्नि, १०।१४३

अध्याय १४
क्रीडा, विनोद

५१. नृत्य

१. देखो (१२।५)

—१।५१

५२ संगीत

२. मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततन । गाय गायत्रमुक्थ्य ॥१४॥

—१।३८

५३. पान

१. सोम—

३ य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूपु ते सुत । पिबेवस्य त्वमीशिषे ॥७॥
यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूपु ददृशे । पिबेवस्य त्वमीशिषे ॥८॥

—८।७१

स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुत ॥१॥

—९।१

४ एष देवो अमर्त्यं पर्णवीरिव दीयति । अभि ब्रोणान्यासवं ॥१॥

—९।३

अध्याय १४

क्रीडा-विनोद

५१. नृत्य

१ देखो १२।५, १३।१२

५२. संगीत

२ मुग्धमें श्लोक रचो, मेषकी तरह फैलो, उबय (गान)-योग्य गायत्र गावो ॥१४॥

—रुद्र घोर-मुद्र, १।३८

५३. पान

१. सोम—

३ हे इन्द्र तुम्हारे लिए जो सोम चमनोमें (प्यालो) और चमुओ (मुराहियों) में छाना गया। इने तुम पियो, तुम स्वामी हो ॥७॥
पानीमें चन्द्रमाकी तरह जो सोम चमुओमें दिखाई देता है। इने तुम पियो, तुम स्वामी हो ॥८॥

—तुमोदी मज्ज-मुद्र, ८।७६

हे सोम, छाने हुए स्वादिष्ट, मदिष्ट धारा-रहित इन्द्रो पीनेके लिए तुम क्षरित होवों ॥१॥

—मधुसूक्त विन्वाग्नि-मुद्र, ९।६

४. यह जमर देव (गान) मन्त्र में बँटनेके लिए पत्नीकी तरह उदरर जाता है ॥१॥

—सुत संज्ञ, १।३

५ समिद्धो विश्वतस्पति पवमानो वि राजति । प्रीणन् वृषा कनिक्रदत् ॥११
—९।५

६ मृजन्ति त्वा दश क्षिप्रा हिन्वन्ति सप्त धीतय ।
अनु विप्रा अमादिषु ॥४॥

पुनान कलशेष्वावस्त्राप्यरूपो हरि । परि गव्यान्यव्यत ॥६॥

—९।८

७ उपास्मै गायता नर पवमानायेन्दवे । अग्नि देवा इयक्षते ॥१॥
स न पवस्व श गवे श जनाय शमर्वते । श राजन्नोपधीम्य ॥३॥
नमसेदुप सीदत दध्नेदग्नि श्रीणीतन । इन्द्रुमिन्द्रे दधातन ॥६॥

—९।११

८ एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभि । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृत ॥१॥
एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते ॥२॥

एष ऋगाणि दोषुवच्छिशीते यूथ्यो वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ।४॥

—९।१५

९ आ कलशेषु धावति पवित्रे परिपिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४॥

तम् त्वा वाजिन नरो धीभिर्विप्रा अवस्यव । मृजन्ति देवतातये ॥७॥

—९।१७

५ पराश्रमी पति उद्दीप्त पवमान (सोम) शब्द करता है। प्रसन्न करता चारो ओर विराजता है ॥१॥

—अमितदेवल काश्यप,

६. (हे सोम,) दश फुर्ली (अगुलिया) तुम्हें मीजती है, मात स्तोत्रा तुम्हें प्रेरित करते हैं। फिर विप्र मस्त होते हैं ॥४॥

लाल मुनहला (सोम) कलशो में धरण करता दूध रपी वस्त्र पहनता है ॥६॥

—अग्निदेवल, १।८

७. हे नरो, देवोकी उपायता करने, इन धरण करते सोमका गान करो ॥१॥

हे राजन् (सोम), मो तुम हमारी गोओंके लिए मगल धरण करो, जनके लिए मगल, घोडेके लिए मगल, ओषधियोंके लिए मगल धरण करो ॥३॥

नमस्कारके नाय (सोमके) पान जाओ, दहीके नाय मिलाओ। इन्द्रको सोम प्रदान करो ॥६॥

—अग्निदेवल, १।११

८ यह धूर (सोम) सूक्ष्म धाराने तेज रयो द्वारा इन्द्रके (मिन्न) स्थानमें जाता है ॥१॥

जहाँ अमर रहते हैं, उन महान् श्वयज्ञमें यह (सोम) बहुत ध्यान करता है ॥२॥

यह आजने पराश्रम करना, रूपपति रूपमती तर्क दोनों तीक्ष्ण मीगोको हिलाना है ॥४॥

—अग्निदेवल, १।१५

९. यह (सोम) कलशोमें शीतना है। पवित्र (छत्ते) में नीचा जाता है, उरयो (गानों) द्वारा यज्ञोमें बढ़ता है ॥४॥

(हे सोम), उन तुम अन्वयो रक्षा की कामनासारे विप्र नर यज्ञमें मीजते हैं ॥३॥

१० एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिन । सर्गा सृष्टा अहेपत ॥१॥
 एते वाता इवोरवपर्जन्यस्येव वृष्टयः । अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥२॥
 एते पूता विपश्चित सोमासो दध्याशिरः । विषा व्यानशुर्धिय ॥३॥
 त्व सोम पणिम्य आ वसु गव्यानि धारय । तत तन्तुमचिक्रद ॥७॥

—९।२२

११ वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
 ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वरा उप ते सु वन्वन्तु वग्वना अराघस ॥२॥

—१०।३२

१२ स सुत पीतये वृषा सोम पवित्रे अपंति । विघ्नन्नक्षासि देवयु ॥१॥

—९।३७

१३ असृग्रन् देववीतये' त्यास कृत्व्या इव । क्षरन्त पर्वतावृष ॥१॥
 परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती । वायु सोमा असृक्षत ॥२॥
 स पवस्व धनजय प्रयन्ता राघसो मह । अस्मम्य सोम गातुवित् ॥५॥

—९।४६

१४ अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानुपत ।
 मृज्यसे सोम सातये ॥३॥

—९।५६

१५ पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित् सोम रप्यजित् । प्रजावद्रत्नमाभर ॥१॥

—९।५९

१६ प्र गायत्रेण गायत पवमान विचर्पणिम् । इन्दु सहस्रचक्षुस ॥१॥

—९।६०

१०. ये रयोकी तरह शीघ्रगामी सोम, छोड़े घोड़ों ने हिनहिनाते हैं ॥१॥
ये विस्तृत वायु में, पञ्चन्य-वृष्टि में, अग्निगिराता में, चलने हैं ॥२॥
यह विद्वान् विप्र पवित्र, दधि-मिश्रित सोम मन को प्राप्त करते हैं ॥३॥
हे सोम, तुम पणियोनि गो-घनको (छोन) लेते हो, फँसे तन्तु(यज्ञ)
में शब्द करते हैं ॥७॥

—अमितदेवल, १।२२

११. हे बहुस्तुत वीर, इन्द्र, धी और पृथिवी-मन्त्रन्धी लोकोंको प्रकाशित
करने तुम जोते हो। जो तुम्हें प्राय यज्ञ में ले जाते हैं, वह अश्वानी
वक्वादियों को जोते ॥२॥

—कश्यप ऐलूप, १०।३२

१२. वह राक्षसोंका नाश करता है, देवतामी, पराक्रमी सोम पीनेके लिये
छाना हुआ पवित्र (चपक) में जाता है ॥१॥

—रुद्रगण १।३७

१३. पत्यरोने बड़े, कार्यपरायण घोड़ोंकी तरह देवपानके लिए क्षरित
होते (सोम) भेजे गये हैं ॥१॥

पितावाली परिष्कृत बहू की तरह सोम (इन्द्र) वायुके पान जाते
हैं ॥२॥

हे घन जीतनेवाले, मार्गवेत्ता सोम, हमें घन, यज्ञ देने क्षरित होओ ॥४॥

—अथान्य आगिरन्, १।४६

१४. हे सोम, जन्मा जैसे प्रियतमकों, जैसे तुम्हें दान अगुन्धिया बुझाती है,
देनेके लिए तुम भीजे जाते हो ॥३॥

—अथन्नार, १।५६

१५. हे गो-विजयी, अश्व-विजयी, चिन्व-विजयी, मुत्र-विजयी सोम, क्षरित
होओ, पुत्रोन्महिन ग्ल ले जाओ ॥१॥

—अथन्नार, १।५९

१६. सारग-चक्षु सोम, का, बहूदान पत्रमानया मापत्र (मातृ) दाग
गान करो ॥१॥

—अथन्नार, १०।१

१७. अया वीती परिस्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन् नवतीर्नव ॥१॥
 पुर सद्य इत्या धिये द्विवोदासाय शवरं । अध त्य तुर्वश यदुं ॥२॥
 जघ्निवृत्रममित्रिय सस्निर्वाज दिवेदिवे ।
 गोषा उ अश्वसा असि ॥२०॥

—९।६१

१८. सुत इन्द्राय विष्णवे सोम कलशे अक्षरत् ।
 मघुमा अस्तु वायवे ॥३॥
 एते असृग्रमाशवोति ह्वरासि वभ्रव । सोमा ऋतस्य धारया ॥४॥
 इन्द्र वर्धन्तो अप्तुर कृष्वन्तो विश्वमार्यं । अपघ्नन्तो अराव्ण ॥५॥

—९।६३

१९. अभ्यर्षं सहस्रिण रयि गोमन्तमश्विन । अभि वाजमुत् श्रव ॥१२॥
 सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभि पवते सुत । दधान कर्लशे रस ॥१३॥

—९।६३

२०. हिन्वन्ति सूरमुन्नय स्वसारो जामयस्पति । महामिन्दु महीयुव ॥१॥
 यस्य वर्णं मघुश्चुत हरिं हिन्सन्त्यद्रिभि । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥
 यस्ये ते मद्य रस तीव्र दुहन्त्यद्रिभि । स पवस्वाभिमाहिता ॥१५॥

—९।६५

२१. ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वाद शयणावति ॥२२॥

१७ हे सोम, उम पानके साथ बहो, तुम्हारे जिम (पानके) मदमें हो (इन्द्रने) निम्नानवे (पुरियों) का महार किया ॥१॥

इस प्रकार तुरन्त शम्बरको, पुरोंको दिवोदासके लिए (नष्ट किया), और उन तुर्बंश और यदुको भी ॥२॥

हे सोम, तुमने अमित्र वृत्रको मार कर, रोज-रोज अन्न दिया, तुम गोदाता और अश्वदाता हो ॥२०॥

—अमहीयु आगिरम, १।६१

१८ इन्द्रके लिए, विष्णुके लिए छाना सोम कलशमें क्षरित हुआ। वह वायुके लिए भयुर होवे ॥३॥

पिगल-वर्ण शीघ्रगामी सोम फल (यज्ञ) को धारा द्वारा घुमाओंगे होते बहने हैं ॥४॥

इन्द्रको बढाने, जल लाते, नव आयें (कर्म) करने कजूगोंको विनाश करते (बहते) हैं ॥५॥

—निधुव काश्यप, १।६३

१९ गाय-अप्य-महित हजारोंवाला धन, बन्ध, अन्न और यज्ञ हमें दो ॥१२॥
सूर्यकी तरह सोम पत्थरोंने (तैयार किया) कलशमें रस छालता क्षरित होता है ॥१३॥

—निधुव काश्यप, १।६३

२० महानताको कामना करनेवाली (अगुनी स्त्री) बहिनें नृगको, स्त्रियां महान् पति सोमको बनाती हैं ॥१॥

(अप्ययुं लोण) इन्द्रके पीनेके लिए पत्थरों द्वारा जिम मधुसारक पीले वर्षे इन्द्रतां (सोम) बनाते हैं ॥८॥

हे सोम, तेरे नीचे मछरगतां पत्थरोंने (पिम्बर) निम्नाने हैं जो (तुम) दुदोसा नाम करने धरें ॥१५॥

—ऋषिगि मृगु-भुत्र, १।६५

२१. जो सोम पत्थरम (दूर) में जो पुरं (नजरीन) में छाने गये अथवा जो मार्ग शर्मणावतमें ॥२३॥

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्याना । ये वा जनेषु पचसु ॥२३॥
 ते नो वृष्टि दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यं । सुवाना देवास इन्द्रव ॥२४॥
 पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना । हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥२५॥
 —९१६५

२२. पवित्र ते वितत ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत ।
 अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥१॥
 —९१८३

२३. प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्य पुनानस्य सयतो यन्ति रह्य ॥
 यद् गोभिरिन्दो चम्बो समज्यस आ सुवान सोम कलशेषु सीदसि ॥४७॥
 —९१८६

२४ शूरग्राम सर्ववीर सहावा जेता पवस्व सनिता घनानि ।
 तिग्मायुध. क्षिप्रघन्वा समत्स्वपाहृळ साह्वान् पृतनासु शश्रून् ॥३॥
 —९१९०

२५ प्र सेनानी शूरो अग्रे रथाना गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
 भद्रान्कृण्वन्निद्रहवान्त्सखिम्य आ सोमो वस्त्रा रभमानि दत्ते ॥१॥
 सोम पवते जनिता मतीना जनिता दिवो जनिता पृथिव्या ।
 जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णो ॥५॥
 ब्रह्मा देवाना पदवी कवीनामृषिर्विप्राणा महिषो मृगाणा ।
 श्येनो गृध्राणा स्वधितिवनाना सोम पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥

जो आर्जोको (ऋचीको), जो कमनिष्ठो, जो पस्त्योके बीच अथवा जो पाँचों जनोंमें छाने गये ॥२३॥

छाने जाते वे नोम हमारे लिए चौके ऊपरने वृष्टि और मुवीगन्ताको प्रदान करते क्षरण करें ॥२४॥

यमदग्नि द्वारा न्युति किया जाता मुनह्य नोम गायको चमजेके ऊपर तैयार होता क्षरित होता है ॥२५॥

—यमदग्नि, भृगु-मुत्र, १।६५

२२ हे ब्रह्मणस्पति (मन्त्रपति नोम), तुम्हारा पवित्र (प्याला) फैला हुआ है, प्रभु तुम गायोमे चागे और पहुँचे हो। अतएव-गगेर (पच्चा व्यक्ति) उगे नहीं पाता। पके वहन करते उगे ठोकने पाते है ॥१॥

—पवित्र आगिन्न, १।८३

२३. हे नोम, छाने जाने तुम्हारी धारायें मूढम मेघ-न्योमको ल्यापकर वेगवती हो वहती है। जब दो चमुओंमें दूधमें मिलाये जाने हो, तब छाने जाकर कलशोंमें घैठने हो ॥४७॥

—गुलमद, १।८६

२४ हे मृत्-ममूहवाले, नारे वीगेवत्ते, पगकमी, विजेता घनाके दाता तीक्ष्ण आयुषवाते, क्षिप्र धनुष चलानेवाले, युद्धमें अजेय, नेताओंमें मयुओंको पराजय करनेवाते हे नोम, तुम क्षन्ति होओ ॥३॥

—यतिष्ठ, १।९०

२५ नूटनेवाला नेनानी, मृत्, रसोंके आगे जाता है, उनकी मेना क्षिति होती है। इन्द्रके आह्वानको भला बनाता नोम नगाओंके गिः घोघ्र वस्त्र प्रदान करता है ॥६॥

बुद्धियोंका जनक (उपासक), योग जनक, पृथिवी का जनक अग्नि का जनक, सूर्यका जनक और त्रिगुणा जनक नोम क्षिति होता है ॥

देवोंका वक्ता त्रिगोत्रा पदक, विद्वान् ऋषि, मृगोंका मर्दिन, गिःको वाज बनाता या तुल्यका नोम मन्त्र नगा घोघ्र (पाद) का पार करता है ॥६॥

त्वया हि न पितर सोम पूर्वे कर्माणि चक्रु पवमान धीरा ।
वन्वन्नवात परिधीरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा न ॥११॥

यथा पवथा मनवे वयोघा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविण दधान इन्द्रे स तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२॥

—११९६

२६ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टि सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्ष न पक्व धूनवद्रणाय ॥५३॥

—११९

२७ त गायया पुराण्या पुनानमभ्यनूपत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवाना नाम विभ्रती ॥४॥

—११९९

२८ अब्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वच्चि ।
कनिश्रद्दवृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृत ॥१६॥

—१११०१

२९ शर्यणावति सोममिन्द्र पिवतु वृत्रहा ।
बल दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्य महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

आ पवस्व दिशा पत आर्जीकात् सोम मीढ्व ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत, इन्दायेन्दो परि स्रव ॥२॥

हे पवमान नोम, तुम्हारे नाथ हमारे पूर्वज धीर पितरोने कर्म किये ।
वीरो तथा अश्वो द्वाग तुम शत्रुलोको वेगसे मान्ते हो । नो तुम हमारे
घनिक (मघवा) बनो ॥११॥

जैमे मनुके लिए आयुधधारी, शत्रुनाशक, धन-युक्त, हवि-युक्त हो
तुम धरित हुए थे, वैसे ही धन धारण करते (हमारे लिए) धरित
होओ । इन्द्ररा आश्रय लो, आयुध पैदा करो ॥१२॥

—प्रतर्दन द्विषोदान-शुत्र, १।९६

२६ हे सोम, तुम हमारे लिए यगम्यी हो प्रनिद्ध तीर्थमें इन धागने
धरित होओ । जैमे पका फल पानेके लिए वृक्षको हिल्यते हैं, वैसे ही
(मागनेपर) शत्रुनाशक सोमने माठ हजार धन हमें दिये ॥५३॥

—गुल्ज आगिग्न, १।९७

२७. धरित होने (ममय) उन नोमकी पुरानी गाथा द्वाग स्तुति करने
हैं । चलनेवाली (नोम स्पी) देवीकी अगुलिया हवि (को) धारण
करती हैं ॥४॥

—रेम काव्यप, १।९९

२८. सोम गोके चमडेपर भेउके लोमो के बीच छाना जाता है । पापशो
मुनहला नोम शब्द करना इन्द्रके (मिलन-)म्यानमें जाना है ॥६६॥

—विद्वामित्र वाक्-शुत्र १।१०६

२९. वृत्रहन्ता (इन्द्र) शयंपावतमें नोमको पिये । शरीर में बलधारण
करने महान् पराक्रम करे । हे सोम, इन्द्रके लिए धरित होओ ॥१॥

श्रुतवचन-मत्य-श्रद्धा-नपत्या द्वाग छाने गये हे दिगाजोके पति,
सेनक, सोम आर्जोके धरित होओ ॥२॥

१ चमडेमें गाने-पानेकी शीजोंके गगनेषा उम ममय यदुत रखात था ।
मुरा रपनेके चमडेकी पंती (१।१९।१।१०) और सोम गगनेशी चम
पंती (४।१५।१) का उत्तरो मितता है ।

यत्र ज्योतिरजस्र यस्मिन्लोके स्वहित ।

तस्मिन् मा धेहि पवमानामृते लोके अक्षित, इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७॥

यत्रानुकाम चरण त्रिनाके त्रिदिवे दिव ।

लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृत कधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥९॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद प्रमुद आसते ।

कामस्य यत्राप्ता कामास्तत्र माममृत कधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११॥

—९।११३

२. सुरा-

३०. हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुराया ।

ऊधनं नग्ना जरन्ते ॥१२॥

—८।२

३१. नस स्वो दक्षो वरुण ध्रुति सा सुरा मयुर्विभीदको अचित्ति ।

अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥६॥

—७।८६

३२ भोजा जिग्यु सुरभि योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्व या सुवासा ।

भोजा जिग्युरन्त पेय सुराया भोजा जिग्युर्यो अहूता प्रयन्ति ॥९॥

—१०।१०७

५४. जूश्रा

३३ प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे ववृताना ।

सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥

न मा मिमेय न जिहीळ एपा शिवा सखिम्य उत मह्यमासीत् ।

अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुभ्रतामप जायामरोध ॥२॥

जहाँ निरन्तर ज्योति है। जिस लोकमें स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम, उम अधुष्ण, अमर लोकमें मुझे ले चलो, ०॥७॥

जहाँ चौके त्रि-स्वर्ग, त्रि-द्योमें इच्छानुसार विचरण होता है, जहा लोक ज्योतिपमान् है, वहाँ मुझे अमर बनाओ, ०॥६॥

जहाँ आनन्द और मोद और मुद, प्रमुद अवस्थित है, कामती कामनायें जहाँ प्राप्त होती हैं, वहाँ मुझे अमर बनाओ, ०॥११॥

—कश्यप मारीचि-गुप्त १।११३

२. सुरा—

३०. जैसे अतरिक पिये सुरामें वदमस्तने लडते हैं, (गो-)स्ननकी तरफ नगे बकते हैं ॥१२॥

—मेघातिथि कण्व-गुप्त ८।२

३१. हे वरुण, वह दोष अपनेने नहीं होता, वह सुरा, प्रौघ, जुआ, अनान है, (जो) बड़े छोटोको पवभ्रष्ट करते हैं, नीर भी अनृत जोड़ने-वाली, होती है ॥६॥

—यमिष्ठ, ७।२६

३२. भोजदाता (सबने) पहले मुगन्धित स्याम पाते हैं, भोज सुरस्त्र वन्धुओको पाने हैं, भोज आन्तरिक पेय सुराको पाते हैं, भोज उनको जीत लेते हैं, जो बिना बुलाये चढ़ आते हैं ॥९॥

—दिव्य आगिरम, १०।१०७

५४ जश्रा

३३ प्रवातीय बटे (बृध) की गतिगोल पट्टीपर घूमने (पाने) मुझे आनन्दित करने हैं, जैसे मृजयान् (पर्वत) वाले सोमका भक्ष्य, जैसे (ही) जागदक काठके पाने मुझे उन्मत्तित करने हैं ॥११॥

न मुझे वह हिरान करनी थी न प्रोष करनी थी। मित्रों और मेरे लिये पत्न्यागिनी थी। नेत्र उ जूकेके सममें पजनेसे पारण्य मेरे अनुगणिते जायानके विग्नड कर दिया ॥२॥

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्द्धितार ।
अश्वस्येव जरतो वस्यस्य नाह विदामि कितवस्य भोग ॥३॥

अन्ये जाया परिमृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेत ॥४॥

यदा दीध्येनदविषाण्येभि परायद्भ्यो' वहीये सखिभ्य ।
न्युप्ताश्च वभ्रवो वाचमश्रत एमीदेषा निष्कृत जारिणीव ॥५॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो "जेष्यामीति" तन्वा शूशुजान ।
अक्षासो अस्य वितिरन्ति काम प्रतिदीन्ने दधत आ कृतानि ॥६॥

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरत क्व स्वित् ।
ऋणावा विभ्यद् घनमिच्छमानो न्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥

स्त्रिय दृष्ट्वाय कितव ततापान्येषा जाया सुकृत च योनि ।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि वभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषल पपाद ॥११॥

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृपस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमान ।
तत्र गाव कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्य ॥१३॥

—१०।३४

५५. (समन मेला)

यक्ष, (समन मेला) देखने जाते थे वसिष्ठ, ७।६६।१६, -प्रस्कण्व,
१।४।८।६, कक्षीवान्, १।१२४।८, सुमित्र वाघ्नयश्व, १०।६६।११,

मान द्वेष करती है, म्यो छोड़ देती है। मागनेपर वह (जुआगी) किसीको देनेवाला नहीं पाता। जैसे मृत्युवान् बूढ़े घोंटेको, वैसे ही जुआगीके लिए (मिलनेवाला) कोई भोग मैं नहीं जानता ॥३॥

जिनको धनका लोभ बलवान् पाना करते हैं, उनकी पत्नीको दूसरे भोगते हैं। उनके वारंमें पिता, माता, भाई कहते हैं—“हम नहीं जानते, इसे बाध कर ले जाओ” ॥४॥

जब तै करता हूँ “इन (पागों) के नाव नहीं गेलूंगा”, तो मित्र जुआगियोंमें दूर होता हूँ। पर, जब भूरे पामे फरसपर पड़े शब्द करते हैं, तो व्यभिचारिणोंको तरह उन (जुआगियों) के मिलन-स्थान में जाता हूँ ॥५॥

“मैं जीतूंगा” कह पूछता शरीर फुटाता, जुआगी नभामें जाता हूँ। पामे इनकी कामना बढ़ाते हैं। प्रतिद्वन्द्वोंके भावको पूरा करने हैं ॥६॥ जुआगीकी पत्नी हीन होकर सतप्त होती है, सही भटाने की मा। (भी) महाजनोंके डरता, धनलोंकी प्रह दूसरेके धर्म का को जाता है ॥१०॥

पामोसे मन गेलो, गनी करो, (डों) बहुत मानते हुये शर्मते नतुष्ट रहो। हे जुआगी, यहाँ (तेरे लिए) नावें हैं, यनी पत्नी है, गतामी गमिताने मुने यह बन गया ॥१३॥

—नव्य संस्कृत, १०।३६

अध्याय १५
देवता (धर्मा)

§१. देवता

१ नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारक ।
विश्वे सतो महान्त इत् ॥१॥

—८१३०

१. नाम, सख्या—

२ हुवे वो देवीमदिति नमोभिमृळीकाय वरुण मित्रमग्नि ।
अभिक्षदामर्यमण सुशेव त्रातृन्देवान्तसवितार भग च ॥१॥

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हृतासो वसवो'धृष्टा ।
यदीमर्भे महति वा हितासो वाये मरुतो अह्वाम देवान् ॥४॥

अभि त्य वीर गिर्वणसमर्चेन्द्र ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजा उप महो गृणान ॥६॥

ओमानशापो मानुपीरमृक्त धात तोङ्गाय तनयाय क्ष यो ।
यूय हि ष्ठा भिर्पजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्री ॥७॥

उत त्या मे हवमा जग्म्यात नासत्या धीभिर्युवमग विप्रा ।
अत्रि न महस्तमसो मुमुवत तूर्वत नरा दुरितादभीके ॥१०॥

ते नो रुद्र सरस्वती सजोपा मीहलुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु चायु ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्या वाता पिप्यतामिप न ॥१२॥

—६१५०

३. द्यौष्पितः पृथिवी मातरध्रुगने भ्रातर्वसवो मृळता न ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्य शर्म बहुल वि यन्त ॥५॥

—६।५१

- ४ अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमाना ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहृतौ ॥४॥

विश्वदानी सुमनस स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरत ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूना देवा ओहानोऽवसागमिष्ठ ॥५॥

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठ सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न औपघीभिर्मयोभुरग्नि सुशस सुवह पितेव ॥६॥

—६।५२

५. श न इन्द्राग्नी भवतामवोभि श न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय श यो श न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

श नो भग शमु न शसो अस्तु श न पुरन्धिः शभु सन्तु राय ।
श न सत्यस्य सुयमस्य शस श नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

श नो घाता शभु धर्ता नो अस्तु श न उरुची भवतु स्वघाभि ।
श रोदसी वृहती श नो अद्रि श नो देवाना सुहवानि सन्तु ॥३॥

३ हे पिता द्यौ, हे द्रोहहीन माता पृथिवी, हे भ्राता अग्नि, हे वसुओ, हमें सुखी करो। हे मारं आदित्यो, हे अदिति, इकाद्वे हो हमारे लिये बहुत धरण प्रदान करो ॥५॥

—ऋजिस्वा, ६।५१

४ उगती उपायें मेरी रक्षा करें, फूलती हुई नदिया मेरी रक्षा करें, अचल पर्वत मेरी रक्षा करें। देवों की पुकार में पितर मेरी रक्षा करे ॥४॥

मदा हम सुमनवाले हो, उगते हुए सूर्यको हम देंगे। वैना ही वसुओके वसुपति (धनपति) करें। देवनाओको वहन करने रक्षाके नाय वह हमारे पास आवें ॥५॥

रक्षाके नाय इन्द्र फूलती हुई मिथुओके नाय सरस्वती हमारे अति नजदीक आवे। औपधियोंके नाय पञ्चम्य, सुप्रगमनीय सुआह्वनीय पिता तुल्य अग्नि नुनमय होवें ॥६॥

—ऋजिस्वा, ६।५२

५ इन्द्र-अग्नि (दोनों) रक्षाओके नाय हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो, हव्य प्रदान किये गये (रातहव्य) इन्द्र-वक्रा हमारे लिये वन्त्याणकारी हो। इन्द्र-सोम रक्ष्याण उत्पादनके लिये श। यमने इन्द्र-भूपत् हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो ॥१॥

भग हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो, हमारे लिये (नग) धन रक्ष्याणकारी हो, पुरन्धि हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो, धन रक्ष्याणकारी होवें। अयंमा मत्पत्नी प्रगमा हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो। यदुत धार प्रकट अयंमा हमारे लिये रक्ष्याणकारी होगा ॥२॥

धाना हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो, धनी हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो। अत्रोके नाय उरुचो (पृथिवी) हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो, द्यौ-पृथिवी हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो, अद्रि (पर्वत) हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो। अत्रोके लिये सुदुत धन हमारे लिये रक्ष्याणकारी हो ॥३॥

श नो अग्निज्योतिरनीको अस्तु श नो मित्रावरुणावश्विना श ।
श न सुकृता सुकृतानि सन्तु श न इपिरो अभि वातु वात. ॥४॥

श नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्ष दृशये नो अस्तु ।
श न ओषधीर्वनिनो भवन्तु श नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णु ॥५॥

श न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुण सुशस ।
श नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाप श नस्त्यष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

श न सोमो भवतु ब्रह्म श न श नो ग्रावाण शमु सन्तु यज्ञा ।
श न स्वरुणा मितयो भवन्तु श न प्रस्व श वस्तु वेदि ॥७॥

श न सूर्य उरुचक्षा उदेतु श नश्चतस्र प्रदिशो भवन्तु ।
श न पर्वता ध्रुवयो भवन्तु श न सिन्धव. शमु सन्त्वाप ॥८॥

श नोऽदितिर्भवतु प्रतेभि श नो भवन्तु मरुत स्वर्का ।
श नो विष्णु शमु पूषा नो अस्तु श नो भवित्र शवस्तु पायु ॥९॥

श नो देव सविता त्रायमाण श नो भवन्तूषसो विभाती ।
श न पर्जन्यो भवतु प्रजाम्य श न क्षेत्रस्य पतिरस्तु शभुः ॥१०॥

श नो देवा विश्वदेवा भवन्तु श सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाच शमु रातिपाच श नो दिव्या पार्थिवा श नो अप्या ॥११॥

श न सत्यस्य पतयो भवन्तु श नो अर्वन्त शमु सन्तु गाव ।
श न ऋभव सुकृत सुहस्ता श नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

श नो अज एकपाद्देवो अस्तु श नोऽहिर्बुध्न्यः श समुद्रः ।
श नो अपानपात् पेरुरस्तु श न पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥१३॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुपन्तेद ब्रह्म क्रियमाण नवीय ।
शृण्वन्तु नो दिव्या पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियास ॥१४॥

ये देवाना यज्ञिया यज्ञियाना मेनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञा ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥१५॥

—७।३५

६. प्रातरग्नि प्रातरिन्द्र हवामहे प्रातमित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषण ब्रह्मणस्पति प्रात सोममुत रुद्र हुवेम ॥१॥

रक्षा करते हुये सविता देव हमारे लिये कल्याणकारी हो, चमकने वाली उषायें हमारे लिये कल्याणकारी हो, पर्जन्य हमारी प्रजाजो (मन्तानो) के लिये कल्याणकारी हो, क्षेत्रपति शम्भु हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥१०॥

विश्वदेव (नारे देवता) देव हमारे लिये कल्याणकारी हो, बुद्धियो के नाथ सरस्वती कल्याणकारी हो। मन्मुख दान देनेवाले कल्याणकारी हो, दिव्य (चीमाटे), पार्थिव (पृथिवीवाले), अन्न (जलवाले) प्राणी हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥११॥

सत्यके पति हमारे लिये कल्याणकारी हो, अवंन्त (घोटे) हमारे लिये कल्याणकारी हो, गायें हमारे लिये कल्याणकारी हो। गुण (सुकर्मा) सुहस्त ऋभु हमारे लिये कल्याणकारी हो। हृन्नामो हमारे लिये पितर कल्याणकारी हो ॥१२॥

एक पैगवाला अज देव हमारे लिए कल्याणकारी हो, अहिर्बुध्न्य (गम्भीर गर्भ) हमारे लिए कल्याणकारी हो, समुद्र कल्याणकारी हो, आपदेत्रियोका नाती पेर हमारे लिए कल्याणकारी हो, देवशिक्षा पृथिन हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥१३॥

इन अतिनवीन बनाये जाने ग्रह (मन्त्र) हो आदित्य, रद्र, यमु लोग मेचन करें। दिव्य, पार्थिव गौत्रो (गौत्रो या गाय) ने उषस और जो यज्ञीय हैं, वे (देव) हमारी स्तुति मुनें ॥१४॥

जो यज्ञीय देवोंके यज्ञीय (पूजनीय), मनु (गजा) ने पूजनीय अमर श्रुत (अन्न)-जाता है। वे आज हमें विन्ता नान (दा) प्रदान करें, तुम नग म्यन्तिके नाय हमारे रग रग ॥१५॥

—रुद्रि, ३।३५

६ प्रातः अग्निं प्रातः इन्द्रो ह्यनु पुताग्ने इ, प्रातः निद्र-शरणागो प्रातः अश्विद्वय को। प्रातः भगवो पूषन्को यत्प्रातः प्रति (पुंस्त्वति) को, प्रातः सोम ओर रुद्र को ह्यनु पुताग्ने इ ॥१६॥

प्रातर्जित भगमुग्र हुवेम वय पुत्रमदितेयो विवर्ता ।

आध्रश्चिद्य मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्य भग भक्षीत्याह ॥२॥

—७।४१

७ अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोपस ।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत् सोमो रद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

इन्द्राग्नी वृत्रहृत्स्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समोकमा ।
अन्तरिक्ष मह्या पप्रुरोजमा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥२॥

—१०।६५

८ ऐभिरग्ने मरथ याह्यर्वाङ् नाना रथ वा विभवो ह्यश्वा ।
पत्नीवर्तस्त्रिंशत त्रींश्च देवाननुष्वघगावह मादयम्ब ॥९॥

—३।६

९ त्रीणि शता त्रींसहस्राण्यग्नि त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
ओक्षन्घृतैरस्तृणन्वहिरस्मा आदिद्धोतार न्यसादयन्त ॥९॥

—३।९

२. देवोके वारा स्थान—

१० नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो य पृणाति महदेवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमपन्ति रिन्वस्तस्मा इय दक्षिणा पिन्वते सदा ॥५॥

—१।१२५

§ २ देवों के स्वरूप

१. अग्नि—

११. त्व हि क्षैतवद्यशोग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्व विचर्पणे श्रवो वसो पुष्टि न पुष्यसि ॥१॥

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशा ।
समृधो विश्रपते कृणु जुपस्व हव्यमगिर ॥१०॥

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोच सुमर्ति रोदस्योः ।
वीहि स्वस्ति सुक्षिति दिवो नृन्द्रिपो अहासि दुरिता ।
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥

—६१५

१२ तिग्म चिदेम महि वर्षो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमान परशुर्न जिह्वा द्रविर्न द्रावयति दारु घक्षत् ॥४॥

—६१३

यथा होतर्मनुपो यज्ञेभि सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना सामानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

—६१४

१३ ह्रुवे व सूनु सहसो युवानमद्रोघवाच मतिभिर्यविष्ठ ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अघुक् ॥१॥

—६१५

५२. देवोंके स्वरूप

१. अग्नि—

११. हे अग्नि, मित्र की तरह राजयशवाले स्वामी हो। हे मय्यि वनु (वसानेवाले) तुम पुष्टिने पुष्ट करते हो ॥१॥

हे अग्नि, यज्ञकी इच्छावाले विनोंके घरमें होता होकर तुम प्रविष्ट होते हो। हे विशापति (प्रजाओंके स्वामी) नमूद करो, हे अगिरा, हव्यका सेवन करो ॥१०॥

हे मित्र-नेजवाले अग्नि देव, रोदनी (धौ और पृथिवी) में देवोंके लिये हमारी स्तुतिको कहो। योने स्वस्ति लाओ, मनुष्य का मुन्दर याम हो। पापवाले दुष्ट ऋषुओंके (हम) वने। तुम्हारी नहायता ने हम तरें, हम तरें, हम तरें ॥११॥

—भरद्वाज, ६।२

१२. तीक्ष्ण ना (उमका) आरान है, महान् शरीर है, अन्नकी तरह मुझे तृण-काष्ठ^१ माता, कुठारकी तरह जित् शान्ति हिलाना है, कलछीकी तरह काष्ठको जलाने भगता है ॥४॥

—भरद्वाज, ६।२

हे महान्-शुभ^१ होता अग्नि, जैसे मनुष्य के यज्ञमें इषि द्वारा तुमने देवों का यजन किया, उसी प्रकार चाहते आज हमारे यज्ञमें देवोंको नाच के आओ और यजन करो ॥१॥

—भरद्वाज, ६।८

१३. तुम अनिष्यानायी प्रमन्न तप्य नरान्-शुभ (अग्नि) को मृगियों द्वारा हम खन करे हो, जो कि शान् प्रयोगी कृशान् कृत श्रेष्ठ पनोंको प्रदान करता है ॥१॥

—भरद्वाज, ६।९

^१सगाम 'शक्ति (साह्य) के पुत्र।

§ २ देवों के स्वरूप

१. अग्नि—

११. त्व हि क्षैतवद्यशोग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्व विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टि न पुष्यसि ॥१॥

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशां ।
समृधो विशपते कृणु जुषस्व हव्यमगिर ॥१०॥

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोच सुमतिं रोदस्यो ।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नृन्दिषो अहासि दुरिता ।
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥

.—६१२

१२ तिग्म चिदेम महि वर्षो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमान परशुर्न जिह्वा ब्रविर्न द्रावयति दारु घक्षत् ॥४॥

.—६१३

यथा होतमनुषो यज्ञेभि सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना सामानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

.—६१४

१३ हृवे व सूनु सहसो युवानमद्रोधवाच मतिभिर्यविष्ठ ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अघ्रुक् ॥१॥

.—६१५

६२. देवोंके स्वरूप

१. अग्नि—

११ हे अग्नि, मित्र की तरह राजयगवाले स्वामी हो। हे नम्रिय वसु (बसानेवाले) तुम पुष्टिने पुष्ट करते हो ॥१॥

हे अग्नि, यज्ञकी इच्छावाले विगोले घरमें होता होकर तुम प्रविष्ट होते हो। हे विशापति (प्रजाओंके स्वामी) समृद्ध करो, हे अगिरा, हव्यका सेवन करो ॥१०॥

हे मित्र-नेजवाले अग्नि देव, रोदनी (छी और पृथिवी) में देवोंके लिये हमारी स्तुतिको कहो। छीने स्वस्ति लाओ, मनुष्य का मुन्दन वाम हो। पापवाले दुष्ट द्युभंजि (हम) बने। तुम्हारी महायता ने हम तरें, हम तरें, हम तरें ॥११॥

—भरद्वाज, ६१२

१२ तीक्ष्ण ना (इनका) धाकार है, महान् शरीर है, अश्वोंकी तरह मूढ़ने तूण-नाष्ट^१ माता, कुठारकी तरह जिह्वाको हियाना है, तन्त्रीकी तरह वाष्टको जलाने भगाना है ॥६॥

—भरद्वाज, ६१३

हे महान्-शुभ्र^२ होता अग्नि, जैसे मनुष्य ने यज्ञमें हरि द्वाग तुमने देवों का यजन किया, उनी प्रज्ञान चाहें तज हमारे यज्ञमें देवोंको नाय ने आओ और यजन करो ॥१॥

—भरद्वाज, ६१४

१३. तुम अमिष्याभाषी प्रदग्ग तग्ग नरत्त-शुभ्र (अग्नि) को मृत्तियों द्वाग हम स्वत करे है, जो कि प्रातः श्रमोने चक्षता कृत्वा श्रेष्ठ यज्ञोको प्रशान करता है ॥१॥

—भरद्वाज, ६१५

^१ मगाम ^२ शरित (साहम) के पुत्र।

१४ स जायमान परमे व्योमनि व्रतान्यग्निव्रतपा अरक्षत ।
 व्यन्तरिक्षमभिमीत सुक्रजुवँश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥
 अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुपतस्थुर्ऋग्मिय ।
 आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानर मातरिश्वा परावत ॥४॥

—६१८

१५ त्वा दूतमग्ने अमृत युगे युगे हव्यवाह दधिरे पायुमीड्य ।
 देवासश्च मर्तासश्च जागृवि विभु विशर्पति नमसा निपेदिरे ॥८॥

—६१५

१६ वैश्वानर मनसाग्नि निचाय्या हविष्मन्तो अनुपत्य स्वविद ।
 सुदानु देव रथिर वसूयवो गीर्भीरष्व कुशिकासो हवामहे ॥१॥
 अश्वो न क्रन्दन् जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे ।
 स नो अग्नि सुवीर्यं स्वदव्य दधातु रत्नममृतेषु जागृवि ॥३॥
 अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृत मे चक्षुरमृत म आसन् ।
 अर्कस्त्रिघातूरजसो विमानोऽजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥

—३१२६

१७ आ वो राजानमध्वरस्य रुद्र होतार सत्ययज रोदस्यो ।
 अग्नि पुरास्तनयित्नोरचित्ताद्विरण्यरूपमवसे कृणुध्व ॥१॥
 अय योनिश्चक्रुमा य वयन्ते जायेव पत्य उशती सुवासा ॥
 अर्वाचीन परिवीतो निपीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीची ॥२॥

—४१३

१८. नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना ।
 वृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्या रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥

—३।२३

२. अरण्य—

१९ न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
 स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते ॥५॥

—१०।१४६

आजनगधि सुरभि बह्वन्नामकृषीवला ।
 प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिष ॥६॥

—१०।१४६

। महे रणाय चक्षसे ॥१॥

। उशतीरिव मातर ॥२॥

जनयथा च

१८. हे अग्नि, दिनोंके सुदिनोंके लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-स्थान में तुम्हें स्थापित करता हूँ। तुम वृषद्वतो (धन्वर) आपवा (मरकण्ड), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ ॥४॥ (११९)

—देवश्रवा-देववात भारत, ३।२३।

२. अरण्य—

१९. दूसरा यदि न आश्रमण करे, तो अरण्यानी (जंगल) नहीं मांगती। (वहा) स्वादु फल खाकर यथेच्छ पत्र (गृहा) जा सकता है ॥५॥ आजनके गधवाली मांघी (नुरभि) बिना किनानोंके बहुत अन्नवाली, मृगोंकी माता अरण्यानीकी मैं बहुत स्तुति करता हूँ ॥६॥ (४।१६६)

—देवमुनि श्रग्मद-मुत्र, १०।१४६

२. अद्विद्वय देवो १७।५

३. आप (जल) देवी—

२०. हे आप, तुम सुखमय हो। वह (आप) हमें क्षिति (रज) मत्तान रमणीयता देने के लिये दे ॥१॥

जो तुम्हारा बन्धापनम रत है। उसे स्नेह्या साक्षात् मग्ध हमें प्रदान करो ॥२॥

हे आपो, जिनके स्थान में (हमें) भंडाई है, हम प्रदत्ता प्रसंग तुम्हारे पान आते हैं। हमें (प्रदा) जन्नन मग्धो ॥३॥

दिव्य आप बन्धान जोर आत्मा के शान्ति हमारे शीतके लिये होये। (तुम) हमारे स्थानस्थले लिये क्षिति होओ ॥४॥

—दिव्यश्रवा अन्वर्गद-मुत्र १२।९

१८ नित्वा दधे वर आपृथिव्या इच्छायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना ।
वृषहृत्या मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥

—३।२३

२. अरण्य—

१९ न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते ॥५॥

—१०।१४६

आजनगधि सुरभि वह्वन्नामकृषीवलां ।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिष ॥६॥

—१०।१४६

३. आप—

२०. आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दथातन । महे रणाय चक्षसे ॥१॥
यो व शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न । उशतीरिव मातर ॥२॥
तस्मा अरगमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च न ॥३॥
श नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शयोरभि स्रवन्तु न ॥४॥

—१०।९

१८. हे अग्नि, दिनोके मुदिनमें लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-स्वान में तुम्हें स्थापित करता हूँ। तुम वृषद्वती (घन्वर) आपया (मरकण्ज), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ ॥४॥ (११९)

—देवश्रवा-श्रवणात् भारत, ३१२३।

२. अरण्य—

१९. दूसरा यदि न आक्रमण करे, तो अरण्यानी (जगल) नहीं मारती। (वहा) स्वादु फल ग्राहक यथेच्छ पटा (रहा) जा सकता है ॥५॥ आजनके गधवाली नोधी (गुरभि) पिना किमानोंके बहुअन्नवालों, मृगोही माता अरण्यानीकी में बहुत स्तुति करना हूँ ॥६॥ (४११६६)

—श्रवमुनि इग्मन्द-मुत्र, १०।१४६

२. अद्विद्वय देवी १७।५

३. आप (जल) देवी—

२०. हे आप, तुम मुग्धमय हो। वह (आप) हमें क्षिति (रम) महान रमणीयता देगने के लिये दे ॥१॥

जो तुम्हारा कल्याणन रम है। उसे स्नेहयती मानाती नगहू हमें प्रदान करो ॥२॥

हे आपो, जिनके न्यान में (हमें) भेजती हो, हम प्रसन्नता पृथक् नृगतादे पास जाने हैं। हमें (प्रजा) जनन बनती ॥३॥

दिव्य ज्ञान तन्त्रात् जीव भ्रानन्द के यन्त्रे हमारे पीनेके लिये होवे। (गुण) हमारे स्वागन्धके लिये क्षणित होते ॥४॥

—गि-पुडीय अन्वय-गुण १२।९

४. इळा, भारती, सरस्वती—

२१. आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैमंनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्वर्हिरेद सदन्तु ॥८॥

—३।४

५. इन्द्र—

२२. स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो य शिप्रवान्वृषभो यो मतीना ।
यो गोत्रभिवृज्रभृद्यो हरिष्ठा स इन्द्र चित्रा अभितृन्धि वाजान् ॥२॥

—६।१७

२३. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे हवे सुहव शूरमिन्द्र ।
ह्वयामि शक्र पुरुहूतमिन्द्र स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्र ॥११॥
रूपरूप प्रनिरूपो बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शता दश ॥१८॥

—६।४७

२४. अय सोम इन्द्र तुम्य सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोका ।
पिवा त्वस्य सुपुतस्य चारोर्ददौ मघानि मघवन्नियान् ॥१॥

—७।२९

२५. इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ता आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिम्या याह्योक आ ॥४॥

—७।३२

४. इळा, भारती, सरस्वती—

२१. भारतीयोंके साथ भारती, देवोंके साथ इळा (दिव्य अन्न), मनुष्यों के साथ अग्नि, सरस्वती-तीरवाले (देवों) के साथ नरन्वती— तीनों देविया आकर इम कुण्ड (आसन) पर बैठें ॥८॥

—विश्वामित्र, २।४

५. इन्द्र—

२२. वह सोम को पान करे, जो घातक-ऋजीषी (विजयी), जो धनु-रक्षक है, जो क्षिप्र (मुकुट) धारी, जो मत्तियों का वृषभ (स्वामी) है, जो पर्वत-ध्वमक, वज्रधर, जो अन्धकारही है, वह इन्द्र अद्भुत बलोंको वेधे ॥२॥

—मन्द्राज, ६।१७

२३. आता इन्द्र, महायक इन्द्र, हवन-हवनमें अच्छी तरह पुकारने लायक पूर इन्द्र, शक्र (शक्तिशाली) पुङ्गव (बढ़ावा द्वारा पुकारे गये) इन्द्रको मैं पुकारता हूँ। वह मध्या (इन्द्र) हमारे लिये न्यस्त प्रदान करे ॥११॥

जो रूप-रूपमें प्रतिरूप हुआ, वह है उनके रूपको प्रकट करनेके लिये। मायाओंसे इन्द्र बहुत रसोयान्ता (बना) टोलता है, उनके दस गौ घोड़े जुते हुये हैं ॥१८॥

—गर्ग भद्राज-मुत्र, ६।४७

२४. हे इन्द्र, तुम्हारे लिये यह गौंन छाना गया है, हे घोड़ेवाले, उसके म्यान पर जन्दी लाओ। इन अच्छे प्रकार छाने वाले गौंनको लियो। हे मधवन्, लाकर मध (पान) दो ॥१॥

—शतपथ, ७।२९

२५. यह अश्याशिर (दधि-मिश्रित) गौंन इन्द्रके लिये छाने गये है। हे वज्रधर, उनके पीने, मन्त्र होनेके लिये दोनों घोड़ोंके मध (हमारे) पर लाओ ॥४॥

—शतपथ, ७।३३

४. इळा, भारती, सरस्वती—

१. आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेद सदन्तु ॥८॥

—३।४

५. इन्द्र—

२. स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो य शिप्रवान्वृषभो यो मतीना ।
यो गोत्रभिवृज्रभृद्यो हरिष्ठा स इन्द्र चित्रा अभितृन्धि वाजान् ॥२॥

—६।१७

३. आतारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे हवे सुहव शूरमिन्द्र ।

ह्वयामि शक्र पुरुहूतमिन्द्र स्वस्ति नो मघवा घात्विन्द्र ॥११॥

रूपरूप प्रनिरूपो बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय ।

इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शता दश ॥१८॥

—६।४७

२४. अय सोम इन्द्र तुम्य सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोका ।

पिवा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियान् ॥१॥

—७।२९

२५. इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।

ता आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिम्या याह्योक आ ॥४॥

—७।३२

२६ इन्द्र जहि पुमास यातुघानमुत स्त्रिय मायया शाशदाना ।
विग्नीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्तु सूर्यमुच्चरत ॥२४॥

—७।१०४

२७. गवाशिर मन्थिनमिन्द्र शुक्र पिवा सोम ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२॥

ये ते शुष्म ये तविषीमवर्धन्नर्चन्तु इन्द्र मरुतस्त ओज ।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिवा रुद्रेभि सगण सुशिप्र. ॥३॥

—३।३२

२८. आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा केचिन्नियमन्वि न पा शिनोति धन्वेवता इहि ॥१॥

—३।४५

२९ सूर उपाके तन्वं दघानो वियत्ते चेत्यमृतस्य वर्ष ।
मृगो न हस्ती तविषीमुपाण सिंहो न भीम आयुघानि विभ्रत् ॥१४॥

तिग्मा यदन्तरशनि पताति कस्मिचिच्छूरमुहुके जनाना ।
घोरा यदर्यं समृतिर्भवात्यर्घस्मानस्तन्वो वोधि गोपा ॥१७॥

भुवोविता वामदेवस्य धीना भुव सखा वृको वाजसाती ।
त्वामनु प्रमतिमाजगन्मोरुशसो जरित्रे विष्वघस्या ॥१८॥

—४।१६

हे इन्द्र, पुरुष यातुवान (राक्षस) को और माया द्वारा हानि पहुंचाती स्त्री यातुवानको मारो। मूर (मारक या मृग) देव (राक्षस) बिना गर्दनके हो नष्ट हों, वह उगते सूर्य को न देख पावे ॥२४॥

—त्रिपिठ, ७।१०४

हे इन्द्र मयें गवाशिर (गोरम-मिश्रित) क्षुक्र (ध्वेत) गोमको पियो, तुम्हारे मद के लिये हम उमे देते हैं। (उमे) ब्रह्म (ऋचा) -रु, मस्तो, रुद्रोके नाय तृप्ति होने तक पियो ॥२॥

हे इन्द्र, जिन्होंने तुम्हारे बलको, जिन्होंने तेजको बटाया, वे मरत तुम्हारे ओजको पूजें। हे यज्रहस्त, सुगिप्र (सुमुकुट) रद्रो-नाहित, गणयुक्त माध्यदिन सवन (मध्याह्नके पान) में सोम पियो ॥३॥

—विद्यमित्र ३।३२

८. हे इन्द्र, मादक मयूर रोमवाले मन्त घोटोके नाय आओ। पक्षी फसानेवाले की तरह कोई तुम्हें न रोके। मरुभूमि की तरह उन्हें पार करके आओ ॥१॥

—विश्वामित्र, ३।४५

९. हे इन्द्र, सूर्यके पाम बैठने जब तुम्हारा शरीर तुम्हारा लगर रूप विस्तृत होता है, तब मृगहस्तीकी तरह तेजने शत्रुओंको जगाने, भयकर गिह की तरह आयुषों को धारण करे नवरत्न दीप्तने हो ॥१४॥

हे धूर इन्द्र, जब हमारे निती जनोके मुद बोन तीक्ष्ण जगति गिरे, हे स्वामी, जब धोर मुद होये, तो तुम हमारे शरीरके रक्षक होना जानो ॥१७॥

यामदेवहे विचारोति तुम रक्षक होना, तुम मुद में अर्पित ग्या होना। रक्षक तुम्हारे पाम हम आते हैं। मदा तुम ग्यागार विजे बहु-प्रनमित मदा मयें म्यिज हो ॥१८॥

—शानदेश, ४।१६

३०. त्व महा इन्द्र तुम्य ह क्षा अनुक्षत्र महना मन्यत द्यौ ।
त्व वृत्र शवसा जघन्वान्तसृज सिन्धुरहिना जग्रसानान् ॥१॥

त्व त्विषो जनिमघ्नेजत द्यौरेजद् भूमिर्मियसा स्वस्य मन्यो ।
ऋघायन्त सुम्ब पवंतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आप ॥२॥

—४११७

३१ वृषा वृषन्वि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो वाहुम्या नृतम शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मै ।
दधानो वज्र वाह्वोरुशन्त द्याममेन रेजयत् प्रभूम ॥३॥

—४१२२

३२. अह मनुरभव सूर्यश्चाह कक्षीवा ऋषिरस्मि विप्र ।
अह कुत्समार्जुनेयन्यूजेह कविरुशना पश्यता मा ॥१॥

अह भूमिमददामार्यायाह वृष्टि दाशुषे मत्ययि ।
अहमपो अनय वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२॥

अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती शम्बरस्य ।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४१२६

३३. यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रयास ।
यः सूर्यं य उपस जजान य अपा नेता स जनास इन्द्र ॥७॥

३०. त्व महा इन्द्र तुम्य ह क्षा अनुक्षत्र महना मन्यत द्यौ ।
त्व वृत्र शवसा जघन्वान्त्सृज. सिन्धुरहिना जग्रसानान् ॥१॥

तव त्विषो जनिमग्नेजत द्यौरेजद् भूमिभियसा स्वस्य मन्यो. ।
ऋघायन्त सुम्ब पर्वतास आदन्धन्वानि सरयन्त आप ॥२॥

—४११७

३१. वृषा वृषन्वि चतुरश्रिमस्यत्तुग्रो बाहुम्या नृतम शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुपमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मै. ।
दधानो वज्र बाह्वोरुशन्त धाममेन रेजयत् प्रभूम ॥३॥

—४१२२

३२. अह मनुरभव सूर्यश्चाह कक्षीवा ऋपिरस्मि विप्र ।
अह कुत्समार्जुनेयन्यृजेह कविरुशना पश्यता मा ॥१॥

अह भूमिमददामार्यायाह वृष्टि दाशुपे मर्त्याय ।
अहमपो अनय वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२॥

अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकलवती शम्बरस्य ।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोवासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४१२६

३३. यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास ।
यः सूर्य य उपस जजान य अपां नेता स जनास इन्द्र. ॥७॥

जिसने पर्वतमें रहते शबरको चालीमवी शरद (वर्ष) में जा घेरा।
जिसने ओजायमान हो मोते दानव अहिको मारा। हे लोगो, वह
इन्द्र है ॥११॥

—गृत्तमद, २।१२

३४. हे इन्द्र, जो कि हमारे स्तोता पितरोंने तुममें ही नारे धन प्राप्त किये,
तुमने सुन्दर दुहानेवाली गायें, तुममें अश्व प्राप्त किये। देवों के भयतों
केलिये अत्यन्त दाना तुम धन जीतते हो ॥१॥

स्त्रियोंके साथ जैसे राजा, वैसे तुम रहते हो। विद्वान् कवि हमें यश
दो। गीवों और अश्वों द्वारा हे मघवन्, (हमारी) वाणी को मानो।
आपने (भक्त) हमें धन प्रदान करो ॥२॥

हे इन्द्र, स्पर्धा करती हर्षप्रद, देवोंकी कामना करती ये हमारी स्तुतिया
तुम्हारे पास जाती हैं। तुम्हारा पय धन के लिये हमारे पास आवे,
तुम्हारी मुमतिमें हम शरण पावें ॥३॥

दुहनेकी इच्छामें धेनुको जैसे सुन्दर घास, वैसे ही वसिष्ठने तुम्हारे
लिये मन्त्र रचे। सभी मुझमें तुमको ही गोपति कहने हैं, इन्द्र हमारी
मुमति (स्तुति) मुझमें पास आवे ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

३५ वज्रधारी इन्द्रके लिये गायें मीठा दूध (जागिर) दृग्ती हैं। जब
वह उन्हें पास पाये ॥६॥

हे प्रियमेधो, पूजा करो, नख पूजा करो, पूजा करो, हे पुत्रो, पूजा
करो, दृढ पुत्र की तरह पूजा करो ॥८॥

गंगा (पदा-वाजा) आवाज दे रहा है। इन्द्रके लिये द्रव्य (मन्त्र)
उद्गोष हुआ। गोधा (चर्मपाद) चारों ओर गन्ध का रहा है।
विशा (तनु-पाद) चारों ओर वज्र रंग है ॥९॥

जिसने तुम्हारे तन्त्र नये नयन का इन्द्र देखा है। जिनके लिये
माताके लिये वसिष्ठ महिष मृगको दत्त ॥१५॥

य. शम्बरं पवर्तेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमान यो अर्हि जघान दानु शयान स जनास इन्द्र ॥११॥

—६।१२

अत्यासो न ये मरुतः स्वचो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या ।
ते हर्म्येष्ठा शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिन पयोधा ॥१६॥

—७।५६

३४ त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गाव सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्व वसु देवयते वनिष्ठ ॥१॥
राजेव हि जनिभि क्षेप्येवाव द्युभिरभि विदुष्कवि सन् ।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायत शिशीहि राये अस्मान् ॥२॥
इमा उ त्वा पस्पृधानासोत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुपस्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥३॥
धेनु न त्वा सुयवसे द्रुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठ ।
त्वामिन्मे गोपति विश्व आहा न इन्द्र सुमति गत्त्वच्छ ॥४॥

—७।१८

३५. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्ने वज्रिणे मघु । यत् सीमुपहूरे विदत् ॥६॥

अर्चन्त प्रार्चन्त प्रियमेघासो अर्चन्त ।

अर्चन्तु पुत्रका उत पुर न घृण्वर्चन्त ॥८॥

अव स्वराति गर्गरो गोवा परि सनिष्वणत् ।

पिगा परि च निष्कददिन्द्राय ब्रह्मणोद्यत ॥९॥

अर्भको न कुमारकोधि तिष्ठन्नव रथ ।

स पक्षन्महिप मृगं पित्रे माये विभुत्रत् ॥१५॥

जिसने पर्वतमें रहते शबरको चालीसवी शरद (वर्ष) में जा घेरा।
जिसने ओजायमान हो मोने दानव अहिको मारा। हे लोगो, वह
इन्द्र है ॥११॥

—गृत्तमद, २।१२

३४ हे इन्द्र, जो कि हमारे स्तोता पितरोंने तुमसे ही गारे धन प्राप्त किये,
तुमने सुन्दर दुहानेवाली गायें, तुमने अश्व प्राप्त किये। देवों के भक्तों
केनिये अत्यन्त दाता तुम धन जीतते हो ॥१॥

स्त्रियोंके साथ जैसे राजा, वैसे तुम रहते हो। विद्वान् कवि हमें यश
दो। गौवों और अश्वों द्वारा हे मधवन्, (हमारी) वाणों को मानो।
अपने (भक्त) हमें धन प्रदान करो ॥२॥

हे इन्द्र, स्पर्धा करती हर्षप्रद, देवोंकी कामना करती ये हमारी स्तुतिरा
तुम्हारे पान जाती है। तुम्हारा पय धन के लिये हमारे पान जाये,
तुम्हारी मुमतिमें हम शरण पावें ॥३॥

दुहनेकी इच्छामे धेनुको जैसे सुन्दर धान, वैसे ही वसिष्ठने तुम्हारे
लिये मन्त्र रचे। नभी मुझमे तुमको ही गोपति कहते हैं, इन्द्र हमारे
मुमति (स्तुति) मुनने पान आये ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

३५. वज्रपारी इन्द्रके लिये गावें मीठा दूध (आशिर) दुहायी हैं। जरा
बह उन्हें पान पाये ॥६॥

हे प्रियमेधो, पूजा करो, मूव पूजा करो, पूजा करो, हे पुत्रों, पूजा
करो, दूध पुर की तरह पूजा करो ॥८॥

गर्गन (घटा-ब्राजा) आवाज दे रहा है। इन्द्रके लिये काश (मन्त्र)
उत्पन्न हुआ। गोधा (धर्मगण) पारो और शरद ण का है।
पिगा (मनु-ब्राजा) पारो शरद बरत को है ॥९॥

जिनसे मुनागरी उन्नत कये स्वयंत्त मा इन्द्र दैक है। जन्मे विष्णु-
माताके लिये अस्त्रिष्ठ अस्त्रिष्ठ अस्त्रिष्ठ अस्त्रिष्ठ ॥१०॥

इद सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीप शाप नद्यो वहन्ति ।
लोपाश सिंह प्रत्यचमत्सा क्रोष्टा वराह निरतक्त कक्षात् ॥४॥

शश क्षुर प्रत्यच जगाराद्रि लोगेन व्यभेदमारात् ।
वृहन्त चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभ शूशुवान् ॥९॥

सुपर्ण इत्या नखमासिषायावरुद्ध परिपद न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिपस्तर्प्यावान् गोघा तस्मा अयथ कर्षदेतत् ॥१०॥
—१०१२

४०. सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्यो ।
द्युम्नी सुंशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

हरिश्माशरुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्षत ।
अवंद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिपद्धरी ॥८॥
—१०१९६

६. ऋभु—

४१. आगन्नभूणामिह रत्नधेयमभूत् सोमस्य सुपुतस्य पीति ।
सुकृत्यया यत् स्वपस्यया च एक विचक्र चमसं चतुर्वा ॥२॥

कि मयस्विच्चमस एष आस य काव्येन चतुरौ विचक्र ।
अया सुनुष्व सवन मदाय पात ऋभवो मघ्न सोम्यस्य ॥४॥

हे स्तोता, मेरी यह (पहेली) बतलाओ — (इन्द्रकी इच्छा होनेपर) नदिया (अपनी) बाढ़ उलटी बहायें, लोमड़ी आते सिंहको ले जाये, स्यार बराहको बनमें भगा दे ॥४॥

इन्द्रकी इच्छा होनेपर नरगोश तीक्ष्ण विरोधीको निगल जाये, एक छलेने दूरके पत्थर (पहाड़) को मैं तोड़ दूँ। छोटेके बनमें मैं बड़ेको फाड़ सकूँ, बछड़ा भी फूलकर वृषभ (गाड़) को गा जाये ॥९॥

यहां सुपर्ण (गरुड) नगको छोड़ दे, जैसे कि पकड़ा सिंह पिजरेको। प्यासा महिष पका जाये, चमड़ेकी रस्मी उतके उलझे पैनोंको पकड़े रहे ॥१०॥

—यजुः, १०।२८

४०. गो जो बहुत आकर्षक, सुनहला आयुष ताम्रमय बज्र उसके हाथोंमें है। वह घृतिमान्, मुशिप्र, महारक, प्रोधस्वी वाणवाके इन्द्रके लिये पीले रूपवाले मोम (निक्त) करते हैं ॥३॥

जो सुनहले मूछ-दायी, सुनहले वेगवाना, पत्थरसे दृढ़, जो अश्व-स्वामी बरता है। अश्वघनिक, घोड़ोंके स्वामी अपने दूतगामों घोड़ोंको मारे कष्टोंमें पार कराता है ॥८॥

—वर आगिन, १०।१६

६. ऋभु—

४१. यहाँ (तृतीय गयनमें) ऋभुओं का ग्लान-दान है। अग्नी तन्त्र छाने मोमका पान हुआ। मुन्दर तममें द्वारा और मुन्दर कौण्ड दान जब एक चमनको पान किया ॥२॥

बिन चीजा यह चमन था, जिसे तुमने काव्य (कौण्ड) द्वारा पार किया? हे ऋन्विजो, मरके लिये फिर मोम छानो, हे ऋभुसो, तुम मधुर मोमको लियो ॥४॥

यत्तृतीय सवन रत्नघेयमकृणुष्व स्वपस्या सुहस्ता ।
तद्वृभव परिषिक्त व एतत् स मदेभिरिन्द्रियेभि पिवध्व ॥९॥

—४।३५

४२. अनश्वो जातो अनभीशुरुष्य्यो रथस्त्रिचक्र परिवर्तते रज ।
महत्तद्वो देवस्य प्रवाचन द्यामुभवः पृथिवी यच्च पुष्यथ ॥१॥

—४।३६

७. क (प्रजापति) —

४३ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवा ॥
यस्य छायाभृत यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यः प्राणतो निमिपतो महित्वैक इद्राजा जगतो वभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहुः ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य वाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

येन द्यौरप्रा पृथिवी च द्हुळा येन स्व. स्तमित येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यान्यो विश्वा जातानि परिता वभूव ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय स्याम पतयो रयीणा ॥१०॥

—१०।१२१

हे मुहम्मत् ऋभुओ, तृतीय सवन (सायकालीन सोमपान) में जो तुम सुन्दर कौशल मे अर्जित रत्न दान करते हो, गो मत्त इन्द्रियोषि परिपिक्त (सोम) को पियो ॥९॥

—यामदेव ४।३५

४२ हे ऋभुओ, तुम्हारा काम मृत्यु है। लोगोका अश्विद्वयको दिया त्रिचक्र रथ, बिना अश्वके, बिना लगामके आपागमें चारो ओर घूमता है। हे ऋभुओ, वह तुम्हारे दिव्यत्वका वज्र ग्यापन है, जो कि तुम द्यौ और पृथिवीका पोषण करते हो ॥१॥

—यामदेव, ४।३६

७ क (देवता)—

४३ पहले हिरण्यगर्भ (सुनहले गर्भवाला) मौजूद था। (वह) उत्पन्न नृतोका एतामात्र पति था। उसने पृथिवी और इन शोको धारण किया। उस क (देवता) के श्रिये हम हवि ने (पूजा) करते हैं ॥१॥

जो आत्मदायक, बलदायक है, जिनकी सुनी उपासना करते हैं। देवगण जिनकी प्रशाना करते हैं। जिनकी छाया अमृत है, जिनकी (छाया-हीनता) मृत्यु, उन क (देवता) ॥२॥

जो मास लेनेवाले, पलक मारनेवाले जगत्का एतमात्र राजा अपने हुआ। जो इन दो पाये-ओपाये प्राणियोका स्वामी है, उन क (देवता) ० ॥३॥

जिनकी महिमा ने यह हिमयान्, पृथिवी गन्धिन मन्द जित्तवा बतशने है, जिनकी ये दिशायें है, तिसरी (वह) बाहु है, उन क (देवता) ० ॥४॥

जिनके द्वारा द्यौ उग्र है, जो पृथिवी दृढ है। जित्तो मर्यांगो, जिनके नाम से पामा है। जिनने अन्तर्गर्भमें मोक्षो को नाश, उन क (देवता) ० ॥५॥

—हिरण्यगर्भं दशार्ति-मुत्र, १०।१२१

यत्तृतीय सवन रत्नघेयमकृणुष्व स्वपस्या सुहस्ता ।

तद्वृभव परिषिक्तं व एतत् स मदेभिरिन्द्रियेभि पिवध्व ॥९॥

—४।३५

४२. अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्र परिवर्तते रज ।

महत्तद्वो देवस्य प्रवाचन द्यामृभव पृथिवी यच्च पुष्यथ ॥१॥

—४।३६

७. क (प्रजापति) —

४३ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवी द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवाः ॥

यस्य छाया'मृत यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

य प्राणतो निमिपतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहुः ।

यस्येमा' प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च द्हुळा येन स्व. स्तमित येन नाक. ।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यान्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।

यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय स्याम पतयो रयीणा ॥१०॥

—१०।१२१

हे मुहस्त ऋभुओं, तृतीय नवन (मायफालीन मोमपान) में जो तुम सुन्दर कौशल में अर्जित रत्न दान करते हो, गो मन्त इन्द्रियोंके परिपिक्त (मोम) को पियो ॥९॥

—यामदेव ४।३५

४२. हे ऋभुओं, तुम्हारा काम मृत्यु है। लोगोंका अश्विद्वयको दिया त्रिचक्र रथ, बिना अश्वके, बिना लगामके बाकागमें चारों ओर घूमता है। हे ऋभुओं, वह तुम्हारे दिव्यत्वका वज्र स्थापन है, जो कि तुम छौ और पृथिवीका पोषण करते हो ॥१॥

—यामदेव, ४।३६

७. क (देवता)—

४३. पहले हिरण्यगर्भ (सुनहले गर्भवाला) मौजूद था। (यह) उत्पन्न भूतोंका एकमात्र पति था। उसने पृथिवी और इन छौको धारण किया। उन क (देवता) के लिये हम हवि नै (पूजा) करते हैं ॥१॥

जो आत्मदायक, बलदायक है, जिसकी सभी उपासना करने हैं। देवगण जिनकी प्रशंसा करते हैं। जिसकी छाया अमृत है, जिसकी (छाया-हीनता) मृत्यु, उस क (देवता) ॥२॥

जो मान केनेवाले, पलक मारनेवाले जगत्का एकमात्र राजा बाने हुवा। जो इन दो पाये-चौपाये प्राणियोंका स्वामी है, उन क (देवता) ० ॥३॥

जिनकी महिमा ने यह हिमवान्, पृथिवी नदिन समस्त जिनका यतलाये है, जिनकी ये दिनायें हैं, जिनकी (यह) वाहू हैं, उन क (देवता) ० ॥४॥

जिनके हाथ छौ उग्र हैं, और पृथिवी दृढ़ है। जिनके न्यूनतां, जिनने जात सों चामा है। जिनके जन्तुगिमें मोतों को नासा, उन क (देवता) ० ॥५॥

११. पूषन्

४७. वयमु त्वा पथस्पते रथ न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥
अदित्सन्त चिदाघृणे पूषन्वानाय चोदय । पणेद्विद्विभ्रदा मन ॥३॥

—६।५३

४८ पूषन्विबुषा नय यो अजसानुसासित । य एवेदमिति ब्रवत् ॥१॥
माकिर्नेशनं माकी रिषन् माकी सशारि केवटे । अथारिष्टाभिरागहि ॥७॥
परि पूषा परस्ताद्धस्त दघातु दक्षिण । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१०॥

—६।५४

४९. रथीतमं कपर्दिनमीशानं राघसो मह । राय सखायमीमहे ॥२॥

—६।५५

५०. य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणं । न तेन देव आदिशे ॥१॥

उत घा स रथीतमं सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥

उताद परुषे गवि सूरश्चक्र हिरण्यय । न्यैरयद्रथीतमः ॥३॥

—६।५६

५१ सोममन्य उपासदत्पातवे चम्बोः सुत । करम्भमन्य इच्छति ॥५॥
अजा अन्यस्य बहूनयो हरी अन्यस्य सम्भृता ।

ताम्या वृत्राणि जिघ्नते ॥३॥

—६।७

११. पूषन्—

४७. हे मागोंके पति पूषन्, अन्न लाभ के लिये हमने तुम्हें रखी तरह जोत दिया ॥१॥

हे पूषन्, अ-दाता को दानके लिये प्रेरित करो, पणिके मन को थोमल करो ॥३॥

—भरद्वाज, ६।५३

४८ हे पूषन्, हमें तुम ऐसे विद्वान् के पान ले चशो, जो हमारा ठीक अनुगामन करे, जो (हमने) "यही है" बहे ॥१॥

(हमारे गौ-अश्व) नष्ट न हो, उन्हें कोई न मारे, कृषे-नदमें न गिरे, तुम (उन्हें लिये) अरिष्टो (मगलो) के नाथ आओ ॥७॥

पूषन् दूग्ने दाहिने हाथको पनारे, हमारा घोषा पशु फिर आवे ॥१०॥

—भरद्वाज, ६।५४

४९ (जो) महानतम रयी कपदं(जूडा)-वागी महान् वैभयवा स्वामी है, (उम) पूषन् सन्माने हम धन मागते हैं ॥२॥

—भरद्वाज, ६।५५

५० जो इस पूषन्को "करभ (मत्त) भयी" कह स्तुति करता है, उसे (दुग्ने) देवताको स्तुति नहीं करनी पड़ती ॥१॥

(वह) महानतम रयी, नत्पति है। इन्द्र अपने नग्ना (पूषन्) के साथ मिलकर वधुआको मारता है ॥२॥

महानतम रयी पूषा सूर्यके रखके नुनहके चररोको इस भेष में पलाता है।

—भरद्वाज, ६।५६

५१ (हे इन्द्र-पूषन्, तुममें) एव (इष्ट) दो वधुओंमें छाने मागको पाने जाता है, इन्द्र पूषन् करभ (मत्त) पाता है ॥२॥

एव (पूषन्) के पावन प्राण है, इन्द्र (इष्ट) जो के जानेकाने दो पोंहे। इनके प्राण वधुआका मागते हैं ॥३॥

—भरद्वाज, ६।५७

५२. अजाश्व पशुपा वाजपास्त्यो धिय जिन्वो भुवने विश्वे अर्पित ।
अष्टा पूषा शिथिरामुद्धरीवृजत् सचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२॥

यास्ते पूषन्नावो अन्त समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि द्यूत्या सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमान ॥३॥

पूषा सुवन्वुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चा ।
य देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृत तवस स्वच ॥४॥

—६।५८

१२. प्रजापति—

५३. नासदासीन्नो सदासीत्तदानी नासीद्भ्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीव कुह कस्य शर्मन्नम्भ किमासीद् गहन गभीर ॥१॥

न मृत्युरासीदमृत न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेत ।
आनीदवात स्वघया तदेक तस्माद्धान्यद्ध पर किंचनास ॥२॥

तम आसीत्तमसा गूहूळमग्ने प्रकेत सलिल सर्वमा इद ।
तुच्छ्येनाम्बपिहित यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैक ॥३॥

कामस्तदग्ने समवर्तताधिमनसो रेत प्रथम यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेपामध स्विदासीदुपरि स्विदासीत् ।
रेतोघा आसन्न मन्दिमान आसन्नन्वधा शतस्त्रान् पापति परस्त्रान् ॥५॥

५२ जो बजवाहन, पद्मपालक, शक्तिपुत्र भवनवाला, स्तुति-प्रेम, नारे भुवन में व्याप्त है। वह पूषन् देव मारे भुवनको प्रसंगित करते हाथमें तीक्ष्ण आग धारें जाता है।२॥

हे पूषन्, समुद्र के मध्यमें अन्नन्दिममें जो तुम्हारे सोनेकी नौकायें चलती हैं, उनके साथ तुम मूर्खकी दृढता के लिये प्रेमचक्र, श्रय (यश, धन) की इच्छा नें जाते हो, ॥३॥

पूषन् छी और पृथिवीका सु-वन्द्य, अन्नपति, मघ (धन) यान्, दर्शनार्थ तेजवाश हूँ। जिन मुगामी, शक्तिशाली प्रेमपरमगतो देवोंने मुझको लिये प्रदान किया ॥४॥

—नरदाज, ६।५८

१२. प्रजापति—

५३ उन नमय न जमन् या न मन् या, न रज (रौत) या, न जो व्योमने परे हूँ (वह या)। क्या आवरण या? तब जितना वन्य या? जल कैसा गहन-मन्मोह या ॥११॥

उन नमय न मृत्यु थी, न अमन्ता न गन्-दिवा भेद या। बिना वायुका यह अकेला अपनी प्रकृति में नान में रहा या। उतने दूनाग कुछ भी नहीं या।२॥

तम या, पूर्वपालमें तम में दत्त वह नय अमन्त मन्त्र या। जब सूँठने नव दत्त हुआ या, तन्मन्मोह मन्त्रिणा द्वारा वह एक उत्पन्न हुआ ॥३॥

नय पहले काम (तमता) मोहद या, ते तिम मन में प्रथम गे (तीरे) या। शक्तिगत रूँट द्वारा हज्जमें दिवात जन्मे अमन्में उम मन्मो प्रान किया ॥४॥

इतनी विना दिखी पैरी नीने भी या उन थी। मन्मोहक मे, मन्त्रिकारे थी, तब मन्मोह (मन्मोह विचार) थी, फले प्रकृति, मन्त्रिणी ॥५॥

को अद्वा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इय विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनैनाथा को वेद यत् आवभूव ॥६॥

इय विसृष्टिर्यत् आवभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

—१०।१२९

५४ यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुमिस्तत् एकशत देवकर्मेभिरायत् ।
इमे वयन्ति पितरो य आययु प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत् ।
छन्द. किमासीत् प्रउग किमुक्थ यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स वभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्चीरिन्द्रस्य त्रिष्टुविह भागो अहू न ।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋपयो मनुष्या ॥५॥

सहस्तोमा सह छन्दस आवृत सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्या ।
पूर्वेषा पन्यामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥७॥

—१०।१३०

१३. मन्यु—

५५. यस्ते मन्यो विघ्नद्वज्रसायक सह ओज पुष्यति विश्वमानुपक् ।
साह्याम वासमार्यं त्वया यजा सहस्क्रतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

ठीक कौन जानता है। कौन यहा उसको कहे? कहा मे पैदा हुई, कहा से यह सृष्टि आई? देवलोक इसके सृजनके पीछे पैदा हुये। कौन जानता है, जहासे वह आई ॥६॥

यह सृष्टि जहामे आई (किमने) बनाया या (किसने) नही बनाया। जो इसका अध्यक्ष परम व्योममें है, सो हे दोस्त, जानता है अथवा नही जानता ॥७॥

—प्रजापति, १०।१२९

५४ जो यज्ञ तन्तुओंमे चागे ओर ताना, एक सौ देवकर्मों द्वारा लम्बा बना। उसे, जो यह पितर आये है, वह बुनते है। लम्बा बुनो, चौडा बुनो, यह कहते तने (वस्त्र) पर लगे है ॥१॥

जब सारे देवोंने देव (प्रजापति) का यजन किया, तब यज्ञका नाप (प्रतिकृति) क्या था, निदान (सकल्प) क्या था, धी क्या था, परिधि (पलाश आदिका माप) क्या था, छन्द क्या था, प्रउग और उक्थ (स्तोत्र) क्या था ॥३॥

अग्नि की जोडीदार गायत्री हुई, उष्णिक्के माय सविता सम्मिलित हुआ। अनुष्टुप्से सोम, उक्थोमे तेजस्वी बृहस्पतिकी वाणीकी बृहतीने सहायता की ॥४॥

विराट् मित्र-वरुणकी आश्रित हुई, दिनको इन्द्र का भाग यहा त्रिष्टुप् हुआ। सारे देवताओंको जगती व्याप्त हुई, इस प्रकार ऋषियों और मनुष्यों ने यज्ञ किया ॥५॥

स्तोम, छन्द, माप के माय धिरे नात दिव्य ऋषि थे। जैसे सारथी लगामको वैसे धीरोने पूर्वजोंके पथको देखकर पकडा ॥७॥

—यज्ञ प्रजापति-पुत्र, १०।१३०

१३. मन्वु (श्लोक)—

५५ हे यज्ञ, चाण, मन्वु, जिनने तुम्हें प्रजा, वह नर-विजयी ओजसा पोषण करता है। नाहनकारी बल-बुल बल (-रूप) तुम्हारे नाम विनाशक का नाम और अज्ञानोंके अज्ञान कहेंगे ॥६॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इय विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनैनाथा को वेद यत आवभूव ॥६॥

इय विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

—१०।१२८

५४ यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुमिस्तत एकशत देवकर्मैभिरायत ।
इमे वयन्ति पितरो य आययु प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत्
छन्दः किमासीत् प्रउग किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स वभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थर्महस्वान् वृहस्पतेर्वृहती वाचमावत् ॥४॥

विराग्मिन्नावरुणयोरभिश्चीरिन्द्रस्य त्रिष्टुविह भागो अह्न ।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋपयो मनुष्या ॥५॥

सहस्तोमा सह छन्दस आवृत सहप्रमा ऋपय सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषा पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥७॥

—१०।१३

१३. मन्यु—

५५ यस्ते मन्यो विधद्वज्रसायक सह ओज पुष्यति विश्वमानुपक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

ठीक कौन जानता है। कौन यहा उसको कहे ? कहा मे पैदा हुई, कहा से यह सृष्टि आई ? देवलोक इसके सृजनके पीछे पैदा हुये। कौन जानता है, जहासे वह आई ॥६॥

यह सृष्टि जहासे आई (किसने) बनाया या (किमने) नही बनाया। जो इसका अव्यक्त परम व्योममें है, मो हे दोस्त, जानता है अथवा नही जानता ॥७॥

—प्रजापति, १०।१२९

५४ जो यज्ञ तन्तुओसे चारो ओर ताना, एक मो देवकर्मों द्वारा लम्बा बना। उसे, जो यह पितर आये है, वह बुनते है। लम्बा बुनो, चौडा बुनो, यह कहते तने (वस्त्र) पर लगे है ॥१॥

जब सारे देवोंने देव (प्रजापति) का यजन किया, तब यज्ञका नाप (प्रतिकृति) क्या था, निदान (सकल्प) क्या था, घी क्या था, परिधि (पलाश आदिका माप) क्या था, छन्द क्या था, प्रउग और उक्थ (स्तोत्र) क्या था ॥३॥

अग्नि की जोडीदार गायत्री हुई, उष्णिक्के नाथ मविता मम्मिलित हुआ। अनुष्टुप्से सोम, उक्थोंने तेजस्वी बृहस्पतिकी वाणीकी बृहतीने सहायता की ॥४॥

विराट् मित्र-वरुणकी बाधित हुई, दिनको इन्द्र का भाग यहा त्रिष्टुप् हुआ। सारे देवताओको जगती व्याप्त हुई, इन प्रकार ऋषियो और मनुष्यो ने यज्ञ किया ॥५॥

स्तोम, छन्द, माप के साथ घिरे नात दिव्य ऋषि थे। जैसे मारथी लगामलो वैसे धीरोने पूर्वजोंके पथको देगकर पकडा ॥७॥

—यज्ञ प्रजापति-भुव, १०।१३०

१३. मन्वु (त्रोष)—

५५ हे वज्र, वाण, मन्वु, जिमने तुम्हें पूता, वह नयं-विजयी ओजका पोषण करता है। नाह्यकारी बल-युक्त बल (-रूप) तुम्हारे नाथ मिलकर हम दास और आर्चनों पराजित करेंगे ॥१॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदा ।
मन्यु विश ईळते मानुषोर्या पाहि नो मन्यो तपसा सजोपा ॥२॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्व न ॥३॥

—१०।८३

५६ त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृपिता मरुत्व ।
तिग्मेपव आयुधा सशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपा ॥१॥

अग्निरिव मन्यो त्विपित सहस्व सेनानीर्न सद्दुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२॥

—१०।८४

१४. मित्र—

५७. मित्रो जनान् यातयति ध्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत धा ।
मित्र कृष्टीरनिमिपाभिचष्टे मित्राय हव्य धृतवज्जुहोत ॥१॥

प्र म मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति यत्नेन ।
न हन्यते न जीयते त्वीतो नैनमहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥

महा आदित्यो नममोपमद्यो यात यज्जनो गृणते मुशेव ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविराजुहोत ॥५॥

परिशिष्ट १. ऋचायें

मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु होता, वरण, अग्नि है। 'मानुषी प्रजायें मन्यु की स्तुति करती हैं। हे मन्यु, तपमें युक्त हो तुम हमारी रक्षा करो ॥२॥

हे बलवानोंमें अत्यन्त बलवान् मन्यु, तपके नाय आओ, और शत्रुओंको मारो। अमित्रहन्ता, वृत्रहन्ता और दस्युहन्ता तुम हमारे लिये सारे घनोंको लाओ ॥३॥

—मन्यु तपम्-पुत्र, १०।८३

५६ हे मन्यु, तुम पर आरूढ हो प्रहार करते, हर्षित होते, घर्षण करते भरतवाले, तीक्ष्ण वाणवाले, आयुषोंको तेज करते, अग्निरूप नेता आग्रमण करने के लिये जायें ॥१॥

हे मन्यु, अग्निकी तरह दीप्तिमान् हो, युद्धमें पुकारे जाकर, हमारे सेनानी हो, बढ़ो। शत्रुओंको मारकर घनको वाटो, भोजको बढ़ाने दुश्मनों को दबाओ ॥

—मन्यु तपम्-पुत्र, १०।८४

मित्र—

मित्र बोलता हुआ लोकोको प्रेरित करता है, मित्रने पृथिवी और शीकों धारण किया, मित्र आदमियोंको अनिमिष दृष्टिसे देखता है, मित्रके लिए घृत-युवन हवि हवन करो ॥१॥

हे मित्र आदित्य, जो व्रत (यज्ञ) द्वारा तुम्हारे नेत्र करता है, वह गनुष्य मवं प्रथम होये। तुम्हारे द्वारा नक्षत्र आर्यों न माग जाता है, न जीता जाता है, न उने नक्षत्रीय या इरने मफट गाता ॥२॥

महान् आदित्य नमन्नात् न नेवनीय है। जन-प्रेरक परन्तु नितान्त पर कृपालु है। उन अत्यन्त स्तुत्य मित्रों लिये उन प्रिय हवित्तों आगमें हवन करो ॥५॥

मित्राय पत्र येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान्विश्वान्विभर्ति ॥८॥
—३१५९

१५. यम—

देखो १५।७८, ७९

१६. रुद्र—

५८. इमा रुद्राय स्थिरघन्वने गिर क्षिप्रेषवे देवाय स्वघान्वे ।
अपाह्ळाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुघाय भरता शृणोतु न ॥१॥

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्षमया चरित परि सा वृणक्तु न ॥
सहस्रन्ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषु ॥३॥

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसिती हीळितस्य ।
आ नो भज वर्हिषि जीवशसे यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥४॥

—७।४६

५९. इमा रुद्राय तवसे कर्पादिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मती ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्व पुष्ट ग्रामे अस्मिन्नानावृरं ॥१॥

त्वेष वय रुद्र यज्ञसाध वकु कविमवसे निवयामहे ।
आरे अस्मद् दैव्य हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥४॥

दिवो वराहमरुप कर्पादिन त्वेष रूप नमसा नि हवयामहे ।
हस्ते विभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छदिरस्मम्य यमत् ॥५॥

—१।११४

बहुत बली मित्रके लिये पाचो जन नियम करते है, वह मारे देवो का पालन करता है ॥८॥

—विश्वामित्र, ३।५९

यम—

देखो यही (१५, ७८, ७९)

१५. रुद्र—

५८ हे भरतो, स्थिरधनुष, क्षिप्र-बाण, स्वधा-युक्त, अजेय, जेता, विघाता, तीक्ष्ण-आयुध रुद्र के लिये यह हमारी स्तुतिया है, इन्हें सुनो ॥१॥

हे रुद्र, द्यौके ऊपरसे छोडी जो तुम्हारी विजली पृथ्वीपर विचरण करती है, वह हमें छोड दे। हे स्वपिवात (कृपामय), तुम्हारी हजारो औपधिया है। हमारे पुत्र-पौत्रो को हानि न पहुंचाओ ॥३॥

हे रुद्र, हमें न मारो, न दूर करो। शृद्ध हुये तुम्हारे वनन में हम न होवें। हमारे प्राणि-हितकर यज्ञमें आयो। तुम हमेगा स्वस्तिके गाय हमारी रक्षा करो ॥४॥

—यमिष्ठ, ७।४६

५९ शक्तिशाली, जूडाघारी, वीर, पति रुद्रके लिये हम यह स्तुतिया लाने है, जिनमें कि इन ग्राम में दो-पायो-चौपायोका कल्याण हो, नभो पुष्ट और निरोग हो ॥१॥

हम दीप्तिमान्, यज्ञमाधक, वक्र, कवि रुद्रको पुकारते हैं। वह (अपने) दिव्य शोधको हमने दूर फेंके। हम उनकी मुमति (कृपा) की प्रार्थना करने है ॥४॥

हम द्यौ के लाल वरगृह वपदंघारी दीप्तिमान् रूप (रुद्र) को पुकारने है। हाथमें श्रेष्ठ औपधियो को धारण लिये वह हमें गुण, रक्षा, गृह प्रदान करें ॥५॥

—शुल जागिरन, १।११

१७. वरुण—

६० आचष्ट आसा पाथो नदीना वरुण उग्र सहस्रचक्षा ॥१०॥
राजा राष्ट्राणा पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्र विश्वायु ॥११॥

—७।३४

६१ ता नो रासन्नातिपाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरुत्रीभि सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदश्रो विदधातु राय ॥२२॥

—७।३४

६२ यदद्य सूर्यं ब्रवो नागा उद्यन्मिन्नाय वरुणाय सत्य ।
वय देवश्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्त ॥१॥

—७।६०

६३. धीरा त्वस्य महिना जनूपि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्व नुनुदे वृहन्त द्विता नक्षत्र पप्रथच्च भूम ॥१॥

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षुपो एमि चिकितुपो विपृच्छ ।
समानमिन्मे फवयश्चिदाहुरय तुम्य वरुणो हृणीते ॥३॥

किमाग आस वरुण ज्येष्ठ यत् स्तोतार जिघाससि सखाय ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोव त्वानेना नममा तुर इया ॥४॥

अर दासो न मीह्ळुपे कराण्यह देवाय भूर्णये नागा ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्स राये कवितरो जुनाति ॥७॥

—७।८६

१६. वरुण—

६० सहस्र-नेत्र, उग्र, वरुण इन नदियों के पाय को जानता है ॥१०॥
वह राष्ट्रोंके राजा नदियोंका गौरव है, उसका क्षत्र (राज्य) विश्वव्यापी
और अनुपम है ॥११॥

—वनिष्ठ, ७।३४

६१ वे दान-निपुण (देवपत्निया) हमें धन दें। द्यौ-पृथिवी, वरुणानी
हमारी प्रार्थना सुनें। मुदानी, सुधरण, त्वष्टा रक्षिका देवियों के
साथ हमारे लिये धन प्रदान करे ॥२॥

—वनिष्ठ, ७।३४

६२ हे सूर्य, जो कि उगते हुये (हमें) पाप-रहित करो, मित्र-वरुणको नत्स्य
कहो। हे अदिति, हम देवोंके प्रिय हो। हे अयंमा, स्तुति करने हम
(तुम्हारे) प्रिय हो ॥१॥

—वनिष्ठ, ७।६०

६३. इत (वरुण) की महिमासे लोग धीमान् होवें, जिनने विशाल द्यौ-
पृथिवीको घामा, जिनने दोनो उच्च नाक (स्वर्ग) और वृहत्
नक्षत्रको प्रेरित किया, और भूमिको विस्तृत किया ॥१॥

हे वरुण, देवनेकी इच्छासे मैं (अपने) उन पापके चारेमें तुमने
पूछता हू। पूछते हुए मैं विद्वानोंके पाम जाकर पूछता हू। कवियोंने
एक मी ही (वात) मुझे कही, "यह वरुण तुम पर क्रुद्ध है" ॥३॥

हे वरुण, मेरा कौन ना पाप है, जो कि तुम अपने ज्येष्ठ भग्या स्तोत्राको
मारना चाहते हो। हे दुर्धर्ष शक्तिशाली, उठे मुझे बतलाओ, (कि)
मैं इस नमस्कारके साथ तुरन्त तुम्हारे पाम जाऊ ॥४॥

निष्पाप हों दानशी तर्हू मेचरु वरुणदेवकी सेवा करूंगे। हम अज्ञा-
नियोंको म्यामी (वरुण) देव चेत्याये, अत्यन्त कवि वरुण न्युति-
कर्ताको धन दिलवाये ॥७॥

—वनिष्ठ, ७।८६

६४. अयमु वा पुरतमो रयीयन् छेस्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोपाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या ऋणुत हव मे ॥२॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षत । मृध्वा रजासि सुक्रतू ॥१६॥

—३।६२

६५. (देखो ६१)

१८. वायु—

६६. वायवायाहि दर्शतेमे सोभा अरद्ध कृता । तेपा पाहि श्रुधी हव ॥१॥
वाय उषयेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितार । सुतसोमा अर्हविद ॥२॥

—१।२

१९. वास्तोष्पति—

६७. अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशान् ।
सखा सुशेव एधि न ॥१॥

यदर्जुन सारमेय दत् पिशग यच्छसे ।

वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेपु वप्सतो नि पु स्वप ॥२॥

—७।५५

२०. विश्वकर्मा—

६८. य इमा विश्वा भुवनानि जुहवदृपिर्होता न्यसीदत् पिता न ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमान प्रयमच्छदवरा आ विवेश ॥१॥

किं स्विदासीदधिष्ठानभारम्भण कतमत् स्वित् कयासीत् ।

यतो भूमि जनयन् विश्वकर्मा वि ध्यामोर्णोन्महिना विश्वचक्षा ॥२॥

६४. हे इन्द्र-वरुण, वन-इच्छुक यह महान् (यजमान) तुम दोनोंको रक्षाके लिये सदा पुकारता है। मस्तो, धी-मृथिवीके नाथ मेरी पुकार (स्तुति) सुनो ॥२॥

सुकर्मा मित्र-वरुण, हमारे गोठोको घृतसे पूर्ण करे, हमारे आवासोको मधुसे (पूर्ण करे) ॥१६॥

—विश्वामित्र, ३।६२

१७. वायु—

६६ हे दर्शनीय वायु, यह सोम नजाये हैं, उन्हें पियो और पुकार सुनो ॥१॥
हे वायु, सोम छाने दिन-ज स्तोता उक्त्यो (गानो) द्वारा तुम्हारी ध्रुव स्तुति करते हैं ॥२॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, १।२

१८. वास्तुपति (गृहोका अधिष्ठाता देवता)—

६७. हे वास्तुपति, तुम रोगनाशक हो, सारे रूपोको धारे हमारे मग्ना और सुखकारी बनो ॥१॥

हे श्वेत, पिगल, सरमा-पुत्र, जब तुम दात दिग्वलाने हो, उस नमय (वह) ओष्ठके पान ऋष्टियो (छुरो) की तरह निकाले गोमा देते है। तुम सो जाओ ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।५५

१९. विश्वकर्मा—

६८ जो इस सारे भुवनोको हवन करता होता, ऋषि हमारा पिता (विश्वकर्मा) वंठा है। वह आशीर्वाद द्वारा धनकी इच्छा करने प्रथम भक्तोमें प्रविष्ट हुआ ॥१॥

उस समय कौन ना अधिष्ठान था ? तौन ना आलम्ब और कैसे था, जिससे कि विरारदसौ विश्वकर्मानि भूमिको उत्पन्न कर अपनी महिमाये धोको सोला ॥२॥

विश्वतश्चक्षुस्त विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुस्त विश्वतस्पात् ।
स बाहुभ्या घमति स पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक ॥३॥

किं स्विद्वन क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षु ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेद्रुतद्यदव्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥४॥

—१०।८१

२१. विष्णु—

६९. त्रिदेव पृथिवीमेप एता विचक्रमे शतर्चंस महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेप ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥३॥

विचक्रमे पृथिवीमेप एता क्षेत्राय विष्णुमंनुपे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४॥

—७।१००

२२. सरस्वती—

७०. प्र क्षोदसा धायसा सन्न एषा सरस्वती धरुणमायसी पू ।
प्रवावधाना रय्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरत्या ॥१॥

एका चेतत् सरस्वती नदीना शुचिर्यती गिरिम्य आसमुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्षु त पयोदुदुहे नाहुपाय ॥२॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारा वृतस्य सुमगे व्याव ।
वर्षं शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूय पात स्वस्तिभि. सदा न ॥६॥

सब ओर चक्षु, सब ओर मुख, सब ओर बाहु, और सब ओर पैरवाला वह अकेला देव, द्यौ-भूमिको उत्पन्न करके दोनों बाहु स्पी पखोंसे धौंकता है ॥३॥

कौन सा वन और कौन सा वह वृक्ष था, जिमसे (उमने) द्यौ-पृथिवी-को गढ़ा। हे मनीषियो, (अपने) मनसे यह पूछो, भुवनको धारण करते जिसपर वह लड़ा रहा ॥४॥

—विश्वकर्मा भुवन-पुत्र, १०।८१

२०. विष्णु—

६९. सी तेजोमे युक्त इन (विष्णु देव) ने अपनी महिमासे पृथिवीका चक्रमण किया। विष्णु बलियोमें अत्यन्त बलवान् होंवें, इस स्थायीका नाम दीप्तिमान् हो ॥३॥

इस विष्णुने मनुको क्षेत्र देनेकी इच्छासे इस पृथिवीका चक्रमण किया। इसके स्तोता जन अचल होते हैं। (इसने) विस्तृत क्षितिको सुन्दर जनो-युक्त बनाया ॥४॥

—यमिष्ठ, ७।१००

२१. सरस्वती—

७०. आयसी (पत्यरवाली) पुगीकी तरह यह धारा-धारिणी सरस्वती जलके नाथ बहती है। यह निग्धु रयीकी तरह (दूनरी) गभी नदियोंको अपनी महिमाने बाधित करती जाती है ॥१॥

गिरियोंसे समुद्र तक जाती नदियोंमें द्युचि यह सरस्वती अद्वितीय है। भुवनके भूरि-भूरि धनको चेतानी मनुष्योंके लिये घृत और द्रव्य दुहाती है ॥२॥

हे सरस्वती, भुभगे, यह यमिष्ठ तुम्हारे लिये ढके द्वारको मोलता है। हे द्युभे, बड़ो और स्मृति करनेवाले जो अन्न प्रदान करो, तुम मया स्वस्तिके चाप हमारी रक्षा करो ॥६॥

—यमिष्ठ, ७।९५

—७।९५

७१. वृहदु गायिषे वचोसुर्या नदीना ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभि स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥

उमे यत्ते महिमा शुभ्रे अन्वसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो वोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राघो मघोना ॥२॥

—७।९६

७२. आ भारती भारतीभि सजोपा इळा देवमनुष्येभिरग्नि ।
सरस्वती सारस्वतेभिरवाक् तिन्नो देवीर्वहिरेद सदन्तु ॥८॥

—३।४

७३. नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना ।
वृषद्वत्या मानुष आपयाया सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥

—३।२३

७४. इयमदादद्रभसमृणच्युत दिवोदास वध्यश्वाय दाशुषे ।

या शश्वन्तमाचखादावस पर्णि ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१॥
इय शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत् सानु गिरीणा तविषेभिरूमिभिः ॥

पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि सरस्वतीमा विवासेम धीतिभि ॥२॥
उत न प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१०॥

सरस्वत्यभि नो नेपि वस्यो मा प स्फरी पयसा मा न आ धक् ।
जुपस्व न मख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यारणानि गन्म ॥१४॥

—६।६१

७१ नदियोंमें शक्तिशालिनी सरस्वतीके लिये वृहद् वाणी (गीत) गाता है। वसिष्ठ, द्यौ-मृषिवी तक मुरचित स्तोमों (गानों) द्वारा सरस्वतीकी ही पूजा करो ॥१॥

हे शुभ्रे, तेरी महिमा है, जो कि पुरु लोग दोनो तटोपर बसने हैं। मो तुम रक्षिका हमें बोध दो। मरुतोकी मन्वी होकर धनवानोंके धनको भेजो ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।९६

७२ भारतीयोंके माय भारती, देवोंके माय इळा (अन्न), मनुष्योंके माय अग्नि, मारम्बतो (सरस्वती-नीरके देवों) के माय सरस्वती— तीनों देविया (हमारे) सामने इम कुशपर बैठें ॥८॥

—विश्वामित्र, ३।४

७३. हे अग्नि, दिनोंके मुदिनके लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-म्यानमें मैं तुम्हे स्थापित करता हू। तुम दृषद्वती (धन्यर) आपया (मरकण्डा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ ॥४॥ (१।९)

—देवयवा-देववान भारत, ३।२३

७४ इन (सरस्वती) ने मुझ चध्रपश्वको ऋणमोचक भयकर दिवोदान (पुत्र) प्रदान किया। जिन (त) ने दानहीन पणिको बराबर लाया, हे सरस्वती, तेरे वे दान बलिष्ठ हैं ॥१॥ (९।५)

यह सरस्वती भिन ग्योदनेप्राणैरो तरह अपने बलों, वेगवती तरंगों द्वारा गिरियोंके पाद-भागको भग्न करती है। न्धाके लिये नटोको घ्यस्त करनेवाली सरस्वतीको हम म्नुनियों और गीतों द्वारा बुलायें ॥२॥

धीर प्रियाओंमें प्रिया नात बहिनोप्राणो मुप्रप्रा मरन्वनी हमारी म्नुनि-योग्य हो ॥१०॥ (५।८)

हे मरम्बती, हमें धनके लिये ले जाओ, हमें न अपने जल्मे बचिन कगे, न हमें दूर करो। हमारी मित्रता और भक्ति म्नीकार कगे। हम तुमने दूर क्षेत्र अरप्यमें न जावें ॥१४॥ (५।६)

—भरद्वाज, ६।६१

२३. सविता—

७५. तत् सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो न प्रचोदयात् ॥१०॥

—३।६२

७६. उदुष्य देव सविता हिरण्यया वाहू अयस्त सन्ननाय सुक्रु ।
घृतेन पाणी अभिप्रण्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१॥

अदब्धेभि सवित पायुभिष्ट्व शिवेभिरद्य परि पाहि नो गय ।
हिरण्यजिह्व सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अधशस ईशत ॥३॥

उदु ष्य देव सविता दमूना हिरण्यपाणि. प्रतिदोपमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुपे सुवति भूरि वाम ॥४॥

वाममद्य सवितर्वामिमु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्य सावी ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाज स्याम ॥६॥

—६।७१

२४. सोम—

७७. स्वादुष्किलाय मधुमा उताय तीव्र किलाय रसवा उताय ।
उतो न्वस्य पपिवासमिन्द्र न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

अय स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरुणि यश्च्योत्ता शम्बरस्य वि नवर्ति नव च वेह्यो हन् ॥२॥

अय स यो वरिमाण पृथिव्या वर्ष्मणि दिवो अकृणोदय स ।
अय पीयूष तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्ष ॥४॥

—६।४७

७५ मवितादेवके उम अतिश्रेष्ठ तेजको हम पावें, जो (मविता) हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥१०॥

—विश्वामित्र, ३।६२

२२. सविता—

७६ वह मुकर्मा सवितादेव (जीवन) देनेके लिये अपनी मुनहली चाहोको ऊपर उठाता है। महान् युवा, मुदल मविता लोकोकी रक्षाके लिये घृत (जल) मे युक्त (अपने) हाथोको चुपडता है ॥१॥

हे सविता, हिमा-रहित कल्याणकारी रक्षाओ द्वारा आज हमारे गये (निवास) की चारो ओरमे रक्षा करो। तुम हिग्न्यजिह्व हो। नवीन मुग्गके लिये रक्षा करो, हमारे ऊपर वुराई चाहनेवाला धामन न करे ॥३॥

और यशस्वी, गृह-मग्वा, लोहेके जवडेवाले, सुवर्णपाणि, वह मविता देव प्रदोषमें उठे, और वह मनोहर् बचनवाला भक्त यजमानके लिये बहुत ना घन पठाये ॥४॥

हे मविता, आज हमें धन, कल धन, दिन-दिन धन प्रदान करो। हे देव, तुम बहुत धन, गृह के न्यामी हो। इन स्तुति द्वारा हम धनके भागी हो ॥६॥

—भरद्वाज, ६।७१

२३. सोम—

७७. यह सोम स्वादु है, और मधुर है, यह तीव्र भी, और रमवान् है। इमे पी लिये उन्द्रको युद्धमें कोई दवा नहीं नकना ॥१॥

यहा यह स्वादु है, अत्यन्त मदयका है, जिमने एन्द्र द्यु-युद्धमें नन्ना हुआ। जिमने शबरके बहूतरे (सैनिकों) को हग्या, निम्नानवे पुरियो (देहियो) को नष्ट किया ॥२॥

यह वह है, जो पृथिवीको बरिमा, है। (जिमने) चीकी ज्वालेते बनाया, यह वह है। नीनो वृत्तियोंमें यह पीयूष (अन्न) है। नामने धिस्तून अन्नभिको धारण किया है ॥४॥

—गर्ग भरद्वाज-मुत्र, ६।४३

§३. अन्य पूज्य

१ पितर—

७८. यमो नो गातु प्रधमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यथा न पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञाना पथ्या अनु स्वा ॥२॥

मातली कव्यैर्यमो अगिरोभिर्वृहस्पतिर्ऋक्वभिर्विधान ।
याश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

इम यम प्रस्तरमा हि सीदा गिरोभि पितृभिः सविदान ।
आ त्वा मन्या कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥४॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यथा न पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यम पश्यासि वरुण च देव ॥७॥

यी ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसी ।
ताम्यामेन परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीव च घेहि ॥११॥

उरुणसावसुतृपा उदुम्बली यमस्य द्रुतौ चरतो जना अनु
तावस्मम्य दृशये सूर्याय पुनर्दाताममुमद्येह भद्र ॥१२॥

मायय सोम सुनुत यमाय जुहुता हवि ।
यम ह यज्ञो गच्छत्यग्निद्रुतो अरङ्कृत ॥१३॥

यमाय मधुमत्तम राज्ञे हव्य जुहोतन ।
इद नम ऋषिभ्य पूर्वजैभ्यः पूर्वैभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५॥

—१०१४

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमा पितरः सोम्यास ।
असु य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नो वन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

६३ अन्य (पितर आदि)

१. पितर—

७८. सबमें प्रथम यमने हमारे मार्गको जाना। यह चरागाह (हमने) नहीं छोनी जा सकती। जहा हमारे पूर्वज पितर गये, वहा (जगमें) उत्पन्न (जन) अपने मार्गमें जायेंगे ॥२॥

कव्य (पितरोंकी हवि) के साथ मातली, अगिरोंके साथ यम, ऋषियोंके साथ बृहस्पति बडे—जिन्हें देवाने बढाया, और जिन्होंने देवोंको। कोई (देवता) स्वाहामे, कोई (पितर) स्वधामे प्रमन्न होते हैं ॥३॥

अगिरा पितरोंके साथ हे यम, इस प्रस्तरपर आकर बैठो। कवियों द्वारा प्रशस्न मद्र तुम्हें लायें। हे राजन्, इस हविमें तुम मृग होओ ॥४॥

(उन) पूर्ववाले पयोगे (वहा) जाओ, जहा हमारे पूर्वज पितर गये, स्वधामे यम और वरुण दोनों राजाओं को जानन्दिन देखोगे ॥५॥ हे यम, रक्षक, मार्गरक्षी मनुष्यों की देखभाल करनेवाले, चारुआवों वाले जो तुम्हारे दोनों ध्वान (कुत्ते) हैं, हे राजन्, इसे उनकी रक्षामें दो, इसे स्वस्ति और निरोग करो ॥६॥

विस्तृत नाकवाले, प्राणभोजी, काठे, दोनों यम-दूत जनोंके पीछे-पीछे चलते हैं। वे सूर्यके दर्शनके लिये यहा हमें भद्र प्राण प्रदान करें ॥७॥

यमके लिये नोग छानों, यमके लिये हवि हवन करो, अग्नि-दूतवाद्य अलकृत यज यमके पाम जाना है ॥८॥

राजा यमके लिये अत्यन्त मधुर हविता हवन करो। पूर्वज ऋषियोंके लिये, पूर्वके मार्गकर्ताओंके लिये यह नमस्कार है ॥९॥

—यम प्रमथन, १०।१८

७९. निचले, उपरले और बीचवाले नौमताकी पितर जा चढें। ते अकृष्टिल ऋतज (नन्मताता) पितर (दन्लोयमें) प्राणको प्राण रूप, ये पुताग्नेपर हमारी रक्षा करें ॥१॥

इद पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयु ।
ये पार्थिवे रजस्या निपत्ता ये वा नून सुवृजनासु विक्षु ॥२॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयि घत्त दाशुपे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्य पितरस्तस्य वस्व प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ॥७॥

ये न पूर्वे पितर सोम्यासो नूहिरे सोमपीथ वसिष्ठा ।
तेभिर्यम सरराणो हवीष्युशन्नशद्भि प्रतिकाममत्तु ॥८॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिव स्वघया मादयन्ते ।
तेभि स्वराळसुनोतिमेता यथावशं तन्व कल्पयस्व ॥१४॥

—१०१५

§ ४. सकाम कर्म

८०. आ यस्ततन्य रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तद्य ।
वृहद्भिर्वाजै स्यविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितर वि भाहि ॥११॥

नृवद्वसो सदमिद्वेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्व ।
पूर्वीरिपो वृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥

पुरुष्यग्ने पुरुषा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्या ।
पुरुणि हि त्वे पुस्वार सत्यग्ने वसु विघते राजनि त्वे ॥१३॥

—६११

आज यह पितरोंके लिये नमन्कार है, जो कि पहले या पीछे मरे, जो पार्थिव लोकोमें या जो वही प्रजाओंके बीचमें बैठे हैं ॥२॥

लाल (किरणों) के पास बैठे तुम भक्त पुरुषको धन प्रदान करो। हे पितरो, उसके पुत्रोंको धन प्रदान करो, वे यहा शक्ति प्रदान करे ॥७॥

जो हमारे पूर्वके सोमपायी वसिष्ठ (श्रेष्ठ) पितर सोम-पानमें बुलाये गये। उनके माय खुश हो यम भी रचिने हविको यथेच्छ भोजन करें ॥८॥

जो अग्निमें जले, जो अग्निमें न जले' (हमारे) पितर चीमें स्वधाने प्रमत्त हैं। उनको हे स्वराज् (स्वय प्रकाशित अग्नि), यथाशक्ति प्राणवाला शरीर प्रदान करो ॥१४॥

—शय यम-पुत्र, १०।१५

§ ४ सकाम कर्म

८० हे अग्नि, अपनी प्रभा द्वारा तुमने ची-भृषित्रीको वाक दिया, और (तुम) यगोसि यगस्त्री और विजयी हो। बहुत शक्ति-युक्त स्थायी धन प्रदान करते प्रकाशित होओ ॥११॥

हे वसु (धनी), हमें तुम मनुष्यों जैसा धन दो, हमारे पुत्र-भ्राताओंके लिए बहुत पशु दो। पाप-रहित दूर बहुत-सा पहलेला अन्न भद्र, मुन्दर गन्धवादे हमारे लिए होंगे ॥१२॥

हे दीप्तिमान् राजा अग्नि, हम तुम्हारे पानने बहुत ना धन पावें, हम तुम्हारी वसुना (धन) को प्राप्त करें। हे नवंप्रिय, अग्नि, तुम राजामें बहुत धन निहित हैं ॥१३॥

—भरद्वाज, ९।१

'शयोंको दफनानेका भी आयोंमें ग्याज था। केचन जनानेकी प्रथा पीछे अपनाई गई (१०।१५।१४)। दफनानेका उत्सव (१०।१२।९, १०) हुआ है।

८८. अनुद्धा जहिता नयोव श्रोण च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९॥
—४।३०
८९. पिशागभृष्टिमम्भृण पिशाचिमिन्द्र समृण^१ । सर्वं रक्षो निवर्हय ॥५॥
—१।१३३
९०. इहैव स्त मा वियीष्ट विश्वमायुर्व्यंशनुत ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृमिमोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥
—१०।८५

§५. अर्चनाकी सामग्री

१. हवि—

- ९१ अग्ने जुपस्व नो हवि पुरोळाश जातवेद । प्रात सावे धियावसो ॥१॥
पुरोळा अग्ने पचतस्तुम्य वाघा परिष्कृत । त जुपस्व यविष्य ॥२॥

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुत तिरो अहन्य । सहस सूनुरस्यध्वरे हित ।३।
माघ्यन्दिने सवने जातवेद पुरोळाशमिह कवे जुपस्व । ,

अग्ने हवस्य तव भागधेय न प्रमिनन्ति विदयेषु धीरा ॥४॥
अग्ने तृतीये सवने हि कानिप पुरोळाश सहस सूनवाहुत ।

अथा देवेष्वध्वर विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृवि ॥५॥
अग्ने वृषान आहुति पुरोळाश जातवेद । जुपस्व तिरो अहन्य ॥६॥

—३।२८

८८. हे वृत्रहन्ता, तुमने परित्यक्त अन्वे और पशु पर कृपा की। वह तुम्हारा (दिया) सुख पाया नहीं जा सकता ॥१९॥

—वामदेव, ४।३०

८९. हे इन्द्र, पीले दातवाले भयकर पिशाचको नष्ट करो, सब राक्षसोंको खतम करो ॥५॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३३

९०. (हे पति-पत्नी), तुम दोनों यही रहो, वियुक्त मत होओ, मारी आयुको प्राप्त करो, पुत्र-नातियोंके साथ खेलने-आनन्द करते अपने घरमें रहो ॥४२॥

—सूर्या, १०।८५

१५ अर्चनकी सामग्री

१. हवि—

११. हे स्तुतिके घनी, सर्वज्ञ अग्नि, हमारे प्रातः सवनमें हवि (पुरोडाश)को स्वीकार करो ॥१॥

हे अग्नि, पकाया और परिष्कृत पुरोडाश तैयार है। हे तरणतम, उसे स्वीकारो ॥२॥

हे सहन्-पुत्र, तुम यज्ञमें स्थित हो। हे अग्नि, दिनके अन्तमें हवन किये गए पुरोडाशका आहार करो ॥३॥

हे कवि जातवेदा (सर्वज्ञ), माघ्यन्दिन सवन (दोपहर पूजा) में यहा पुरोडाशको सेवन करो। हे बलिष्ठ अग्नि, तुम्हारे भागको यज्ञमें धीर लोग नष्ट नहीं करते ॥४॥

हे सहन्-पुत्र अग्नि, तृतीय सवन (नाय पूजा) में हवन किये गये पुरोडाशको पसन्द करो। फिर अविनाशी, रत्न-युक्त जागरूक मोमयो स्तुतिके साथ अमर देवोंके पास ले जाओ ॥५॥

हे वर्धमान जातवेद अग्नि, दिनके अन्तमें धातृति दिये पुरोडाशका सेवन करो ॥६॥

—विद्यामित्र, ३।२८

९२. इममिन्द्र गवाशिर यवाशिर च न पिव । आगत्या वृपपि सुत ॥७॥

तुम्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोम चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥८॥

त्वा सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यव ॥९॥

—३१४२

९३ घानावन्त करभिणमपूपवन्तमुक्थिनं । इन्द्र प्रातर्जुपस्व न ॥१॥

पुरोळाश पचत्य जुपस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुम्य हव्यानि सिस्रते ॥२॥

पुरोळाश च नो घसो जोपयासे गिरश्च न । वघूपुरिव योपणा ॥३॥

पुरोळाश सनश्रुत प्रात सावे जुपस्व न । इन्द्र ऋतुहि ते वृहन् ॥४॥

माध्यन्दिनस्य सवनस्य घाना पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारु ।

प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थ्यो वृपायमाण उप गोभिरीद्रे ॥५॥

तृतीये घाना सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुत मामहस्व न ।

ऋभुमन्त वाजवन्त त्वा कवे प्रयस्वन्त. उपशिक्षम धीतिभि ॥६॥

पूपवते ते चकृमा करम्भ हरिवते हर्यश्वाय घाना ।

अपूपमद्वि समणो मरुद्भि सोम पिव वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥

—३१५२

९२ हे इन्द्र, हमारे इस यवाशिर (जी-दूध मिले) गवाशिर (दूध-दही मिले) छने सोमको पराक्रमियोंके साथ आकर पियो ॥७॥

हे इन्द्र, अपने घरमें तुम्हारे पीनेके लिये सोमको मैं प्रस्तुत करता हूँ, यह तुम्हारे हृदयको प्रसन्न करे ॥८॥

हे इन्द्र, सहायतेच्छुक हम कुशिक तुम पुरातनको छाना सोम पीनेके लिए पुकारते हैं ॥९॥

—विश्वामित्र, ३।४२

९३ हे इन्द्र, प्रातःकाल हमारे धाना (भुने अन्न)-युक्त कर्मभ (मत्तू)-युक्त, अपूप(रोटी)-युक्त उक्थ(गीत)-सहित सोमको स्वीकार करो ॥१॥

हे इन्द्र, पके पुरोडाशका भेवन करो, और खाओ। (यह) हव्य तुम्हारे लिये परोमी गई है ॥२॥

हमारे पुरोडाशको खाओ, और जैसे बधूको वर वैसे हमारे गीतोंको स्वीकार करो ॥३॥

हे मनातनमे प्रनिद्ध इन्द्र, प्रातःभवनमें हमारे पुरोडाशका भेवन करो। तुम्हारी धमता महान् है ॥४॥

हे इन्द्र, यहा माव्यन्दिन भवन (दोपहरकी पूजा) के धाना (भुने दाना) और चार पुरोडाश तुम्हें रचिकर हो। जब जन्दी रग्ने गायक म्नाता वृषभोंकी तरह वचनो द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५॥

बहुन्नुत, तृतीय भवनमें हमारे धाना और आहुति दिये पुरोडाशको भक्षण करो। हे वरि, वाजवान् ऋभुवान् इषियो लिये तुम्हारी हम स्तुतियोंमें भेवा करते हैं ॥६॥

पूपन्-वान् हग्वान् (हरे अग्नीवाल) तुम्हारे लिये हम कर्मभ और धाना भोग करते हैं। भग्नों-अहित गग-नुत्त अत्रुष (रोटी) गाओ। हे विद्वान् शूर वृषहन्ता तुम, सोमको पियो ॥७॥

—विश्वामित्र ३।५२

९४. अपा सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरण गृहे ते ।
—३।५३
- यत्रा रथस्य बृहतो विधान विमोचन वाजिना दक्षिगावत् ॥६॥
पुरोळाश च नो घसो जोपमासे गिरश्च न । वधूयूरिव योपणा ॥१६॥
९५. सहस्र व्यतीना युक्तानामिन्द्रमीमहे । शत सोमस्य खार्यं ॥१७॥
—४।३२
९६. त हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देव घृतश्चुता । अग्नि हव्याय वोहूळवे ॥३॥
—५।१४

२. पशु-वलि—

९७. यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेघसे हृदा मति जनये चारुमग्नये ॥१४॥
अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृत चम्बीव सोमः ।
वाजसनि रयिमस्मे सुवीर प्रशस्त घेहि यशस बृहन्त ॥१५॥
—१०।९१
९८. असत् सु मे जरित साभिवेगो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्ष ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृत वृजिनायन्तमामु ॥१॥
यदीदह युधये सनयान्यदेवयून् तन्वा शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्र वृषभ पचानि तीव्र सुत पचदश निर्पिच ॥२॥
—१०।२७
९९. पीवान मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आमन् ।
द्वा धनु बृहतीमप्स्वन्त पवित्रवन्ता चरत पुनन्ता ॥१७॥
—१०।२७

९४ हे इन्द्र, जल्दी सोम पी चुके, (अव) जाओ। तुम्हारी पत्नी कल्याणी है, सुरमणीय तुम्हारा गृह है। जहा तुम्हारे वृहत् रयका अवम्यान है, घोडोका दक्षिणा-युक्त विमोचन है ॥६॥

—विश्वामित्र, ३।५३

९५ हम इन्द्रमे जुतनेवाले हजार घोड और मोमकी सात खारियां मागते हैं ॥१७॥

—वामदेव, ४।३२

९६. हव्य वहन करनेके लिये उस अग्निदेवकी भदा घृत चुवानेवाली श्रुवाओंसे पूजा करते हैं ॥३॥

—मुत्तम्बर, ५।१४

२. पशुवलि—

९७ जिममें अरव, वृषभ (माड), उक्षा (तम्घन बील), वशा (बहिला गाय), भेड दिये और हवन किये गए, उम रमपायी, मोम छिटके विधाता अग्निके लिये मैं हृदयमे मुन्दर स्तुति बनाता हूँ ॥१४॥ हे अग्नि, जैसे घृत श्रुवामें, जैसे मोम चमूमें, वैसे तुम्हारे मुग्गमें हवि हवन की गई। तुम हमारे लिये अन्न-युक्त धनको, सुवीर-मन्तान-युवन बडे प्रशस्त यशको प्रदान करो ॥१५॥

—अरण वीतहव्य-मुत्र, १०।९१

९८ हे स्तोता (भक्त), मेरा यह म्यभाव है कि मोम-यज्ञ करनेवाले गजमानको (फल) देता हूँ। मिना यज्ञवाले, कुटिल, मत्सनाभाव, आशीष न देनेवालेको (मैं) नारा करता हूँ ॥१॥

दारीरने फूले अदेव-भक्तोंके विरुद्ध जय मैं लठनेके लिये अभियान करता हूँ, तो तुम्हारे लिये पन्द्रह गुने तरु छाने गये तोत्र मोमको पिलाते मोटे वृषभ (माड) को पकाता हूँ ॥२॥

—वमुत्र इन्द्र-मुत्र, १०।२७

९९ वीरोने मोटे भेडको पत्ताया। दावपत्र पाने के गये। दो बडे मरुते पान पानीके भीतर शुद्ध पयित्र दूण विचरण करने से ॥१७॥

—वमुत्र, १०।२७

१००. ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिनिर्हरेति ।
 ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥
 यन्नीक्षण मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
 ऊष्मप्यापिधाना चरूणामका सूना परिभूषयन्त्यश्व ॥१३॥
 —१।१६५

§ ६. मन्त्र-तन्त्र

१०१. इमा खनाभ्योषधि वीरुष वलवत्तमा ।
 यया सपत्नी वाधते यया सविन्दते पति ॥१॥
 उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
 सपत्नीं मे परा धम पति मे केवल कुरु ॥२॥
 उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्ताराम्य ।
 अथा सपत्नी या ममाधरा साधराम्य ॥३॥
 नह्यस्या नाम गृम्णाभि नो अस्मिन्नमते जने ।
 परामेव परावत सपत्नीं गमयामसि ॥४॥
 अहमस्मि सहमानाय त्वमसि सासहि ।
 उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥

—१०।१४९

§ ७. परलोक

१ यमलोक—

- १०२ यमो नो गातु प्रथमो विवेद नैपा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
 यत्रा न पूर्वे पितर परेयुरेना जज्ञाना पय्या अनु स्वा ॥२॥

—१०।१११

१०० जो पके घोड़ेको देवते, जो बोलते "मोघा है उतारो" और जो घोड़ेके मांस भोजनका सेवन करते हैं, उनका नकल्प हमारा महायक हो ॥१२॥

जो कि माम पकानेकी उखा (हड्डिया) का देवता है, जो जूम डालनेके पात्र है। चरओ (वर्तनों) को गरम रखनेवाले ढक्कन है, सूना (पशु काटनेके पीछे) और चिन्ह-करना (ये) अश्वको तैयार करते हैं ॥१३॥ (४१९)

—दीर्घतमा उच्य-भुय, १।१६२

§ ६ मन्त्र-तन्त्र

१०१ इस अत्यन्त बलवान् लता औषधिको मैं खोदता हूँ, जिसके द्वारा (पत्नी) अपनी सपत्नीको वाधित करती है, जिसके द्वारा वह पतिको प्राप्त करती है। देवप्रिया, बलवती मुभगा हं उत्तानपर्णी, मेरी मौतको दूर भगा, पतिको केवल मेरी (ही) बना ॥२॥
हे उत्तरा (उत्तम), मैं उत्तरा (प्रधाना) होऊँ, उत्तराओंमें भी मैं उत्तरा होऊँ, और जो मेरी मौत है, वह अधरा (हठी) ने भी अधरा होवे ॥३॥

उस मौत का नाम मैं नहीं लेती, उन जनमें मन नहीं रमता। मैं मौतको दूरसे दूर भेजती हूँ ॥४॥

हे औषधि, मैं पराश्रमी हूँ, तुम भी अत्यन्त पराश्रमी हो। दोनों बलवती हो मेरी मौतको दवायें ॥५॥

—इन्द्राणी, १०।१४५

§ ७ परलोक

१. यमलोक—

१०२ गवमें प्रथम यमने हमारे मार्गको जाना। यह चरगाह (हमने) नहीं छोड़ी जा सकती। जहाँ हमारे पृथञ्ज रित्त गये, उन्मन्न (जन) वहाँ अपने मार्गने जायेंगे ॥२॥ (५।७।८।२)

—यम देवम्वता, १०।१४

२. स्वर्ग—

१०३. नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो य पृणाति सहदेवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्पन्ति सिन्धवस्तस्मा इय दक्षिणा पिन्वते सदा ।५।
—१।१२५

१०४. यत्र ज्योतिरजस्र यस्मिन्लोके स्वहित ।
तस्मिन् मा घेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद प्रमुद आसते ।

कामस्य यत्राप्त कामास्तत्र माममृत कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११॥

—१।११३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

११ कृषि

१. हल, फाल—

१. पूर्वीरूपस शरदश्च गूर्ता वृत्र जघन्वा असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्टिता अतृणद्वधाना सीरा इन्द्र सवितवे पृथिव्या ॥८॥

—४।१९

२ युनक्त सीरा वि युगा तनुध्व कृते योनी वपतेह बीज ।
गिरा च श्रुष्टि सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्य पक्वमेयात् ॥३॥

२. स्वर्ग—

१०३ जो दान करता है, वह देवोंके पास जाता है, नात्र (स्वर्ग) की पीठपर अधिष्ठान करता है। उसके लिये मिन्यु आप (जल देविया) घृत प्रदान करती है, यह दक्षिणा उमको सदा तृप्त करती है ॥५॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-मुद्ग, १।१२५

१०४ जहा निरन्तर ज्योति है। जिम लोकमें स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम, उम अक्षुण्ण अमर लोकमें मुझे ले चलो। हे गोम, इन्द्रके लिये धरित होओ ॥७॥ (१४।२।८।७)

जहा आनन्द और मोद और मुद-प्रमुद अवस्थित है, कामकी कामनायें जहा प्राप्त होती हैं, वहा मुझे अमर बनाओ ॥११॥ (४।२९।११)

—रुद्रयप मारीचि, ९।११३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

७१ कृषि

१ पुरानी उपायों और सुदर शरदोंमें उनने वृत्रको भाग और मिन्युओंको मुक्त किया। इन्द्रने घेरी गेली धागओपों पृथिवीपर बहनेके लिए पाटा और मुक्त किया ॥८॥

—यामदेव, ४।१९

१ हन, फाल—

२. गीग (हल) को जोतो, ज्योती तानो वटा गैयान गेनमें दीज दोगे। हमारी वापिसोंकि माव गेती हगे-भने हो। पकर गन्दगे नन्दोर हगुये जायें ॥३॥

सृण्य युजन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । घीरा देवेषु सुम्नया ॥४॥
निराहावान् कृणोतन सवरत्रा दघातन ।

सिंचामहा अवतमुद्रिण वय सुषेकमनुपक्षित ॥५॥
इष्कृताहावमवत सुवरत्र सुषेचन । उद्रिण सिंचे अक्षित ॥६॥

प्रीणीताश्वान् हित जयाय स्वस्तिवाह रथमित् कृणुष्व ।
द्रोणाहावमवतमश्चक्रमसत्रकोश सिंचता नृपाण ॥७॥

—१०११०१

२. कुआ—

३ या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा या स्वयजा ।
समुद्रार्या या शुचय पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

—७१४९

४ माकिनंशेन्माकी रिपन्माकी सगारि केवटे । अथारिष्टाभिरागहि ॥७॥

—६१५४

५ प्र ते नाव न समने वचस्युव ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाघृषि ।
कुविन्नो अस्य वचसो निवोधिषदिन्द्रमुत्तम न वसुन सिंचामहे ॥७॥

—२११६

३. कुल्या—

६ आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्तोमास इन्द्र कुल्या इव हृद ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यव न वृष्टिदिव्येन दानुना ॥७॥

—१०१४३

देवोंमें सुखके लिये धीर कवि लोग हल जोड़ते हैं, जूआ तानते हैं ॥४॥

मोट बनाओ, रस्सा रक्खो। सुन्दर सिचाईवाले, अक्षय जलवाले महाकुएके जलको हम मीचेंगे ॥५॥

अन्नकारक मॉट, (चरमा) सुन्दर रस्सा, सुन्दर मेचनवाले अक्षय जल-युक्त अवत (कूआ) से मैं सीचता हू ॥६॥

अश्वको तृप्त करो, हितको जीतो, रथको स्वम्ति-वाहक बनाओ। काठकी मोटवाले, पत्थरकी मनवाले कवच-कोशवाले मनुष्य-प्याव क्यूंसे सीचो ॥७॥

—बुध मोम-गुद्र, १०।११

२. कुआ—

३. जो आप (जल) आकाशीय हैं अथवा प्योदी जाकर बहती हैं, अथवा जो स्वय उत्पन्न हैं। जो शुचि पवित्र ममुद्रके लिये (जाती) हैं, (वह) आप देविया यहा हमारी रक्षा करें ॥२॥

—वनिष्ठ, ७।८९

४ (गौ-अश्व) नष्ट न हो, उन्हें (कोई) न मारे। वह कूए-गडमें न गिरें। तुम अरिष्टो (सुरक्षातो) के नाव आओ ॥७॥

—भरद्वाज, ६।५४

५. युद्धमें ललकारते नाव जैसे इन्द्रके पान सबनोमें डीठ हो ब्रह्म (मन्त्र) मैं लाता हू। हमारे इन वचनको अवग्य वह नमनेगा, हम धनो उन्न (चरमे) की तरह इन्द्रको मीचेंगे ॥७॥

—ग्लामद गुनहोत्र-गुद्र, २।१६

३. कूल (नहर)—

६. गिन्युमें जैसे नाश्या, हृदमें जैसे बुन्यायें, वैसे इन्द्रके पान जब मोम क्षरित ज्ञान हनो (यज्ञ-)नशनमें चित्र इनके नेत्रतां वैसे गौ चशने हं. जैसे वृष्टि (जलते) दिव्य शानमे जीतो ॥७॥

—शुक्ल आगिन् १०।४३

७ महान्त कोशमुदचा निषिच स्यदता कुल्या विषिता पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावा पृथिवी न्युधि सुप्रपाण भवत्वन्न्याम्य ॥८॥

—५१८३

५२ वास्तु

८ अत्यासो न ये मरुत स्वचो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या ।
ते हर्म्योष्ठा शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रकीळिन पयोघा ॥१६॥

—७१५६

९ अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यन्त्रासाथे वरुणेष्ठा स्वन्त ।
राजाना क्षत्रमहूणीयमाना सहस्त्रस्यूण विभृथ सह द्वौ ॥६॥

—५१६२

५३ काल

१. मास—

१०. वेद मासो घृतव्रतो द्वादश प्रजावत । वेदा य उपजायते ॥८॥

—११२५

२. ऋतु—

११ स पूर्व्यो महाना वेन ऋतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्यिता देवेषु धिय आनजे ॥१॥

—८१५२

१२ न य जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकशंयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्धर्घतामस्य तनू स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥

—६१२४

७. (हे पर्जन्य), महान् कोश (मेघ) को ऊपर उठाओ, नीच दो। वधी हुई कूलें आगेको बहें। द्यौ-पृथिवीको जलगे भिगो दो, गायांके लिये मुन्दर प्याव होवे ॥८॥

—भौम आश्रय, ५।८३

५२ गृह

- ८ जो मरुन् घोडोकी तरह मुन्दर गतिवाले हैं, यक्ष (मेला) दर्शोकी तरह मनुष्य (अपनेको) मवारते हैं। वे हममें स्थित गियुआंसी तरह शुभ्र, खिलाडी बट्टोकी तरह जलप्रर हैं ॥१६॥

—वमिष्ठ, ७।५६

९. नुकृत (यज्ञ) में अ-ग्वतपाणि, भक्तपाल हे वरुण, स्तुतिने मुन्दर हृदयवाले जिमकी रक्षा करते हो। न द्रुद्ध होने (हे मित्र-वर्ण) राजाओ, हजार खम्भेवाले क्षत्र (राज्य) को तुम दोनो मिल कर धारण करते हो ॥६॥

—श्रुतविद् आश्रय, ५।६२

५३ काल

१. मास—

- १० यत्तधारी वर्ण, प्रजावाले वारह मास जानता हैं, जो अधिक (मान) उत्पन्न होता है, (उमे भी) जानता है ॥८॥

—शुन शेष अजोगर्त-श्रुत, १।२५

२. ऋतु—

११. यह प्रिय (उद्ध) प्रथम (पूजनीय) महानोसी क्षमनाते नार नद्रद्ध हैं। पिता मनुने जिनके द्वारा देवोंमें (प्रिय) स्तुतिया तैयार की ॥१॥

—प्रगाय, कप्य-श्रुत, ८।५२

- १२ जिने न शरद, न मान द्रुद्ध करते हैं, न इन्द्रको दिन दृग बनाने हैं। द्यु (यद्ये) का यह तनु शोभो और ज्यो शान प्र-पित्तों बटे ॥३॥

—भरद्वाज, ६।२६

- १३ सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिप ।
अमा चैनमरष्ये पाहि रिपो मदेम शतहिमा. सुवीरा ॥१०॥
—६।२४
१४. यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्य ग्रीष्म इध्म शरद्ववि ॥६॥
—१०।९०
१५. शत् जीव शरदो वर्धमान शत हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पति शतायुषा हविषेम पुनर्दु ॥४॥
—१०।१६१
१६. अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते सवत्सरे वावृधे जग्धमी पुन ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषान्यन्येन वनिनो मृष्टवारण ॥२॥
—१।१४०

ऋतुओ के अनुसार चिडियो का बोलना । (देखो १८।९)

३ नक्षत्र—

- १७ सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गोवोर्जुन्यो पर्युह्यते ॥१३॥
—१०।८५

§ ४ तोल-माप

१ तोल—

- १८ सहस्र व्यतीना युक्तानामिन्द्रमीमहे शत मोमस्य खार्यं ॥१७॥

१३. हे इन्द्र, रक्षाके लिये तुम स्तोताके पान आओ। यहा उमे शत्रुओंमे वचाओ। घर और अरण्यमें शत्रुओंसे डमकती रक्षा करो। हम सुन्दर वीर सन्तानोवाले हो सो हिंसो (वपों) तक आनन्दमे रहें ॥१०॥
(१५।८३)

—भरद्वाज, ६।२४

१४. जब पुरुषरूपी हविद्वारा देवोंने यज्ञ रचा, तो एकका घी वसत था, ईंधन ग्रीष्म और शरद हवि थी ॥६॥

—नारायण, १०।९०

१५. द्यने हुए मौ शरद जियो, मौ हेमन्त और मौ वसत (जियो)। इन्द्र-अग्नि, सविता, बृहस्पति हवि द्वारा हमें फिर धाताय प्रदान करें ॥५॥

—यदमनाशन, १०।१६१

१६. दो (अग्णियोसे) जन्मनेवाला (अग्नि) त्रिविध अप्रो (गोम, घृत, पुरोडाश) को खाता है, फिर खाया हुआ मवलर (माल) भग्में (नया) बढ़ता है। अन्यके मुख (श्रुवा) और जिह्वा (दावानल) द्वारा वह पगत्रमी नवको दूर करता है (मत्त हाथी) वृक्षोंको (जलाता) है ॥२॥

—दीर्घतमा उच्य-गुप्त, १।१४०

३. नक्षत्र—

१७. सविताने जिते प्रदान किया, (वह) सूर्याकी वरगनके आगे-आगे गई। मघा नक्षत्रोमे (विवाह भोज ते) बैल मारे गये, दोनों फाल्गुनों (पूर्वा, उत्तरा) में वह व्याही गई ॥१३॥

—सूर्या, १०।८५

१४ भार श्रोग नाप

१. भार—

१८. हम चन्द्रने जोतनेके हजार घोंडे मागने हैं, और मौ गोमर्की पात्रियाँ ७६ ॥१७॥

—यामदेव, ८।३२

१९ प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह रथमित् कृणुष्व ।
द्रोणाहावमवतमश्चक्रमसत्रकोश सिंचता नृपाण ॥७॥
—१०।१०१

२ माप—

२० सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् ।
स भूमि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशागुल ॥१॥
—१०।९०

२१ सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचते वरुणस्य धाम ।
अनवघास्त्रिशत योजनान्येकैका ऋतु परियति सद्य ॥८॥
—१।१२३

२२ धन्व च यत् कृन्तत्र च कति स्वित् ता वियोजना ।
नेदीयसो वृषाकपेस्तमेहि गृहा ॥२०॥
—१०।८६

§५ संख्या

१ एक, अर्ध, उभे—

२३ भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वमूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्र पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥
—६।३०

२ द्वाविंशति—

२४ द्वयां अग्ने रथिनो विंशति गा वधूमतो मघवा मह्य सम्राट् ।
अन्यावर्तो चायमानो ददाति दूणाशेय दक्षिणा पार्यदाना ॥८॥
—६।२७

१९ अश्वको तृप्त करो, हितको जीतो, रथको स्वस्ति-वाहक बनाओ। काठकी मोटवाले, पत्थरकी मनवाले, काच कोशवाले मनुष्य-प्याव क्यूँसे सीचो ॥७॥ (१६।२०७)

—बुध नोम-पुत्र, १०।१०१

२. माप—

२० सहस्र-सिर, सहस्र-नेत्र, सहस्र-पाद वह पुरुष भूमिको चारों ओर लपेट कर दम अगुल अधिक बढ कर अवस्थित है ॥१॥

—नारायण, १०।९०

२१ (उपायें) आज वैनी, कल भी वैनी ही, वरुणके दीर्घ धामको मानती है। वह दोपहीनायें एक-एक तीस योजन (जाती) तुरन्त कर्तव्यको पूरा करती है ॥८॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।१२३

२२ जो धन्व (मरु) और छेदनीय (वन) है, कितने वे योजन है ? हे वृषाकपि (अग्नि), सबसे नजदीकके घरोंमें तुम (अपने) घर जाओ ॥२०॥

—इन्द्राणी, १०।८६

१. एक, अर्ध, उभय—

२३. पराश्रमके लिये वह और भी बड़ा, वह जग-रहित एक धन प्रदान करता है। (महिमामें) इन्द्र जी-भूमिधीने बरगवर है। उभय (दोनों) जी-भूमिधी धनके अर्धके बरगवर है ॥१॥

—भरद्वाज, ६।३०

२. दो, तीन—

२४ हे अग्नि, धनवान् पार्यवोके गम्भाद् चयमान-पुत्र अन्यावर्तोंने मुझे बधुओं-रहित दो रथके घांटे और चींग गावें प्रदान कीं। उनकी क्षिणा (बोनेमें) दुर्लभ है ॥८॥

—भरद्वाज, ६।२७

३. एक, द्वौ—

२५. त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि ।
उतेदृशे यथा वय ॥५॥

—६१४५

४. प्रथम—

२६. दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्निं रथाना भवति प्रजानन् ।
सविदान उपसा सूर्येणादित्येभिर्वंसुभिरगिरोभि ॥५॥

—७१४४

५. त्रि, चतुर—

२७. प्रातारथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकश सप्तरश्मि ।
दशारित्रो मनुष्य स्वर्पा स इष्टिभिर्मतिभी रद्दो भूत् ॥१॥

—२११८

६. प्रथम, द्वितीय, तृतीय—

२८. सास्मा अर प्रथम स द्वितीयमुतो तृतीय मनुष स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊजनन्त सो अन्येभि सचते जेन्यो वृषा ॥२॥

. —२११८

७. त्रि, चत्वार, दश—

२९. चत्वार ई विभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भ चरमे घापयन्ते ।
त्रिधावत परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि मद्यो अन्तान् ॥४॥

—५१४७

३. एक, दो—

२५. हे वृत्रहन्ता, तुम एकके, दोके रक्षक हो, और ऐसोंके भी जैसे कि हम ॥५॥

—शयु, वृहस्पति-मुत्र, ६।४५

४. प्रथम—

२६. रथका घोड़ा दधिक्रा^१ जानते हुए वह उपा, सूर्य, आदित्यों, वसुओं, अगिराओंके माय मेल कर रथोंके आगे होता है ॥४॥

—यसिष्ठ, ७।४४

५. तीन, चार, सात, नौ, दस—

२७. प्रातः को चार घुरो, तीन कशा, सात लगामोवाले नये रथको जोड़ा। दस पतवारोवाला मनुष्योंका हितकर वह लालमाओ (यज्ञो) जीर स्तुतियों द्वारा वेगवान् हुआ ॥१॥

—गृत्तमद शुनहोत्र-मुत्र, २।८१

६. प्रथम, द्वितीय, तृतीय—

२८. वह (इन्द्र) प्रथम, वह द्वितीय और तृतीय (वार) इसके लिये तैयार हुआ। वह मनुष्योंका होता (पुकारनेवाला) हुआ। दूगरे (ऋत्विग्) दूगरेके गर्भको उपजाते हैं। वह विजेता पराक्रमी अन्यांनि मिच्छता है ॥२॥

—गृत्तमद शुनहोत्र-मुत्र, २।१८

७. तीन, चार, दस—

२९. धेम कामना करते चार (ऋत्विग् सूर्यको) धारण करते हैं। दस गर्भ (शिशु) को चलनेके लिये प्रेरित करते हैं। तीन धानुजोती (लोको) वाली इन (सूर्य) की गीर्वा (निरणो), तुग्न् धीरो वन्त तत्र विचरती है ॥४॥

—अनिरथ, ५।४३

^१ दियोदासरा घृङ्गदोह-विजेता घोड़ा।

८ पच

३० य पच चर्पणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥२॥

—७।१८

३१ इन्द्रियाणि शतश्रतो या ते जनेषु पचसु । इन्द्र तानि त आवृणे ॥९॥

—३।३५

९. षट्, षष्ठि, शत—

३२ नि गव्यवो' नवो ब्रुह्यवश्च षष्टि शता सुषुषु षट्सहस्रा ।

षष्टिर्वोरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

—७।१८

१० सप्त, द्वा, चतुः—

३३ सोमारुद्रा धारयेयामसूर्यं प्र वामिष्टयोरमश्नुवन्तु ।

दमेदमे सप्त रत्ना दधाना श नो भूत द्विपदे श चतुष्पदे ॥१॥

—६।७४

११ अष्ट, त्रि, सप्त—

३४ अष्टी व्यस्यत् ककुभ पृथिव्यास्त्री घन्व योजना सप्त सिन्धून् ।

हिरण्याक्ष सविता देव आगाद्घद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥८॥

—१।३८

८. पांच—

३०. जो कवि, गृहस्वामी, युवा (अग्नि) पांचो जनोके पास घर-घरमें बैठा ॥२॥

—वमिष्ठ, ७।१५

३१. हे पातयतु इन्द्र, पाचो जनोमें^१ जो तुम्हारी इन्द्रिया (शक्तिया) हैं, उन्हें हम तुम्हारी मानते हैं ॥९॥

—विश्वामित्र, ३।३७

९. छ, साठ, सौ, हजार—

३२. गौ लूटने के इच्छुक साठ सौ हजार और छ्यासठ अनु और द्रुह्य (वीर, मरकर) सो गये। (भक्तोंके लिये) यह सब इन्द्रके पराक्रमके काम हैं ॥१४॥ (१०।१७।१४)

—वमिष्ठ, ७।१८

१०. सात, दो, चार—

३३ हे सोम-रुद्र, तुम अमुर-त्रल धारण करो। (हमारी) कामनायें शीघ्र तुम्हें प्राप्त हों। घर-घरमें (अपने) माता रत्नोंको रखने तुम (दोनो) हमारे वीपायोंके कल्याणकारी वीपायोंके कल्याणकारी होओ ॥१॥

—भरद्वाज, ६।७४

११. आठ, तीन, सात—

३४ उमने पृथिवीकी आठो दिशायें तीनो मरुस्थल और माता नदिया प्रकाशित की। सुनहली आग्योवाला नविता देव दानियो (वज्रमान)के लिए उत्तम रत्न लिये आये ॥८॥ (१।१)

—हिम्यन्तू आगिरन्, १।३५

^१ आयोंके पुरातन पास कबीले—पुरु, द्रुह्य, अनु, तुयंश और ऋतु।

१८ अष्टादश, द्वा, चतु, षट्—

४१ आ द्वाभ्य हरिम्यामिन्द्र याह्या चतुभिराषडभिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्वशभिः सोमपेयमय सुमख मा मृधस्क ॥४॥

—२।१८

१९ विंशति त्रिंशत्, शत—

४२ आ विंशत्या त्रिंशत्या याह्यर्वाडा वस्वारिंशता हरिभिर्युजान ।
आ पचाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ठ्या सप्तया सोमपेय ॥५॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाडाशतेन हरिभिरुह्यमान ।
अय हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वया परिपिक्तो मदाय ॥६॥

—२।१८

२० सहस्र, अयुत—

४३ चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥१८॥

—८।२१

अध्याय १७

आर्य नारी

१. अदिति—

१. भूर्जन उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।
अदितेर्वक्षो अजायत वक्षान्ददिति. परि ॥४॥

१८. अठारह, दो, चार, छ—

४१ हे इन्द्र, पुकारे जाते तुम दो, घोड़ोंके साथ, चार, छ, आठ, दसके साथ सोमपानमें आओ। हे सुवीर, यह छना (नोम) तैयार है, हमें बुरा न कहना ॥४॥

—गृत्तमद, २।१८

१९. बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी, नब्बे, सौ—

४२ हे इन्द्र, बीस, तीस, चालीस, घोड़ों जाते पास आओ। पचास, साठ, सत्तर, सुर्योके साथ सोमपेयमें आओ ॥५॥

अस्सी, नब्बे, सौ घोड़ों द्वारा बहन किये जाते पाम आओ। हे इन्द्र शुनहोत्रोंमें तुम्हारे लिए यह नोम (तैयार) है। तुम्हारे द्वारा पिया गया (यह) मदके लिए है ॥६॥

—गृत्तमद, २।१९

२० हजार, दस हजार—

४३ चित्र ही गजा है, दूसरे राजक (छोटे राजा) हैं, जो कि गरुन्वतीने पास रहते हैं। जैसे पर्जन्य वृष्टि द्वारा व्याप्त होता, वैसे चित्र हजार और दस हजार देता (व्याप्त) है ॥१८॥

—गौमरि चन्द्र-भुव, ८।२१

अध्याय १७

आर्य नारी

ऋग्वेदमें वास्तविक नागिया घोषा, लोपामुद्रा, विष्मला, सिन्धुगंगा, नृदेवी ही हैं, बाकी काल्पनिक नारिया हैं पर कालनिर्माणे भी काय नारियोंके बारेमें किननी ही बातें मान्य होती हैं।

१. अदिति—

१ उत्तानपाद (ऊपर पैरवाले) मूल बृध ने भूमि उत्पन्न हुई, भूमिने दिगाएँ हुई। अदिनिने दस उत्तम हुआ, और नब्बे पीछे अदिति ॥८॥

अदिहं त्रियजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।

ता देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥५॥

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि ।

देवा उप प्रैत् परा सप्तभि माताण्डमास्यत् ॥८॥

—१०१७२

२ इन्द्र-माता—

२ इखयन्तीरपस्युव इन्द्र जातमुपासते । भेजानास सुवीर्यं ॥१॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजस । त्व वृपन्वृपेदसि ॥२॥

त्वमिन्द्र सजोपसमर्कं विभपि वाह्वो । वज्र शिशान ओजसा ॥४॥

—१०१५३

३ इन्द्राणी—

३ वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्र देवममसत ।

यत्रामदद् वृषाकपिरर्यं पुष्टेषु मत्सखा, विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥१॥

परा हीन्द्र घावसि वृषाकपेरति व्यथि ।

नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोम गीतये० ॥२॥

किमय त्वा वृषाकपिश्चकार हरितो मृग ।

यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु० ॥३॥

यमिम त्व वृषाकर्पि प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।

श्वा न्वस्य जम्भिपदपि कर्णे वराह्युर्० ॥४॥

प्रिया तष्टानि मे कपिव्यक्ता व्यदूदुपत् ।

शिरो'न्वस्य राविप न सुग दुष्कृते भुव० ॥५॥

किं सुवाहो स्वगुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।

किं शूरपत्ति नस्त्वमम्यमीपि वृषाकर्पि० ॥६॥

अवीरामिव मामय शराररभिमन्यते ।

उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा० ॥९॥

हे दक्ष, अदितिने (तुम्हें) पैदा किया, जो कि तुम्हारी दुहिता है। उन अदितिके पीछे भद्र अमृत-वन्द्यु देवता पैदा हुए ॥५॥

अदितिके आठ पुत्र, जो शरीरमें पैदा हुए। मातके साथ वह पर देवोके पास गई, आठवें मातङ्गको छोड़ दिया ॥८॥

—बृहस्पति लोकनामा-पुत्र, १०।७२

२. इन्द्र-माता—

२ कर्मशील (इन्द्र-माताएँ) इन्द्रके जन्मके समय (उनके) भ्रूवीयोंको ग्रहण करनी पाम आई ॥१॥

हे इन्द्र, तुम सहज् (विश्रम), ओजके बलमें उत्पन्न हुए। हे पराश्रमी, तुम बली हो ॥२॥

हे इन्द्र, ओजमें तुम अपनी दोनों बाहोंमें तीक्ष्ण करने बज्रको सूयंके साथ धारण करते हो ॥४॥

—इन्द्र-माता, १०।५३

३. इन्द्राणी—

३. (लोगोंने कहा) मोम छानना छोड़ दिया। वह इन्द्रको रव नहीं मानते। जहाँ (मद-) नृप्तोमें मेरा भस्त्रा अयं (स्वामी) वृषाकपि (अग्नि) है। इन्द्र भवमें उत्तम है ॥१॥

(इन्द्राणी)—“हे इन्द्र, तुम व्यावृत्त हो वृषाकपिके पाग शीत्ते हो, अन्यत्र मोमपान नहीं पाते ॥२॥

“क्या है, जो इन पीले (हरे) मृग वृषाकपिने तुम्हें बना दिया, जिनके लिए अयं (स्वामी) तुम पुष्टिहारक धन देते हो ॥३॥

“हे इन्द्र, जिस इम प्रिय वृषाकपिकी तुम रक्षा करते हो, उसके काममें बराह-कामी बुत्ता काटे ॥४॥

“मेरे लिए तैयार प्रिय वन्द्युओं (वपु-)कपिने रूपित रर दिया, इनके निरन्तरे फाट लूगी वृषाकपिकी मुग न होंगे ॥५॥

(इन्द्र)—“मुद्याहू, मुअगृही, दीपतेनी, पृमुजधना इ शरणी, तुम कयो हमारे वृषाकपिपर प्रदू हो ॥६॥

(इन्द्राणी)—“जह तुट वृषाकपि मुझे ज्योन्पुत्रा (नाता) जो मा मानता है। पन्नु मे धीरपुत्रा इन्द्र-मत्नी है, मेरे नाम मरु है ॥७॥

सहोत्र स्म पुरा नारी समन वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नि महीयते० ॥१०॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रव ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर० ॥११॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेऋते ।
यस्येदमप्य हविं प्रिय देवेषु गच्छति० ॥१२॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्तुपे ।
घसत इन्द्र उक्षण प्रिय काचित्कर हविरु० ॥१३॥

उक्षणो हि मे पचदश साक पचन्ति पचदश ।
उताहमदिम पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे० ॥१४॥

धन्व च यत् कृन्तत्र च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेस्तमेहि गृहा उत० ॥२०॥ (१६।२२)

—१०।८६

४ उवंशी--

४ पुरुरवो मा मृथा मा प्र पत्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् ।
न वै स्वैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणो हृदयान्येता ॥१५॥

—१०।९५

५ अन्तरिक्षप्रा रजसो विमानीमुपशिक्षाम्युर्वंशीं वसिष्ठ ।
उप त्वा राति सुकृतस्य तिष्ठान्निवर्तस्व हृदय तप्यते मे ॥१७॥

—१०।९५

“पहले हवन या युद्धके समय नारिया वहा जाती । ऋतके विघाता, वीरपुत्रा इन्द्र-पत्नीकी पूजा होती है ॥१०॥

(इन्द्र)—“इन नारियोमें इन्द्राणोको मैंने मौभाग्यवती सुना है । दूसरोकी तरह इसका पति जरा (बुढापे) से नही मरेगा ॥११॥

“हे इन्द्राणो, अपने मित्र वृषाकपि (अग्नि) के बिना मैं मुग्नी नही हो सकता, जिसके द्वारा यह मिलनेवाला प्रिय हवि देवताओके पास जाता है ॥१२॥

(इन्द्राणी)—“हे धनवती सुपुत्रा सुवधुका वृषाकपि-पत्नी, इन्द्र तेरे वैलोकी प्रिय हविको भख जायेगा ॥१३॥

“मेरे लिए (एक) बीमके साथ पन्द्रह (३५) वैलोंको पकाते है, और मैं खाता मोटा होता हूँ । मेरी दोनो कुक्षियोको (भवनजन) पूर्ण करते है ॥१४॥

“जो धन्य (मरुत्) और छेदनीय (वन) है, वह किनने योजन तक है । हे वृषाकपि (अग्नि), मवने नजदीकके घरोंमें तुम (अपने) घर जाओ ॥२०॥ (१६।२२)

—इन्द्राणी, १०।८६

४. उर्वशी—

४. नही हे पुस्त्रवा, तू मत मर, मत गिर, न अगिब भेड़िये तुसे खायें । मित्रयोगी मित्रता (स्वायी) नही होती, उनके घे हृदय मान्वाषां (चरग्यो) के होते है ॥१५॥

—उर्वशी, १०।१५

५. (उगता) महानतम प्रेमी आकाशको पूरनेवाली ओंकोतो नाचने-वाली उर्वशीली मैं प्रायंन करता हूँ, मेरे पास मेरे मुटुतका मल पडूँगे । लौट आ, मेरा हृदय गतज हो नही है ॥१६॥ (७।७।१७)

—उर्वशी, १०।१६

५ घोषा कक्षीवान्-पुत्री—

६ पुराणा वा वीर्या प्रव्रवा जने'थो हासयुभिषजा मयोभुवा ।
ता वा नु नव्यावसे करामहे य नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥५॥

युव रथेन विमदाय शुन्ध्युव न्यूहथु पुरुमित्रस्य योपणा ।
युव हव चधिमत्या अगच्छत युव सुपुति चक्रथु. पुरन्वये ॥७॥

युव श्वेतृपेदवे' श्विनाश्वनवभिर्वाजेर्नवती च वाजिन ।
चर्कृत्य ददथुद्रावियत्सख भग न नृम्यो हव्य मयोभुव ॥१०॥

ता वर्तिर्याति जयुपा वि पर्वतमपिन्वत शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युव शचीभिर्ग्रंसिताममुचत ॥१३॥

एत वा स्तोममश्विनावकर्मात्क्षाम भृगवो न रथ ।
न्यमृक्षाम योपणा न मर्ये नित्य न सूनु तनय दधाना ॥१४॥

—१०।३९

७. यो वा परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोपामुपामो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिद वय पितुर्न नाम सुहव हवामहे ॥१॥

एत वा स्तोममश्विनावकर्मात्क्षाम भृगवो न रथ ।
न्यमृक्षाम योपणा न मर्ये नित्य न सूनु तनय दधाना ॥१४॥

—१०।३९

८. युवा ह घोषा पर्यश्विना यती राज ऊचे द्रुहिता पृच्छे वा नरा ।
भूत मे अहन उत भूतमक्तवे श्वावते रथिने शयतमवन्ते ॥५॥

युव क्वी ष्ट पर्यश्विना रथ विगो न कुत्सो जरितुर्नशायथ ।
युवाहं मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृत न योपणा ॥६॥

५. घोषा (कसोवान्-पुत्री)—

६. तुम दोनोंकी प्राचीन वीरताको मैं लोगोंके पास बहती हूँ, फिर तुम दोनों सुन्दर चिकित्सक हों, इसलिए नवीन नहायताके लिए तुम्हारी स्तुति करती हूँ, जिनमें कि हे नखलो, यह शशु श्रद्धा करे ॥५॥

तुम विमदके व्याहर्तके लिए पुमिदकी कन्या दृन्व्युतो लाये। तुम वधिमतीकी पुकारकर आये। तुमने पुरन्धि (गभिणी वधिमती) का प्रसव सुगमय किया ॥७॥

हे अश्विनो, तुमने पेदुके लिए वेगोमे वेगवान् निदानके घोटों गाय भागकी तरह मनुष्य-सुन्दर हृषि दिया, भगाने वाग एक श्वेत अश्व जो मत्तको ॥१०॥

हे अश्विनो, तुम स्यूल पर्वत-विजेना (हमारे) घर आओ और शशु के लिए धेनु (दुधार गाय) बनाओ। वृह (भेजिये) के मुखके भीतर प्रणी गई बटेरको तुमने युनिने सृजया वा ॥१३॥

हे अश्विनो, जैसे भृगु लोग स्वको गन्ते हैं, वैसे तुम्हारे लिए द्यन्ताम (गान) का मने बनाया। दामादको देनेके लिए जैसे बन्धुको मजाने, जैसे पुत्र-पौत्रको तिन्या धारण करते हैं, वैसे हमने किया ॥१६॥

—घोषा, ६०।३१

७. हे अश्विनो, सर्वभयघटक जो तुम्हारा मुनिमित्त कर है, जिसे हृषिबाले (यजमान) प्रतिदिन, प्रतिरात्रि और प्रतिद्वया पुताग्ने है। तुम्हारे पितारं सुन्दर पुराने जानेवाले नामों पर तुम्हारे (नाम) का हम नाम आदान करने हैं ॥१॥

८. हे अश्विनो, मैं मन्त्रों राजकुमारी घोषा तुम दोनों नेकजाते पास आकर पूछती हूँ, "दिले मेरे पास हो वा सतने मेरे अश्व-सुता समुल्ल नाम (पति) के लनेसे (मेरी) सहायता करो ॥५॥

हे अश्विनो, का दोनों रवि मे। मत्त निरु म् करने सुन्दर मजान के पास, जो तुम मोहारे वा सने। सुन्दरी मजान के मे मन्त्रों सुने मे मे मे (३) सुने मने म् ॥५॥

युव ह भुज्यु युवमश्विना वश युव शिजारमुशनामुपा रथु ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमाचके ॥७॥

युव ह कृश युवमश्विना शयु युव विधन्त विववामुरुष्यथ ।
युव सनिम्य स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुर्थं सप्तास्य ॥८॥

—१०१४०

९ न तस्य विद्म तदुपु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्या क्षेति योनिपु ।
प्रियोस्त्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृह गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११॥

—१०१४०

१०. समानमु त्य पुरुहृतमुक्थ्य रथ त्रिचक्र सवना गनिग्मत ।
परिज्मान विदथ्य सुवृक्तिभिवंय व्युष्टा उपसो हवामहे ॥१॥

प्रातर्युज नासत्याधितिष्ठथः प्रातर्यावाण मधुवाहन रथ ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञ होतृमन्तमश्विना ॥२॥

अध्वर्यु वा मधुपाणि सुहस्त्यमग्निघ वा धृतदक्ष दमूनस ।
विप्रस्य वा यत् सवनानि गच्छथो त आयात मधुपेयमश्विना ॥३॥

—१०१४१

११. युव नरा स्तुवते कृष्णिषाय विष्णाप्व ददर्युविश्वकाय ।
घोषाय चित् पितृपदे दुरोणे पति जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ॥७॥

—१११७

६ जुह—

१२ ते वदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषे कूपार. सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहुरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवी प्रथमजा ऋतेन ॥१॥

हे अश्विनो, तुमने भुज्युको, तुमने वशको, तुमने शिजारको और उशनाको उवाग था। जो दाता है, वह तुम्हारे मम्मिल्यको पाना है, मैं तुम्हारी महायताके माय सुत्र चाहती हूँ ॥७॥

हे अश्विनो, तुमने वृशको, तुमने शयुको, तुमने मेघक (और) विप्रवाको वचाया। हे अश्विनो, दाताओंके लिए तुम मेघके कड़ाने मज्जमुत्र वज्र (मेघ) को खोलते हो ॥८॥

९. वह बात हम नहीं जानते, उमें तुम बनग्या दो, कैसे गुमा और युग्नी गृहोमें रहते हैं। मैं स्त्री-प्रिय सुपुष्ट पराक्रमी तरुणके गृहमें जाऊँ, हे अश्विनो, (मेरी) उम कामनाको पूरी करो ॥११॥

—घोषा, १०।४०

१०. तीन चक्रकोवाला, बहुतो द्वारा पुरारा जाता, स्तुत्य, भूयर्षटक, यनीय दोनोंके मम्मिलित रूपको उपाकालमें उठकर हम मुद्गर ऋचाओंके प्रार्थना करते हैं ॥१॥

हे नासत्या (न-अमत्य) अश्विद्वय, प्रात जोड़े गये, प्रातः चलायाले (उम) मधुवाहन रथपर चढ़ो, जिसके द्वारा यज्ञ करनेवाली पजाओंके पाम जाने हों, हे नेताद्वय अश्विनो, गरीबोंके होना-मुक्त यज्ञमें भी ॥२॥

हे अश्विद्वय, मधु-यागि घृतदक्ष (दृष्ट-शक्ति), गृह्मिध्र, सुहस्त ऋत्विक्के पाम या जब विप्रके मनो (पत्नी) में जाओ, तो मधुपान में भी पहुँचो ॥३॥

—मुहस्त घोषा-मुत्र, १०।८१

११. हे दोनों नेताओं, तुम कृष्ण-मुत्र स्त्रोता विद्वयकोके लिए (तन्पुत्र) विष्णापुत्रो लाये। तुमने पिता के घर बँधो द्वापर युग्नी घोषाको पनि प्रदान किया ॥७॥

—तशीवान् दीपंतमा-मुत्र, १।११७

६ जुहू—

१२. उन प्रथमजों (पूर्वजों)—गर्भ, वायु, अन्न जल, प्रसन्न उर अग्नि, सुन्दर अत-उत्पन्न आप-देविधोने ब्राह्मणके चिह्न पापन बारोंमें कहा ॥१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजाया पुन प्रायच्छदहृणीयमान ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रहृये तस्य एषा तथा राष्ट्र गुपित क्षत्रियस्न् ॥३॥

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निपेदु ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्घा दघाति परमे व्योमन् ॥४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विष स देवाना भवत्येकमग ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पति सोमेन नीता जुहव न देवा ॥५॥

पुनर्वै देवा अददु पुनर्मनुष्या उत ।
राजान सत्य कृष्वाना ब्रह्मजाया पुनर्ददु ॥६॥

—१०।१०९

७. दक्षिणा—

१३ आविरभून्महि माघोनमेपा विश्व जीव तमसो निरमोचि ।
महि ज्योति पितृभिर्दत्तमागादुरु पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥१॥

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्युर्ये अश्वदा सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्व भजन्ते वासोदा सोम प्र तिरन्त आयु ॥२॥

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिम्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नर प्रयतदक्षिणासो वद्यभिया वहव पृणन्ति ॥३॥

दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव ऋषि तमु ब्रह्मणमर्यज्ञन्य सामगामुक्थशास ।

गोमगजाने प्रथम आकृष्ट हो ब्रह्मपत्नीको फिर से (बृहस्पतिसे) प्रदान किया। मित्र और वरुण उनके अनुगामी हुए। होता अग्नि हाथ पकड़कर उभे ले आया ॥२॥

“इसकी देहको हाथसे ही ग्रहण करना चाहिए, यह ब्रह्म-जाया है,” यह मवने कहा। भेजे दूतके लिए यह नहीं हुई, जैसे क्षत्रिय या राष्ट्र रक्षित ॥३॥

—(११३)

पुराने देवों और तपस्यामें बैठे उन मात ऋषियोंने इनके वाग्में ब्रह्म —ब्राह्मणकी भीमा पत्नीको ले भागना। (रह) परम व्योममें दुर्व्यवस्था स्थापित करती है ॥४॥

बिना पत्नीके ब्रह्मचारी (रह) विचरता वह देवताओका वग होता है। मोम द्वारा लाई गई जुहू (पात्र) को जैसे देवोंने, वैसे ही (अपनी) पत्नी (जुहू) को बृहस्पतिने प्राप्त किया ॥५॥

देवोंने फिर उने प्रदान किया, और फिर मनुष्योंने (प्रदान किया)। राजाओंने मच्चा करते ब्रह्मपत्नीको फिर प्रदान किया ॥६॥

—ऋ, १०।१०९

७. दक्षिणा—

१३ इन (मनुष्यों) में भववा (धनवान्) नृपका महान् तेज आधिर्भूत हुआ, उमने सारे जीवोंको अन्वकारमें निर्मुक्त किया। चित्तसे दानों ने गई बटी ज्योति आई। दक्षिणाका विस्तृत पत्र रिगार्ह पत्र ॥१॥

दक्षिणावाले (दानों) ऊंचे छौ लोकमें म्यान माने है। जो अन्न दाता है, (वह) सूर्यके माय (रहते है)। नीला देनेवाले अमरताको पाते है। हे सोम, वन्द्य देनेवाले पान ज्ञा आयुको वसान है ॥२॥

देवोंकी पूजावाली दक्षिणा दिव्य मूर्ति है। बज्रोंको वे (देव) नाने नृपत करते। ओं जो बहुतेरे नर दक्षिणामें तत्पन दारों तृप्ति करते है ॥३॥

दक्षिणावान् (दानों) पहले निमन्त्रित होते है। दक्षिणावान् दामनी भेद होता है। जिनने पहले (पहले) दक्षिणा दत्त, उमीरों में जनोस नृपति मानता है ॥५॥

स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो य प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥
दक्षिणाश्व दक्षिणा गा ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्विरण्य ।

दक्षिणान्न वनुते यो न आत्मा दक्षिणा वर्म कृणुते विजानन् ॥७॥

न भोजा मम्रुनं न्यर्यमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इद यद्विश्व भुवन स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥

भोजा जिग्यु सुरभि योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्व या सुवासा ।
भोजा जिग्युरन्त पेय सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूता प्रयन्ति ॥९॥

—१०११०७

८. निवावरी, सिकता—

१४ अमिक्रन्दन् कलश वाज्यपति पतिर्दिव शतधारो विचक्षण ।
हरिर्मित्रस्य सद्नेषु सीदति मर्मृजानो विभि सिन्वुभिर्वृषा ॥११॥

अय मतवान्छकुनो यथा हितो व्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव ऋत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्घिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१३॥

द्रापि वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वपित ।
स्वर्जज्ञानो नभसाम्यक्रमीत् प्रत्नमस्य पितरमाविवासति ॥१४॥

—१८६

उसीको ऋषय, उसीको ब्रह्मा, उसीको यज्ञ-कर्ता, नामगायक, उक्थ (स्तुति) बोलनेवाला कहते हैं। वह शुक्र (अग्नि) के तीनों शरीरोंको जानता है, जिसने पहले दक्षिणासे आराधना की ॥६॥

दक्षिणा अश्वको, दक्षिणा गायको देती है, दक्षिणा चन्द्र (चांदी) और मोना है, जो उसे देती है। दक्षिणा अन्नको देती है, जो कि हमारा आत्मा (शरीर) है। (यह) जानकर (आदमी) दक्षिणाको कवच बनाता है ॥७॥

भोज (भोजनदाता) न मरते, न नष्ट होने, न क्लेश पाते, न भोज व्यथित होते हैं। यह जो नारं भुवन और यह स्वयं है, उगाओ उन्हें दक्षिणा देनी है ॥८॥

भोज (मयमें) पहले ही सुरभि निमान पाते हैं, भोज मुखरूप बह पाते हैं, भोज आन्तरिक पेय भुगको पाने हैं। जो बिना बुलाये आक्रमण करते हैं, उन्हें भोज जीतते हैं ॥९॥

—दक्षिणा, १०।१०७

८. निवावरी, गिकता—

१४ घोषति, विचक्षण, धनदार नोम शब्द करता कलशमें जाता है। (वह) सुवर्ण-वर्ण पराश्रमी निन्दुओं और मेघोके (लामो)से मोजा जाता मिश्रके घरोंमें बैठता है ॥११॥

यह मेघनोममें छाया जाता तरंगित वेपवाह गोम धनुन की भांति चन्ता है। हे त्वि इन्द्र, तुम्हारे मर्मने घो और पूर्वियोंमें दौन मुनि नोम स्तुति ज्ञान पून होना है ॥१२॥

घो-बुम्बी अन्नादि-भूतक प्राणि-ग्रहणे, भुवनोमें उचित तजनीय मयं-ज्ञाता (नोम) मेघ ज्ञान आ, अन्ने पुगने विवर (इन्द्र) की सेवा करता है ॥१३॥

—निवावरी, १।८६

९. यमी वैवस्वती—

१५. ओचित् सखाय मर्या ववृत्या तिर पुरु चिदणव जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेवा अविक्षमि प्रतर दीघ्यान ॥१॥

न ते सखा सख्य वष्ट्येतत् सलक्षमा यद्विपुरुषा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो घर्तार उर्विया परि स्यन् ॥२॥

उशन्ति धा ते अमृतास एतदेकस्य चित्यजस मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धीयस्मे जन्यु पतिस्तन्वमा विविश्या ॥३॥

न यत् पुरा चक्रमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृत रपेम ।
गन्वर्वो अस्वप्या च योषा सा नो नाभि परम जामि तन्नी ॥४॥

यमस्य मा यम्य काम आगन्त्समाने योना सहशेय्याय ।
जागेव पत्ये तन्व रिरिच्या वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥७॥

आ धा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामय कृणवन्नजामि ।
उप ववृंहि वृषभाय वाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत् ॥१०॥

कि भ्रातामद्यदनाय भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
कामपूता वह वेतद्रपामि तन्वा मे तन्व स पिपृग्धि ॥११॥

न वा उ ते तन्वा तन्व सपृच्या पापमाहुयं. स्वमारं निगच्छात् ।
अन्येन मत् प्रमुद कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

वतो वतासि यम नैव ते मनो हृदय चाविदाम ।
अन्या किल त्वा फक्ष्येव युक्त परिष्वजाते लिवुजेव वृक्ष ॥१३॥

९. यमी विवस्वान्-पुत्री—

१५. (यमी)—विम्बूत ममूद्रने आओ, मम्यके लिए (मं) नया चुनना चाहती हूँ। विधाताने विरोध ध्यान कर पृथिवीपर पितावी मन्तान रखती ॥१॥

(यम)—“तेरा नया (मं) इन नय (प्रेम) को नहीं चाहता, क्योंकि तू महोदग होनेसे इनके अयोग्य है। विम्बूत चीके धारक, महगके पुत्र, अगु-वीर चारो ओर देख रहे हैं ॥२॥

(यमी)—“धे अमर लोग वह एक मत्व (मदं) की मन्तान तुझने चाहते हैं। मेरे मन में तू अपने मन को धारण कर, पत्नीका पति हो कर मेरे शरीर में प्रवेश कर ॥३॥

(यम)—“जिने हमने पहले कभी नहीं किया, मत्वयादी होते कौसे हम झूठा बोलेंगे। जलके गरम और जलकी साँपा (स्त्री) वह हमारा परम नवध, वह हमारा बहुत्व है। ॥४॥

(यमी)—“यमके प्रति भुज यमीकी कामना एक घरमें गाय गाने के लिये हो आई है। मं जायाकी तरह पतिने लिये शरीर गायनी है।

(आथो) मिलने न्यके चक्रकी तरह (हम) मिलें ॥५॥

(यम)—आगे वह युग अवसर आयेंगे, जब भगिनिया अभगिनी बनेंगी। (किनी) दूनेदृषभ (नज-मुग) का गरिया अपने शत्रुको बनाओ। हे मुभगे, मुझसे अन्यको पति चाहो ॥६॥

(यमी)—(वह) “क्या भाई (हे), यदि (उत्तरे) होने (वहिन) अनाव होवे ? क्या वहिन जोनाश का पावे ? मानवग हो मैं यह रक्त बोल नहीं हूँ, (अपने) शरीर ने मेने शरीर को आत्मन कर ॥७॥

(यम)—(अपने) शरीरने तेने शरीरको मैं नहीं मर्दा बना, तौ वहिनको अभिगमनारे (उते) पायी रहने है। मुझसे निजने तू प्रमोद प्राप्त कर, हे मुभगे, तेना भाई यह नहीं चाहता ॥८॥

(यमी)—अपनांत है अयनोन यम, मं तेने (भोतर) मन, हृश्य नहीं पा मरी। जेने मूक्षरो लता जेने कटिवधको गन रूनी (स्त्री) तुझे आत्मन मनेगी ॥९॥

अन्यमू पु त्व यम्यन्य उ त्वा परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षं ।
तस्य वा त्व मन इच्छा स वा तवाघा कृणुष्व सविद सुभद्रा ॥१४॥

—१०११०

१६ सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मघु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१॥

तपसा ये अनावृष्यास्तपसा ये स्वर्ययु ।
तपो ये चक्रिरे महस्ताश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२॥

ये युध्यन्ते प्रघनेषु शूरासो ये तनूत्यज ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्ताश्चिदेवापि गच्छतात् ॥३॥

—१०११५४

१० रात्रि—

१७ रात्री व्यस्यदायती पुरुश्रा देव्यक्षभि । विश्वा अधि श्रियो धित ॥१॥
निरु स्वसारमस्कृतोपस देव्यायती । अपेदु हासते तम ॥३॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिण ।
नि श्येनासश्चिदर्थिन ॥५॥

उप मा पेपिशन्तम कृष्ण यक्तमस्थित । उप ऋणेव यार्तय ॥७॥

—१०११२७

११ लोपामुद्रा—

१८. पूर्वीरह शरद शश्रमाणा दोषावस्तोरुपसो जरयन्ती ।
मिनाति श्रिय जरिमा तनूनामप्युनु पत्नीवृषणो जगम्यु ॥१॥

ये चिद्धि पूर्वं ऋतसाप आसन्त्साक देवेभिरवदन्तानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापु समूनु पत्नी० ॥२॥

(यम) — हे यमी, दूनरेका आलिंगन कर, दूमरा तुझे वृधको लताकी तरह आलिंगन करे। उनके मनको तू चाहे और वह तेरे साथ मगलमय भवध करे ॥१४॥

—यमी, १०।१०

- १६ किन्ही (पितरो) के लिये मोम छाना जाता है, फाँई घृतका भेवन करते हैं। जिनके लिये मधु बहना है, हे उनके पास ही वह जाये ॥१॥ तपस्याके कारण जो दुर्घर्ष है, तपस्याने जो स्वर्ग गये, जिन्होंने महान् तपस्या की, उनके पास ही वह जाये ॥२॥ जो युद्धोंमें, लड़ते जो शूर शरीर छोड़ने हैं, और जो महत् दक्षिणा देनेवाले हैं, उनके पास ही वह जाये ॥३॥

—यमी, १०।१५४

१०. रात्रि—

- १७ रात्रि देवीने आते हुए नेत्रोंमें बहुत देवा। उाने सारी गोमाको धारण किया ॥१॥ देवीने आते हुए (अपनी) बहिन उपाको प्रतिष्ठापित किया और (उमने) तमको हटाया ॥३॥ ग्राम (घरो) में धुम गये, बड़ोही और पक्षी, (शिकार) चाहने वाले गज भी चुप है ॥५॥ वह मेरे पास आई, (यहाँ) बाला अन्वषार स्पष्ट अवस्थित है। हे उपा, ऋषाणी तरह (उने) हटा ॥८॥

—रात्रि १०।१२७

११. लोपामुद्रा—

१८. (लोपामुद्रा) — “बहिडे क्यों दिन-रात, बुझाया अनेवाणी उपाजंतों में नहीं रही। बुझाया शरीर-गोमाको भी नष्ट कर देता है। पति पत्नी के पास (गँडे) जाये ॥१॥ “जो पुनाने मत्स्यपत्नी थे, देवीके पास मत सोचो थे, उहाँके पास पर अस नहीं पाया। फिर०” ॥२॥

न मृषा श्रान्त यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदय शतनीयमाजि यत् सम्यचा मिथुनावम्यजाव ॥३॥

नदस्य मारुधत काम आगन्नित आ जातो अमुत कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषण नीरिणाति धीरमधीरा धमति श्वसन्ते ॥४॥

—१।१७९

१२ वसुक्र-पत्नी—

१९ विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो नाजगाम ।
जक्षीयाद् घाना उत सोम पपीयात् स्वाशित पुनरस्त जगायात् ॥१॥

—१०।२८

१३ वाक्—

२० अह रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैस्त विश्वेदेवै ।
अह मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोमा ॥१॥

अहमेव स्वयमिद वदामि जुष्ट देवेभिरुत मानुपेभि ।
य कामये तन्तमुग्र कृणोमि त ब्रह्माण तमृषि त सुमेवा ॥५॥

—१०।१२५

१४ धिवृहा—

२१ अक्षीम्या ते नासिकाम्या कर्णाम्या छुबुकादधि ।
यक्ष्म शीर्षण्य मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

श्रीवाम्यस्त उष्णिहाम्य कीकसाम्यो अनूक्यान् ।
यक्ष्म दोषण्यममाम्या वाहुम्या वि वृहामि ते ॥२॥

—१०।१६३

(अग्न्य) — हम व्यर्थ नहीं यों, जो कि देव लोग (हमारी) ग्हा करते हैं। हम माने भोगोंको पा रहे हैं। यहा (त्म) नैकजो पायें, यदि दोनो ठीकसे प्रयास करें ॥३॥

कामको मैंने रोका है, पर यहा-वहा कहीं वह उत्पन्न होता है। लोपामुद्रा पतिका मगम करती है। उनाम ऐनी वह अधीन धीर ता चुवन करती है ॥४॥

—लोपामुद्रा, १।१७९

१२. वसुध-पत्नी—

१९. दूगरे नारं मित्र आवे, (पर) मेरा मनुष्य वहा नहीं आया, कि वह भुना दाना गाना, और नोम पीता, अच्छी तरह ग्राहण पुन (अपने) घर जाता ॥१॥

—वसुध-पत्नी, १०।२८

१३. वाक्—

२०. मैं मद्रो, वसुओंके साथ, मैं आदित्यो और नारं देवोंके साथ विचरण करती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनोको प्रार्थना करती हूँ। मैं इन्द्र-अग्नि और दोनो अश्विनोको (धारण करती हूँ) ॥१॥

मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्योंको पाद तर्पण करती हूँ। विंति मैं चाहती हूँ, उमे उत्र, उमे श्रद्धा, उमे श्रुति उमे मुक्ति चाहती हूँ ॥५॥

—वाक् १०।१०५

१४. विष्वा—

२१. तेरी दोना आर्षोति, दोनो नारोति, दोनो करोति, दृष्टोति अग्ने, मन्त्रिणाते, जिह्वाते, शीर्षेभ्यगतो तेरे वरुण (राज) को मैं हूँ तर्पण हूँ ॥१॥ (१२।१।१)

मेरी बीरों, धर्मियों, श्रुतोंके अर्पणोंके योग ग्राहण मेरी वाक् शक्ति, हाथोंके तेरे मन्त्रों मैं हूँ वरुण हूँ ॥२॥ (१२।१।२)

—विष्वा, १०।१२३

१५ विश्वला—

२२ अभूदिद वयुनमोषु भूपता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिण ।
धिय जिन्वा धिष्ण्या विश्वल, वसू दिवो नपाता सुकृते शुचिन्नता ॥१॥
—११८२

१६ विश्ववारा—

२३ समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुपसमुर्विया विभाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवा ईळाना हविषा घृताची ॥१॥

अग्ने शर्घं महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
स जास्पत्य सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महासि ॥३॥

—५१२८

१७ शची पौलोमी—

२४ उदसौ सूर्यो अगादुदय मामको भग ।
अह तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विपासहि ॥१॥

अह केतुरह मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु ऋनु पति सेहानाया उपाचरेत् ॥२॥

मम पुत्रा शत्रुहणो'थो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सजया पत्यौ मे श्लोक उत्तम ॥४॥

—१०१५९

१८. शश्वती—

२५. अन्वस्य स्थुर ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्बमाण ।
शश्वती नार्यंभिचक्ष्याह सुभद्रमयं भोजन विभर्षि ॥३४॥

—८११

१५. विश्वला—

२२. यह काम था। हे मनीषियो, खुश होओ, (अश्विनोका) घोड़ोवाला रथ आया। वह हृदयहारी, कमनीय, सुचित्रत, चौकी मतान, सुकर्मा विश्वलाके हित्नु है ॥१॥

—विश्वला, १।१८२

१६. विश्ववारा—

२३ प्रज्वलित अग्नि चौ लोकमें किरणोको फैलाता है, उपाके नामने विस्तृत शोभा देता है। हवि और नमस्कारके साथ देवोंको पूजती विश्ववारा (सब वरोंको लानेवाली) खुवा दिसाती और जाती है ॥१॥

हे अग्नि, महान् मौभाग्यके लिये (शत्रुओंको) नाश करो। तुम्हारे प्रकाश उत्तम हो, दाम्पत्य (सम्बन्ध) को तुम सुनियमित करो। शत्रुता करनेवालोंके नेत्रको नष्ट करो ॥३॥

—विश्ववारा, ५।२८

१७. शची पुलोमा-पुत्री—

२४. वह मूयं उगा, (मानो) यह मेरा भाग्य उगा। उगे जाने मुझ विजयिनीने पतिरों (अपने) वनमें रुक लिया ॥१॥

मैं गेतु (ध्वज) हूँ, मैं मस्तरु हूँ। मैं उग्र पत्न हूँ, मुझ दवगको प्रच्छाते अनुसार पति चले ॥२॥

मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हैं, और मेरी बुद्धि रातों है। मैं नजया (जाननेवाली) हूँ। पतिके पान मेरा उत्तम प्यार (प्रसादा) है ॥३॥

—शची, पुत्रोमा-पुत्री, १।१।५.९

१८. शरती—

२५. फिर अग्नि-रहित विस्तृत पटाका उत्तम सम्बन्ध (सम्बन्ध) नामने शरती भागीने देवगण गता 'हि नार (दुःख) लक्षण भोग धारा करने ४' ॥३॥

—शरती, ८।१

१९. शिखडिनी काश्यपी—

२६ स नो मदाना पत इन्दो देवप्सरा असि ।

सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥५॥

सनेमि कृच्यस्मदा रक्षस क चिदत्रिण ।

अपादेव द्वयुमहो युयोधि न ॥६॥

—१।१४०

२०. श्रद्धा कामायनी—

२७ श्रद्धयाग्नि समिध्यते श्रद्धया ह्यते हवि ।

श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१॥

प्रिय श्रद्धे ददत् प्रिय श्रद्धे दिदासत् ।

प्रिय भोजेषु यज्वस्विद म उदित कृधि ॥२॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्नेषु चक्रिरे ।

एव भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदित कृधि ॥३॥

—१०।१५१

२१. सरमा—देखो (६।१९)

२२. सार्पराज्ञी—

२८ मयोभूर्वातो अभि वातून्ना ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ता ।

पीवस्वतीर्जीवधन्या पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥१॥

या देवेषु तन्वमैरयन्त यासा सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।

ता अस्मभ्य पयसा पिन्वमाना प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥

—१०।१६९

२३. सिकता—देखो निवावरो १७।८

२४. सुदेवी—

२९ याभि पत्नीविमदाय न्यूहधुराघ वा याभिररुणीरशिक्षत ।

याभि सुदास ऊहथु सुदेव्य ताभिरुपु ऊतिभिरध्विना गत ॥१९॥

—१।११२

परिशिष्ट १ ऋचायें

- १९ शिपडिनी काश्यपी—
 २६ वह हमारे मर्दोंके पति हे गोम, तुम देव-भोजन हो। सखाको मखाकी तरह (तुम हमारे लिये) बत्यल हित-ज्ञ होओ ॥५॥
२०. श्रद्धा कामायनी—
 २७ श्रद्धामे जनि प्रज्वलित होता है, श्रद्धामे हवि होम की जाती है। एश्वर्यके गिर्यपर गूहनेवाली श्रद्धाको मैं वचनमे जतलाती हूँ ॥१॥ हे श्रद्धे, देनेवालेका प्रिय करो। हे श्रद्धे, देनेकी इच्छावालेका प्रिय करो। भोज देनेवाले (भोजों) का प्रिय करो। यज्ञ करनेवालोमें भरे इस कथनको (पूरा) करो ॥२॥ जैसे देवताओंने, उग्र अनुगमे (गव्युताकी) श्रद्धा ली, ऐसे ही भोजों और यज्ञकर्त्ताओंमें हमारे कथनको करो ॥३॥

—श्रद्धा, १०।१५१

१ गरमा—देवो ६।१६

१२ सारंपराज्ञी—

- २८ गुणमय वायु गायोपर यह, वह बलदायक वनस्पतियोंको गाये, मोटा कन्नेवाले, आयु बढ़ानेवाले (जल)को पीये। हे मरु, पैरोवाली (गायो) के लिये भोजन गुणमय बनाओ ॥१॥ जो गीचें जने गंगरखी देवोंके लिये गेती है, जितने मां स्पोंको नोम जानता है, मन्नानवादी हो, हमें दूधने पूर्ण करता उन (गायो) को हे इन्द्र, (हलाने) गोष्ठमें लजो ॥३॥

—गार्गागी १०।१६९

२३ मित्ना—देवो निशापनी १७।८

२४ मुदेवो—

- २९ हे अश्विद्वय, तिन सत्पराज्ञी नग विमदो लिये तुम रानी गये, जिनो ला गाने प्रजात पी, तिनके मुदागो लिये मुदेवोंको मुद गाने, उन सत्पराज्ञीके माद जाओ ॥१९॥

—मुदु जागिन, १।११२

२५ सूर्या—

३० सत्येनोत्तमिता भूमि सूर्येणोत्तमिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अवि श्रिति ॥१॥

सोमेनादित्या वलिन सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेपामपस्थे सोम आहित ॥२॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाययैति परिष्कृत ॥६॥

चित्तिरा उपवर्हण चक्षुरा अम्यजनं ।
द्यौर्भूमि कोश आसीद्यदयात् सूर्या पति ॥७॥

स्तोमा आसन् प्रतिघय कुरीर छन्द ओपश ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगव ॥८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्या यत् पत्ये शसन्ती मनसा सविता ददात् ॥९॥

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुता छदि ।
शुक्रावनड्वाहावास्ता यदयात् सूर्या गृह ॥१९॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहत ।
अनो मनस्मय सूर्यारोहत् प्रयती पति ॥१२॥

सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोर्जुन्यो पर्युह्यते ॥१३॥

सुकिंशुक शल्मलि विश्वरूप हिरण्यवर्णं सुवृत सुचक्र ।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोक स्योन पत्ये वहतु कृणुष्व ॥२०॥

उदोर्ष्वति पतिवती ह्येपा विश्वावसु नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृपद व्यक्ता स ते भागो जनुपा तस्य विद्धि ॥२१॥

परिशिष्ट १ ऋचायें

५. सूर्या—

३०. मत्स्य द्वारा भूमि धामी गई, सूर्य द्वारा द्यौ धामा गया। ऋत (मत्स्य) द्वारा देव आदित्य द्यौमें स्थित हैं, द्यौमें सोम आश्रय प्राप्त है ॥१॥ सोमसे आदित्य बली है, सोमसे पृथिवी महान् है। और इन नक्षत्रोंके पाम सोम रक्ता गया है ॥२॥
- रैभी (ऋचायें) अनुदेयी (बघूके माय अनुदान की जानेवाली गयी) थी, नारायणी (ऋचायें) (बहूकी) दानी थी, सूर्याका वदिया वस्त्र गायामे परिष्कृत था ॥६॥
- जब सूर्या पतिके पाम गई, तो चिन्तन तकिया था, चक्षु जजन था। द्यौ-पृथिवी कोश थे ॥७॥
- स्तोम चक्कोते अरे थे, कुरीन उन्ध ओमज (मीमफूल) था। सूर्याके वर अश्विद्वय थे, अग्नि अगुआ था ॥८॥
- गोम व्याह-श्च्छुक्त था, दोनों अश्विद्वय वर थे। जत्र पतिली कामना करनेवाली सूर्याको नविताने अश्विनोको मनने दिया ॥९॥
- जब सूर्या (पतिके) घर गई, तो मन इनका घबट था, और द्यौ छन (ओहार) थी। दोनों शुक्र (न्यते) दो बेल थे ॥१०॥
- जाती हुई तेरे नक्षत्रोंके घुरेमें वायु पला था। पतिके पाम जाती सूर्या मनोमय स्वपर चडी ॥१२॥
- नविताने जिमे प्रदान किया, वह सूर्याती वगतके आगे-आगे चत्र। मघा नक्षत्रोंमें बेल मारे गये, अर्जुनी- (फाल्गुनी) पुरा-उत्तरा में वह व्याही गई ॥१३॥ (१६।१७)
- है सूर्ये, नाना रूपों नुनहले, मुञ्जान्छादित, विभुत-नेलटो मुन्दर चत्रवाले (स्वयन्) चट। जाकर पतिलों मुग्धनय अमृत कोश जानने लिये बना ॥२०॥
- विदवायसु (माने यक्षुषी) हो नमन्तागपूरके धानोंमें मैं प्रायेण अन्ना हूँ—तुम यहाँमें उठी। यह पतियाती है। मुन निजाने पामें देदी हमने होगियार बन्धाती समता मने, क कुन्दाग भाग है। जने पतिलो दूरे ॥२१॥

सुमगलीरिय वधूरिमा समेत पश्यत ।
सौभाग्यमम्यै दत्वायाथास्त वि परेतन ॥२३॥

इहैव स्त मा वियौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुत ।
श्रीळन्ती पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

इमा त्वमिन्द्र मीद्व सुपुत्रा सुभगा कृणु ।
दशास्या पुत्रानाघेहि पत्तिमेकादश कृवि ॥४५॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वा भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अवि देवृषु ॥४६॥

—१०१८५

अध्याय १८

भाषा और काव्य

§१. भाषा

१ भरद्वाज—

१ त्व ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या वियो अभवो दस्म होता ।
त्व मी वृपन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहर्घ्यै ॥१॥

अवा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इपयन्नीळ्य सन् ।
त त्वा नर प्रथम देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥२॥

—६।१

२ रक्षोहा—

२. ब्रह्मणाग्नि सविदानो रक्षोहा वाचतामित ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१॥

यह सुमगली बधू है, आकर इसे तुम देखो। इनको भीभाग्य प्रदान कर अपने-अपने घरोंको जाओ ॥३३॥

दोनों (पति-पत्नी) यही रहें, न विछुड़ें, नागे आयुको प्राप्त करें।

पुत्र और नातियोंके साथ गेलने अपने घरमें प्रमुदित रहें ॥४२॥

हे मित्रन-समर्थ इन्द्र, इम (बधू) को गुपुत्रा नुमगा बनाओ। इममें

दस पुत्रोंको धारण करो, (और) पतिको न्यारदया बनाओ ॥४५॥

हे बधू, तू नमुन्पर नम्राणी हो, नानपर नम्राणी हो। ननदपर

सम्राणी हो, देवरोपर नम्राणी हो ॥४६॥

—मृषा, १०।८५

अध्याय १८

भाषा और कविता

§ १ भाषा

१. भग्नाज—

१ हे अग्नि, तुम इन बुद्धिके प्रथम मननकर्ता, अज्ञात होता तो। ते पगात्रमी, तुम (हमारे भीतर) दुर्घम नारे बल पैदा कर दो, (जिम्मे) नारे दुग्मनोंको हम पगाजित करें ॥१॥

स्वुति-योग्य होता, पूजनयोग्य हो तुम पूज्यमानमें अज में रहोगे। महाधनको दत्ता करने तुम्हें प्रधान देव मानते (तु) नुन्राग अनुगमन करते हैं ॥२॥

—मन्त्राज, ६।१

२. रक्षोहा—

२ राक्षसहृत्वा (अग्नि) (हमारे) शत्रु (शत्रुता, स्वुति) के साथ एक हो, यामें नुन्रादे पर्वने ना गेल, योत्तियमानमें नुन्राता (गेल) है उसे अद्वार्ये ॥१॥

यस्ते गर्भममीवादुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्ट ग्रहणा सह निष्प्रव्यादमनीनशत् ॥२॥

—१०११६२

§ २. छन्द

३. कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्य किमासीत् परिवि क आसीत् ।
छन्द किमासीत् प्रउग किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स वभूव ।
अनुट्टभा सोम उक्थंमहस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

विराणिमत्रावरुणयोरभिथ्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुविह भागो अह्न ।
विश्वान् देवान्जगत्या विवेश तेन चावलृप ऋषयो मनुष्या ॥५॥

—१०११३०

३. रचना

१. वाणी—

४. इन्द्र वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजान दविरे सहृद्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया ममापीन् ॥१२॥

—७१३१

२ सूक्त—

५. का ते अस्त्यरड् कृति सूक्त. कदा नून ते मधवन् दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वा याथा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥३॥

—७१२९

जो तेरे गर्भमें रोग, योनिम्यानमे दुर्णामा (उपद्रव) है, ब्रह्म (ऋचा) के माय अग्नि उमे अ-मानभक्षी बना नष्ट कर दे ॥२॥

—रघोहा ब्रह्म-सुप्त, १०।१६२

§ २ छन्द

३ जब नारें देवोंनं देव (प्रजापति) का यजन (भजन) किया, तब प्रमा (सीमा)-प्रतिमा क्या थी ? क्या निदान (कारण), क्या घी था, परिधि (घेरा) क्या थी ? छन्द क्या था ? उच्य (गान) क्या था ॥१॥

अग्निकी महाकरी गायत्री हुई, उष्णिक्के गाय नविना एक हुआ। नोम अनुष्टुप्के, उच्यो द्वारा तेजस्यी (सूर्य), वृत्नीने वृत्त्यतिके वास्यको अवलम्ब दिया ॥४॥

धिराट् मित्र-वरुणका अवलम्ब हुआ, इन्द्र और दिनके भागता गता विष्टुप् (आश्रय) हुआ। नारें देवोंमें जगतीने प्रवेग किया। उनमें ऋषियों और मनुष्योंने यज्ञ किया ॥५॥

—यज्ञ प्रजापति-सुप्त, १०।१३०

§ ३. रचना

१. वाणी—

४ वाणीने अप्रतिहत-शोक, इन्द्रको दमानेके लिये नदोंके वालें गला म्यापित किया। इत्यश्न (अव्ययति इन्द्र) के लिये भस्मोंको वड़ाओ ॥१२॥

—परिशिष्ट, ३।३१

२. मूर्त—

५. हे मयवन्, जब हात मुझो प्राग तुन्नागे स्तुति करने हैं उन्नागे क्या तुष्टि होती है ? तुम्हारे लिये नारी प्रमत्तारे हन नारी हैं। हे इन्द्र, मेरी स्तुतिजोसी नुतो ॥३॥

—परिशिष्ट, ३।३६

६ प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिद सूक्त मरतो जुषत ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥६॥

—७।५८

३ श्लोक—

७ मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततन । गाय गायत्रमुक्थ्य ॥१४॥

—१।३८

४ साम—

८ उप नो देवा अवसा गमन्त्वगिरसा सामभि स्तूयमाना ॥२॥

—१।१०७

९ प्रदाक्षणि दभिगृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तय ।
उभे वाचौ वदती सामगा इव गायत्र च त्रष्टुभ चानुराजति ॥१॥

—२।४३

१० प्रस्तोपदुष गासिषच्छ्रवत् साम गीयमान । अभि राघसा जुगुरत् ॥५॥

—८।७०

५ स्तोम—

११ अश्रव हि भूरिदावत्तरा वा वि जामातुरुत वा धा स्यालात् ।
अथासोमस्य प्रयती युवम्यामिन्द्राग्नी स्तोम जनयामि नव्य ॥२॥

—१।१०९

१४ काव्य

उपमा —

१२. प्रावाणेव तदिदर्यं जरेये गृध्रेव वृक्ष निघिमन्तमच्छ ।
ब्रह्मणा वे विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुशा ॥१॥

परिशिष्ट १ ऋचायें

६. हे मरुतो, महानोका जो यह सूक्त है (इमे) स्वीकार करो। हे कामनावर्षी, शत्रुओंको दूर हटाओ, तुम स्वस्निपूर्वक नदा हमारी रक्षा करो ॥६॥
—वनिष्ठ, ७५८

३. श्लोक—

७ मुखमें श्लोक बनाओ, मेषकी तरह (उमे) फैलाओ, गायत्र गान गाओ ॥१४॥
—कव्य घोर-मुद्र, १३८

४ साम—

८ सामो द्वारा स्तुति किये जाने देव नहायताके नाच हमारे पान आयें ॥२॥
—दुल्ल आगिन्, ११०७

९ जैसे ऋतुओंमें पक्षी बोलते हैं, वैसे दाहिनी ओर कवि स्तुति करते हैं। गायत्र और त्रैष्टुपको नामगायक, दोनों वाणियोंको बोलना वैसे अनुरजन करता है ॥१॥
—गूलमर गुनहोम-मुद्र, २४३

० स्तवन हो, गान हो, इन्द्र, गीयमान नामको मुने। वह धनने हमारे ऊपर उपा करे ॥५॥
—दुतीरी कव्य-मुद्र, ८१७

५. स्तोम—

११. हे इन्द्राग्नि, मुना है तुम दामाद और नालेने भी ज्वान जेनेवा हो। एनलिए मोनते प्रदानके नमय तुम्हारे निचे मैं नोन न्ने रचना ह ॥२॥
—दुल्ल आगिन्, १११

६४ फाव्य

उपमा—

१२ (अज्यिद्वय) इमके निचे (मोमते) निम्बद्वेरो तरह स्तुति पायुतो वागा दो, बङ्गाली तरह निम्बियुता पृथरी प्रान ब्रह्मारी तरह यममें डाल्य (मोम) गाँपाते हो, मन-इत्ये जेने प्रकारने नायक होजे ॥१॥

प्रातर्यावाण रथ्येव वीरा'जेव यमा वरमा सचेथे ।
मेने इव तन्वा शुभमाने दपतीव ऋतु विदा जनेपु ॥२॥

शृगेव न प्रथमा गन्तमवांक् शफाविव जर्भुराणा तरोभि ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रावाचा यात रथ्येव चक्रा ॥३॥

नावेव न पारयत युगेव नम्येव न उपधीव प्रधीव ।
ध्वानेव नो अरिपण्या तनूना खृगलेव विस्रस पातमस्मान् ॥४॥

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिकी इव चक्षुपा यातमवाक् ।
हस्ताविव तन्वे शभविष्ठा पादेव नो नयत वस्यो अच्छ ॥५॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यत जीवसे न ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

हस्तेव शक्तिमभिसन्ददी न क्षामेव न समजत रजासि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्ती क्षणोत्रेणेव स्वविति सशिशित ॥७॥

एतानि वामश्विनो वर्धनानि ब्रह्म स्तोम गृत्समवासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुपाणोपयात बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥८॥

—२।३९

१३ कि देत्रेषु त्यज एनश्चकर्याग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अग्नीळन् श्रीळन् हरिरत्तवे दन् विपर्वंशश्चकर्त गामिवासि ॥६॥

—१०।७९

हे धीरो, प्रातः जानेवाले रथियोंकी तरह तुम दोनों हो, दो जुड़ावा
बकरोकी तरह, दो मुदगियोंकी तरह शरीरमें गोभा-युक्त चतुर्
दम्पतीकी तरह जनोंके पान आओ ॥२॥

हे प्रमान (अश्विद्वय), मीगकी तरह, दो गुरोकी तरह, हर प्रातः
हमारे पान आओ । हे शक्तिशाली, चक्रवाक्सी तरह या दो रथियोंकी
तरह हमारे पान आओ ॥३॥

नाबोकी तरह हमें तुम पार कर दो, रथकी नाभि, चक्र, उराकी तरह
(हमें पार कर दो) । कुत्तोंकी तरह शरीरको हानिसे बचाओ, दो
वैनागियोंकी तरह हमें धर्मसे बचाओ ॥४॥

तुम वायुकी तरह न जीर्ण होनेवाले, नदीकी तरह शीघ्रगामी, दो
नेत्रोंकी तरह दमक हो, तुम हमारे पान आओ । दोनों ज्ञानोंकी तरह
तुम शरीरके मुखदाता, पैरोंकी तरह हमें श्रेष्ठ पनके लिये दे
चलो ॥५॥

भ्रूममें ओष्ठोंकी तरह मधुर वचन बोलो, दो स्तनोंकी तरह जीनेके
लिये हमें दूध पियओ । दो नानिजाओंकी तरह हमारे शरीरके रक्षक,
दो कानोंकी तरह हमारे मुखपर श्रोता बनो ॥६॥

दो हाथोंकी तरह हमें शक्ति प्रदान करो । शौभृशियोंकी तरह शक्तियों-
को मिलाओ । हे अश्विद्वय, ये शक्तियां तुम्हें चाहती हैं, (इन्हें)
पानकी तरह नेत्र करो ॥७॥

हे अश्विद्वय, गृत्तमदोंने तुम्हारे दंतों से मंत्र और स्तोत्र बनाये ।
हे नरो, उदात्त मेधा करने (हमारे) पान आओ । गन्धर्व शीशुके
हम मभामें (तुम्हारे) यज्ञके दो ॥८॥

—गृत्तमद २।३९

१३. हे अग्नि, तब दोनों दिग्गमों तुमने सब लिये उपकरण ही मैं तुम्हें
पूछता हूँ । देखो न देखो तुम्हारे, देवदत्तों तुम हीने पार
तबवार मैं ही पान-पान करने तब तुम्हारे पान ॥९॥

—अग्नि गृत्तमद-सूक्त, १।१।१९

१४ त्वेषस्ते घूम ऋण्वति दिविषन्धुक्र आतत ।
सूरो न हि द्युता त्व कृपा पावक रोचसे ॥६॥

अघा हि विक्ष्वीड्योसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्व पुरीव जूर्यं सूनुर्न त्रययाय्य ॥७॥

—६।२

१५ तिग्म चिदेम महि वर्षो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमान परशुर्न जिह्वा द्रविर्न द्रावयति दारु घक्षत् ॥४॥

स इदस्तेव प्रति घादसिष्यन् छिशीत तेजोयसो न घा ।

नि गावो गोष्ठे असदन्ति मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनाना न्यदृष्टा अलिप्सत ॥४॥

—१।१९१ अगस्त्य

घृणा न यो घ्नजसापत्मना यन्ना रोदसी वसुना द सुपत्नी ॥७॥

घायोभिर्वा यो युज्येभिरकैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभि शुष्मे ।
शर्धो वा यो मरुता ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८॥

—६।३

§५ कवि

१ वसिष्ठ—

१६ व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमगिरस्तमा पथ्या अजीग ॥१॥

एते त्ये भानवो दशंतायाश्चिन्ना उपसो अमृतास आगु ।
जनयन्तो देव्यानि भ्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थु ॥३॥

एषा स्या युजाना पराकात् पच क्षिती परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनाना दिवो बुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

१४ (हे अग्नि,) तुम्हारा दीप्तिमान् उज्वल घूम शीलोत्तमं विन्तुत फंश है। हे पावक, वृपालु हो (अपनी) द्युतिमे तुम नूरुकी तरह प्रकाशते हो ॥६॥

घरोंमें तुम हमारे पूज्य प्रिय अतिथि हो। गहमें वृद्ध जैसे प्रगल्भ, नूनुकी तरह रक्षा-इच्छुक हो ॥७॥

—भग्नाज, ६।२

१५ तीक्ष्ण इमका आकार है, महान् शरीर है, अश्वकी तरह मुहने तृण-काष्ठ गाता है, कुठारकी तरह जिह्वाको छोड़ता है, कलछोरी तरह काष्ठको जलाते भगाना है ॥४॥

रात्रिका मक्षिप्त और मुन्दर वानं देगिये—

गायें गोष्ठमें बैठ गई। मृग अपने स्थानोंमें प्रवेश कर गये। जादमियोंकी आगें बुझ गई। अदृष्ट चीजोंने मुझे लिप्त वर दिया ॥५॥

—अग्न्य, १।१९, १

जो विजलीकी तरह धारक जाड़ी किरणों, और अपने शब्दों द्वारा प्रकाशित होता है। मस्तकोंके वाष्पशिलीरी तरह जो गया, प्रभुरी तरह दीप्तिमान् (वह अग्नि) योग्ये प्रकाशता है ॥६॥

—भग्नाज, ६।२

१५ फवि

१. वसिष्ठ—

१६ शीघ्रुशी उपा वनती, (वह) मन्वने अपनी महिमा जागिरना करती आई। अग्रिम शोरी तमको दूर गया, भ्रष्टतम अगिरने फसने जगाया ॥१॥

उपारी वह वे विभिन्न शंकीय अमृत विन्ने गतं (गोन) शिव्य वनोतो उत्तर रागी अन्विधोते भर्गी उरी ॥३॥

का ग् शोरी दुर्गा, भुवने गंधिता, उपा इग्ने (ग्य) जंटे, जंनोंके सामोमे अरुणान करी, तुम्हें पावो रनेके शरणे और पृथगे है ॥४॥

वाजिनीवती सूर्यस्य योपा चित्रामघा राय ईशे वसूना ।
 ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युपा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥

प्रति द्युतानामरुपासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रक्षुपसं वहन्त ।
 याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्न विधत्ते जनाय ॥६॥

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रै ।
 रुजद्दृह्लानि ददुस्त्रियाणा प्रति गाव उपस वावशन्त ॥७॥

नू गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
 मा नो वहि पुरुषता निदे कर्षूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥८॥

—७।७५

२. विश्वामित्र—

१७ उपो वाजेन वाजिनि प्रचेता स्तोम जुपस्व गृणतो मघोनि ।
 पुराणी देवि युवति पुरन्धिरनुव्रत चरसि विश्ववारे ॥१॥

उपो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
 आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये ॥२॥

उप प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतु ।
 समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्स्व ॥३॥

—३।६१

३. वामदेव—

१८ इदमु त्यत् पुस्तम पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्यात् ।
 नून दिवो दुहितरो विभातीर्गात् कृणवन्नपसो जनाया ॥१॥

घोड़ियोवाली विचित्र प्रभा-युक्त मूर्य-मली वनुओ बीर धनपर
शामन करती है। (जरा-) जीगं करती, ऋषियोनि प्रशानित, ऋन्विजो
द्वारा स्तुति की जाती धनो उपा प्रकाशित होती है ॥५॥

प्रकाशमान उपायो बहन करते विचित्र गाल अथवा दिमाई दे रहे हैं
नाना र्षोवाली (वह) शुभ्रा रथमे जाती (नेवक) जनके लिये रत्न
देती है ॥६॥

वह नन्वा नन्वोंके माय, महती महानोंके माय देवी देवोंके नाय,
पूज्या पूजनीयोंके नाय, दूट (दुगों) को भेदन करती, गीओंको
(चार) देती है। गायें उपाके लिये हूकारती है ॥७॥

हे उपा, हमें तुम गो-युक्त, वीरो-युक्त रत्न दो, जय-युक्त बहूत
भोग दो। हमारे कुशको पुण्योकी निदाने बचाओ। (देवताओं),
तुम मग स्वन्निके नाय हमारी रक्षा करो ॥८॥

—यन्त्रि, ७१५

विश्यामित्र—

हे शक्तिने शक्तिमती, ज्ञानवायी, मधोनी उपा, स्तुतिवर्तिके ग्लोम
(स्तुति) को ग्रहण करो। प्राचीन युवती, वह बलिवायी, नयने
लिये चरणीया है देवि, (तुम) प्रकृत अनुगमन करती हो। ॥९॥

हे उपा, अमर देवि, मुनरनेन्दवागी, (तुम) मधुग्यागी प्रकृत करती
हो। मुतांमर्गा तुम्हें मुनिभित बहूत करवाती अथवा तब ॥१०॥

हे उपा, तुम मागे भुवनोंके जार अमृतगी स्वरा भी उपस्थित हो।
हे नमीना, एक ते अर्वा विचरग करती चरती तब तुम पुन पुन
धृमा ॥११॥

—विश्यामित्र, ७१६

शामदेव—

जगत्पति बीरों पुरमें न न शक्तिने शक्तिमती
करती है। निरवार शोका दित करती शोके शक्तिने उपा
प्रशानित हो गी है ॥१॥

अस्थुरु चित्रा उपस पुरस्तान्मिता इव स्वरवो'ध्वरेपु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरब्रन्धुचय पावका ॥२॥

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्नावोदेयायोपसो मघोनी ।
अचित्रे अन्त पणय. ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमघ्ये ॥३॥

यूय हि देवीऋतयुग्भिरश्वै परिप्रयाय भुवनानि सद्य ।
प्रवोचयन्तीरुपस ससन्त द्विपाच्चतुप्पाच्चरथाय जीव ॥५॥

क्व स्विदासा कतमा पुराणी यया विधाना विदधुऋभूणा ।
शुभ यच्छुभ्रा उपसश्चरन्ति न विज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ॥६॥

—४१५१

१९. प्रतिप्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसु । दिवो अर्दाशि बुहिता ॥१॥

अश्वेव चित्रारूपी माता गवामृतावरी । सखाभूदश्विनोरुपा ॥२॥

उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोपो वस्व ईशिपे ॥३॥

यावयद् द्वेषसन्त्वा चिकित्वित् सूनृतावरि । प्रति स्तोमैरभूत्समहि ॥४॥

प्रति भद्रा अदृक्षत गवा सर्गा न रश्मय । ओपा अप्रा उरु जय ॥५॥

आपप्रुपी विभावरि व्यावज्योतिपा तम । उपो अनु स्वघामव ॥६॥

—४१५२

२०. देखो ७।६

२१ विधु दद्राण ममने वहूना युवान मन्त पलितो जगार ।

देवस्य पश्य काव्य महित्वा' द्या ममार स ह्य समान ॥५॥

—१०१५५

यज्ञोंमें गये यूपोंकी तरह मित पूर्वमें विचित्र उपायें उगी। वाधक अधकारके द्वारको चोल्ती वह दीप्त पवित्र प्रकाशित होती है ॥२॥ तमनाशिका, मघोनी (धनवती) उपायें धन देनेके लिये भोजोंको चेताती है। पणि लोग अन्धकारके मध्यमें जागे बिना ब्रेहोग नोये रहें ॥३॥

हे उपा देवियों, नोये दोपाये-चोपाये जीवोंको जगाती मत्वके जुडे अश्वोंके साथ तृग्न भुवनोंके चारो ओर जाती हो ॥५॥

जिनने ऋभुओंके विधान बनाये, वह कौन उनमें पुरानी है ? (जब) शुभ्र उपायें विचरण करती है, तो वह अजरा एकनमान (होनेमें) पहचानी नही जानी ॥६॥

—यामदेव, ४।५।१

१९ वह प्रगमित हृपंदा मुनायिका, अन्धकारनागिनी, धीली दुहिना अपनी वहिन (रात्रि) को हटाती रिगाई पज ॥१॥

घोड़ी भी विचित्र लाल, गावोंकी माना, तेजस्वी उपा अग्निद्वयरी सगी हुई ॥२॥

हे उपा, तू अश्विद्वयकी सगी है, या गावों (रिगों) को माना, या तुम धनकी अधीश्वरी हो ॥३॥

द्वेषोंको हटाती नो, तेरे वागमें नोचों, हे हृषिणी, हम म्यांमो (स्तुतियों) ने तुम्हें मिलनेके लिये जगते है ॥४॥

गावोंके भुड भी (उगली) भद्र रिगों रिगाई भी। उपाके अने विन्तू तेजमे (रिगको) भर दिया ॥५॥

हे विभावनि (प्रकाशवती), (अपनी) जगोपि भग्यें तुमने तमको दर दिया। हे उपा, अपनी प्रहृषिने रघु रगे ॥६॥

—यामदेव, ४।५।२

२०. वेतो ७।६

७। यज्ञ पत्तार गटो यज्ञमाको यया होने वीने उपा रिग। हेने गायत्री तागनी वेतो जो नर उगित्त या या अर नर गगा ॥५॥

—यामदेव, १।५।५

४ भौम—

२१. अच्छा वद तवस गीभिराभि स्तुहि पर्जन्य नमसा विवास ।
कनिऋद्धृपभो जीरदान् रेतो दघात्योपघीषु गर्भं ॥१॥

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्व विभाय भुवन महाववात् ।
उतानागा ईपते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्य स्तनयन् हन्ति दुष्कृत ॥२॥

रथीव कशयाश्वा अभिक्षिपन्नाविर्दूतान् कृणुते वर्ष्या अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्य कृणुते वर्ष्य नभ ॥३॥

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत् उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्त्र ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत् पर्जन्य पृथिवी रेतसावति ॥४॥

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओपघीर्विश्वरूपा स न पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥

दिवो नो वृष्टि मस्तो ररीष्व प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धारा ।
अर्वाङ्ङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निपिचन्नसुरः पिता न ॥६॥

अभिऋन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परिदीया रथेन ।
दृति सु कर्प विपित न्यच समा भवन्तूद्धतो निपादा ॥७॥

महान्त कोशमुदचा निपिच स्पदता कुल्या विपिता पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावा पृथिवी व्युन्वि मुग्रपाण भवत्वघ्न्याम्य ॥८॥

४. भोम—

२१ हे इन वाणियोंमें बलकी प्रशंसा करो, नमन्त्यान्पूर्वक पर्जन्यकी स्तुति करो। दानशील गरजता वृषभ (पर्जन्य) औपधियोंमें वीर्य धारण करता है ॥१॥

वह वृक्षोंको नष्ट करता, मानो गधनोंको नष्ट करता है, महाययने सारे भुवनको डराता है। वृष्टिवाले उनमें निरपराध भी भागते हैं क्योंकि पर्जन्य शब्द करते दुष्टोंको मारते हैं ॥२॥

रथोंकी तरह चायुफने घोटोंको हाकना, (वृष्टि-) दूतांको बराना, जब पर्जन्य नभको वर्षा-युक्त करता है, तो दूग्ने मिटकी गर्जना उठती है ॥३॥

वायु जोग्ने बहते हैं, विजलिया गिरती हैं, औपधिया उगती हैं, आकाश भर जाता है। नारे प्राणियोंके लिये पृथिवी नमर्थ होती है, जबकि पर्जन्य पृथिवीको (अपन) वीर्यसे नहायता करता है। ॥४॥

जिनके धन (कम) में पृथिवी नम होती है, जिनके धनमें गुग्गुलुके पोषित होने हैं, जिनके धन में औपधिया नाना रूपकी पैदा होती हैं, वह पर्जन्य हमें महाशरण प्रदान करे ॥५॥

हे मरुतो, धीमे हमें वृष्टि प्रदान करो। वर्षा करनेवाले जन्म (भार) को धानोंको बरनाओ। हे पर्जन्य, इन कष्टोंसे भाव प्राप्त आओ। हमारा पिता अमुर जलने मेहनत करे ॥६॥

आवाज करो, गऊओ, गर्भ धारण करो, जलवाले गर्भों परनिभमान करने। चमटे (मगर) को मीनों, बयला मुक्त करने (जिनमें) ऊबल-नाभट प्रदेश समाल होंगे ॥७॥

महासोम (मिथ) का ऊपर उठा नोभो, बरान-मुक्त मुक्तार्ये (नरिया) आगे बढे। जग्ने ही ओषधियोंकी भिन्नता से, मीं मेरे लिये सुन्दर प्याउ हो ॥८॥

परिशिष्ट २

नाम-सूची

- अगस्त्य—५११२ (वसिष्ठ), ५१६
(के लिये विश्पलाको), ५१६२-६६,
६१६६ (लाल घोड़े जोडना)
अगिरा—५१७५ (प्रथम सुकृति),
७१११ (पूर्वज)
अघा—१७३० (१३) (मघा)
अज—१०१२१ (यमुनाके पास
सुदासके करद), ५११५
अतिथिग्व (देखो दिवोदास भी)—२१
७, १३, ५१५० (कुत्स और आयु
साथी)
अग्नि—५१४८, ९११ (दध्यङ्, अगिरा,
प्रियमेव, कण्व, मनु पूर्वज),
९११० (और गविष्ठिर, कण्व,
त्रसदस्यु, वसिष्ठ साथ)
अथर्वा—५१७४ (मनु, दध्यङ्के साथ),
५१७५ (प्रथम यज्ञकर्ता)
अर्ध्रग—२११७, १२११५ (के रक्षक
अश्विद्वय)
अनु (जन)—११५, २१११, २११३,
२११४, २११५, १०११७११४ (सुदा-
सके शत्रु अनु और द्रुह्यके ६० हजार
६०६६ आदमी परुष्णीपर मरे),
१०११७ (सुदासके शत्रु, परतु दम

- राजाओमें नही, जिन्होंने कि
परुष्णीपर अधिकार किया था)
अपाला—३१८ (सूर्यत्वक् हुई)
अन्यावर्ती—९११६ (चायमान पार्थवों
के सम्राटने वधुओ-सहित दो
रथवाहन बीस गायें भरद्वाजको दी),
९१३५
अयास्य—६११९ (अगिरम्, नवग्व)
अरुणी—१०१२३, १७१२९ (को
विमदके लिये अश्विनी लाये)
अर्धदेव—९१३०१८, ९ (त्रसदस्यु)
अर्वाचित्—१४१२१ (पूर्ववाले देशमें
सोम छानना)
अलिन—२११८, १०११४ (दस
राजाओमें २ तुर्वङ्ग, ३ यक्षु, ४
मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्य, ७ पक्व,
८ भलान, ९ विपाणी, १० शिव)
अशुष—५१४९ (कुत्स-शत्रु दस्यु,
शुष्ण, व्यस, पिप्पु, नमुचिके माय),
५१५२, ६१२ (शुष्णके साथ वच),
८१२२ (श्वस्त, शुष्ण, व्यस, पिप्पु,
श्विक्रा का मारा जाना), ८१२२
(शुष्ण, कुयवका कुत्सके लिये मारा
जाना)

असिक्नी (चनाव)—१११०, ५१४१
 आगिरस—६११९८ (अयास्य,
 नवम्ब भी), ६११९१० (घोर भी)
 आनव (अनुयोग)—२११२, २११६
 (द्रोघवाक्), १०११७११३ (मुदाम-
 शत्रुके स्थानको त्रित्मुओको दिया,
 देगो अनु भी)
 आपया—११९ (मकंडा नदी)
 आयु—५१५० (कुल-अतिथिग्वका
 मायी), ५१८० (प्रियमेधोमें,
 मेधातिथिकी ऋचामें), ५१८११६
 (प्रियमेधोमें), १११८, १७ (कुल
 अतिथिग्वका मायी)
 आर्जोक—३११९ (में नोम), १४१२१
 (में नोम छानना, नायद ऋचीर-
 देण), १४११९ (में नोम आये)
 आर्जोकोया—१११०
 आर्जनेय—(देगो कुल)
 आय—२११८, ११५७ (और रान
 अमिरो को इन्ने मान), १४११८
 (नोमपान मवाने आय बनाता)
 इन्द्र—६११७१२ (निप्रवान्, रज्जमून्)
 ६१५७१८ (मायायान्), ३१३२१३
 (नुनिप), ३१४५११४ (मयुग्गेम
 अर्वावाला), ४१६५११४ (आयुध-
 धारी), १५१३५११ (वाधामि
 स्वागत), १०१३११८ (पारो
 माटोको गाना) १०१९३१८ (मुन-
 त्तो शो-मुटोवाण)
 उद्वज—(जग वर्षो ओ नवर मां
 नो)
 उवंशी—५१६८ (यनिष्ठ), ७१७११०
 (पुम्पगारा प्रयागमन कर्तो),
 ७१७१७ (में पुम्पगारी प्रायता),

१७१८ (नियोवा नग्य भेटियोका
 हृदय), १७१५ (के लौटनेके लिये
 पुम्पगारी प्रायता)
 उशना—२१८, ५१७५ (काव्य, गीतमने
 नूषतमे), १७१८१७ (को अरिन्द्रय
 उवाग)
 ऋजिश्वा—८११२ (के लिये पिप्रु
 मृगय, मृगुवानो माग, ५० हजार
 कृष्णोको नष्ट किया, पुगोको ध्वस्त
 किया), ८१४० (उदयो, पिप्रु-
 मृगय-हन्ता), ८१४३ (औरिजने
 पिप्रुके ब्रजको नष्ट किया), ८१८८
 (उदयोके लिये पिप्रुको माग,
 गीन्वोनिके स्तोमोके बटाया पाकर)
 ८१४५ (के लिये इयु-हन्तामें पिप्रुको
 नष्ट किया), ८१४६ (ऋजिश्वा
 शान बगरोको मो पुगोको नष्ट किया)
 ८१४७ (ऋजिश्वा ने रुग्ण-
 मभोको माग), ८१४८ (ऋजिश्वा
 ने मागो अनुर पिप्रुके नष्ट नष्ट
 लिये), ८१६० (धर्मिलके लिये
 पिप्रु, मृगय, मृगुवान् तथा ५०
 हजार रुपय मागे), ८१६३ (औरिज
 ऋजिश्वाके लिये षट् नष्ट लिये),
 ८१६५ (को रसा इन्कु नामें
 पिप्रुको माग कर को), ८१६६-८७,
 ११३८ (रा बगरोको मो पुगोको
 नष्ट करना)
 ऋश्या—५१८११२०
 ऋश्याय—५१५८ (में निजने जग
 लिये)
 ऋश्याय—११६८१२० (मनमोम पा
 राना मागे कर्तोके से), ५१६८११६
 (मनमोके इन् मागता मृगुय नष्ट

हजार घोड़े दिये)
 एतश—२१५, ५१८१ (को मारा)
 औचथ्य (दीर्घतमा)—५१६७, ५१६८
 कक्षीवान्—५१५७-६१, ५१६१ (ने
 असुरकी सौ गायें पाई), ५१६१।
 २-४ (को दशरथने १० वधुयें-
 दासिया और ६० हजार गायें दी),
 ५१६१४ (ने घोड़े पाये)
 कण्व—२१६ (तुर्वंश यदुके), ५१७८
 (मेवातिथिके सूक्तमें), ५१८०
 (कण्वोंकी तरह भृगु लोग),
 ५१८११६ (भृगु लोग, सूर्य भी)
 ७१२, ८१३, ९११ (और दध्यङ्,
 अगिरा, प्रियमेघ, मनु, पूर्वज),
 फरज—८१३९ (और पर्णयको महान
 वृत्रहत्यामें मारा), ८१४ (पर्णयको
 अतिथिग्वके लिये मारा), अ२
 ९१३८ (०), ९१३९ (और पर्णय-
 को वृत्रहत्या=शबरयुद्धमें मारा) ।
 कवप—२११३ (श्रुत, वृद्ध), ३११७,
 १०११७ (सुदास-शत्रु, द्रुह्युओका
 नेता वृद्ध श्रुत कवप परुष्णीमें
 डूवा), ९११३ (दाता असदस्यु)
 कवि—२११८ (चायमान), (देखो
 चायमान भी)
 कशु चैद्य—९१३५१२ (ब्रह्मातिथिका
 दाता)
 काण्व—५१८१ (मेवातिथिके सूक्तमें)
 काव्य—५१७५ (उशना गोतमके
 सूक्तमें)
 कोफट—४१५ (देश)
 कीनाश—५१४५ (कृपि देवता)
 कुत्स (ऋषि)—५१८५
 कुत्स—२१८, ५१४९ (-विरोधी, शुष्ण

अशुप कुयव) ५१५० (आयु,
 अतिथिग्वका साथी), ५१८१
 आर्जुनेयने शुष्णकी चर्षिष्णु डी=
 पुरको नष्ट किया), ८१३३-३७,
 ४१ (दस्युओको मारा), ८१८५-
 ८७, ९१११ (भारथीके लिये
 इन्द्रने शुष्णको मारा), ९११२
 (कुत्सके साथ रथ चला),
 ९११३१९ (कुत्सकी रक्षाकी, श्रुत-
 यंकी), ९११३ (आर्जुनेय और
 तुर्वीति तथा दभीतिकी रक्षा
 की, ध्वसन्ति, पुरुपन्तिकी रक्षा
 की), ९११४ (कुत्स, आयु, अतिथिग्व
 की रक्षा की, हजारों पुरु और
 तुर्वयाणको नष्ट किया), ९१४३
 (के लिये शुष्णको मारा), १७१८
 (जैसे कुत्स विशोको पाता)

कुभा—१११०, १११३
 कुभार—५१३९ (सोमक), ५१३९।
 ७-९ (साहदेव्य)
 कुयव—५१४९ (के विरोधी दास),
 ५१८६ (शुष्ण, पिप्रु, वृत्र, शबर
 भी), ५१८७ (कुयवकी दो
 स्त्रिया, क्षीरसे स्नात), ८१२१
 (और शुष्ण, पिप्रु, वृत्रको मारा),
 ८१३० (और दास शुष्णको आर्जु-
 नेय कुत्सके लिये मारा), ८१३९
 (की दो पत्निया शिफाके किनारे
 क्षीर, स्नात)
 कुरुश्रवण त्रासदस्यव—९१३५ (मम्राट्
 दाता सौभरिके, राजा कुरुश्रवण
 त्रासदस्यव मन्त्रिष्ठ) ९१३५
 कुशिका—४१२६ (अग्नि परिचारक
 युग-युगम), ५१२६ (विप्र, अग्नि

की मेवा की), ५१२६, ५१२६।११
(मुदामके अश्वके लिये), ५१२९
(कुशिकांके माथ विद्यामित्रने
मिन्वु पार किया।

कुशिक—१०१२५ (कुशिकांके माथ
इन्द्रने मुदानको नदी पार
कराया), १०१२६ (कुशिकांने
युग-युग वैश्रानर अग्निकी मेवा
की), १०१२७ (कुशिक एक
एक घरमें अग्निकी मेवा करने है),
१०१२९ (कुशिको, मुदासके घोड़े
को धनके लिये छोड़े, राजा जशुको
मारे, पूर्व-पश्चिम-उत्तर पृथिवीमें
यजन करे), १५१९०

कुशिकास.—५१२६ (कुशिकास्य नृणु)
—५१२९ (०)

कृत्व—१४१२१ (कृत्वामें गोमता
छानना)

कृष—५१८१।१० (रथम, व्यावाक,
स्वर्णरते माथ), ९।३ (और रथ,
रथम, व्यावाकको इन्द्रने मुदा
किया)

कृष्ण—३।१२ (दन्वु)

कृष्णत्वक्—१।१८, ८।२ (दात,
अन्न)

कृष्णयोनि—१।१७ (गन),
३।१३ (दात), ५।५१, ८।१
(दागीर)

कृष्णिय—५।६० (अग्निनांके कृष्ण-
पाय), ६०।१०, १७।११ (विद्य-
नाके लिये, अग्निद्वय विद्याप्रसो
नाके)

कृश—१७।८ (८) (को अग्निद्वयने
बसाया)

कौरयाण (देखो पावस्यामा)

कौत्तर (देखो शवर)

क्रुम—१।१०, १।१३ (कुर्रम)

क्षिति, पच—५।६६

गर्ग—१।१ (दाता प्रन्नोक)

गगा—१।१०

गघारी—५।६१ (की गोमग नेटें)

गुग—८।५३, ९।३९ (में अतिविश्व
वृत्ततुरको धन, अन्न दिलवाया)

गुल्मदास—५।४७-५६, १८।१२

(गुल्मदोने प्रत्य न्नाम बनाये)

गैरिक्षित—९।३१ (अनदस्युने दग घोड़े)

गोमतो—१।१० (गोमन)

गोतम—५।३३ (पिता, वामदेवके),

५।७७ (रुधीवान् के नूनमें),

५।७३-७ (गहृगण)

घोषा—५।६० (पिताके घर बँटी

पनिके लिये भगी), ११।२०

(राजाकी सुहिना), १२।१०

(पिताके घरमें भगतीने पति पाया),

१७।६-१६ (में भी)

चायमान—२।६८ (रति), १०।१६

(रति पनु पत्नीने ते नाम पयिपीतर

गिर कर मगरे लिये मो त्रा,

मुदानका प्रतिद्वी), (देगा अन्ना-
र्न्नी)

चित्र—१।६।६१ (मन्त्रको लटे)

धूमणि—५।१३ (दन्वु, पनिके माथ

रथीति मद्रु), ८।११ (की

धुनि, विद्रु मद्रु अन्त्रको माथ)

द्वयान—१३।१० (में तीरकी शक्तिकी

मद्रु अन्त्र)

द्व्या—१४।२१ (रथने रथी—दन्वु-

दुराण-द्वय-दन्वु दुर—में मार मारने)

- तुर्वंघाण—११७ (और सुश्रवसूको कुत्स, अतिथिव, आयु तरुण महाराजके लिये नष्ट किया)
- तुर्वंघाण—२१२ (जन)
- तुर्वंघाण—११५, २१४, २१६-८, २११०-१३, २११५, ५१६४ (और यद्व सायी जन), ८१११ (और यदुको पश्चिमसे लाये), ९१३६ (को अतिथिगवके लिये परास्त किया), ९१३७ (और यदुको दिवोदासके लिये नीचा करना), १०११४ (दस राजाओमें यक्ष, मत्स्य, मृगु, दुह्यु, पक्थ, भलान, विपापी, शिव)
- मैति—२१५ (यदु), ८१११ (नव-वास्त्व वृहद्भ्य, दस्युको दवाते अग्नि), ९११३ (और दभीति, कुत्स, ध्वसन्ति, पुरुपान्तिकी रक्षा की)
- तृष्णामा—१११०
- तृत्सु—२१२, २११२, २११८, ५११२ (विश्व), ५११५ (यमुना पकडी), ५१२३ (सफेद जूडाघारी), १०११ (वसिष्ठके पुरोहित होनेसे पहले ये भरत, अर्भक थे, जिनकी प्रजा वमिष्ठके पुरोहित होनेपर बढ़ी, त्रित्सु भरत भी), १०१२ (त्रित्सु इन्द्र द्वारा नीचे बनाये जलको पार हुए, दुर्मित्रोने मुदासके लिये सारा भोजन छोड दिया), १०११४ (त्रित्सुओके लिये आर्यकी गायें दी, परुष्णीको दुश्मनोने पकडा), १०११५ (शिवत्यच=सफेद और कपर्दी त्रित्सु), १०११७ (त्रित्सु ओके लिये अहनौके गय=गृह

- और मूषवाच पुरुके गायको जीता, गौ लुटेरे ६ हजार और ६०६६ मर कर सो गये), १०१२०१४ (त्रित्सुओकी रक्षा की), १०१२०१६ (त्रित्सुओके साथ दस राजाओ द्वारा वाधित सुदासकी रक्षा इन्द्र-वरुणने की), १०१२१ (त्रित्सु और जमुना इन्द्रके पास आये, यहां भेदको नष्ट किया, अज, शिशु और यक्षु सिरपर बलि लेकर आये)
- असदस्यु—३११८ (पौरकुत्स्य अर्य, सत्पति, पचास वधू-दाता), ९१२९ (पुरु पौरकुत्सि असदस्युकी वृत्र-हत्या=शवरयुद्धमें रक्षा की), ९१३० (दोगहमें सात ऋषियोने असदस्युसे यज्ञ कराया), ९१३०१ ९१ (पुरुकुत्सानीने वृत्रहा अर्धदेव राजा असदस्युको पाया), ९१३१ (पौरकुत्स्य गैरक्षित असदस्युके दस घोडे मुझे वहन करे), ९१३२ (पुरुओमें दस्युओके लिये अभिभव प्रदान किया), ९१३३ (पौरकुत्स्य अर्य, सत्पति, मघिष्ठ असदस्युने सुवास्तुके तटपर ५० वधुए, २१० श्याव सोभरिको दी), ९१४१ (की रक्षा पूर्वमिद्या=शवर-युद्धमें किया)
- असदस्यु-पुत्र—(देखो कुरुश्रवण)
- आसदस्यव—९१३ (देखो कुरुश्रवण भी)
- त्रिपस्त्य—७११२
- त्वष्टा—२११४
- त्वाष्ट्र—८१६ (विश्वरूपको मारना)
- वधिम्रा—१७१२६ (दिवोदामका घोडा)

है), १०१२०१४ (वहा भेदको मार कर सुदासकी इन्द्रावरुणने रक्षा की), १०१२०१८ (दाशराज्ञमें चारो ओरसे घिरे सुदासकी इन्द्रावरुणने सहायता की, जिसमें गोरे कपर्दी त्रित्सु लड रहे थे), १०१२०१९ (कोई शत्रुओको मारता, कोई सदा व्रतोंकी रक्षा करता),— (देखो दश राजा भी)

दासाः—३११४ (सौ), ३११६ (नीच वर्ण), ५१६९ (का सिर काटना), ५१४२११५ (वर्ची), ५१४२ (कोलितर शवर), ८१७ (दस्यु, अन्यव्रत), ८११५-१७ (अघर वर्ण, नमुचिको मनुके लिये मारना), ८११४ (ने स्त्रियोको आयुष बनाया, उसकी अवला सेना), ९१५७ (और आर्य दोनो, अमित्रोको इन्द्रने मारा)

दासी—३११५, १७ (=दासीय, विश्), ५११० (दासीय मात पुरियोको पुरुकुत्सके लिये तोडी), ९१२५ (दासीय सात शारदी पुरोको नष्ट किया)

दासीर—१११७ (=दासीकी), ३११३, ५१५१ (=कृष्णयोनि)

दिवोदास—१११६, ५१७, ५१३५
(-अतिथिग्वके लिये सौवी पुरी रक्खी), ५१४९ (९९ पुर घ्वस), ५१५८ (और भरद्वाज), ९१५ दिवोदास ऋणच्युतको भरस्वतीने वध्म्यश्वको दिया), ९१९ (अतिथिग्वसे शम्बरका मन भरद्वाजने पाया), ९१३६ (=अतिथिग्व),

९१३७ (के लिये तुवर्श और याद्वको हानि पहुचाया), ९१३८ (के लिये शवर, तुवर्श, यदुको पराजित करना), ९१३९ (अतिथिग्वके लिये करज, पर्णयको मारना), ९१४० (अतिथिग्व वृत्तुरके लिये गुगुओको करद बनाना, वृत्रहत्यामें पर्णय और करजको मारना), ९१४१ (दिवोदासके लिये, भरद्वाजके लिये अश्विनोका आना), ९१४२ (अतिथिग्व दिवोदासकी शवर हत्यामें रक्षा करना, पुर तोडनेमें असदस्युकी रक्षा करना), ९१४३ (दिवोदासके लिये युवा भुज्युको उवारना), ९१४४ (अतिथिग्वके लिये अमर्मका सिर काटना, कुत्सके लिये शुष्णको मारना), ९१४५ (पुरु दिवोदासके लिये ९० पुरोका तोडना, अतिथिग्वके लिये शम्बर को गिरिसे नीचे गिराना), ९१४६ (दिवोदास, भरद्वाजके लिये धन देना), ९१४७ (दिवोदासके लिये भारत अग्निका आना), ९१४८ (दिवोदासके लिये शवरको मारना), ९१४८ (दिवोदास अतिथिग्वकी रक्षा करते शंवरकी ९९ पुरियोको नष्ट करना, सौवीको प्रवेश लायक बनाना), १४११७ (के लिये सोमसे मस्त इन्द्रने शवरकी ९९ पुरिया नष्ट की, तुवर्श-यदुको पराजित किया)

दीर्घतमा—६७-७२ (औचथ्य)

द्वपद्वती—११९

देवक—८१५३ (मान्यमानको इन्द्रने मारा, शबरको नष्ट किया), ९११५ (मान्यमान और शबरको मारा)

देववात—११२०१२ (और देवश्रवा भारत)

देवश्रवा—११२०१२ (भारत देवश्रवा और देवदाम), ११२०१३ (जनको वधमें करनेवाला), ११२०१५ (की वृषहृती, आपया, मग्म्वतीमें धनकी प्रार्थना)

देववात—२१९ (वृचीवत) (देगो नृजय भी)

दोगंह—११३० (वध्यमानमें हमारे पितर मात श्रुपियोने प्रमदस्युने यज्ञ कराया)

द्रुह्य—११५, २१११, १२, २११३ (के ६६ हजार ६६ मरे), १०११४ (दम राजाओमें २ तुर्वश, ३ यक्ष, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ पक्व, ७ मलान, ८ अलिन, ९ विपाणी, १० गिय), १०११७ (वृद्धश्रुत कश्यपको पानीमें डुवाया, फिर द्रुह्यपुत्रो वज्र-वाहुने मार भगाया), १०११७११४ (गाय-स्तुटेरे द्रुह्य और अनुके ६० नौ और ६०६६ आदमी मर कर नो गये)

धुनि—५१५३ (दन्वु और नृमनि रभीतिये मर), ८११९ (और नृमनि मित्र, धुण, मरको मान)

ध्वमलि—०१३३ (धुमलि, नृन, गृहीति, और रभीतिये रमा की)

नमृचि—५१५२ (और धान, धुण,

अगुप, व्यन, पिप्रु, ररिप्राके ने साथ), ८११५ (दानको मनुके लिये मारा), ८११६, १७ (दान नमृचिका सिर काटा), ८१२२ (को मारा)

नर्य (तुवंग)—२१५ (तुवंग), ८१ ८५ (और कुल, श्रुतयं भी), ९११२ (और कुल, श्रुतयंकी रक्षा की)

नवग्व—६११९१८ (अगिरन जयान्य)

नववास्तव्य—८१११ (नववान्तुवाला वृहद्रथ तुर्वीति)

नहुष—७१८ (की बलिहृत विग्), ७१९ (विग्पति), ७११० (नहुष-पुत्र ययानि)

नैचाशाख—४१५ (कोस्ट देगमें)

पक्व—२१६७, १८ १०११८ (रन राजाओमें २ तुवंग, ३ यक्ष, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्य, ७ भञ्जन, ८ अशिन, ९ मिर्गांजी, १० गिय), १२११५ (की रमा अश्विनोनं की)

पणि—११२ (शिनकी मिषि गुण-दिन), ५१७५ (ने अश्विनोने, भोजन), ५१७८ (ती गाय हना), ६११, २ (रान), ५१३ (पतियोको माने) ६१८५ (मृध्रगारा शयन, रमा अमनृ), ६१६ (रंगर न पान-घाणे), ६१७ (की गायको हनना) ६१८ (की मिषि पान-गाणित), ६१९ (राने २ मरे) ६१३० (ने राने), ६१११ (राने भोजन र), ५११२ (राने र)

- है), ६१३ (से गायोको लाओ),
 ५१४ (के धनको जीतना),
 ५१५ (पर आक्रमण), ५१६
 (में वृवं गगाकी कक्षकी तरह
 विस्तृत स्थानमें), ६१७ (पणिसे
 सरमाकी माग), ५१९ (की निधि
 पहाडोकी चोटीपर सुगोप), ९१५
 (को सरस्वतीने खाया), १४१०
 (की गायें सोम छानता)
- परावत—१४२१ (पश्चिमवाले देशमें
 सोमका छानना)
- पराशर—(शतायु वसिष्ठ)—८५
- परुष्णी—१४, ६, १०, २१८, ५।
 ३८, १०१४ (को दस राजाओने
 पकडा, कवि चायमान धरतीपर
 गिर पडा, नदियोको) १०१६
 (सुदासके लिये इन्द्रने गाय और
 सुपारा किया), १०१७ (श्रुत
 (कवपको पानीमें डुवाया), १०
 १७१४ (अनु और द्रुह्युके ६० मौ
 और ६०६ आदमी मर कर सो
 गये)
- पर्णय—८४६ (और करजको अति-
 थिग्वके लिये मारा), ९३९ (और
 करजको वृत्रहत्या=शवरयुद्धमें
 मारा)
- पर्शु—१०२० (यह और पृथु
 सुदासके शत्रु होकर आक्रमण करने
 पूर्व गये,)
- पस्त्य—१४२१ (पस्त्योके बीच
 सोमका छानना)
- पाकस्थामा—५१८१२१, २२ (कौर-
 याण, मेघातिथिका समकालीन),
 ५१८१२३, २४ (ने मेघातिथिको

- दस लाल घोडेको अम्यजन, वास
 आदि दिये), ९१९१२ (ने काण्व
 मेघ्यातिथिको लाल रथ दिया),
 ९१९१४ (भोजने मेघ्यातिथि को
 वस्त्र, अम्यजन और रोहित रथ दिया)
- पार्यव—९६ (के सम्राट् अम्यावर्ती
 चायमानने भरद्वाजको गाय और
 दासिया दी),
- पिप्रु—५४० (ऋजिश्वाके लिये इसे
 और ५० हजार कृष्णोको मारा),
 ५५२ (और स्वश्न, शुष्ण, अशुप,
 व्यस, नमुचि, रुधिक.को मारा),
 ५१८६ (और शुष्ण, कुयव, वृत्र,
 शवरको मारा), ८१२ (और
 मृगवको ऋजिश्वा वैदधीके लिये
 मारा), ८१९ (चुमुरि, धुनि,
 शवर, शुष्णको इन्द्रने मारा),
 ८२२ (और नमुचि, रुधिका,
 शुष्ण, अशुप, व्यस (स्वश्नको
 मारा), ८४२ पिप्रु, मृगय, गशुवान्
 और ५० हजार कृष्णोको ऋजि-
 श्वाके लिये मारा), ८४५ (पिप्रुके
 नगरोको दस्यु-हत्यामें ऋजिश्वाके
 लिये नष्ट किया), ८४८ (मायी
 असुर पिप्रुके गड ऋजिश्वाके लिये
 नष्ट किये)
- पुर—२१२ (सात), २५, ५३५
 (निन्नानवे), ५१० (दामोकी
 सात शारदी पुर), ५३६ (सौ
 आयसी), ५३७ (सौ दिवोदासके
 लिये तोडी), ५५० (शवरकी
 मौ पुरिया), ५४० (पिप्रुकी)
- पुरन्धि—१७६ (के लिये वाध्रमतीके
 साथ अश्विद्वय आये)

पुरु—(देखो पुरु जन) १।२६ (पौर कुन्नि)
 अमदस्यु), २।१९ (मरस्वती तट)
 पुरु—१।५, २।१, २।२ (मृध्रवाक्),
 २।११, ५।७ (दिवोदान), ५।१०,
 ५।१३, १।२६ (स्तुति करने है),
 १।२७ (-मुदासके लिये धन), १।२९
 (पौरकुत्सि त्रसदस्युकी वृशहत्या में
 रक्षा की), १।४४ (दिवोदानके
 लिए ९० पुरोको नष्ट किया),
 १०।१७।१३ (मृध्रवाक् पुरु मुदास-
 धनु), १०।२२ (को-युद्धमें पगस्त्र
 किया), १५।७१ (-जन मरस्वतीके
 दोनों तटपर वसते) (पूर दिवोदान
 देखो) ।
 पुरुकुत्स—५।१० (दानोकी मात
 शारदी पुरे), १।२५ (पुरके लिये
 दासोंकी मात शारदी पुराको नष्ट
 किया), ८।२६, २७ (यूवा पुर-
 कुत्सके लिये मृध्रवाचोंकी मात
 शारदी पुरोको नष्ट किया),
 १।२७ (मुदास पुरुके लिये धन)
 १।२८ (पुरकुत्स पृग्निगुकी रक्षा
 की)
 पुरुकुत्स-पुत्र (पौरकुत्सि, देखो प्रन-
 दस्यु)
 पुरुकुत्सानी—१।३० (पुरकुत्स-भली,
 प्रनदस्यु-भाताने वृशहा अर्धद्व
 राजा प्रनदस्युका शत्रु-वर्गाने
 पाया)
 पुरुषोय—१।८ (शानरथेय नर-
 ताजामें)
 पुरमित्र—१।४६ (की रावताका
 अन्तिम पत्रे)

पुरपत्ति—(ध्वनलि, कुत्स, तुर्वीनि
 और दभीनिकी रक्षा की), १।१३
 पुररवा—७।६ (मुदत धीमें), ७।७
 (का उवंशी द्वारा प्रत्याग्यान),
 १।७४ (त्रियोगी मित्रता
 भेडियेका हृदय)
 पूर—५।११ (आपती)
 पूर्णा—५।३८ (परणी)
 पूर्भिद्या—१।८१ (मय्यहत्या
 वृशहत्या)
 पूयु—१०।२० (शानराज युद्धमें यह
 और पत्रं गये, पूर्वको गार्थ नूतने-
 जाश्रमण करने)
 पृग्निगु—१।२८ (पुरकुत्स)
 पेटु—१।७६ (के लिए अग्नि ध्येन
 अश्वको नौ वाजो और नव्वं वाजियों
 के मात्र लये) ।
 पेर (और नुमीरुहको माजने धन वषाये
 धी)—१।७
 पंजवन—१०।१९ (मुदास पैजवता
 गेन अजर क्षेप) ।
 पौर—५।८१।१२ (की इन्द्रने रक्षा
 की), १।२।(०) ।
 पौरकुत्स्य—२।१८ (प्रनदस्यु पचाप
 वाधरता) ।
 प्रबष्य—५।८१।९, ५।९०-९३ १।.
 (राजा प्रबष्यका भाँस्यते) ।
 प्रन्नोय—१।९ (ने नानारो न
 नोन और दन गाने लिये) ।
 प्रियमेघ—५।८० (पुत्र मय-
 त्रियोग युद्ध) ५।८१।१६, १।१
 (और इन्द्रने, अग्नि, पञ्च वि,
 नन, प्रमैय) ।
 प्तापोनि—१।८१

वल्ग्व्य—८।२३ (दाससे सौ पाये) ।

ऋत्वा—९।३ (ऋचाये) ।

भरत—१।७ (जन), २।१, १०।१ (पहिले अर्भक अजन थे, जिन तृत्सुओको वसिष्ठने बढ़ाया), ५।१२-१३, ५।२८।११, १२, १०।२२ (की अग्नि सूर्यकी तरह प्रकाशमान) १०।२४ (की रक्षा विश्वामित्रकी वाणी करती है), १०।३० (भरतके पुत्र यज्ञार्थ अश्व छोड़ते हैं) ।

भरद्वाज—१।१०, १।१६, ५।७, ५।५८ (और दिवोदास), ८।६२ (को दिवोदासने धन दिया), ९।८ (के सूक्तमें पुरुषीय शातवनेय), ९।२४ (ने महिराघ सृजय-पुत्रसे यज्ञ कराया), ९।४० (और दिवोदासके लिए अश्विद्वय आये), ९।४५ (और दिवोदासके लिए धन देंगे), ९। (दाता पूरय, सुमील्ह, पेंस्क, शाड, अम्यवर्ती) ।

भलान—२।१८, १०।१४ (दस राजाओ में २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्य, ७ पक्थ, ८ अलिन, ९ विपाणी, १० शिव)

भारत—५।३२, ९।२०।२ (भारत जन के देवश्रवा, देववात), ९।४६ (भरतो की अग्नि) ।

भाव्य—५।६१ (सिन्धुके तटपर वसते)

भुज्यु—५।५९ (को समुद्रमें सौ पतवारोवाली नावमें पार किया), ९।५२ (तरुणकी रक्षा की), ९।५८ (की अश्विनोने सौ पतवारकी नाव से रक्षा की), १७।८।७ (को अश्विनोने उवारा) ।

भृगु—२।१३, ५।८।१९, ५।८।१।१६ (और कण्वा सूर्या), १०।१४ (दस राजाओमें २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ द्रुह्य, ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विपाणी, १० शिव), १७।६।१४ (भृगु जैसे रथ गढते) ।

भेद—५।१५, ५।१७ (को मारा), १०।१८ (सुदासके दुश्मन, जिसको इन्द्रने मारा), १०।२०।४ (भेदको मार कर इन्द्र-वरुणने सुदासकी रक्षा की), १०।२१ (यमुनाके पास सुदास-शत्रु हारा) ।

भगन्द—४।५

भघवा—२।१२

भत्स्य—२।१३, १०।१४ (दस राजाओ में २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ भृगु, ५ द्रुह्य, ६ पक्थ, ७ अलान, ८ अलिन, ९ विपाणी, १० शिव) ।

भघाता—७।१२ (अग्निका अर्चक)

भघुच्छन्वा—८।८, ८।९

भनु—१।१८, ५।५१, ५।७४ (-पिता अथर्वा और दध्यगके साथ), ७।१ (विशिशिप्र विजेता), ७।३ (हमारे पिता), ७।४, ७।५ (ने दस्युके लिए करभीक किया), ७।६ (सुकृतको घौमें रक्त्वा), ७।१० (विवस्वान् के), ८।२ (के लिए कृष्णत्वचोको मारा), ८।४६ (के लिए इन्द्रने वृथ को मारा), १४।२५ (के लिए सोम पुना गया), १६।११ (हमारे पिता)

भरद्वाधा—१।१० (नदी)

महिराघ—९।२४ (साञ्ज्यने भरद्वाजोमे यज्ञ कराया) ।

मान्यमान—(देवो देवक) ।
 मामतेय—५१३४ (अन्व) ।
 मृगय—५१४० (और पिप्रुको एव
 युगुवान तथा ५० हजार
 कृष्णोंको ऋजिष्वाके लिए मारा)
 ८१२
 मेघ्यातिथि—५१८१३०, ५१७९-८१
 (काण्व), ९११६ (दाता पाक-
 स्यामा) ।
 मेहल्लु—१११० (नदी)
 मंत्रावरुण—५११८ (वमिष्ठ) ।
 मौजवत—११११९ (मोम), १४१३३
 (मुजवान्में पैदा होनेवाला गोम) ।
 यक्ष—३११३, ५११५, १०११४ (दस
 राजाओंमें २ तुवंश, ३ मत्स्य, ४
 भृगु, ५ द्रुता, ६ पवय, ७ भलान,
 ८ अलिन, ९ विपाणी, १० शिव),
 १०१२१ (निरपण वलि लेकर आये)
 १०१२१ (मुदामके करद) ।
 यदु—११५, २१४-६, २१८, २११०,
 २१११, ५१६८ (और तुवंश), ८१११
 (और तुवंशको पश्चिममें लाये),
 ९१३७ (और तुवंश को दिवोदामके
 लिए नीचा किया, देखो याद्व भी) ।
 यमदग्नि—५१२५ (और विश्वामित्र),
 १४१३१ (की नोमस्तुति) ।
 यमुना—१११०, ५११५, ५१८३ (में
 पातोंने व्यावायकको ७१७०००
 दिया), १०१२१ (ने हन्द्रको मनुष्ट
 निगा, यहाँ भेदों हराया, मही
 अज्ञ, शिव और यक्ष निरपण रति
 लेकर आते) ।
 यषाति—३११० (नृप्य), ७१११ (की
 तम्ह) ।

याद्व—२१७, ५१८१३१ (पनु), ९१३६
 (और तुवंशको अतिविन्वके लिए
 परास्त करना, देवो यदु भी) ।
 रसा—१११०, १११४
 रहूगणा (अनिके लिए मोटे वचन
 बोले)—५१७३
 राहतव्य—२१७ (मुदाम) ।
 रुधिका—५१५२ (स्वप्न, युष्ण, अयुष,
 व्यम, पिप्रु, नमुचिके गाव), ८१२२
 (स्वप्न, युष्ण, अयुष, व्यम,
 पिप्रुको माग) ।
 रुम—९१३ (स्वप्न, व्यावक, कृपको
 हन्द्रने युग किया) ।
 रुम—५१८१२ (और व्यावक, स्वप्न,
 कृप), ९१२ (और व्यावक, कृप तथा
 स्वप्नर की हन्द्रने ग्या की), ९१३
 (स्वप्न, व्यावक, कृपको हन्द्रने प्राप्त
 किया), ९११८१२ (ने चा हज्ज
 गाये दी), ९११८१६ (का राज
 कृष्णचर) ।
 लोपामुद्रा—५१६० (अगम्यको प्यार
 करनी), १३११८ (जमीन धीरतो
 चूमती) ।
 यदु—५१८१ (ने गजनों माग),
 ७११ (वतिक) ।
 यंगद—८१६६ (ने मी पुगको अजिष्वा
 द्वारा नष्ट किया), ९१३८ (ने मी
 पुगको अजिष्वाले नष्ट किया) ।
 यणिग्—७११ (ने उर पा १) ।
 यध्रियाद (मुदाम)—२११८
 यध्रिमतो—११११३१८ (ने मी
 पुगको लिए अजिष्वा आते) ।
 यध्रियद्व—९१८ (ने मी पुगको
 ११११११, १२ (ने मी पुगको
 ११११११, १२ (ने मी पुगको

- १।५ (वध्रगश्वको दिवोदास दिया सरस्वतीने), १।५
- बभ्रु—२।१७, १२।१५ (पत्नि-विरहृत की रक्षा अश्विनोने की), ९।
(दाता ऋणचय) ।
- वर्ची—५।४२।१५ (के सौ हजार मृत), ५।५०।(०) (असुर के सौ हजार वीरोको मारा, शवरके ९९ पुरोको नष्ट किया), ८।४९ (के सौ हजार मारे, शवरके सौ पुरोको नष्ट किया), ८।५० (दास वर्चीके सौ हजार मारे), ८।५१
- वन्नि—१३।१० (को च्यवानसे द्रापिकी तरह छुड़ाया) ।
- वश—१७।८।७ (को अश्विद्वयने पार किया) ।
- वसिष्ठा—३।६ (वसिष्ठा), ५।१२, १४, ५।१८ (अर्वशीजात मैत्रावरुण), ५।१९, ५।३२ (और अगस्त्य), ५।८५ (कुत्सके सूक्तमें), ७।७।१७ (=वसनेवाला), ८।५।१ (शतायु पराशर), ११।२३
- वसुक्र-पत्नी—१७।१९ (स्वसुर नहीं आया कि घाना खाता, सोम पीता)
- वामदेव—३३-४६
- वितस्ता—१।१०
- विपाश (शुतुद्रि)—५।२८ (और शुतुद्रि), ५।४२
- विभोदक—१।१९
- विमद—१०।२३ (के लिए अश्विन अरुणीको लाये), १२।५ (के लिए घन लाये), १७।६ (के लिए शुच्यु को अश्वी लाये)
- विशिशिप्र—७।१ (का विजेता मनु) ।
- विश्व—५।१२ (प्रजा, तृत्सुओकी)
- विश्वप्ला—५।५८ (को आयसी जघा दी), ५।६० (अगस्त्य-सूक्तमें), ५।६३, १७।२२ (शुचित्रता) ।
- विश्वक—५।६० (के लिए विष्णापुको दिया), १७।११ (कृष्णियके लिए विष्णापू) ।
- विश्वरूप—८।६ (त्वाष्ट्रको मारना) ।
- विश्ववारा—१७।२३ (ऋषिका)
(विश्ववारा नमस्कारसे पूजा करती प्राचीसे आती है) ।
- विश्वामित्र—५।२४-३२(७), ५।२५ (और यमदग्नि), ५।२६।९ (सुदासार्थं सिन्धुस्तम्भन), ५।२९ (ने कुशिकोके साथ सुदासको पार कराया), ५।३२ (का ब्रह्म भारत जनकी रक्षा करता), १०।२४ (का यह ब्रह्म = मन्त्र, भारत जनकी रक्षा करता है), १०।२५ (महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धुको स्तम्भित किया, कुशिकोके साथ इन्द्रने पार किया) ।
- विषाणी—२।१८, १०।१४ (दस राजाओ में २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्यु, ६ पक्थ, ८ भलान, ९ अलिन, १० शिव) ।
- विपुण—८।३ (जन्तु, दस्यु) ।
- विष्णापू—५।६० (को कृष्णिय विश्वक के लिए), ११।१० (को कृष्णिय विश्वकके लिए), १७।११
- विष्वक्—१२।१० (कृष्णियके लिए विष्णापुको दिया) ।
- वीतहव्य (देखो सुदास) ।
- वृचीवान्—२।९ (दैववात), ९।२२ (से सृजयके लिए तुर्वशको दूर किया)

वृत्रतुर—१३१ (तो मांग) ।
 वृत्रहत्या—१३१ (वाम्बन्वुड), १५१
 १७
 वृद्ध—(देगो वत्रप) ।
 वृद्ध—६११८ (पणियामें ऊंचे स्थानपर
 स्थित, सन्नाह दाता) ।
 वृषदिप्र—८१२० (दानका मांग)
 वृषय—११७८ (पा पुत्र), ६१८(०)
 बृहद्वद्रि—१११५ (निगात्र) ।
 बृहद्वय—११२१ (नमवात्स्य तुर्वीति)
 बृहस्पति—६१११११
 ब्रह्मण—१०११७ (दोनो ब्रह्मणों २१
 जनोतो पराजित किया) ।
 ब्रह्मयिन—११८० (देगा जुजिय्या) ।
 ब्रह्म—२१५
 ब्रह्म—५१५२ (स्वग्न, शुष्ण, अगुण,
 पिप्रु, नमुनि, शिश्यावे माय),
 ८१२२(०) ।
 ब्रह्मि (पारोमी)—१७१२८ (रत
 मूलं ज्ञा या मेरा भाग्य मे तेनु
 मर्था, उरा हें, पति मेरा अनुगमन
 कर्त्ता है, मेरे पुत्र मनुतनु है, मे
 नजया) ।
 ब्रह्मिवात्—११३८ (उर, नाम) ।
 ब्रह्मदुर—८१८
 ब्रह्म—१७१६ (मे जिग भेन्तो शिश्रय
 ने वराया), १७१७१९ (मे शिश्रय
 ने वराया) ।
 ब्रह्महत्या—११८१ (मे शिश्रयनति
 र्था र्था), १३१ (ब्रह्महत्या-
 वराया, जन्म) ।
 ब्रह्म—१११६ (र नो पुत्र), २१३
 (निनिने उर), ५१६ (मे पुत्रिया
 नट री) ५११५ (मे शिश्रय

पुत्रिया), ५१५० (मे नो पुत्रिया
 नात), ५१५५ (पदवराती वर
 को ५०० वरमें धर उवाया),
 ५१८२१८ (कोलिनर-मुनि-भद्र
 दात परत पर), ८११९ (नुमति,
 धनि, सिप्र शणको उरने मांग),
 ८१२१ (मे पुत्रियो नट रिया मांग,
 सिप्र, पुत्र, वृषतो मांग), ८१५०
 (१९ पुत्रियो नट रिया नो पदव
 री पुत्रिया नट रिया), ८१५६
 (ब्रह्मतो मांग), ८१५५ (मा
 र्थोनि वृत्रसता उर वर
 को मांग), ११५६ (ब्रह्मणे पुत्रिया
 नट रिया, वनुमान परवमें पुत्रे)
 ८१५७ (पत्रामे नने ब्रह्मणे ६०
 वी वरमें धर वरया), ८१५८
 (दान ब्रह्मता निनिने नोव मांगर
 शिश्रयारी र्था री), ८१५९
 (ब्रह्मणे ९९ श्रु पुत्रियो न
 रिया, उरु वर्या वर नरुन रीग
 को मांग), ८१६० (ब्रह्मणे ९९
 पुत्रियो नट रिया, शिश्रय
 र्थोनि र्था री रिया, नोमे वर्या)
 ८१६१ (मे ६० पुत्रिया वर शिश्र-
 यारी रिया नट रिया शिश्रय
 र्थोनि र्था री रिया निनिने ब्रह्मणे रीने निनिने)
 ८१६२ (ब्रह्म ब्रह्मणे नो वरिया, वर
 नट रिया शिश्रयारी रिया),
 ८१६३ (मे वर्या नो उरवरा,
 मांग), ८१६३१२२ (ब्रह्म वर
 को शिश्रयारी भावरा वर),
 ८१६४ (ब्रह्म वर उर वर वर
 भद्रवृत्त शिश्रयारी वर), ५१६५
 (वा निनिने शिश्रयारी) १० १५३

- मारा दिवोदासार्य), ९।४८ (की ९९ पुरिया नष्ट की सौवी रख, दिवोदास अतिथिग्वकी रक्षा) ।
- शर्यणावत्—१।२०, ३।१९ (का सोम), ५।७६ (के पर्वतोमें अश्वके सिरको), १४।२१ (में सोमका सवन), १४।२९ (में सोमको इन्द्रने पिया) ।
- शाकी—५।८३ (लोगोने यमुना तटपर सात-सात एक-एक सौ गाये-घोडे दिये) ।
- शाड—९।७ (हिरणिन्ने सुमीळ्हको दस वशायें दी), ९।८ (=पुरुणीय) शातवनेय—(देखो पुरुणीत) ।
- शिश्रु—५।१५, १०।२१ (यमुनाके पास सुदासके करद) ।
- शिंजार—१७।८(७) (को अश्विद्वयने पार किया) ।
- शिफा—५।८७ (के प्रवणपर कुयवकी दोनो स्त्रिया क्षीर द्वारा स्नात)
- शिम्यु—१०।१६ (सुदास प्रतिद्वन्द्वी शिम्युको मारते) ।
- शिव—२।१८, १०।१४ (दस राजाओ =जनोंमें, २ तुवंश, ३ यक्ष, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्य, ७ पक्थ, ८ भलान, ९ अलिन, १० विपाणी) ।
- शिशनदेव—५।१६, ८।३, ४ (कृष्ण- =योनि, दस्यु) ।
- शुतुद्रि—१।१०, २।२८ (और विपाश)
- शुच्यु—१७।६ (पुरुमित्र-पुत्र, विमद-पत्नी) ।
- शुष्ण—५।४९ (कुत्स के शत्रु अशुप, व्यस, पिप्रु, नमुचि, रुधिराके साथ), ५।८१।२८ (के चरिष्णु पुर कुत्सके लिए नष्ट), ५।८६ (और पिप्रु,

- कुयव, शवर), ६।२ (और अशुप), ८।१९ (चुमुरि, घुनि, पिप्रु, शवर को मारा), ८।२१ (पिप्रु, कुयवको मारा, शवरके पुर नष्ट किये), ८।२४ (अशुप, स्वशन, व्यस, पिप्रु-शत्रु, रुधिराको मारा), ८।२२ (शुष्णके अडोको नष्ट किया), ८।२५ (शुष्णकी चरिष्णु पुरको मारा), ८।२७ (मायी शुष्णको इन्द्रने मायासे हराया), ८।२८ (मायी शुष्णको मारा), ८।३० (और कुयवको आर्जुनेय कुत्सके लिए मारा), ८।३३ (शुष्णको कुत्सके लिए मारा, अतिथिग्वकी भलाई करते), ८।३४ (युवा कुत्स के लिए शुष्णको मारा), ८।३५ (शुष्णहत्या =शुष्णयुद्ध, इन्द्रने दस्युहत्याको जीतते शवर को अतिथिग्वके लिए मारा), ८।३७ (शुष्ण, अशुप, कुयव, हजार दस्युओ को कुत्सके लिए मारा), ८।४१ (शुष्णको कुत्सके द्वारा मारा) ।
- शूशुवान्—८।१२ (और पिप्रु, मृगय ५० हजार कृष्णोको ऋजिश्वाके लिए मारा), ८।१२ (के पुरोको नष्ट किया) ।
- श्याव—३।१८ (मरद्वाजका दाता), ५।८१।१२ (रुशम, कृप, स्वर्णरके माय), ६।३ (रुम, रुशम और कृपको इन्द्रने निहाल किया)
- श्रद्धा, कामायनी—१७।२७ (श्रद्धाने अग्नि जगता है, हवि हवन की जाती है, देवोने उग्र असुरोंमें श्रद्धा की)

श्रुत—२।१३ (देवो कल्प)
 श्रुतयं—५।८५ (कुन्ध भी), ६।१३
 (और कुन्ध, नयकी रक्षा यी)
 श्वेत्या—१।१० (नदी)
 सप्त आप. (देवी) --१।११, ५।६३
 (देवी)
 सप्तसिन्धु—१।१
 सप्तस्वसा—१।८, ५।८ (नग्न्यती)
 समुद्र—१।१४, १।२०, ५।२८
 सरयू—१।१२, १।१३
 सरस्वती—१।८ (मप्लम्यना नाम
 बहिने), १।६, १।१०, १२, ८।१३,
 ५।८ (गानम्यना) ५।६ (नद-
 ध्वस्तिका, गिरि-सालु-नागिना)
 सवर्णं—६। (दाता प्रमदस्यु)
 साञ्जंय (देवो महिगय)
 सापरातो—१।७।२८ (ज्जंयती
 औपधि, गोष्टमे दूष भन-पूपा)
 सार्वणि—१।११ (देवो मनु भी)
 साहदेव्य—५।३१।१९ (गुमार-नोमक).
 ५।३१।७, ८ (कुमार)
 सिधु—१।१०-१२, १।१७, ५।१७, ५।
 २६ (-अणं-वचन), ५।२८,
 ५।२९ (अणं), ५।९० (नीयं).
 ५।२३ (को पार सिमा)
 मुदास—२।७ (गगह्य), २।१८
 (पधिवाह), ५।२३ (के ननु
 दन राजा), ५।२६ (-गताता
 अरुभेया पतिको सोरता) ५।२७
 (मिपुन्धन), ५।२९ (तो
 सितागिपते मिदू पार वरात),
 ५।८४ (के सिदे न्नागमयी
 प्रार्ता), ५।१६ (के सिदे ननुद
 और जोसे परेगा धन), १।२७

(=पूरके लिये धन दान, पुग्गुन्ने
 लिये नाम पुरोका प्यन), १।२९
 (-वीतद्व्यती, पोगुनि प्रन-
 दन्धुवी, उपद्व्यामे रय तो),
 १।२ के (लिय मुमिप्रांता नाम
 भोजन छोड जाना, विन्नुओता
 नीची नशिया पार रग्ना),
 १।३ (दागगनमे मुदानगे
 रक्षा वनिष्टोके ब्राह्म ज्ञान रग्ना.
 निमुता पार होना, भस्का नाम
 जाना), १।५ (देवसान्क नाती
 मुदानके वयूमन् रर पैजान-
 मुदानता ज्ञान, मुदान पैजरा),
 १।६ (मिना रिशानती नन्द
 पैजान मुदानकी रक्षा रग्ना),
 १।७ (वीतद्व्य मुदानकी रक्षा
 रग्ना), १।८ (नतद्व्य मुदान
 के लिये भोजन र्ना), १।१०
 (मुदानगे लिये तो रज्जान भापे
 और रान होना), १।११
 (मुदानका रय रग्ग पानान
 प्रनमे गया), १।१२ (मुदानगे
 रक्षाकी, दात तो भार गनुसोरो
 माग), १।१३ (दत गगह्य
 ज्ञान चापित मुदासगी विन्नुओके
 भाय भा यी। द्य गगह्येले
 मुदमे मुदानगे रग्ग की), १।१४
 (मुदाने जगिना विन्नुओे र्ना
 मुदानगे रग्ग १।१५ (मुदान
 को जगहयमे द्द-रग्ग रग्ग
 की, के सिदे नशियोके रग्ग र्ना
 मुदान गिना, विन्नुओे रग्ग),
 १।१९ (मिना रिशानकी रग्ग
 पैजराके मग्गान गगह्य र्ना),

१०।२० (भेदको मार कर सुदास की इन्द्रावरुणने रक्षा की), सुदास त्रित्सु के दाशराज्ञ में) शत्रु), १०।१४ (दस राजा= जन १ तुर्वश, २ यक्षु, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रुह्यु, ६ पक्व, ७ मलानस, ८ अलिन्, ९ विषाणी, १० शिव। और भी ११ कवि चायमान), १०।१६ (१२ शिम्यु), १०।१७ (१३ दोनो वैकणोके २१, १४ श्रुत कवप वृद्ध, द्रुह्यु, १५ आनव=अनु), १०।१८ (१६ भेद), १०।२० (१७। पृथु, १८ पर्शु), १०।२१ (१९ अज, २० त्रियु, बलि लानेवाले), १०।२३ (के लिये सुदेवी अश्विन् लाये), १०।२९ (सुदासके घोड़ेको घनके लिये छोड़ो, हे कुशिको), १०।२५ (को कुशिकोके साथ इन्द्रने नदी पार कराया, महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धु अर्णवको स्तभित किया), १०।२९ (का अश्वमेध) घोडा घनकेलिये छोडा गया, कुशिकोको तैयार होनेको विश्वामित्रने कहा, राजाने पृथिवी पर पूर्व-पश्चिम-उत्तरमें शत्रुओको मारा), १३।१४ (के लिये क्षिप्री इन्द्र ने सहस्रो घन दिया), (सुदास के मित्र—वसिष्ठ और विश्वामित्र तथा उनकी सतान। त्रित्सुओके अतिरिक्त और कोई प्रधान व्यक्ति या जन सुदासका सहायक नही था)

सुदेवी—१०।२३, १७।२९ (को सुदासके लिये अश्विन् लाये)

सुघ्यु—१७।६ (को विमदके लिये रथ द्वारा अश्विद्वय लाये)

सुमीळ्ह—९।७ (को शाडने दस वशायें दी) .

सुवास्तु—३।१८ (त्रसदस्यु दाता), ९।२३ (के तटपर त्रसदस्युने सोभरिको ५० वधुयें=दासिया, २१० काली गायें दी)

सुश्रवा—९।१६ (राजाके पास गये, ६६०९९ मारे), ९।१७ (और तुर्वयाणकी इन्द्रने रक्षा की, कुत्स, अतिथिग्व, आयुको युवा महाराज के लिये नष्ट किया)

सुषोमा—१।१० (नदी)

सूर्या—५।८१, १३।२५ (व्याह), १७।३० (१) (सूर्य द्वारा भूमि और घी थामे, ऋतु द्वारा आदित्य स्थित, घीमें सोम अवस्थित), १७।३० (२) (सोम द्वारा आदित्य वली, पृथिवी बडी है), १७।३० (८) (सूर्याके आभूषण प्रतिधि, ओपश), १७।३० (१०) सूर्याका शकट, दो बैल), १७।३० (४६) (ससुर, सास, ननद, देवरपर साम्राज्ञी होओ)

सृजय—२।९, ९।२१ (दैववात), ९।२२ (तुर्वशको दूर किया, वृचीवान्से), ९।२२

सेना—८।१४ (अवला दासकी)

सोभरि—९।३३ (को त्रसदस्युने सुवास्तु तीरपर ५० वधुयें और ३×७० गायें दी), ९।३४ (को सम्राट् त्रसदस्युसे घन मिला)

सोमक—५।३९।९ (कुमार साहदेव्य)

सौश्रवस—५११ (मुश्रवा-पुत्र)
 स्रपन्ती—१११ (नी)
 स्रोत्या—१११ (तच्चै मोने)
 स्वर्णर—५१८११२ (मन्म, द्यावप,
 कृपके माय)

स्वदन—५१५२ (ओन् गुण, अगुप,
 पिद्रु, नमुनि, गतिदा), ८१२२
 (ओन् गुण, अगुप, ज्वन, पिद्रु,
 गतिदा माने गये)
 हिमवन्त—१११८

परिशिष्ट ३

शब्द-सूची'

- अक्ष (=जूआ)—१४३३ (मौजवत सोमकी तरह आकर्षक विभीदक पाशा है) १४३३२ (केवल इसके लिये जायाको मैंने छोडा), १४३३३ (कितवका भोग नही रहता), १४३३४ (अक्ष वालेकी जायाको दूसरे ले जाते हैं)
- अक्षा—४१
- अघा (=मघा नक्षत्र)—१६१७ (सूर्य-सम्बन्धी)
- अघ्न्या—४२०, (अहतव्या घेनु)
- अगुल (=माप)—१६२० (दस अगुल)
- अतिथि—२१, ५१३ (दिव्य), १११३ (जनोका अग्नि), १८१४ (प्रिय-)
- अत्क—१५७ (सुधित=तीक्ष्ण द्वारा वनकी तरह) १३१२, १३ (सुरभि अत्क पहिने इन्द्र)
- अधिवस्त्रा—१३८ (चादरवाली वधू की तरह)
- अध्वर्यव—५५०, ५२
- अनस् (गाडी, विपाश्या सुसपिष्ट)— ५२८, ५४२ (विपाशाके पास पिस गया)
- अनास—३१२ (छोटी नाकवाले, दस्यु)
- अनुदेयो—१७३० (३) (दहेजमें दी जानेवाली दासी)
- अनुष्टुब्—८३ (छन्द)
- अपूप—४१२, १५१३७ (इन्द्र अपूप खाओ)
- अपूपवान्—४११, ४१२, १५१३ (रोटीवाली हवि)
- अमीवचातन—१२११ (रोग हटाने वाला भिपग्)
- अरण—५२७ (नदी, सुदासके लिये गाध की)
- अरण्य—४१०, १६, १७ २४, ५३, ५६, १५८३
- अर्य—५१६ (पूजा)
- अर्जुनी—१६१७ (पूर्वा-फाल्गुणी, उत्तरा-फाल्गुणी नक्षत्र)
- अर्भक—५१२, १५१ (=शिशु)
- अर्वतो मास—४२ (घोडे का०)
- अर्वन्त—४१२, १६, ५७१ (का मास भोजन), १५१ (०)
- अर्हन्त (सुदानव)—५८२ सु-दानी)
- अवरबमाण—१७२५ (=अवलव-मान)
- अव्यवार—१४२८ (भेडके वाल, ऊनी वस्त्र)
- अव्रत—११८ (=अवर्मी)

१ इस पुस्तक के अध्याय, अनुच्छेद के यहां अक दिये हैं।

अशनि—५१६६ (विजली)
 अश्मा—५१५ (—पत्थर, दृढ़)
 अश्व—४१९ (—परिभूषण, मान ठीक
 करना), ५१२६ (—मेघ), १४१
 (दोष्ट)
 अश्व-मास—४१२ (वाजी अश्व),
 ५१११ (० अश्वन्-अश्व)
 अश्ववान्—५१७५ (भोजन, अश्व
 मास भोजन)
 अश्वमेध—(देखो नुसाम)
 अष्ट्रा—४१२१ (गिरि-उपकरण), ५
 ५६ (०)
 असप्रकोश—१६१२ (हल्-अश्वनी)
 अस्ति—१८११३ (जैसे गायत्री पौर-
 पौर काठनी)
 आवेट—१४१ (पक्षी, बेल, मूजर,
 हरिण, हाथी, सिंह)
 आतुर—२११७, १२१४ (गंगोके
 लिये भेषज)
 आपुष—१४११५ (हृदियार)
 आरा—११५८ (पार टिप्पणी)
 आशिर—४१४ धनुमें दाहन), ४१५
 (दोहा), ४१५ (नाम-मिश्रित)
 आशिर। गर—४१६ (गायत्री हृदया
 आशिर), १५१९० (इन्द्र, गगाशिर
 पियों)
 आशिर। रधि—४१३
 आशिर। य—४१६, १५१९० (जो
 वे मत्तु और हृष मे मिश्रित
 मोन)
 इद्र—५१५६ (मोन भेष-रक्षमें
 एनाता वस और वन्दने)
 इन्द्र—३१९ (गृहस्थी, उचोत्त,
 सुनाट)
 ३८

इन्द्रिय—४१२ (इन्द्रत्व)
 इषु—११४९ (—वाग, इषुहन्त)
 इषुधि—६११० (नगर)
 इषुमान्—११५४ (मुपन्वा, निपगी
 स्वायुष)
 इच्छा—११९ (अन्न), ५१८४
 (मुदामके लिये)
 ईशान—११११६ (उत्तर नगम और
 न्यायनका ईशान)
 उषय—५१४८, १६११० (ज्ञान
 प्रगमिनि), १८१३ (छन्द), १८१७
 (गान, उद्गाय)
 उष्य—३१३ (उत्तराला), ४११६,
 १० ५१५७, १४१० (नकाठी
 गायत्र नाम -०गाला)
 उगा (मान-पचन्या)—४१९ (मान-
 पचनोपनन), ११५३ (का फेन
 फेनना)
 उत्त—१६१५ (गृहा या निर्भर)
 उपधि—१८११० (रय, युग, नाभि,
 प्रनिधि)
 उपमा—१८११० (इय), १८११४,
 १५ (न इव)
 उर्याक—१५१८५ (रय, नाक केर)
 उत्सवत—४११५
 उषा—१८११७ (पुगनी पुर्गी,
 पुर्गि), १८११६, १८११९ (पौर्गी
 पुर्गि), १८११६ (अन फलितकी
 वधि), १८११७ (अन विना-
 मिपगी वधि), १८११८ (अन
 तामदेगी वधि)
 उगिर—१८१३ (गर्भ)
 उष्मा—४१९
 उष्णीष—(देखो आशिकीव)

- ऋत—३।१९ (=सत्य)
 ऋतुया—१।८।९ (ऋतुक अनुसार)
 ऋषि—६।१९।११ (विप्र) १७।
 २०
 ऋष्टि—९।५४ (हथियार), १३।२२
 (कधेका भूषण), ९।५४ (छुरा,
 तलवार)
 ओपश—१३।२५ (सूर्याका), १७।३०।८
 (सीसफूल)
 औषधि—१।२।१२ (पोर-पोर अग-
 अगमें औषधि घुसे), १२।११
 (औषधियोका जया होना देखो
 भेषज भी)
 कक्ष्या—१७।१५ (३ कमरबन्द),
 कपर्दी—३।६ (दक्षिण-वसिष्ठोकी),
 ५।२३ (तृत्सु).
 कपर्दी—५।२३ (तृत्सु), १०।१५
 (जूडाघारी तृत्सु), १३।२६
 (कपर्दी रथीतम), १३।२७
 (दाहिने कपर्दी), १३।२८ (चार
 कपर्दीवाली युवति)
 करभीक—७।५ (मनु)
 करभ—४।१२ (=सत्तू), ४।१३,
 ५।६५, १५।९३।७ (इन्द्रके लिये)
 करभी—४।११, ४।१२, १५।९३
 (सत्तूवाली हवि)
 कर्करी—१४ (ऋ २।४३।३ ततुवाद्य)
 कर्णशोभन—१३।१६ (कानका
 भूषण)
 कलश—५।४६, ५।५६, १४।९ (में
 सोम), १४।२३ (०), १४।१८
 (में सोम रस), १७।१४ (में द्यौ-
 पति शतघार वाजी=मोम)
 क्वच—९।५० वमं)
 कवि—१६।२ (हल जोतते)
 कशा—१।१ (ऋ० १।१५७।४
 चावुक)
 कशोजुव—९।४१ (अतिथिग्व दिवो-
 दासकी रक्षा करना)
 कार (=कवि)—६।१८, ५।२८,
 ७।५, १८।९
 काव्य—१८।२१ (देवके काव्यको
 देख)
 कितव—१४।३३ (जुआरीको भोग
 नहीं रहता, कितव सभामें फूल कर
 जाता है, उसकी माता सतप्त होती
 है)
 कीनाश—५।४५ (कृषि-देवता)
 कुमारक—१५।१ (=छोरा)
 कुरीर—१३।२५ (एक भूषण),
 १७।३०।८ (छन्द)
 कुलप—११।२८ (कुलपति जैसे ब्राज-
 पतिको वैसे तुम्हारे पास निधियो
 के साथ सेवा करते हैं, कुलप ब्राज-
 पतिके नीचे थे)
 कुलिश—९।५२ (कुठार, वज्र)
 कुल्या—४।२०, १६।६ (हृदमें जाने
 वाली कुल्या), १६।७ (कुल्या
 वहे), १८।२३।८
 कुशर—५।६५ (शर, दर्भ, सूयकि
 साथ)
 कूपार—१७।१२ (सलिल)
 कृषि—१४।३३ (जूआ मत खेले,
 खेती करो, गाये हैं, जाया है)
 कृषोवल—४।१६ (अ—), ४।१०
 केवट—१६।४ (कुआ)
 कोश—१७।३० (७) (घन)
 क्षेत्र—४।१७ (सरस्वतीके) ५।६

- पनित्रिम—१६१२ (गोदा जड)
 पादि—१३१२१ (पैर और हाथके
 कटे), १३१२२, (कन्यांपर
 गादि), १३१२३ (पैरोमें गादि)
 १३११४ (हाथमें गादिवाटे थियुसी
 तरह)
 पारि (तोल)—१६११८ (गोमती
 नौ गादिया)
 पथर्य—३११९
 पंगरा—१५१३४१० (हुडक)
 पदंभ—३११३
 पयादिर—४१६
 पयत्यक्—१४२१८ (गापके चमकेपर
 मोमका पिना जाना, देपो गोत्यक्
 भी)
 पायत्र—५१८१, १६१० (उत्प
 गायत्रको गात्रो), १४११६ (आमने
 सोमका गान), १७१३०६, १८१७
 (गायत्र उत्प, गायत्र नाम)
 पायत्री—१८१३ (छद)
 पाया—१४१२७ (पुनानी गात्रा गोम
 के लिये)
 पायन—१४१७ (परमान इद्र
 गोमो लिये नयो गात्रा), १४१२४
 (गायत्र उत्पना गात्रा)
 गृह—११५८ (पा० टि०)
 गो—६११९ (मे इति)
 गो—९१ (गोत्र)
 गोत्यन्—१४१२१ (गोमो तम
 गोमती भाव चर्या)
 गोमात्—११७५ (गोमात्रा
 भोत्र)
 गोधीर—४१३०
 घाम—१७११७
 ग्रामगो—११११ (मनु भावो)
 ग्रावा—६११५, ६११३ (पत्र)
 ग्रोष्म—१६११४ (चतु)
 ग्राहि—१२१७ (भूत लोको गंग)
 घृत—४१४
 चन्द्रवान्—५१०९ (गान, भोग)
 चमत्—१४१३ (गाम पतिता
 प्याग)
 चमू—४११३ (नमिड पर),
 ५१४७, ५१५६ (मे नाम), १६१३,
 २३ (गोमती घत्र, से चमुजी-
 में गा गोम), १५१५७ (मे
 गोम)
 चर—४१९
 चमन—३१२१११ (उत्प)
 चपान—६११६ (पात्र)
 छन्द—१३१२५, १८१३ (छद, उत्प
 ७—१ गात्री, २ जित्त,
 ३ अनुत्प, ४ गोमो, ५ रिगद,
 ६ त्रिद्वि ७ गात्रो)
 छुवृ—१७१२१ (विद्यु इन्दी)
 जगती—१८१३ (उत्प)
 जन—३११६ (त्वो)
 जन—१६१३ (गतिविद्यु गदर न
 तितान भो गदर उत्प
 उत्प)
 जानवेद—१०१३ (अनि)
 जामि—१६१२० (नो)
 जार—१६११६ (गोमती उत्प
 लोको चर्या ?)
 जयं—१८११४ (गोमती उत्प)
 मुपती—५१६० (मुपती उत्प)
 ज्यो—११०० (उत्पना उत्प)
 (उत्पना)

- तनय—५।३० (सून-)
 तप—१७।१६ (तपसे अजेय और स्वर्ग गये)
 तरेम ता तरेम—५।२ (हम तरें)
 तितउ—४।१४ (छलनी)
 तुविप्रीव—३।९, ३।१० (पुष्ट-गर्दन, इन्द्र)
 लोक-तनय—५।१ (=तनय), १।५।२ (पुत्र-पौत्र), १।५।८०(०)
 त्रिघातु—१२।१३ (त्रिघातु शर्म= तीन प्रकारका सुख)
 त्रिष्टुव्—१८।३ (छन्द)
 त्रैष्टुव्—१८।९ (त्रिष्टुव् छन्दमें गाया जानेवाला साम)
 त्वचा—५।८।१।३२ (सुनहली)
 त्वष्टा—४।५
 दक्षिणा (=दान)—१७।३ (१।९)
 (दक्षिणाका विशाल पथ । सोना देनेवाले अमृतत्वको पाते, वस्त्र देनेवाले दीर्घायु प्राप्त होते। दक्षिणा देवी पूति है। दक्षिणा-वाला पहले बुलाया जाता। वह ग्रामणी होता। उसे जनोका नृपति मानते। उसे ऋषि, ब्रह्मा, साम-गायक और उक्थपाठी कहते। दक्षिणा अश्व-गाय-चादी-हिरण्य-अन्न देती)
 वंड—५।१२
 वध्याशिर—४।७, १४।१० (दधि-मिश्रित सोम)
 वर्ध—५।६५ (=कुश, शर, कुशर, संयं, मौजके साथ)
 दासता—१७।२५
 दासी—१७।३० (६)—(अनुनेयी= दहेजमें दी जानेवाली दामी)

- बुधुभि—ऋ ६।४७।३१ (वाद्य)
 दुर्ग—६।१२
 देव (=देवता)—१।५।१ (देवता न शिशु न कुमार), १।५।२ (रुद्र, वसु, मरुत्, आप, नासत्य, सरस्वती, विष्णु, ऋभुक्षा, पर्जन्य), १।५।३ (द्योस्पिता, पृथिवी माता), १।५।४ (उषस, सिधव, पवंत, इन्द्र, पर्जन्य), १।५।५ (इद्राग्नी), इन्द्रावरुण, इन्द्रासोम, इन्द्रापूपण, भग, पुरधि, अर्यमा, घाता, वर्ता, रोदसी, अग्नि, मित्रावरुण, अतरिक्ष, ओपधी, जिष्णु, आदित्य, वरुण, त्वष्टा, सोम, ब्रह्म, प्रावा, यज्ञ, वेदि, सूर्य, प्रदिशा, पूषा, वायु, क्षेत्रपति, विश्वेदेवा, ऋभव, पितर, अज, अहिर्बुध्न्य, समुद्र, अपान्नपात्, पेरु, पृश्न), १।५।६ (मित्रावरुण, अश्वि, ब्रह्म-णस्पति, सोम)
 द्रवि—१८।१५ (दवि, दविली)
 द्रापि—१३।९ (पिशग द्रापि धारण करता), १३।१० (द्रापिकी तरह छुडाना), १३।११ (सुनहली द्रापिको धारण किये वरुण)
 द्रोघवाच—५।४ (अ-) ५।२१ (ऋठा)
 द्रोण—१४।४ (सोम रखनेका बतन) १६।२, १६।१९ (मार, नाप), १८।१४।८ (में स्थित)
 धनुष—९।५० (धनु, धन्वा)
 धन्व—३।१, १६।२२, १७।३।२० (मरुभूमि)
 धन्वा। सु—९।५४ (सुधन्वा, इपु-मान्, निपगी)

परिशिष्ट ३ शब्द-सूची

अनु-शिल्प—३१०१ (पा० टि०)
 आना—४१११, १० (भुना जोका
 दाना), १५१९, ३१५ (माघ्यन्दिन
 नवनम घाना), १५१९, ३१६
 (तृतीय नवनम घाना), १५१९, ३१
 ७ (उद्भक्त लिये), १७११९ (मनु
 नहीं आया कि घाना माता मोम
 पोना)
 नक्षत्र—१६११७ (अघा - मया,
 दोनो अर्जुनी पूरा-फाल्गुणी
 उत्तरा फाल्गुणी)
 नवी—५१०८ (स्मृति)
 नप्ता—१५१९० (= नानी)
 नळा—५१८११३३ (नगरट)
 नाभि—१८११२ (चक्रांती नाभि)
 नारायणसी—१७१३० (६) (श्रुना)
 नाय—३१०१ (पा० टि० जिला)
 ५१७० (अग्नि पनवार), ९१
 ५८ (नी पनवारकी), १६१५
 नासत्य—५१५७ (अग्निद्वय)
 निष्ठा—०१४९ (सन्ध्या), ११७८
 निष्पत्ती—९१५४ (न्यायशास्त्र, मुस-
 न्या, इण्डियान्, म्यागु)
 निष्ठा—५१६१ (नी निष्ठा रडो-
 बानुन पाये, न्यायशास्त्र)
 निष्पत्ती—१३११८ (मठमें मोनेता
 निष्ठाशास्त्र राना), १३११०
 (मुनिन नरन निष्ठा मठने
 भाग्य कन्याशास्त्र)
 नृत्य—१३१५ (नरन नरन निष्ठा
 निष्ठा कन्या शास्त्र), १३१११
 नृपति—१३११६ (नरन नरनि)
 नृपति—१३१२ (नरन)
 नोचनी—१३१३०१६ (नरन)

पयव वृक्ष—१४१०६ (पाय पय)
 पत्रक्षिति—५१६६
 पति—१७१३० (४५) (नरन श्रीमें
 न्यायशास्त्र पतिरां ननाओं)
 पतिद्वय—५१००
 पति राजा—११११० (शासन
 प्रजाओंका पति राजा इट)
 परशु—११५३ (ज्ञान शिष्यन
 काटना), १८११५
 परिच्छिन्न—५११० (चित्रे भन्त)।
 पजन्य—१८१०० (प भोम ज्ञानेकी
 कविता)।
 पवित्र—१४१९, १० (नाम रानना
 पात्र)।
 पद्म—६१४ (ग्राम्य, गाय, घात्र, भेड,
 वारी, गहरा, इट)।
 परिषद्—३१०
 पितर—१४११५०५ (पुत्र निरगने
 मोमने कन रिया)।
 पितृपद—१७१३० (२१) (पिताने पर
 में गहनी)।
 पिशाचरूप—३१११ (अले)।
 पुत्र—१७१३०१६५ (नरन मोमं इट
 पुत्र भाग्य कनने)।
 पुरद्वर—३११३ (पुरनोका इट)।
 पुरधि—११११९ (निष्ठा)।
 पुरोगय—१३१०० (नरनमें दो नरं
 नो-नरन नरनो नरन नरन)
 पुरोडा—०११३ (नरन नरन)
 १५१०१११३-१५११५ (निष्ठा)
 पुरोहित—(प्रधान नरन)
 (निष्ठा नरन नरन नरन)
 १३१३० (निष्ठा नरन नरन नरन
 इट)।

- पूर्णावती—३।१४
 पूषन्—४।१२, ४।१३ (करभप्रिय) ।
 पृथुवृद्धन्—४।१५ (मोटा शीर्ष) ।
 पेश—१३।२८ (सुपेशा चतुष्कपर्दा
 युवती, पेश=सज्जा) ।
 प्रतिधि—१३।२५ (वधूका आभूषण),
 १७।३०।८ (चक्केका घुरा) ।
 प्रधि—१८।१२ (रथका घुरा, उपधि,
 नाभि, युग भी) ।
 प्रपाण—४।२० (प्याव)
 फल—४।२४ (स्वादु), ४।२२ (सुफल)
 फाल—४।२३, ५।४५ (कृषिका)
 वधू—१३।८ (दुलहन, अधिवस्त्रा=
 चादरसे ढकी), १४।३२ (सुवासा),
 १७।३७।३३ (सुमगली) ।
 वधूयु—१५।९३ (दुलहा), १७।३०।९
 (०)
 बलि—५।१५ (=कर), १५।९७=
 (हवि, अश्व, साड, वैल, वशा, मेपकी)
 बलिहृत्—७।८ (=करद) प्रजा
 ब्रह्म—५।३२, १२।३ (=ऋचा, मन्त्र),
 १८।१२ (=ऋचा)
 ब्रह्मचारी—१७।१२ (देवोका एक अग
 होता)
 ब्रह्मजाया—१७।१२।५ (वृहस्पति की
 पत्नी जुह), १७।१२।२, ३, ६
 ब्रह्मा—३।१०, १७।२० (प्रधान
 ऋत्विक्)
 ब्राजपति—११।२८ (की सेवा निधियो
 द्वारा कुलप करते, अनेक कुलोका
 मिलकर ब्राज होता, जिमपर
 अधिकारी ब्राजपति था) ।
 ब्राह्मण—३।२०
 भिषग्—१२।११ (राक्षसोका नाशक
 वीमारी हटानेवाला), १२।१२
 (अश्विद्वय दैव्य भिषज)
 भिषजौ—१७।६ (अश्विद्वय)
 भूषण—(देखो अत्क, कर्णशोभन—हिर-
 ण्य-कर्ण, मणिग्रीव, निष्कग्रीव, सुनिष्क
 खादि, रुक्म, ऋष्टि, शिप्र,
 ओपश)
 भेषज—१२।१३ (तीन प्रकारके दिव्य,
 पार्थिव और जलके), १२।१४
 (आतुरका भेषज)
 भोज—१४।३२ (भोजनदाता, भोज,
 सुरभि स्थानको, सुवस्त्रा वधूको,
 आतरिक पेय सुराको प्राप्त करते
 हैं), १७।१३।८, ९ (भोज मरते दुख
 पाते नहीं, भोज सुरभि स्थान,
 सुवस्त्रा वह, अच्छी सुरा पाते)
 भोजन—५।७५ (अश्ववान्, गोमान्)
 मघ—१८।१६ (=घन, चित्रामघा,
 मघोनी)
 मघवा—२।७, ५।३१ (=घनवान्
 इन्द्र)
 मणिग्रीव—१३।१७ (कण्ठमें मणि=
 मनका धारण करना)
 मन्त्र—३।२१
 मदिर—४।३० (मधु)
 मधु—४।२६ (सारघ)
 मधुर—४।३० (मदिर)
 मर्त्य—४।२९, ७।१५ (३) (मनुष्य)
 माया—८।१८ (के द्वारा दभीतिके
 लिए ३० हजार दास मुला दिये)
 मायी—८।६ (दानव)
 मास—१६।१० (वारह), १६।१२
 (मास, गरद)
 मास-पचनी—४।९ (हाडी)

मित्रावरुण—५१००
 मुष्टिहत्या—५१८२, १०१४ (मुष्टियुद्ध,
 मुष्टि द्वाग लडाई), १५१०
 (मुष्टियुद्ध)
 मृण्मय—१०११० (घर)
 मृत्युबन्धु—७१७११८
 मृध्रवाक्—६१६ (जूठे, पणि)
 मेघ—४११ (पताना), ५१५८ (नीं),
 १५१९९ (मोटा भेट पत्तावा)
 मोघ—५१२०, ५१२१
 मौज—५१६५ (घर, हुंजर, दम, नयंके
 नाय)
 मौजवत—१४१३३ (ते नौमता भक्ष्य)
 यक्ष—१५१३३ (मेला)
 यक्ष्म—१०१६११, १२, १२१९ (मिर,
 भुजा, कान्धे, आत, गुदा, हृदय,
 स्नायु, गर्दा, जपे, एटी, पैर, जायके
 यक्ष्म) (देना राजयक्ष्मा भी),
 १७१०१ (मिर, मन्नाक, जिन्ना,
 घोवाता गेग)
 यज्ञ—४११६ (- पाद)
 यय—४११९ (जी), १६१६ (कृष्टि
 जीते वरानी)
 ययाशिर—४१६ (जडर, लो री
 गौर)
 यातु—५११६ (जाइ), ११३
 यातुपाल—५१२० (जहान)
 यागि—१७११५१० (जा गगमे
 नामि वरित्त यागि रा गग
 मन्नाक)
 गुग—१६१० (जाग) १८११० (जा,
 हुंजर)
 घृष—४११६ (- पाद)
 घृष—४११६ (- पाद)

योजन—१६१०१, १७१३१०० (माप)
 योषा—५१०८, ५१४६ (मुक्कनती
 न्यो), १४११३ (पितावात्री योगा
 की तह परिगृह्न नोम)
 रक्षत्—१७१०६ (गदान)
 रक्षोहा—१०१६१ (गदान भगावाले
 वंछ), १८१० (जनि)
 रत्न—५१२६
 रय—१४१० (दौड)
 रवीनम—१३१०६ (गपदी र्जिता)
 रदना—३१०१ (पा टि र्जिता)
 राजदुहिता—१११०० (घोषा)
 राजन्य—३१०० (क्षत्रिय)
 राजपुत्र—१११०० (गी नन्)
 राजपदमा—१०१३
 राजा—५१६१, १११८ (विम् नराना
 उन्नतान र्जिता र्जिता), १११५ (गज
 की नन्), १११६ (गजनाला गज
 की नन्), १११७ (गज नराना
 गजा छ्द) १११८ (छ्द मां
 भुवना गजा), १११९ (छ्द
 जात् भी नराना र्जिता
 गजा) १११० (मिन् री गज
 जागि गजा) ११११६ (छ्द र्जिता
 के गज), १११२५ (मिन् री
 र्जिता भी गज), १७११०६
 (गे गज)
 राजामिष—११११०
 राधि—१७११० (रौं)
 राम्पोनि—१८११५ (गज ग.
 गजाप)
 गारु—१११० (गज ग.
 १११३ (गज ग.
 १७११० (गज ग.)

- रुक्म—१३।२१, २२ (छातीपरका सुवर्णाभूषण)
- रैभी—१७।३०।(३) (ऋचा)
- रोग—१२।८ (हृद्रोग)
- रोमशा—५।६१ (गधारी भेड जैसी)
- लक्ष्मी—४।१४
- लागल—४।२१, ५।४३ (हल)
- लिवुज—१७।१५(१३) (लता)
- वज्र—९।५६ (को हाथमें धारण करना)
- घतो वत—१७।१५।१३ (छि छि)
- घधूमान्—५।६१ (दस रथ कक्षी-वान्को मिले)
- वन—४।१८ (हिम में)
- वपोदर—३।९ (इन्द्र)
- वप्ता—१३।२९ (श्मश्रुका वप्ता, हजाम)
- वरत्रा—४।२१ (वरही, रस्सी), ५।४३
- वरुण—११।२ (उग्र, सहस्र-चक्षा नदियोंके जलको बतलाते), १५।८६ (पाश छोडा)
- वर्म—९।५० (कवच, वर्मी), ९।५०।२
- वसंत—१६।१४ (=ऋतु)
- वस्त्र—१३।५ (श्वेत-अर्जुन पहने, देखो अधिवस्त्र भी), १४।१५ (को सोम देता)
- वाजी—४।२ (=घोडा, पका), ५।२१ (पका सोधा), ५।२७ (बलि दिया नहीं मरता, देवोंके पास जाता), १५।१०० (पक्व वाजी)
- वाणी—१८।४
- वाद्य—१५।३५ (वाद्य)
- वाशी—९।५४ (वसूला), ९।५५ (आयसी), ९।५४ (छुरा)
- वासस्—१७।३०।६ (=वस्त्र, सुवासा, शुक्रवासा, दुर्वासा भी)
- वाह—५।४३ (वाहन)।
- विदथ—११।(ऋ २।१३।१३,) सभा, यज्ञ)
- विद्युत्—५।२२
- विप्र—३।३
- विभीदक—१४।३१ (सुरा विभीदक है), १४।३३ (भेलेकी लकडीका पासा)
- विराट्—१८।३ (छन्द)
- विश—४।४ (=प्रजा, जनता), ११।४ (राजाका उपस्थान करती), ११।१२ (सारी विश् चाहती, तू राष्ट्रभ्रष्ट नहीं, न्युत नहीं हो। इन्द्रने करद बनाया विश्को)
- वीरासू—५।३
- वृक—२।७, ५।३
- वृक्ष (पक्व)—१४।२६ (=पक्व फल)
- घृत्रतुर—९।३० (=शत्रुहन्ता), ९।३०।९ (=वृत्रहा), ९।३९ (=शत्रुनाशक)
- वृत्रहा—३।१२, ३।१३ (इन्द्र), ४।१२ (शूर, विद्वान्), ९।४६ (=शत्रु-नाशक)
- वृषभ—४।२ (पकाता), ४।३ (यजन), १५।९८ (=साड मने पकाया)
- वृहती—१८।३ (छन्द)
- वैश्य—३।२०
- शर—५।६५
- शरद—१५।८४ (=वर्ष, मी), १६।१, १६।१२, १६।१४ (ऋतु), १६।१४ (सौ)
- शव—१५।१०२, (पा टि दफनाना)
- शास—११।१५ (इन्द्र दिक्-शाम है)

शिक्षा—१०११ (देना), १२१० (शिक्ष-
माण=मागने हुए)
शिघ्र—१३१४ (शिघ्री इन्द्र), १३१५
(अथ शिघ्र और मुनिफ), १३१००
(निगपन फंडा मुनिहला)
शिघ्रमार—५१५८ (अश्विनोके नाथ)
शुक्रवासा—१३१४ (युवती की उगा)
शुचिबत—३११
शुद्ध—३१००
शूर—१७११६ (शुद्धमें शरीर छोड़ने-
वाले स्वर्ग जाने)
शमश्रु—१३१०० (शमश्रु-दाडी बनाने-
वाला, हजाम)
श्या—४२१ (बुद्धा)
शिवत्यज—३१६ (नपेद, गोग), ५१२३
(तृणु), १०१३, १०१५ (गोरे
तृणु)
श्रय—१५१८० (यग, स्त्री, म्बवा)
श्लोक—१४१० (मुझमें पजंत्यही तरह),
१५१०४ (-यन), १८१३
(शुद्धा)
शबलु—६१४ (-छानना)
शब्दा—१६१०३-४३
शपली (गौरी)—१५१२०१ (शपली-
वाता)
शपत्त्वगा—१५१८४ (शपत्तेको -रुद्र
गौरीको बहन कर्ती)
शभा—१११०१ (जरीरी मन्ना), १११
०० (गन्धवित्र), १११०३ (मैं च-
जाता) १११०६ (मैं शरीर की
जता)
शभेष्ट—१११०० (गन्ध वित्र)
शमिति—३१०१, १११०० (शमिति
गजाभीती तरह), १११२६ (शमि-

नियामें जाने गजाभीती तरह), १११००
(तुम्हारी भूमिति गमान हो)
समुद्र—२१८, ५१५९, ६८, ९१, १६१३
सम्राज्ञी—१७१३० (४६) (गान-
नमुन्ननद-देवगन नाम्राज्ञी होओ)
सम्राट्—११११३ (जनीता सम्राट्
जनि), ११११४ (सम्राट् मुनि
रगने है)
सवन (गौरी छाननेको तरह)—
१५१९१ (शान नाथ, माध्यन्दिन-
सवन, तृतीय-सवन), १५१०३
(माध्यन्दिन-सवन)
सपत्सर—१६११६
सवरग्रा—१६१० (सुभाउती रग्गी)
सहस्रदान—५१११
सहस्रस्वण—१६१६ (सजा रगनी-
वाले घरको गजा रगनी)
साम—(गामकेमें सदन शिख नाम
गायन गायत्री छानने नाथ जाना
है, उनको जात श्रद्ध, वाहन
है। इनके नाथ उद्योगद भी गाना
उत्तमें मिलने है), १८१८ (गाना
शान मुनि), १८१६० (गाना)
सामग—१८१८ (गान गानको गान
और श्रद्धको गाने)
सामर्थ—१२१६ (गान)
सानास्य—३१११० (सामर्थ, ग
हाने है निवसन गान)
साव (गान)—१५११३ शान गान
साहित—१५१००
साता—११०० ११११६, ३ (शान गान)
सागा—११११ (शान) १११११ (शान गान)
१८११३ (शान गान) १८११३ (शान गान)
सुदानु—५११०० (शान गान)

सुनार—३।२१ (पा टि शिल्प)
 सुभर—३।११ (आर्य)
 सुरभि—४।१६, ४।१० (सुगध, सोधा)
 सुरा—१।४।३० (पीनेपर दुमर्द हो लडते हैं), १।४।३१ (होश उडाने-वाली), १।४।३२ (भोज-दाता, आत-रिक पेय सुराको पाते हैं)
 सुवरत्रा—१।६।२ (सुन्दर जोता, और सुन्दर सोचना भी)
 सुवासा—१।३।१ (युवा), १।३।२, ३ (सुवासा जाया, अभिलाषिणी)
 सूक्त—१।८।५, १।८।६ (ऋचासमूह)
 सूना—४।९ (पशु काटनेका काठ)
 सूनु-त्तनय—५।३०, १।७।७ (पूत-नाती)
 सूर—१।८।१४ (=सूर्य)
 सूरि—२।५, ५।३ (राजकुमार, वीर)
 सूर्यत्वक्—३।७, ८ (अपाला)
 सुणी—१।६।२ (फसल)
 सेनानी—८।३१ (सेनापति)
 सैर्यं—५।७।५ (शर, कुशर, दभं, मौंजके साथ)
 सोम—१।४।२३ (भेडके ऊनी कपडेमें सोमका छाना जाना, दो चमुओमें डालना, कलशोंमें रखना), १।४।२४ (सोम शूरोका समूह, सारे वीरोवाला, जेता, धनोका देने-वाला, तीक्ष्ण-, आयुध, क्षिप्रवन्त्वा, युद्धमें हरानेवाला है), १।४।१५ (वनोके लिए स्वधिति सोम पवित्रको पार होता है, पुराने पितरके कामोको सोमने बनाया, मनुके लिए वह अमित्र नागक हुआ), १।४।२६ (पके वृक्षकी तरह आनन्द के लिए, ६० हजार धनोको दिया),

१।४।२७ (पुरानी गाथासे उसकी प्रशसा की), १।४।२८ (भेडके बालोसे गायके चमडेपर सोम छाना जाता), १।४।२९ (शर्यणावतमें इन्द्रने सोम पिया, सोम आर्जोकेसे आ विराजे, सोम अनाशमान (ऋत) लोकमें ले जाता, जो लोक कि ज्योतिष्मन्त है, वहाँ अमर करै, जहाँ कि आनन्द, मोद, मुद, प्रमुद है), १।४।२३ (भाग)
 सोमपीति—४।४ (सोमपानगोष्ठी)
 सोमराजा—३।१९
 स्कम्भ—५।४।७ (स्तम्भ)
 स्तोम—५।६।१, ५।८।१, १।६, ९।३, १।३।२५, १।६, १।२ (द्वारा प्रशसा), १।७।३० (=ऋचा), १।८।११ (नये सोम पैदा करता), १।८।१७, १।८ (ऋचा), १।८।१९ (=भजन, गान)
 स्यविर—१।५।८० (स्थायी, बूढा, वृद्ध)
 स्रोत्या—५।२।८, ५।९।३ (नदी)
 स्रवन्ती—५।९।३ (नौ)
 स्वधिति—१।४।१५ (कुठार वनोका)
 स्वराट्—१।१।१७ (इन्द्र, स्वराट्)
 स्वसा (= वहिन) — १।७।१५।११, १२ (के साथ भ्राताका सम्बन्ध निपिद्ध)
 हरिकेश—३।२, ३ (पीले बालोवाला)
 हरिमाण—१।२।१८ (पीलिया रोग)
 हरिश्मशरु—३।२ (पीली दाढीवाला)
 हरिश्मश्रु—३।१ (पीली दाढीवाला)
 हरिशिप्र—३।५ (पीले मुकुटवाला)
 हर्म्यं—१।६।८ (पर स्थिन शिगु)
 हव्य—५।११ (हवि)
 हिम—४।१।८ (मे वन)

हिम, शत,—५१३, १५१८१, १५१८३,
१६११३ (नी हिम-वर्षं वीर पुरुषो-
महित मानन्द रहे)
हिरण्यकर्ण—१३११७ (कानमें मोना

धारण कर्णेशाला)
हिरण्यकेश—३१४ (मुनहरे शालेशाला)
हृद्दोग—१२१८
हेमन्त—१६११५ (नी हेमन्त-वृत्त)

परिशिष्ट ४

देवता-सूची

- अग्नि (-देवता)—१५।११ (पुष्टि-कारक होता), १५।१२, १३ (सहस्रसूनु), १५।१३ (युवा अद्रोघवाक्), १५।१४ (व्रतपा, नाकस्पर्शी, विशो का राजा वैश्वानर, को पश्चिमसे लाये), १५।१५ (हव्यवाह विश्वपति), १५।१६ (वैश्वानर स्वविद = स्वर्ग-ज्ञाता, रथिर, कुशिक आहवाता, कुशिको द्वारा युग-युगमें सेवित), १५।१७ (राजा, छद्र, होता, सत्य-यज), १५।१९ (दृपद्वती आपया, सरस्वतीमें धनयुक्त), १५।२, १५।५, १५।६, १५।७-९, १८।१ (प्रथम, दर्शनीय, होता इळस्पद)
- अग्नीषोम—५।७८ (अग्नि-योम)
- अज—१५।५ (एक पैरोवाला देवता)
- अदिति—१५।२, १५।३ (आदित्य भी), १५।५ (आदित्य), १५।७ (आदित्य), १७।१ (अदितिसे दक्ष और दक्षसे अदिति जनमे)
- अद्रि—५।५ (=देवता)
- अपानपात्—१५।५ (=देवता)
- अप्या—१५।५ (=पानीके देवता)
- अप्सरस—५।१९
- अमृत—४।२९, १७।१५।३ (देवता)
- अमृतघ्न्यु—१७।१ (देवता)
- अरण्यानी—१५।१९ (नहीं मारती, स्वादु फलदायक, विना किसानके बहुअन्नवाली, मृगोकी माता)
- अर्यमा—१५।२ (सु-मगल), १५।८
- अश्विनो—२।१७, १५।५, ६, १७।७ (तुम दोनों के लिए मैंने स्तोम बनाया, जैसे भृगु रथको बनाते हैं), १७।८ (कवि कुत्सकी तरह विशो = प्रजाको पानेवाले, भुज्यु, वश, सिंजार उशनाके उपकारक, कृश, शयुके उपकारक), १७।१० (नासत्य सवरे मधुवाहन रथपर चढ़ते हैं), १७।११ (उन्होंने कृष्णिय विश्वको विष्णापू दिया, पीहरमें वैठी क्षुराती घोषाको पति दिया) (देखो नासत्य भी)
- असुर—१७।१५ (के वीर, महस्पुत्र चौके घर्ता)
- अहिर्बुध्न्य—१५।५
- आप (देवी)—१५।२० (सुखमय, शिव-तम रस, माता, देवी), १६।३ (आपो देवी)
- इन्द्र—४।३१ (म्यूल-गर्दन), ६।१९।३ (जैमा), १५।५ (वमुओके साथ), १५।६, १५।७, १५।२२ (शिप्रवान्, वृषभ, गोत्रभिद्, वज्रभृत्), १५।२३ (श्राता, अविता, सुहव = अच्छी तरह पुकारा जानेवाला, दूर, शक्र,

इन्द्राग्नी—२।११ (इन्द्र और अग्नि)
१५।५(०)

इन्द्रापूषन्—१५।५ (इन्द्र और पूषन्)

इन्द्रावरुण—५।२३, १५।५ (इन्द्र और
वरुण)

इन्द्रासोम—१५।५ (इन्द्र और सोम)

इळा (=देवी)—५।३०, १५।२१
(योपा-सहित भारती और सरस्वती)

उषा—१५।४ (हमारी रक्षा करें),
१५।५

ऋभु—१५।२ (ऋभुक्षा), १५।५
(ऋभव सुकृत, सुहस्त), १५।४१
(ऋभुजोका रत्न यय हुआ, सुश्रुत,
मली प्रकार छाने मधु सोम पियो,
तृतीय सवनको रत्नघ्येय करो),
१५।४२ (अनश्व, विना लगामका
त्रिचक्र रथ ऋभुजोका, पृथिवीके
पोषक ऋभु), १८।१५ (चमकता)

क—१५।४३ (वह हिरण्यगर्भ भूतका
एक पति पहले था, जिसकी छाया
अमृत। जगत्का राजा दोपायो-
चौपायो का ईश। जिसकी महिमा-
वाले ये हिमवान्। जिसकी दिशायें।
जिसमें द्यौ ऊची, पृथिवी दृढ,
नाक=द्यौलोक थमा है, वह प्रजा-
पति, सारे उत्पन्नोके चारो ओर है)

कीनाश—४।३२ (ऋषिदेवता)

क्षेत्रपति—१५।५ (देव)

जिष्णु—१५।५ (देवता)

अ्यम्बक—१५।८५ (सुगधि, पुष्टिचर्धन)

दक्ष—१७।१ (दक्षकी माता और
दुहिता अदिति)

देव—५।२४ (तैत्तिम), १५।२, ८, ९,
(देवसख्या), १५।१० (देवलोक),

१७।१ (अमृतवन्धु अदितिके आठपुत्र)

देवी आप—१।१२ (दिव्य जलदेवियाँ)

द्यौ—१५।३ (पिता)

द्यौ-पृथिवी—१५।५

धर्ता—१५।५

घाता—१५।५

घिषणा—१५। (ऋ १।१०९।४ घनकी
देवी)

नाक—१५।१० (=स्वर्ग लोक)

नासत्य—१५।२, १७।६ (घोपाने

भिपज् नासत्योसे प्रार्थना की।
उन्होंने विमदका सुघ्युसे व्याह किया,
पुरुमित्रको स्त्री लायें, पुरधिके लिए
वधिमतीके साथ आये, पेटुके लिए
श्वेत अश्व, नव अन्नों और नव्वे
वाजियो=घोडोके साथ दिया। शैयुके
लिए घेनु दिया, वृक=भेड़ियेके
मुखसे वतिकाको छुड़ाया), (देखो
अश्विनी भी)

पर्जन्य—४।२३, ५।४५, १५।४, ५,
१५।४४ (द्यौ-पुत्र सिचक पर्जन्यके
लिए गाओ, वह गायो-घोडो-औप-
धियोमें गर्भ-धारक)

पर्वत—१५।४, १५।५ (देवता)

पार्थिव—१५।५ (=पृथिवीके देवता)

पितर—१५।३ (द्यौ-पिता), १५।५

(पितर हमारे कल्याणकारक हों),

१५।७८ (जहाँ हमारे पुराने पितर

गये हैं। अगिरा पितरके साथ हे यम,

इस प्रस्तरपर बैठो), १५।७९ (उरे-

परे-बीचवाले सोम्य, पुत्रोको पितर

घन देवें, पूर्वज पितर, अग्निदग्ध,

अनग्निदग्ध द्यौके बीच स्वधामे

आनन्द करते)

मित्र के लिये पचजन नियम करते हैं)

मित्रावरुण—१५।५, १५।६ (मित्र और वरुण)

यम—(=देवता)—१५।७८(मातली काव्यो द्वारा बढता। यम पितरो के साथ इस प्रस्तर पर बैठे। वह राजा इस हविसे प्रसन्न हो। यम और वरुण दोनो राजा स्वधासे खुश होते हैं। यम के चार आख वाले पथिरक्षी दो कुत्ते। यमके दो उदुम्बल दूत लोगोके पास विचरते। यमके लिये सोम छानो, यम राजाके लिये मधुमत्तम हवि हवन करो), २५।१०२ (के पास पुराने पितर)।

रक्षस्—५।४७ (राक्षस)

रुद्र—१५।२ (रुद्रके सूनु वसु लोग), १५।५ (रुद्रावरुण, रुद्रोके साथ वरुण), १५।६, १५।७, १५।५८ (स्थिरघन्वा=क्षिप्रवाणवाला देव, अपराजित तीक्ष्ण-आयुध। उसकी छोडी विद्युत्, द्यौ और पृथिवीपर विचरती है। उसकी हजारो दवा-इया है, वह हमारे स्तोक्तनय-पुत्र-पौत्रो-को हानि न पहुँचाये), १५।५९ (रुद्र कपर्दी दोपायो चौपायो का कल्याण करे। इस ग्राम में सबको तुष्ट और निरोग करे। वह यज्ञसाधक और वकु कवि है। वह द्यौका वराह अरुण=अरुण कपर्दी है, उत्तम भेषजो को धारण करता है)

रोवसी—५।३२, १५।५ (द्यौ और पृथिवी)।

लोक, अमृत—१४।२९ (अनाशमान, कामचार-वाला, ज्योतिष्मान्, आनन्द-मुद-प्रमुदवाला)

वरुण—१५।२, १५।७, १५।६० (नदीपायज्ञ, राष्ट्रोका राजा), १५।६२, १५।६३

वरुणानी—१५।६१

वसु—१५।२ (देवगण अजेय), १५।३ (भाई) १५।४, १५।५, १५।७, १५।६० (नदीपायज्ञ, राष्ट्रोके राजा)।

वाक्—१७।२० (मैं सारे देवो के साथ चलती हूँ, जिसे चाहू उसे ब्रह्मा, ऋषि बनाऊ)।

वात—१५।५ (वायु)

वायु—१५।२, १५।५, १५।७, १५।६६ (वायुके लिये सजे सोम, उसकी उक्थो से स्तुति करते)।

वास्तोष्पति—१५।६७ (=मकानोका देवता। वह रोगनाशक सभी रूपोमें प्रविष्ट सखा है, के सफेद सारमेय)

विश्वकर्मा—१५।६८ (हमारे पिता, ऋषि होता, विश्वकर्मा ने भूमिको जन्माया द्यौको बढाया। वह चारो ओर चक्षु-मुख-बाहु-परोवाला है, दोनो बाहुओ से धौंकता है, पखो से, उस एक देवने द्यौ और भूमि को जन्माया)

विश्वेदेवा—१५।५ (=सारे देवता)

विष्णु—१५।५, १५।७, १५।६९ (उस देवने इस पृथिवीको तीन बार विच्र क्रम=लघन किया, वह वलियोमें वलिष्ट)

वृषाकपि—१७।३ (=अग्नि के प्रति इन्द्र के सौहाद्रं से इन्द्राणी रुष्ट)

वृद्धहा—५१५१ (=पुरन्दर, कृष्णयोनि
दागौर-का नाम)।

घेदि—१५१५ (देवता)

शचीपति—५१८५ (वृद्धहा)

शुनासोर—४१३२, ५१४५ (कृषि-
देवता)।

सरमा—६११९ (शैव = कुनिपासोपनि-
यो मे मान)।

सरस्वती—५१६, १५१२, १५१४
(मिथुओं-नहित पूत्री), १५१५, १५१

७० (आयगोपुरको नाम बनती

ख्याती तरह जाती। नदियोंमें

धुवि। गिरियों में मनुन्द्र तक

जाती। घन चैतानी। नाहुप - मनुषी

प्रजाके लिये धो-दूध दुहानी। वनिष्ठ

उनको स्तुति करते हैं), १५१७१,

(सरस्वतीकी महिमा वनिष्ठ गाने

हैं, उनके दोनों तटों पर पूर बनते,

सरस्वतीके माय सरस्वती,

भागनी, उद्या तीनों देविया इन यज्ञ

में बैठें। सरस्वती दूषद्धती, आप-

याके तट पर धनुषन अग्नि प्रदीप्त

हो) १५१७४ (उगने दाता वध्र्य-

प्यको दिव्योदान प्रदान किया।

पणिको साया। ने अपनी उर्मियोंसे

गिरियोंके नानुषोको तोज।

पागवत = धारभारती तादनेवाली,

सान वहिन सरस्वती स्तोमनीय हैं।

उसके क्षेत्र और सरस्वती हम पायें)

सविता—१५१२, १५१४ (उगता सूर्य),

१५१५ (सूर्य सूर्यो), १५१७

(अदिजा) १५१७५ (सविता के

परिष्क भग्न का नाम मान रखते हैं),

१५१७६ (उत्तरी सूर्यो दोनों

वाहुयें हैं। वह दक्ष, गुदक्ष, हिरण्य-

जिह्व, हिरण्यगणि, अयोहनु -

वज्र टुड्डीवाला, मद्रजिह्व हैं)

सहस्रोसुनु—५१४ (अग्नि), ७१४ (नह-

नका पुत्र)

मिथव—१५१४, १५१७० (गिरु), १५

७४ (नख्यतीकी नाम वरिणोमें)

सोम—४१२७ (नमुओंमें), ४१२८

(मरिष्ठ, स्यादिष्ठ भाग), ४१२९

(पीनो जमर), ५१४७ (का चमता,

रत्न), ५१७७ (गगनागत पृष्टि-

वानं) ५१८९ (तो पाग स्यादिष्ठ,

मदिष्ठ), १४१३ (चमुओंमें छाना,

चमनोंमें पीना, चमुओंमें जममें

चद्र मारी तरह रिपलार्ड र्ना),

१४३१ (स्यादिष्ठ अयन स्याद,

मदिष्ठ-अयन नगा र्नेवा),

१४१४ (शेओमें रग्ना), १४१५

(पवमान छाना जाना, जावान

करना), १४१६ (तो र्ना स्युष्टिया

मोखती, पीटे विद्र शीर मन्नाहो)।

कन्धोंमें रात् रन्नाते र्ने), १४१

७ (मोनो र्ने गाओं) १४१

७१३ (मोमगा) १४१८ (रा

सुर्ये वृषन ना मोमोरो हिल्ला

हैं), १४१९ (रा सन्नामें मोमो

पन्निमें मोमो जाया, उरगा

ज्ञान मन्ने र्नागा पाता हैं)

१४१३० (रपोनी रात् र्ने

जानेराते, र्ने मोमोरी र्ना र्ने

हिल्लागेते कन्धो रात् र्ने

जन्नी रात् र्ने र्ने र्ने

१४१३० (पान्निमें मोमो र्ने

पाता हृषा र्ना हैं), १४१३३

(पवंतसे क्षरण करता), १४।१४ (जारको जैसे कन्या वैसे सोमको दस अगुलिया स्पर्श करती है), १४।१५ (सोम गोजित्, अश्वजित्, विश्वजित्, रणजित्, प्रजायुक्त रत्न लानेवाला है), १४।१६ (गायसे सोमको गाओ), १४।१७ (सोमके नशेमें इन्द्रने शबरके ९९ नगरोको दिवोदासके लिये नष्ट किया, और युद्ध-तुर्वशको परास्त किया, अग्नित्र वृत्रको मारा। दिन-प्रतिदिन अन्न-दाता, वह गौ और अश्व देनेवाला) १४।१८ (इन्द्र-विष्णुके लिये छाना सोम कलशमें क्षरित हुआ। वह भूरा है। इन्द्रको बढ़ाता सवको आर्य बनाता वह शत्रुओको नष्ट करता है), १४।१९ (सोम सूर्यदेवकी तरह पत्थरोसे निचोडा पवित्र होता कलशमें रसता), १४।२० (हरी=पीले वर्णका। तीव्र जिसका मद्यरस), १४।२१ (दूर और नज-

दीक शर्यणावतमें छाना गया सोम। आर्जीकोमें, कृत्वोंमें, पस्त्योके बीच पचजनोमें छाना गया। जम-दग्नि द्वारा स्तुति किया जाता। हरा सोम गौके चमडेपर पवित्र हो रहा है), १५।५ (इन्द्रासोम, सोम) १५।६, १५।७, १५।७७ (स्वादु मधुमान्, तीव्र, रसवान्, मदिष्ठ। जिसे पी वृत्रहत्या में इन्द्रने मस्त हो शबरकी ९९ देहियोको नष्ट किया। पृथिवीकी श्रेष्ठता द्यौकी उच्चताको उसने बनाया। वह पीयूष है। सोमने विस्तृत अतरिक्षको धारण किया), १७।१९ (ससुर नही आया कि घाना खाता, सोम पीता)

सोमराजा—१७।१२ (सोम)

स्वर्ग—१५।१०३ (नाकके पूष्ठपर देवोंके साथमें जाते), १५।१०४ (स्वरहित=सुखयुक्तलोक जहा निरन्तर ज्योति। जो अमृत-लोक)।

